श्रीरामानन्ददर्शनशोधसंस्थानग्रन्थमालाया अष्टाविंशतितमं पुष्पम्

卐 सर्वेश्वरश्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

श्रीहनुमते नमः

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमो नमः

आनन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यस्य

सप्तशताब्दीस्मारक
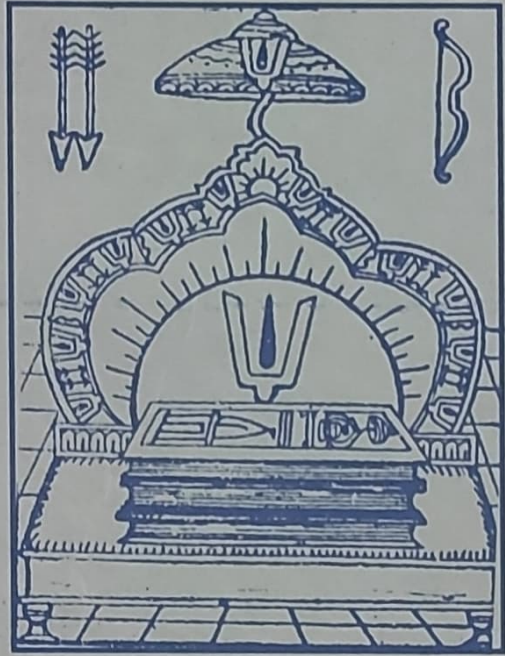
श्रीरामतापनीयोपनिषद्
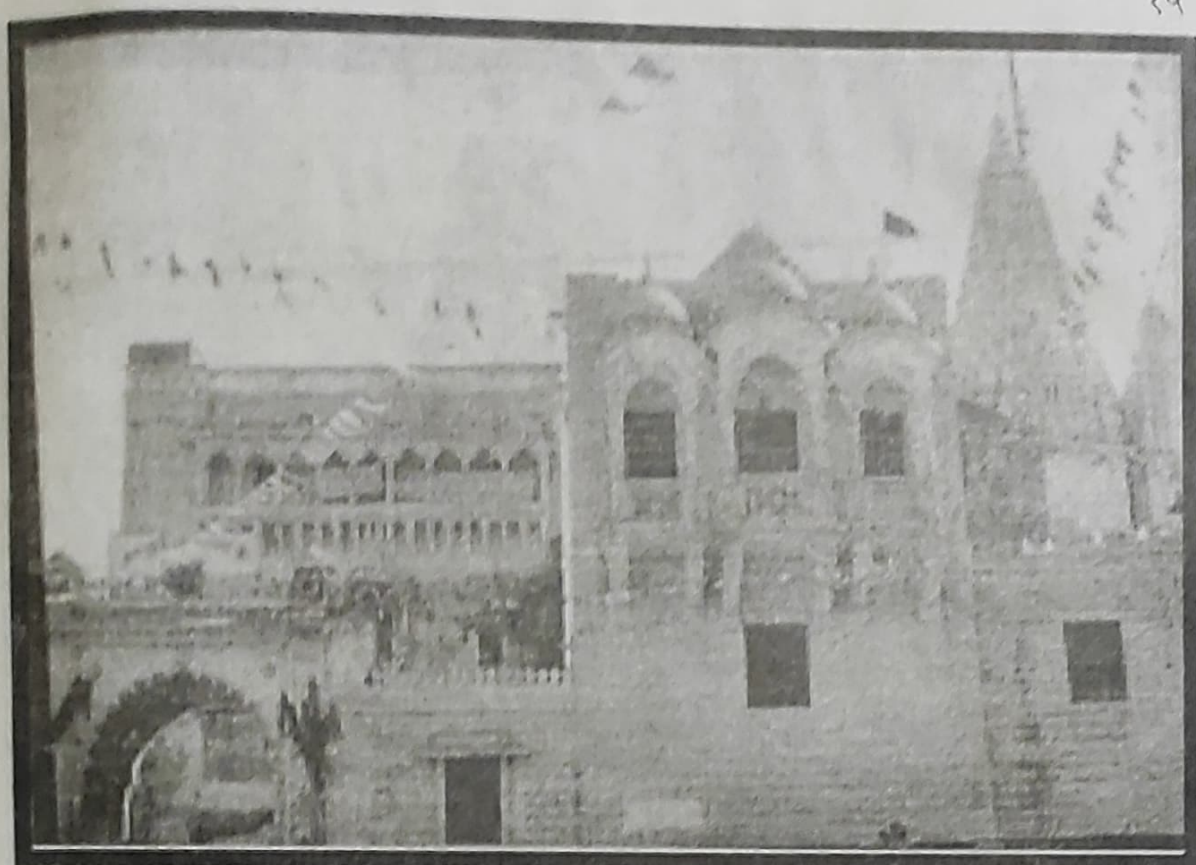
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ विश्रामद्वारका का मनोहर दृश्य
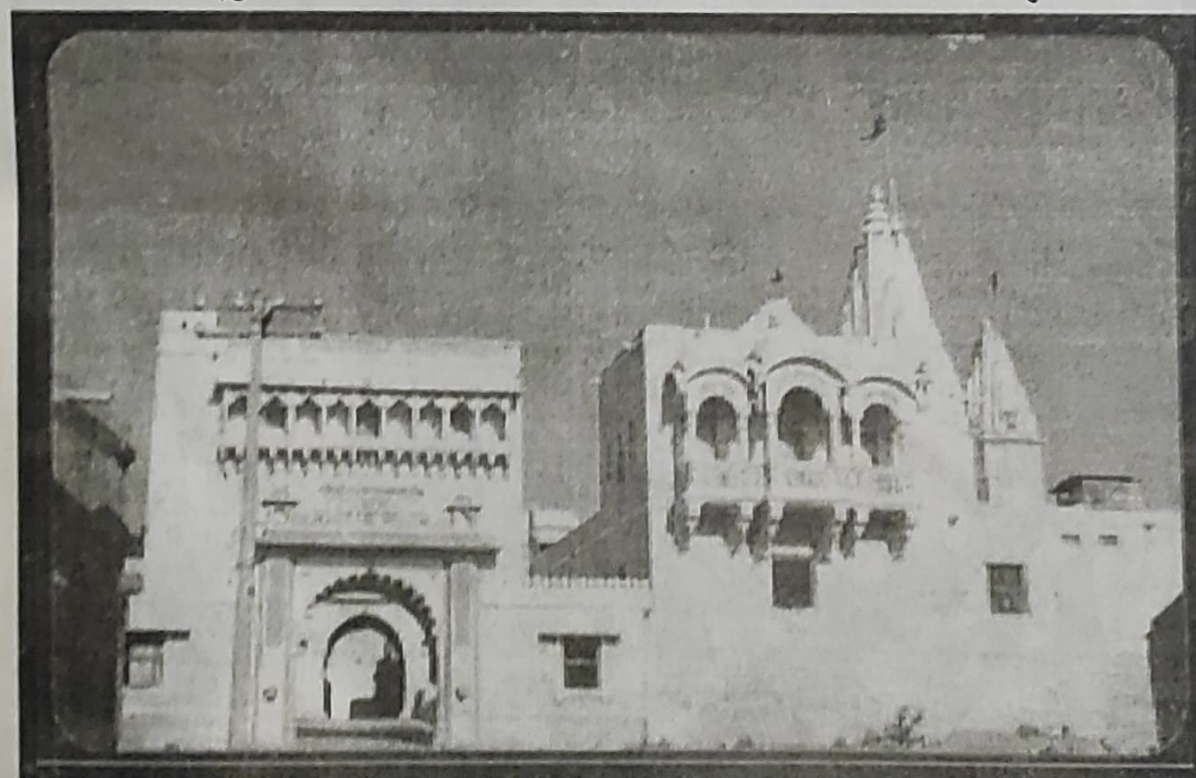
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ विश्रामद्वारका का प्रवेशद्वार

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ अहमदाबाद की एक झांकी
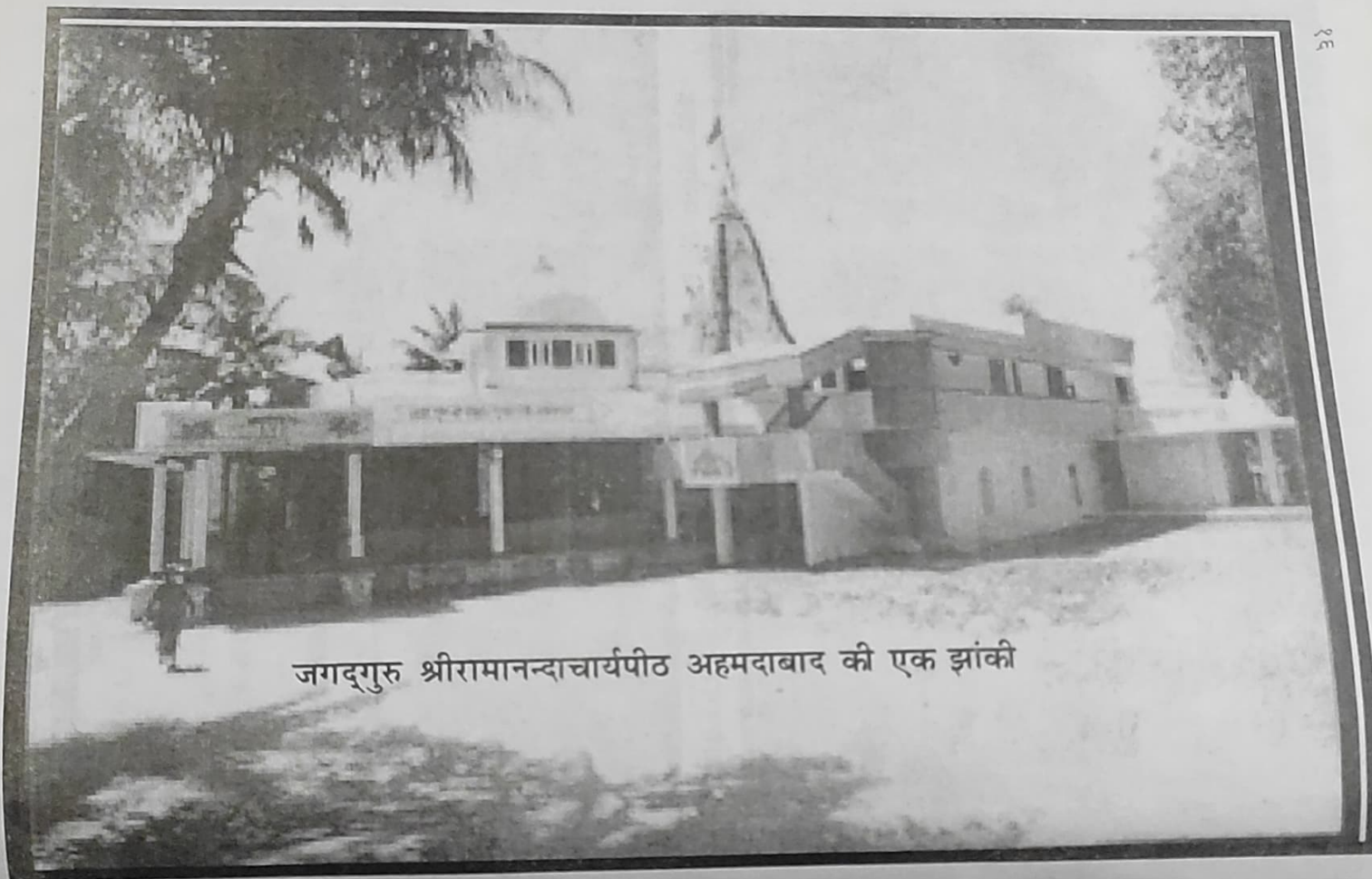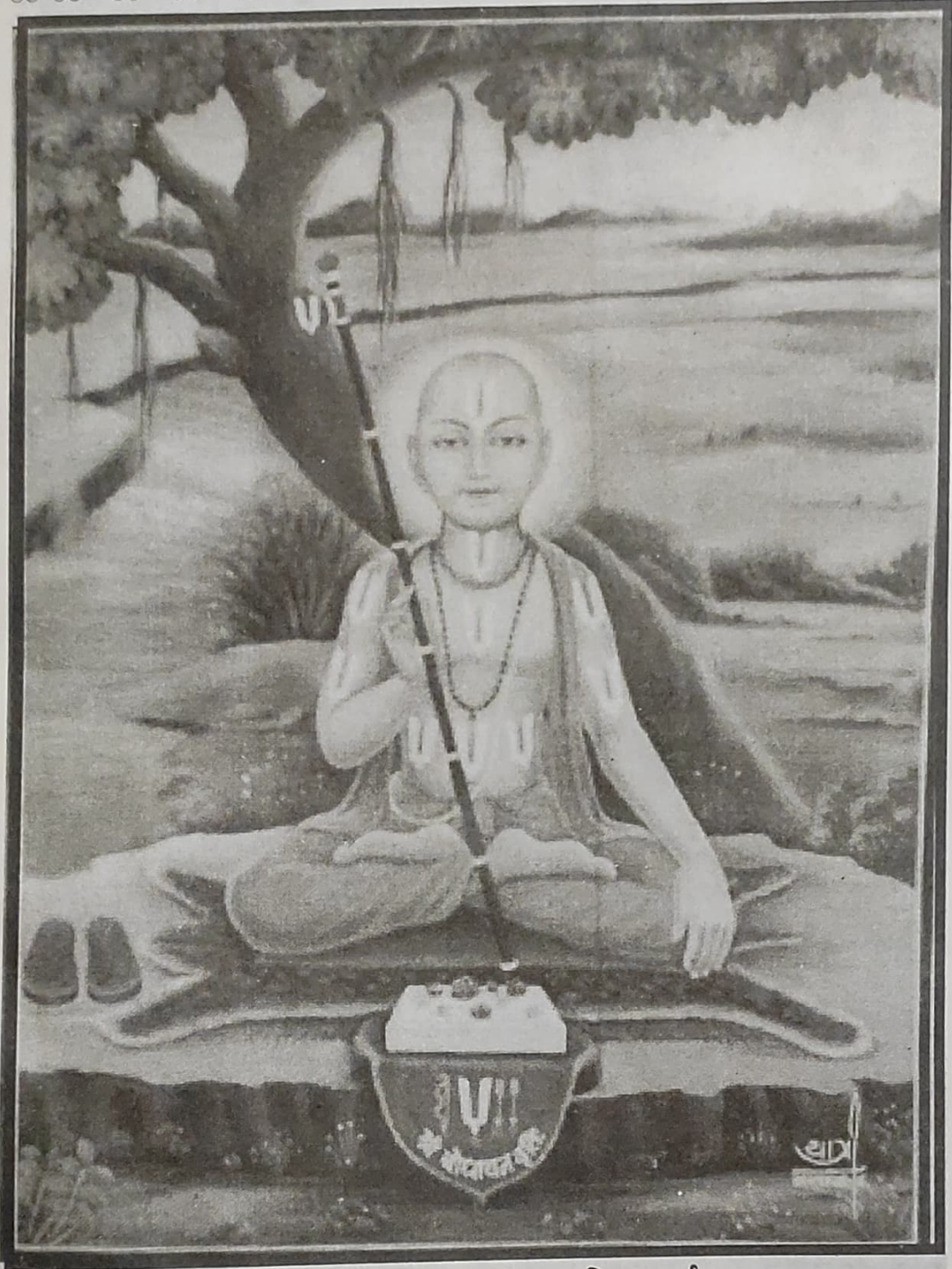
विक्रमपूर्व ५६९ 卐 ३२० विक्रमपूर्व

विश्रामद्वारकातीर्थ में श्रौतविशिष्टाद्वैतपीठ संस्थापक

महर्षि श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन
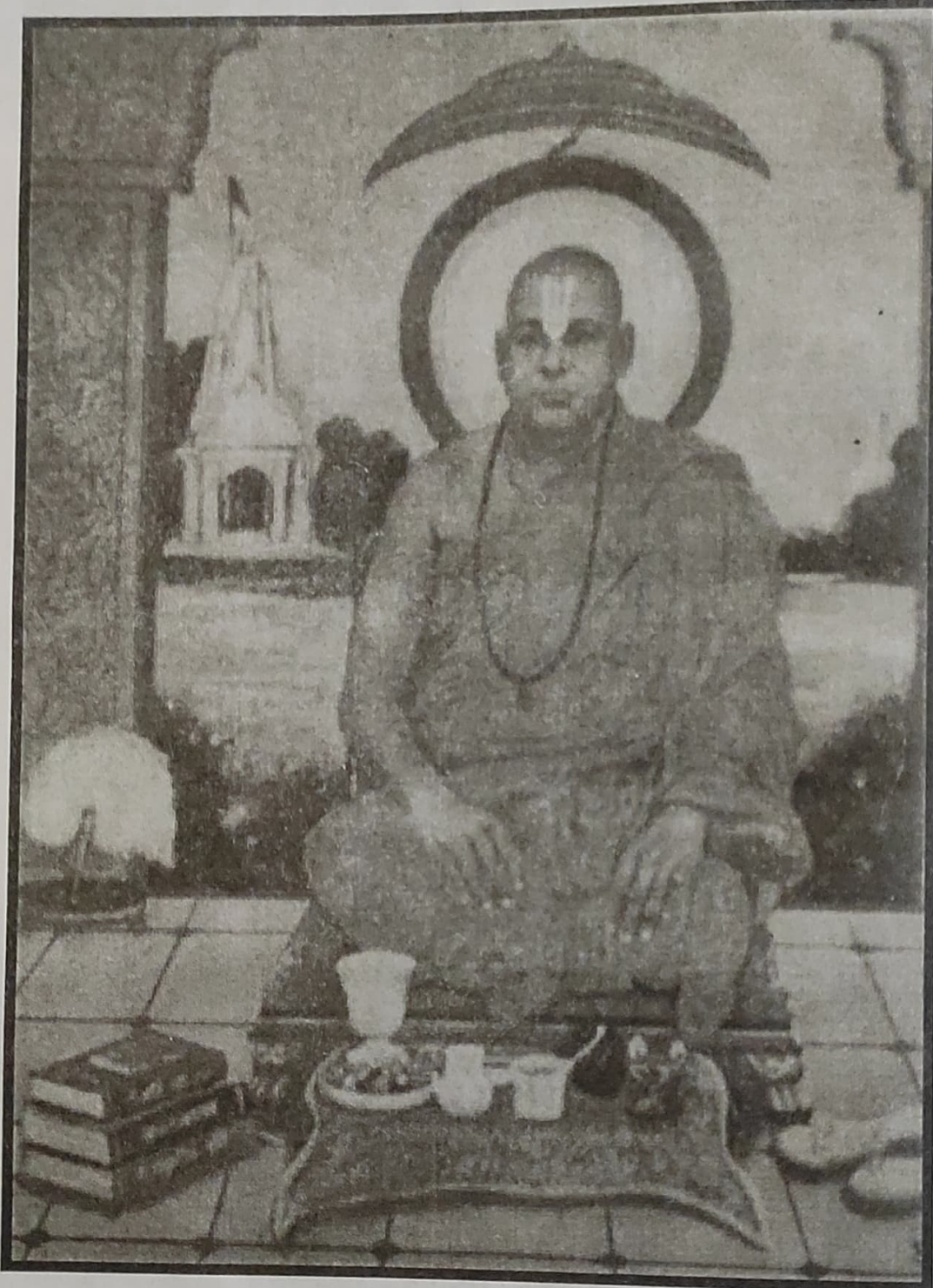
१९४३ 卐 २००७

जगद्विजयी शतावधानी महामहोपाध्याय

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरघुवराचार्यजी
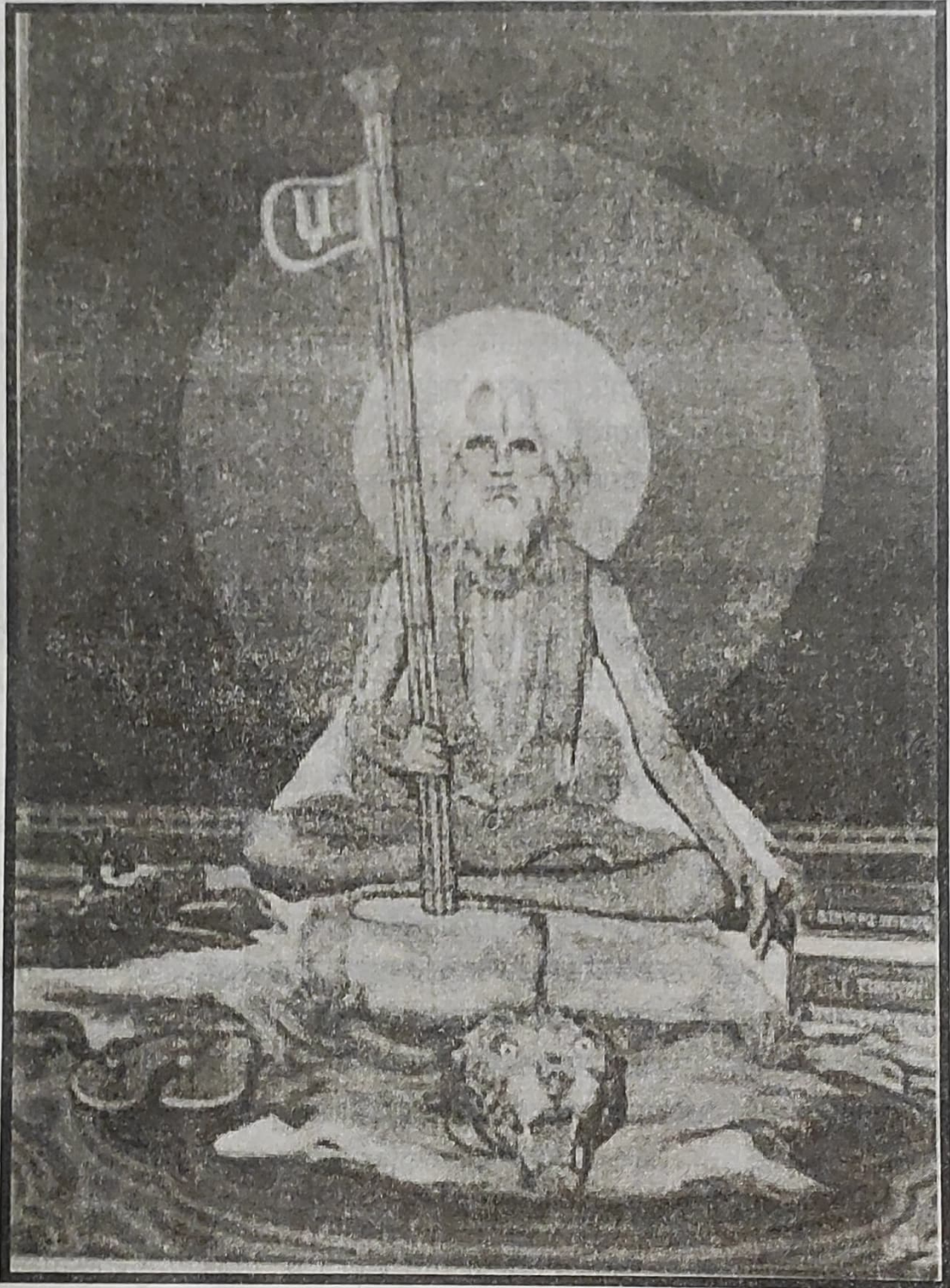
१९४४ 卐 २०४६

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्यजी

☬ स्मृतिः ☬

पीछले व्यतीत हुये प्रसंग को स्मरण कर उसे स्थायीरूप प्रदान हेतु जिस कार्य को सम्पादन किया जाता है उसे **स्मृति** या स्मारक कहते हैं, यह भारतीय संस्कृति की पुरानी परम्परा रही है। जिन पूर्वजों ने क्रान्तिकारी समाज का हितकारक विशेष कार्य का सम्पादन किया है उनके प्रति विशेष श्रद्धाभाव प्रस्तुत करते हुये स्मृतिग्रन्थ का प्रकाशन महत्वपूर्ण विषय होता आया है। श्रीसम्प्रदाय-श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के विशिष्ट महान् विभूति उपनिषद् ब्रह्मसूत्र एवं गीता इन प्रस्थानों पर आनन्दभाष्य लिखकर पारमार्थिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में साधकवर्गों को उद्वेलित करनेवाले विक्रमसम्वत १३५६ माघकृष्णसप्तमी को **'रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले'** इस आगम वाक्य के अनुसार मर्यादापुरुषोत्तम सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ही श्रीरामानन्दाचार्य जी के रूपमें अवतरित हुये सर्वेश्वर श्रीरामजी ने जैसे श्रीरामगीता आदि आध्यात्मिक तत्वों का उपदेश कर भारतीय जन जीवन को पारमार्थिक पथ का अनुगामी बनाया वैसे ही आचार्यश्री ने भी दार्शनिक क्षेत्र में समन्वयात्मक क्रान्ति कर दी, जैसे मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी ने समाज से उपेक्षीतवर्ग निशादराज शबरी प्रभृति को समाज के साथ समानरूपता प्रदानकर आदर्श स्थापित किया, उसीप्रकार आनन्दभाष्यकारजी ने भी **'सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत्प्रभोः। अपेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च नो न चापि कालो न च शुद्धतापि वै ॥'** श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर ४।५० की दिव्य घोषणा कर घोषणा के अनुरूप समाज के द्वारा घोर उपेक्षा प्राप्त एवं अन्य तथाकथित आचार्याभिमानी लोगों के द्वारा भी उत्पिडन सहन कर रहे समाज के निम्न कहे जाने वाले मानवों को उच्चवर्ग के कहलाने वाले मानवों के साथ समानरूपता प्रदान की, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र के रूपमें विभक्तजनों को समान रूपसे अपने प्रधान बारह शिष्यों का महत्व प्रदानकर एक विशिष्ट आदर्श स्थापित किया। आपके ही प्रस्थापित आदर्श को मूल भित्ती में रखकर आजकल के कतिपय सुधारवादी कहलाने वाले व्यक्ति अपने को विशिष्ट अनुभव कर रहे हैं जबकि इस संगठीत प्रक्रिया के आद्य जन्म दाता आज से सातसौ वर्ष पहले अवतार लेकर समाज का सुदृढ पथ प्रदर्शन करने वाले आनन्दभाष्यकारजी हैं आप श्री के आदर्श पर आज का समाज चले तो भारतवर्ष का काया पलट हो जाय, आचार्यश्री के इन दीर्घतम योजना के स्मृतिरूप यह **आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी** के भाष्य के साथ सर्वेश्वर श्रीरामतत्व निर्वचन परक **श्रीरामतापनीयोपनिषद् भाष्य** हिन्दी टीका के साथ समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है आशा है साधकवर्ग श्रीरामतत्व का आस्वादन कर परम पथ का अनुगामी बन मानव जीवन सफल बनायेगा।

प्रकाशक

卐 जय श्री राम 卐

निदर्शिका-श्रीरामतापनीयस्य

आनन्दभाष्यकार जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यजी

१३५६-१५३२ के ७०० वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में
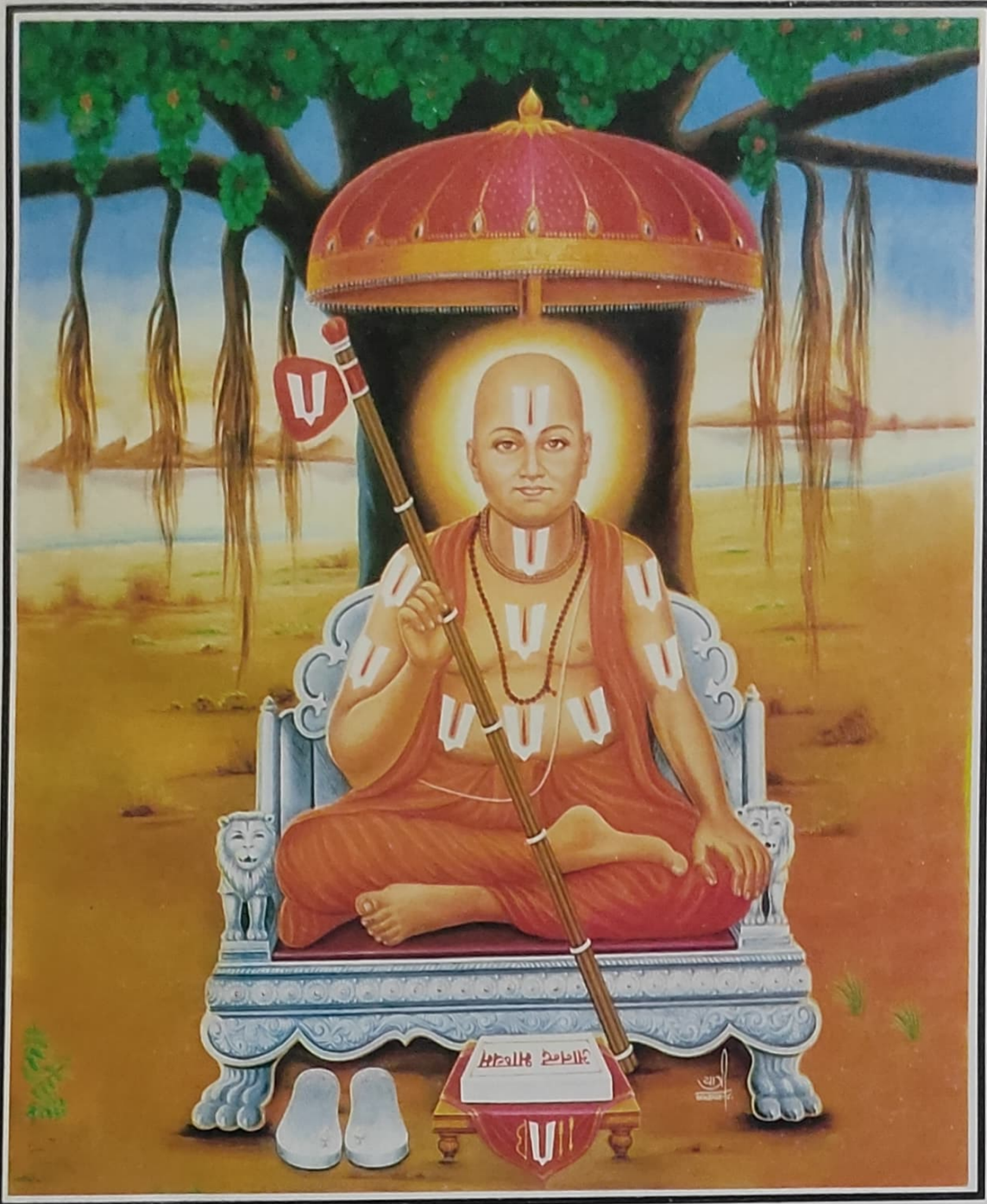
जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठ

अहमदाबाद-३८०००७ फोन-६६०१००१

श्रीमहन्त श्रीविष्णुदासजी के कृपापात्र महन्त श्रीआशुतोषदासजी
तथा धर्मप्रचार विभाग श्रीबालाजी चारसम्प्रदाय मन्दिर सूरत के सौजन्य से

प्रकाशक-श्रीरामानन्ददर्शनशोधसंस्थान आचार्यपीठ अहमदाबाद-७

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी
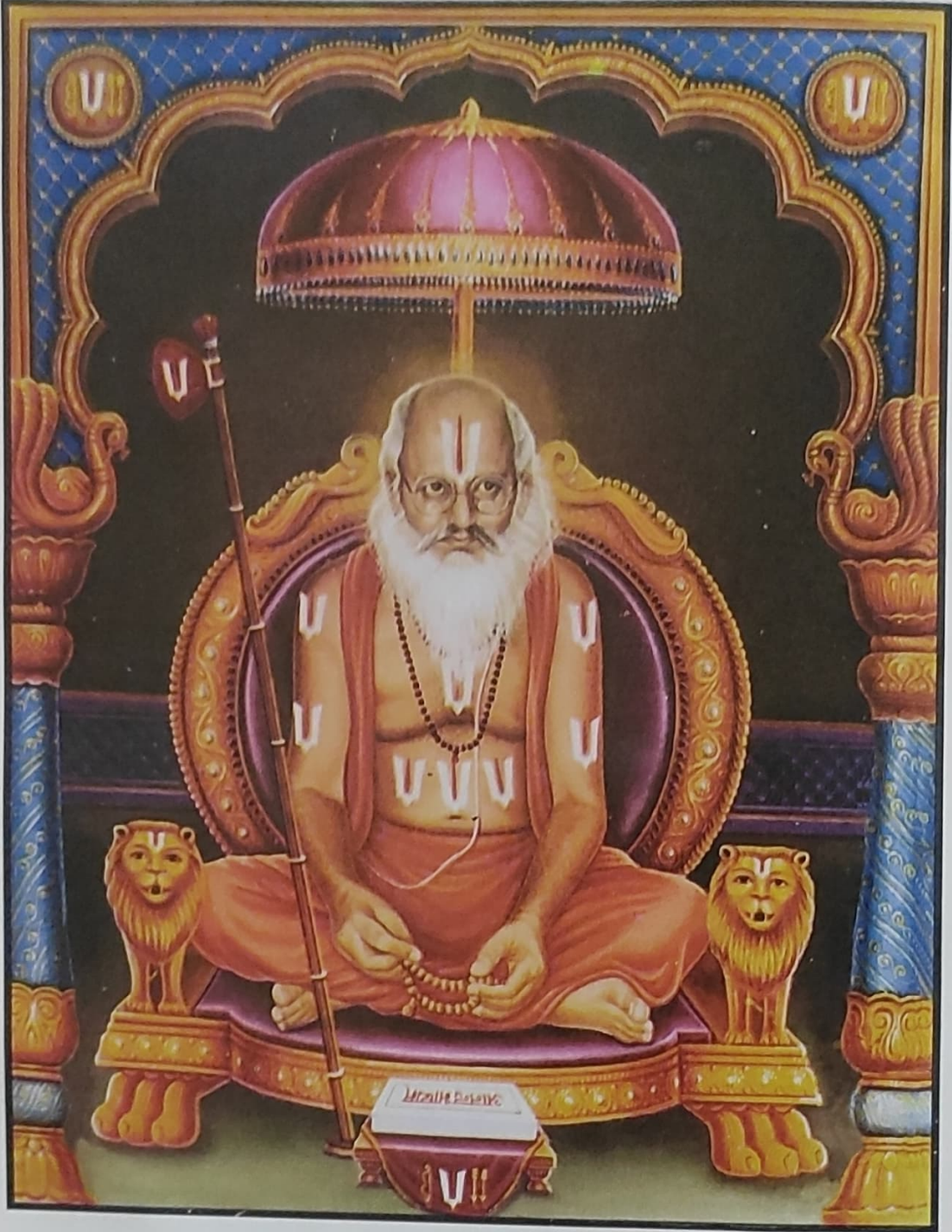
जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठ

श्रीविश्रामद्वारका
श्रीशेषमठ शींगड़ा
पोरबन्दर-सौराष्ट्र

श्रीकोसलेन्द्रमठ
पो. पालडी सरखेज रोड
अहमदाबाद-७ फो. ६६०१००१

ᛘ सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः ᛘ

श्रीहनुमते नमः

卐 प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमोनमः 卐

सर्वेश्वरश्रीरामतत्त्वप्रकाशिका

ᛘ श्रीरामतापनियोपनिषत् ᛘ

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यकृत

ᛘ श्रीरामानन्दभाष्येण भाष्योद्योतेन चोपेता ᛘ

सर्वलोकप्रियं रामं राजीवायतलोचनम् ।
सर्वेश्वरं सुराधीशं बन्दे दशरथात्मजम् ॥१॥
विश्रामद्वारकास्थस्य पीठबोधायनस्य च ।
श्रीवैष्णवानामाचार्य स्वामी रामेश्वरो यतिः ॥१॥
श्रीमद् रामप्रपन्नार्यो गुरुर्मे प्रीयतामिति ।
धियोद्योतं तनोम्यत्र भाषायां भाष्यबोधकम् ॥२॥
सीतारामसमारम्भां शुकबोधायनान्विताम् ।
रामानन्दार्यमध्यस्थां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

महर्षि बोधायन श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी (५६९-३२० विक्रमपूर्व) के द्वारा विश्रामद्वारका में संस्थापित श्रौतविशिष्टाद्वैत आचार्यपीठ का सार्वभौम आचार्य स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य श्रीवैष्णव विरक्त संन्यासी श्रीमान् गुरुवर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी जो वर्तमान में साकेतलोक में भगवान् श्रीराघवेन्द्र के नित्य पार्षद स्वरूप में विराजमान हैं उनकी प्रसन्नता के लिये अर्थात् वे मुझ पर प्रसन्न हों इसलिये श्रीरामतापनीय उपनिषद् के मेरे श्रीरामानन्द भाष्य की हिन्दी भाषा में उद्योत नामक टीका का विस्तार किया जाता है ॥१ २॥

समस्त चराचर जगत के एक मात्र प्रियतम कमल के सदृश विशाल एवं सुन्दर जिनकी आखें हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक देवाधिदेव अयोध्याधिपति श्रीमान् महाराज दशरथ के आत्मज **"सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः"** इस आगम से बोधित सर्वावतारी सर्वेश्वर श्रीरामजी को मैं दण्डवत प्रणाम करता हूँ ॥१॥

जगद् वन्द्यां हरेर्मायां वैदेहीं जनकात्मजाम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां रामाभिन्नां नमाम्यहम् ॥२॥
नीलोत्पलश्यामलकोमलाङ्गं प्रपन्नभक्तार्तिविनाशदक्षम् ।
भवाब्धिपोतं भवतापखिन्नो रामेश्वरेशं शरणं प्रपद्ये ॥३॥
स्वभायया यो जगदादिहेतुः सृजत्यवत्यत्तिचिदात्मरूपः ।
तं कोशलेन्द्रं भवरोगवैद्यं नमामि भक्त्याखिललोकनाथम् ॥४॥
सकलशास्त्रविचारपरायणं विजितषड्गुणदेहधरं सुरम् ।
विविधवादिगजारिगुरोर्गुरुं रघुवरं प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥५॥

समस्त संसार के लिये बन्दन करने योग्य परब्रह्म परमेश्वर सर्वेश्वर श्रीरामजी की माया स्वरूपा मिथिला भूमि में उत्पन्न महाराज जनक की सुपुत्री लोकमाता होने के कारण सभी का परम कल्याण करने वाली भगवान् श्रीरामजी से अभिन्न श्रीसीताजी को मैं दण्डवत प्रणाम करता हूँ ॥२॥

नील कमल के समान कोमल एवं .श्यामल अवयव सम्पन्न अपने शरणागत भक्त समुदाय के आन्तरिक एवं बाह्य पीडाओं का निवारण करने में परम निपुण, एवं संसाररूपी महासागर के जहाज सभी भक्तगण का एक मात्र आश्रय तथा मुझ रामेश्वरानन्दाचार्य के अभीष्ट देव सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का मैं रामेश्वरानन्दाचार्य सांसारिक दैहिक दैविक भौतिक एवं आध्यात्मिक वेदनाओं से सन्तप्त आश्रय लाभ बुद्ध्या शरणागत होता हूँ ॥३॥

जो परम चैतन्य अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मरूप को धारण किये हैं, एवं इस जगत के उत्पत्ति पालन एवं संहार का आदि कारण हैं, इस कार्य को स्वयं न करके अपनी अचिन्त्य शक्ति माया से सम्पादन कराते हैं। उन संसार रूपी महान् रोग का सर्वोत्तम चिकित्सक अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड का स्वामी भगवान् कोशलाधीश श्रीजानकीवल्लभ श्रीरामचन्द्रजी को श्रद्धा भक्ति पूर्वक प्रणाम करता हूँ ॥४॥

समस्त शास्त्र आस्तिक नास्तिक दर्शन एवं अन्य वाङ्मय का विवेचन करने में समर्पित जिन्होंने राग द्वेष मोह आदि आन्तर वाह्य छ गुणों के वर्ग को स्वाधीन कर लेने से मानो भौतिक देह धारण किये हुए देवता हों, अनेकानेक शास्त्र विरुद्ध पक्ष का स्थापन करनेवाली वादी स्वरूप हाथियों के लिये सिंहस्वरूप मेरे

श्रीयोगिराजाय गुरूत्तमाय विज्ञानसम्प्राप्तरघूद्वहाय ।
रामप्रपन्नाय बुधप्रियाय रामेश्वरो नौमि विशुद्ध भक्त्या ॥६॥

सर्वधीः साक्षिणेऽचिन्त्यशक्तयेऽचिन्त्यरूपिणे ।
सर्वभूतैकनाथाय नित्याय प्रभवे नमः ॥७॥

श्रीरामतापनीयस्य श्रुतिशीर्ष्णे रघूद्वहे ।
प्रीतये क्रियते भाष्यं रामतत्त्वार्थबोधकम् ॥८॥

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ।

रामेश्वरानन्दाचार्य के परमगुरु श्रीमान् जगद्विजयी महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी महाराज वेदान्तकेशरी को भूयोभूयः प्रणाम करता हूँ ॥५॥

मेरे उत्तमोत्तम गुरु योगिराज षट् दर्शनकेसरी नाम से प्रसिद्ध जिन्होंने अपने विशिष्ट ज्ञान के बल से जीवनावस्था में ही सम्यक् रूपसे अपने उपास्य देव भगवान् रघुकुलनायक श्रीरामचन्द्रजी को उपलब्ध कर लिये थे तथा तत्कालीन सभी विद्वानों के अतिशय प्रिय थे ऐसे श्रीमान् जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी महाराज को परम विशुद्ध भक्ति के साथ मैं रामेश्वरानन्द साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम करता हूँ ॥६॥

समस्त जडचेतनात्मक चराचर जगत् के बुद्धि का साक्षी स्वरूप जिनके सामर्थ्य के विषय में कोई अन्दाज भी नहीं कर सकता है सर्व व्यापक होने के कारण जिनका अचिन्तनीय अनन्त स्वरूप है, जो समस्त प्राणियों के एक मात्र परम उपास्य देव हैं ऐसे नित्य प्रभु परब्रह्म परमात्म रूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को मेरा प्रणाम है ॥७॥

रघुकुल नायक सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में परमानुराग हो इसलिये उपनिषदों में महत्त्वपूर्ण श्रीरामतापनीय उपनिषद् का श्रीरामतत्वार्थ बोधक भाष्य रामेश्वरानन्दाचार्यजी के द्वारा जगत् प्रीत्यनुरोध से किया जाता है यानी साधकों का सर्वेश्वर श्रीरामजी के श्रीचरणों में दृढानुराग हेतु तत्त्व बोधक भाष्य बनाता हूँ ॥८॥

वे भगवान् कोशलेन्द्र मर्यादापुरुषोत्तम सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी हम सभी की रक्षा करें । जिन्होंने अपने पिता के आदेश पूर्णता प्रयोजन से उपलब्ध होता हुआ राज्य को छोड़कर अपनी वल्लभा जगज्जननी श्रीसीताजी के साथ उनके कर कमलों से स्पर्श

वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषारोपितभ्रूविजृम्भ:

त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः ॥१॥

अथ 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' 'आनन्दो ब्रह्म' तदेव ब्रह्म त्वं विद्धिनेदं यदिदमुपासते 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति' 'द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । एकस्तयोः पिप्पलमत्ति स्वाद्वनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति' 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्' 'ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति' 'अथ मर्त्योऽमृतोभवति अत्र ब्रह्म समश्नुते' एवमाद्याम्नायवचनैः ब्रह्मशब्दाभिधेयस्यैकस्यैव निखिलचराचरहेतुत्वम् । परब्रह्म श्रीराम एव च मुक्तात्मभिरुपेयः । इतिशास्त्रवचनैरादिश्यते । श्रीनारायण नृसिंहकृष्णवामनादिषु च भगवद् विग्रहवाचकेषु ब्रह्मशब्दव्यवहारः श्रुति-

करने में भी अक्षम अति कोमल श्रीचरण कमलों से वन वन में भ्रमण किया श्रीसुग्रीवजी श्रीलक्ष्मणजी श्रीहनुमानजी आदि के सम्पर्क से जिन्होंने मार्ग जनित श्रम का दूरीकरण किया । रावण की वहन शूर्पणखा का कुरूपीकरण के पश्चात् अपहृत अपनी प्रेयसी के वियोग जनित क्रोध से उद्धृत भौहों के विलास मात्र से ही जिनसे समुद्र उद्विग्न हो गया, लंका राज्य में अपनी सेना के प्रवेश हेतु जिन्होंने समुद्र में सेतु बन्धन किया, शत्रुओं की सेना स्वरूप महावन के लिये दावानल के समान संहार सक्षम वे भगवान् श्रीकोशलेन्द्रजी हमारी रक्षा करें ॥१॥

प्रकृत प्रसंग का अनुसन्धान निम्न रूपसे करना चाहिये सत्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप एवं अनन्त स्वरूप वाला ब्रह्म है । हे सौम्य-यह ब्रह्म सृष्टि के प्रारम्भ काल में नित्य सत्ता स्वरूप यह ब्रह्म तत्त्व था । आनन्द ही ब्रह्म है । वही ब्रह्म है यह तुम समझो, यह ब्रह्म नहीं है जिसकी तुम वर्तमान में उपासना करते हो । उस परम सत्य परब्रह्म को जानकर ही मृत्यु के ऊपर विजय अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है । उसे जानने का या मोक्ष प्राप्त करने, या परमगति का श्रीराम शरणागति सिवाय अन्य मार्ग नहीं है । समान गुण वाले परस्पर मित्र दो सुन्दर पक्षवाले पक्षी (जीवात्मा-परमात्मा) एक वृक्ष को आश्रय बना कर (अथवा-एक शरीर को आधार बनाकर) विद्यमान हैं। उन दोनों में से एक पक्षी (जीवात्मा) स्वादिष्ट पिछ्ली (सांसारिक कर्मफल) को भोगता है । एक परमात्मा उसे नहीं भोगता हुआ, सर्वतोभावेन देदीप्यमान होकर विराजता है। ब्रह्म तत्त्व का जानाकर परब्रह्म को उपलब्ध करता है । अथवा इस सृष्टि के प्रारम्भिक

स्मृतीतिहासपुराणादिषु विलोक्यते सामान्येन, तस्य ब्रह्मशब्दाभिधेयस्य सामान्यवाचकवाचकस्य 'पशुनायजेत' इति वत् विशेषवाचकत्वमभ्युपेयम् । श्रीकृष्णहरिनारायणविष्णुनृसिंहदामोदरादिशब्दानां ब्रह्मवाचकत्वेन व्यवहार दर्शनात् प्रकृततत्त्वविस्फोरणाय गुरोराज्ञायाश्च परिपालनीयत्वात् । सकल-जगदुदेयादिलीलस्य परमकरुणाशीलस्य महामहिमशालिनः परमात्मनः सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रस्य स्वरूपगुणविभूत्यादीनां वर्णनेन स्ववाणीपावनाय श्रीरामतापनि-योपनिषद् भाष्यरचना प्रवृत्तिरुदेति रामेश्वरानन्दाचार्यस्य ॥२॥

काल में एक मात्र ब्रह्म ही था। ब्रह्म तत्त्वज्ञानी ब्रह्म स्वरूपता को ही प्राप्त करता है। इसके वाद मरण धर्मा मानव अमृत हो जाता है। अर्थात् संसारिक बन्धनों को दूर कर मुक्त हो जाता है। इस संसार में रहता हुआ ब्रह्म साक्षात्कार जनित सुख को सम्यक् प्रकार से भोगता है। इत्यादि श्रुति वचनों से ब्रह्म शब्द से प्रतिपाद्य जो कोई तत्त्व विशेष है उस एक मात्र तत्त्व की ही समस्त जडचेतनात्मक जगत् की कारणता प्रतीत होती है। और वह ब्रह्म तत्त्व ही मुक्तात्माओं से समस्त साधनों के द्वारा प्राप्त करने योग्य है। ऐसा विभिन्न शास्त्रों के वचनों से निरूपण किया जाता है। श्रीनारायण श्रीनृसिंह श्रीकृष्ण श्रीवामन आदि जो भगवान् के दिव्य मङ्गल विग्रह के वाचक वचनों से ब्रह्म शब्द का व्यवहार वेद धर्मशास्त्र पुराण इतिहास आदि में सामान्य रूपसे देखा जाता है उस ब्रह्म शब्द के द्वारा प्रतिपादन करने योग्य अर्थ विशेष का जो कि सामान्य वाचक शब्द के द्वारा प्रतिपाद्य 'पशु के द्वारा याग करे' इस श्रुति में जैसे-गो महिष अश्व गर्दभ आदि सामान्यार्थ वाचक पशु शब्द से प्रतिपाद्य किस विशेष वस्तु इष्ट की भावना करें इस जिज्ञासा में 'छागो वा मन्त्र वर्णात्' इत्यादि वचनों की सहायता से पशु विशेष रूप अर्थ ज्ञान का विषय होता है इसी तरह ब्रह्म शब्द में अर्थ विशेष वाचकता है यह सिद्धान्त अवश्य स्वीकार करना चाहिये। श्रीकृष्ण श्रीहरि श्रीनारायण श्रीविष्णु श्रीनृसिंह श्रीदामोदर आदि शब्दों का ब्रह्म अर्थ का वाचक होने के कारण व्यवहार शास्त्र तथा लोक में होने से अतः प्रकृत तत्त्व को वास्तविक रूपसे स्पष्टीकरण करने हेतु और गुरुदेव की आज्ञा सर्वतोभावेन परिपालनीय होने से अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति स्थिति संहार जिनकी लीला है। परम करुणाशील बिना हेतु के ही प्राणी मात्र पर दया करने वाले महामहिमशाली परब्रह्म परमात्मा सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का स्वरूप सौर्योदार्य वात्सल्यादि गुण तथा विभूति आदि का वर्णन

सामान्यार्थसम्बद्धस्य ब्रह्मशब्दस्य श्रीरामरूपविशेषार्थनिश्चयस्तु पशुछागन्यायेनैव सम्भवति । तद् वृत्तित्वे सति तदितरवृत्तित्वं सामान्यत्वम् । तद् वृत्तित्वे सति तदितरावृत्तित्वम् विशेषत्वम् । यथा लोमवल्लाङ्गूलादिमत्वम् पशुत्वम् । तच्च गवाश्वगर्दभमहिषादिषु वर्तते । छागो वा मन्त्रवर्णादिति विशेषपद सानिध्यात् छाग एवेति निर्णयः । उपासकानामभिमतसिद्धये सत्यज्ञानादि श्रुतेर्ब्रह्मणोऽद्वितीयस्य 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातेन जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् ब्रह्मेति श्रुतेः जगज्जन्मादिकारणत्वनिखिलभगवद् विग्रहेषु सामान्यम् । सर्वत्रैवावतारित्वप्राप्तेः । किन्तु तत्र विशेषेण बोध्यते-

रमन्ते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते ॥ सीतारामौ तन्मयावत्रपूज्यौ जातान्याभ्यां भुवनानि द्विसप्तस्थितानि चेत्यादिभिः श्रीरामचन्द्रस्य परंब्रह्मत्वं साध्यते चिद्रूपत्वञ्च । यथा करने के माध्यम से अपनी वाणी को पवित्र करने के लिये श्रीरामतापनीय उपनिषद् की तात्त्विक व्याख्या स्वरूप की रचना करने के लिये प्रयास जागृत होता है मुझ रामेश्वरानन्दाचार्य को अतः लिखने में प्रवृत्ति हुई है ॥२॥

साधारण अर्थ से सम्बद्ध ब्रह्म शब्द का जिसका कि श्रीनृसिंह श्रीकृष्ण श्रीनारायण आदि अर्थों से सम्बन्ध होता है उसका श्रीरामरूप विशिष्ट अर्थ के साथ निश्चय, तो पशुछाग न्याय से ही होता है। सामान्य उसे कहा जाता है जो वर्णनीय में होते हुये उससे भिन्न में भी हो जैसे पशुत्व छाग में भी है तदितर गो गर्दभ आदि में भी है। लोमवत् लाङ्गूलादि से सम्पन्न पशु कहा जाता है यह सामान्य वाचक हुआ। 'छागो वा मन्त्र वर्णात्' इस वाक्य में छाग पद विशेष्य के सान्निध्य से पशु शब्द का अर्थ छाग ही है यह निर्णय होता है। उपासकों के अभिमत फलों की सिद्धि के लिये सत्यज्ञानादि स्वरूप श्रुति के द्वारा अद्वितीय ब्रह्म का→जिससे यह संसार पैदा होता है जिसके द्वारा उत्पन्न प्राणी जीवित रहता है जिसमें इस दृश्य जगत का विलय होता है वह ब्रह्म है इस श्रुति के द्वारा संसार के उत्पत्ति स्थिति पालन आदि की कारणता भगवान के समस्त विग्रहों में सामान्य रूपसे है इसीलिये सभी श्रीनृसिंह आदि में अवतारित्व प्राप्त होता है। लेकिन जगह-जगह पर विशेष वाक्य के द्वारा ज्ञात कराया जाता है कि जिस परब्रह्म में योगिजन सच्चिदानन्द स्वरूप में समाधि जनित आनन्द का अनुभव करते हैं वही परब्रह्म श्रीराम शब्द से कहे जाते हैं। ब्रह्ममय श्रीसीताराम

च छागपदसन्निधिवशात् पशोः छागत्वमवसीते तथा 'इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माविधीते' इतिश्रुतेः उपक्रमोपसंहारादिभिः हेतुभिः प्राकरणिकः श्रीराम एव, द्वयादिसहस्त्रसंख्याकभुजः सत्यानन्दचिदात्मकस्य श्रीरामचन्द्रपदाभिधेयस्य ब्रह्मत्वम् विज्ञायते । तेन ब्रह्मपर्यायत्वं श्रीरामस्य । ननु ब्रह्मशब्दवाच्यस्य श्रीरामस्य कथं सर्वावतारित्वमिति विविदिषायामाह-रमन्ते योगिनो यस्मिन्नित्युपक्रान्तस्य श्रीरामस्य ब्रह्मपदार्थस्य च वाच्यवाचकभावं निरूप्य, पुनः 'चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः । उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूप कल्पना' । श्रुतावद्वितीयत्वेन सामान्यतो विशेषितमिति सर्वावतारित्वं प्रमाप-

इस संसार में पूजनीय हैं इन दोनों से ही चौदहों भुवन उत्पन्न हुये एवं परिपालित हैं। इत्यादि श्रुतियों के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का परब्रह्मत्व एवं चिद्रूपत्व सिद्ध होता है। जिसप्रकार छाग पद की सन्निधि से पशु शब्द का छागत्व रूप अर्थ निर्णीत होता है उसीप्रकार श्रीराम पद से यह परब्रह्म कहा जाता है इस श्रुति से उपक्रम उपसंहारादि कारणों से प्रासङ्गिक श्रीरामजी ही दो से लेकर हजार संख्या तक के भुजाओं को धारण करने वाला सत्य आनन्द एवं चैतन्य स्वरूप श्रीरामचन्द्र पद का अर्थ ब्रह्म ही है यह विशेष रूपसे ज्ञात होता है। इसलिये ब्रह्म शब्द की पर्याय वाचकता श्रीराम शब्द की है। यदि यह प्रश्न करें कि ब्रह्म शब्द वाच्य जो श्रीराम है उसका सर्वावतारित्व कैसे होगा ऐसे ज्ञान की इच्छा होने पर जिसमें योगिजन रमण करते हैं इत्यादि भूमिका करके 'राम' एवं 'ब्रह्म' पदार्थ का वाच्य वाचक भाव प्रतिपादन करके पुनः चैतन्यमय, अद्वितीय निष्कल, अशरीरी श्रीरामजी का उपासकों के प्रयोजन सिद्धि के लिये ब्रह्म रूपमें उपकल्पना की गयी है। उपनिषद् में अद्वितीयत्व के रूपमें सामान्य रूपसे विशेषित कर श्रीरामजी का सर्वावतारित्व प्रमाणित किया गया है। और 'यतो वा इमानि, जन्माद्यस्ययतः' आदि श्रौत प्रामाणिक वचनों के द्वारा संसार की उत्पत्ति कारणता आदि की सिद्धि होती है। जिसमें योगी लोग आनन्द का अनुभव करते हैं उन सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म को श्रीराम शब्द से कहा जाता है। जिसप्रकार सूक्ष्म बीज के अन्दर विशाल वटवृक्ष निहित होता है उसीप्रकार श्रीराममन्त्र के बीज में यह जड़चेतनात्मक जगत् निहित है। इत्यादिश्रुतियों से श्रीरामचन्द्रजी की ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की कारणता एवं परब्रह्मत्व सिद्ध है। इसी श्रीरामतापनीय उपनिषद् में आगे कहा जायगा कि जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं वेही परब्रह्म हैं। जैसे यागीय पशु शब्द

यति। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयंत्यभिसंविशन्ति तद् ब्रह्मेति श्रुतेः। जगज्जन्मादिहेतुत्वं सिद्ध्यति। श्रीनारायण नृसिंहकृष्णशिवरुद्रादीनां जगत्कारणत्वे प्राप्तेऽपि-

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते ॥

तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।

इत्यादिश्रुतेश्च अनन्तकोटिब्रह्माण्डहेतुत्वं परंब्रह्मत्वञ्च श्रीरामचन्द्रस्यैवेति। अस्मिंश्चोपनिषदि वक्ष्यते 'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रस्स भगवान्यत्परं ब्रह्मेति च तथा च दृष्टान्ते यागपशोः सन्निधिवशात् छागशब्दवाच्यत्ववत् 'रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते' इति सान्निध्यात् ब्रह्मशब्दाभिधेयः प्राकरणिकः श्रीराम एवेति निश्चीयते। श्रूयन्ते च द्विभुजादारभ्य सहस्त्रभुजान्तं तस्यावताराः। एतेन ब्रह्मरामशब्दयोः पर्यायत्वं प्रतीयते। परस्य ब्रह्मणः श्रीरामशब्दवाच्यत्वं श्रीरामशब्दस्य च परब्रह्मवाचकत्वमिति तयोः वाच्यवाचकभावः। श्रुत्या च का छाग पद के सान्निध्य से छाग अर्थ वाच्य होता है उसीप्रकार 'राम' पद से यह परब्रह्म कहा जाता है इसके सान्निध्य से ब्रह्म शब्द का वाच्यार्थ प्रासङ्गिक 'राम' ही है। दो भुजा से लेकर हजार भुजाधारी पर्यन्त उनके अवतार सुने जाते हैं इसलिये ब्रह्म एवं 'राम' पर्याय वाचक हैं। परब्रह्म का वाच्यार्थ 'राम' है एवं 'राम' शब्द का वाच्यार्थ परब्रह्म वाचक शब्द है इसप्रकार दोनों का वाच्य वाचक भाव सम्बन्ध होता है। चिन्मय इत्यादि श्रुति के द्वारा आरम्भ कर परब्रह्म का अनुवाद पूर्वक विधान किया गया है इसलिये जो व्यक्ति मैं 'राम' हूँ ऐसा निरन्तर बोलता है वह संसारी जीव नहीं किन्तु 'राम' ही है इस सामानाधिकरण्य से सर्व शब्द के अर्थ को ज्ञान करानेवाला बहुवचन के प्रयोग से। मैं ओंकार स्वरूप वह सत्य परब्रह्म चैतन्य स्वरूप 'राम' हूँ इस वाक्य में ब्रह्म के पर्याय रूपमें 'राम' शब्द का पुनः पुनः कहने के कारण श्रीराम की ही ब्रह्म विष्णु मत्स्य कच्छपादि रूपों में बोध होता है। 'सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः' इस आगम वाक्य से प्रतिपादित सभी अवतारों के अवतारी सर्वेश्वर श्रीरामजी ही हैं। इस कारण से उपक्रम एवं उपसंहार वाक्यों में एकवाक्यता देखे जाने के कारण भी ज्ञात होता है कि परब्रह्म का वाच्यार्थ 'राम' ही है। जिसप्रकार 'भिङ्गाया हुआ शर्करा रखता है' इस विषय में जिज्ञासा होती है कि

चिन्मयस्येत्यादिभिः उपक्रम्य परब्रह्मानुवादपुरस्सरं विधानात्, 'सदा रामोऽहम्' इत्येतत् ये प्रवदन्ति ते न संसारिणः राम एव इति सामानाधिकरण्येन सर्वशब्दार्थ बोधकबहुवचनप्रयोगात् 'अहमों तत्सत्यंतत्परं ब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः' इत्यत्र ब्रह्मपर्यायत्वेन श्रीरामशब्दस्य भूयोभूयः कथनात् च श्रीरामस्यैव ब्रह्मविष्णु मत्स्यकच्छपादिरूपितया बोधात् । उपक्रमोपसंहारवाक्ययोः एकवाक्यता दर्शनात् । यथा 'आक्ताः शर्करा उपदधाति' इत्यत्र घृततैलादीनां आक्तत्वसन्देहे आयुर्वैघृतमिति वाक्यशेषेण घृतेनाक्ताः इति निर्णीयते । तथैव उपक्रमे सर्वावतारिबोधकब्रह्मशब्दे उक्तौ 'विश्वाधारं महाविष्णुं नारायणमनामयम्' इत्यादिभिः सन्देहोपस्थितौ चरममन्त्ररूपैः वाक्यशेषैः श्रीराम एवेति निर्णीयते । छान्दोग्योपनिषदादिषु दृष्टः कारणवाचको ब्रह्मशब्दः श्रीरामस्यैव कारणत्वं प्रकाशयति ।

ननु नृसिंहगोपालबृहन्नारायणोपनिषदादिषु ऋतं सत्यं परंब्रह्मपुरुषं नृकेशरिणं तथात्मैव नृसिंहो ब्रह्मभवति । सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णाय सकलं परंब्रह्मैव तत् । नारायणः परब्रह्म तत्वं नारायणः परः' इत्यादिषु नृसिंहादीनां शब्दानां ब्रह्मणि पर्यवसानात् 'चिन्मयस्य अद्वितीयस्य ब्रह्मणोरूपकल्पना' इत्यत्र अद्वितीयादिविशेषणविशेषितसर्वरूपित्वबोधकः विशेष्यभूतः ब्रह्मशब्दः श्रूयते ।

किस वस्तु से भिङ्गाया गया तो घृत तेल आदि के सन्देह होने पर 'आयुर्वैघृतम्' इस वाक्य शेष के द्वारा घृत से आप्लावित यह अर्थ निर्णीत होता है उसीप्रकार उपक्रम वचनों में सर्वावतारित्व ब्रह्म शब्द का प्रयोग करने पर समस्त जगत का आधार महाविष्णु नारायण, निर्दोष इत्यादि शब्दों के द्वारा सन्देह उपस्थित होने पर चरममन्त्र रूप वाक्य शेष से 'राम' अर्थ ही विशेष्य है यह निश्चित होता है। छान्दोग्योपनिषद् आदि में देखा गया कारण वाचक ब्रह्म शब्द श्रीराम की ही सर्वकारणता को प्रकाशित करता है।

यदि प्रश्न करें कि 'नृसिंह, गोपाल, बृहन्नारायण आदि उपनिषदों में चैतन्य, सत्य, एवं परब्रह्म पुरुष नृसिंह ही हैं उसप्रकार पर ब्रह्म होता है। सत्य चित् आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण ही समस्त कलाओं से युक्त परब्रह्म हैं। नारायण ही परब्रह्म हैं समस्त तत्व नारायणात्मक ही है' इत्यादि उपनिषद् वाक्यों में श्रीनृसिंह कृष्ण नारायण आदि शब्दों का ब्रह्म शब्द की पूर्णता देखे जाने से चैतन्यमय, अद्वितीय ब्रह्म की कल्पना

तत्रापि पशुछागन्यायस्य प्रवृत्तिः स्यात् । श्रीनृसिंहः ब्रह्म श्रीकृष्णः ब्रह्म श्रीनारायणः ब्रह्म इत्यादिभिः विशिष्यसामान्यतया उक्तस्य कारणत्वस्य विशेषेऽर्थे पर्यवसानाय पशुछागन्यायस्य प्रवृत्तेः सम्भवात् ॥३॥

यदि तु ब्रह्मशब्दप्रतिपाद्यस्यान्येषु श्रुतिषु विशिष्टस्य सर्वावतारित्वमुक्तम् भवति, तदा विशेषनिश्चायकोपनिषद्वचनेन विशेषता साध्यते, तदान्यस्यापि तथा साधनात् छागन्यायप्रवृत्तिः दुर्वारः स्यात् । नृसिंहकृष्णादीनामप्युपनिषत्सु सर्वरूपित्व सर्वावतारित्वादीनां निरूपणदर्शनात् । श्रीराम इवान्येषां सर्वरूपित्व सर्वावतारित्वादीनां सिद्धौ समेषामप्रामाण्यापत्तिः स्यात् । धर्मशास्त्र पुराणेतिहासादीनां तु वेदप्रामाण्येनैव प्रामाण्यम् । श्रुतेरप्रामाण्ये तेषामप्रामाण्यं

की गयी है। इत्यादि अद्वितीय आदि विशेषण से विशेषित सर्वरूपित्व का प्रतिपादक विशेष्य बना हुआ ब्रह्म शब्द सुना जाता है वहां भी पशु छाग न्याय की प्रवृत्ति होने लगेगी। श्रीनृसिंह ब्रह्म है श्रीकृष्ण ब्रह्म है श्रीनारायण ब्रह्म है इत्यादि वचनों से भेद करके सामान्य रूपसे कहे गये कारणता का विशेष अर्थ में सम्पन्नता हो इसलिये पशुछाग न्याय की प्रवृत्ति सम्भावना बनती है ॥३॥

यदि ब्रह्म शब्द बोध्य तत्व का अन्य श्रुति वचनों में विशिष्ट का सर्वावतारित्व कहा जाता है तो विशिष्ट तत्व प्रतिपादक श्रुतिवचनों से भेदत्व सिद्ध किया जाता है, उस प्रकार अन्य देवता का भी उसीप्रकार सिद्ध किये जाने पर छाग न्याय की प्रवृत्ति को रोकना कठिन होगा। क्योंकि श्रीनृसिंह कृष्ण आदि की भी उपनिषदों में सर्वरूपत्व एवं सर्वावतारिता आदि का प्रतिपादन देखा गया है। श्रीरामजी के समान अन्य देवताओं का भी सर्व रूपित्व एवं सर्वावतारित्व सिद्ध हो जाने पर सभी की अप्रामाणिकता की आपत्ति होगी। मनु आदि धर्मशास्त्र एवं विष्णु आदि पुराणों की तो वेद की प्रामाणिकता के कारण ही प्रामाणिकता है। वेद की अप्रामाणिकता सिद्ध हो जाने पर धर्मशास्त्र पुराणादि की भी अप्रामाणिकता सरलता से सिद्ध हो जायगी। यदि यह कहें कि वेदों में विशिष्ट ब्रह्म का प्रतिपादन सुना जाता है। लेकिन श्रीनृसिंह नारायण कृष्ण आदि का तो ब्रह्म शब्द का सर्वावतारित्व आदि विशेषण ही सुना जाता है। जैसे नृसिंह तापनीय उपनिषद् में, यह अकार ही आप्ततम अर्थ है, आत्मा में ही नृसिंह ब्रह्म में विद्यमान है। यह ही मृत्यु है यह ही व्यापकतम है, आत्मा ही नृसिंह देव ब्रह्म हैं। इत्यादि श्रुति वचनों से वार-वार नृसिंह एवं ब्रह्म शब्द का समान

सुतरां सिध्येत न च विशिष्टब्रह्मनिरूपणम् श्रुतिषु श्रूयते । किन्तु नृसिंहनारायण कृष्णादीनां तु ब्रह्मशब्दस्य सर्वावतारित्वादिविशेषणमेवश्रूयते । यथा नृसिंहतापनीयोपनिषदि-'एष एवाकार आप्ततमार्थः, आत्मन्येव नृसिंहे ब्रह्मणि वर्तते, एष एव मृत्युरेष हि व्याप्ततम, आत्मैव नृसिंहो देवो ब्रह्मभवति, एवमादिभिः पौनः पुन्येन, नृसिंहब्रह्मशब्दयोः कथनात्, सामानाधिकरण्याच्च, स्तुतिवचनैरपि सर्वरूपित्वादिकथनात् । ब्रह्मत्वप्राप्तेः, श्रुतिप्रमाणवादिनामनेक ब्रह्मसिद्धौ दोषः स्यात् ।

अत्रोच्यते-श्रुतौ श्रीनृसिंहस्य पौनः पुन्येन कथनम् न कारणत्वबोधकः, ब्रह्मणः कारणत्वस्य दर्शनाभावात् । अपितु प्राकृतसिंहत्वबुद्धिव्यावर्तनाय ब्रह्माभेदबोधनाय च तथा पाठः । अथवा श्रीनृसिंहोपासकैः सर्वथा चिन्ताराहित्येनोपासना विधेया, ब्रह्मशब्देन सामानाधिकरण्यं तु प्राकृतनृसिंह
विभक्तिकत्व का कथन होने से । और स्तुति वचनों के द्वारा भी एवं रूपित्व आदि कहने के कारण ब्रह्मत्व की प्राप्ति होने पर वेद प्रमाण वादियों के सिद्धान्त में अनेक ब्रह्म सिद्ध हो जाने पर दोष होगा । इस विषय में वस्तु स्थिति कही जाती है कि वेद में श्रीनृसिंह का पुनः पुनः कथन कारणत्व बोधक नहीं है, क्योंकि ब्रह्म का कोई भी कारण नहीं कहा गया है । और भी प्रकरण प्रतिपादित सिंहत्व बुद्धि का निराकरण करने के लिये ब्रह्म के साथ अभेद बोध के लिये उसप्रकार कहा गया है । अथवा श्रीनृसिंह भगवान् की उपासना करने वालों के द्वारा भी उसी तरह से चिन्ता निर्मुक्तता पूर्वक उपासना करनी चाहिये । ब्रह्म शब्द के साथ समान विभक्तिकत्व तो प्राकृत नृसिंह बुद्धि का खण्डन करने के लिये है । वहां नृसिंह तापनीय उपनिषद् में ही- 'सव कुछ यह ब्रह्म ही है, यह आत्मा ब्रह्म है, उस इस आत्मा को ॐ कार इस ब्रह्म के द्वारा ॐकार से अभेद स्थापन करके वह यह अजर अमर अमृत एवं अभय स्वरूप ॐकार का अनुभव करके आत्मा एवं ब्रह्म का अकार उकार मकार का अभेद प्रतिपादन करके पुनः अभेदत्व का दृढीकरण किया गया है । नृसिंह तथा ब्रह्म का समान विभक्तिकत्व (सामानाधिकरण्य) तो पुराणों की कथा में प्रख्यात हिरण्य कशिपु नामक दैत्य के शत्रु नृसिंह विषयक जागृत संस्कार का निवारण करने के लिये है, पहले ब्रह्म का चराचर जगत् सवकुछ आकृति है, यह प्रतिपादन करके, तत्पश्चात् सभी स्वरूपों में ब्रह्म ही अवतारी पुरुष है, यह विषय वतलाने के लिये नृसिंह एवं ब्रह्म

बोधनिरासाय। तत्रैव सर्वं ह्येतद् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, तमेतमात्मानमोमिति ब्रह्मणा ॐ कारेणैकीकृत्य तदैतदजरममरममृतमभयमोमित्यनुभय, आत्म-ब्रह्मणो रकारोमकाराणामभेदेन निरूप्य, अभेदत्वस्य दृढीकरणाच्च। श्रीनृसिंह ब्रह्मपदयोः सामानाधिकरण्यं तु पुराणप्रसिद्धहिरण्यकशिपुरिपुनृसिंहविषयकोद् बुद्धसत्वबुद्धिनिरासार्थम्। पूर्वम् ब्रह्मणः सर्वरूपित्वं प्रतिपाद्यततः सर्वावतारित्वं ब्रह्मणो निरूपयितुं नृसिंहेन सामानाधिकरण्यम्। सर्वशब्दविवेचनेन अतीतानागतवर्तमानानामवताराणां संग्रहात्। तद्भिन्नस्य तद्भिन्नाभिन्नत्वमिति न्यायेन, सर्वभिन्नस्य ब्रह्मणः चराचरेणाभेदात् अभिन्नत्व कथनमुचितमेव। अथवा तच्छब्देन ब्रह्मोच्यते तदभिन्नस्यात्मनः पुनः तच्छब्देन ब्रह्मोच्यते, तदभिन्नं

का अभेद साधनार्थ उसके साथ सामानाधिकरण्य किया गया है। सर्व शब्दार्थ का विश्लेषण करने पर भूत भविष्य वर्तमान अवतारों का संग्रह किये किया जाने से। जिस प्रकार देवदत्त से भिन्न वस्तु का देवदत्त भिन्न से भिन्न वस्तु के साथ अभेद हो-अभेद मानने का न्याय है सभी से भिन्न ब्रह्म का चराचर भिन्न के साथ अभेद होना समुचित ही है। अथवा तत् शब्द से ब्रह्म का प्रतिपादन होता है, उस ब्रह्म से अभिन्न आत्म स्वरूप का कथन पुनः ब्रह्म शब्द से किया जाता है उससे अभिन्न समस्त चराचर जगत है। उन सभी से भिन्नत्व आत्मा का है यह अभिप्राय है। वहां पर ॐकार भी नृसिंह का ही बोधक है यह नहीं कह सकते, किन्तु उसके उत्कृष्टता का परिचय कराने वाला है। उस आत्मा एवं ब्रह्म के अभेदत्व का परिचय कराते हुए प्रत्यगात्मा में परिपूर्णता होती है। ॐकार यह अक्षर (जिसका कभी विनाश नहीं होता है) ब्रह्म है, क्योंकि यह सव कुछ दृश्य चराचर जगत ब्रह्म ही है। यह आत्मा ब्रह्म है इत्यादि उपनिषद् वचनों से ॐकार का ब्रह्मरूपत्व प्रतिपादन होता है, और समस्त चराचर संसार का ब्रह्मस्वरूपत्व है, और ब्रह्म का आत्मरूपत्व है, और ॐकार का आत्मरूपत्व है, इत्यादि प्रतिपादन किये जाने से, इसीलिये 'आत्मा में ही नृसिंह ब्रह्म में विद्यमान है यह कहा गया है। इसीलिये आत्मा का नृसिंह परत्व और नृसिंह का प्रणवरूपत्व और उसीका सभी की अपेक्षा उत्कृष्टत्व तथा सर्वावतारित्व कहा गया है। प्रणव (ॐकार) का नियत रूप से नृसिंह वाचकत्व हो ऐसा नियम नहीं है। क्योंकि अनेकानेक देवता मन्त्रों में साधारण रूप से ॐकार का सम्बन्ध देखा जाता है। इसलिये प्रणव का सर्वदेवता वाचकत्व तर्क संगत हो जाने पर नृसिंह का सर्वदेवता

चराचरं सर्वम् तेन सर्वेणभिन्नत्वमात्मन इतिभावः । तत्र ॐ कारोऽपि न नृसिंहबोधकः, किन्तु तदुत्कृष्टत्वप्रत्यायकः । तस्यात्मब्रह्मणोरभेदत्वं प्रत्यायन् प्रत्यगात्मनि पर्यवस्यति । ओमित्येदक्षरं ब्रह्म, सर्वं ह्येतद् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्मेति श्रुतिवचोभिः ॐ कारस्य ब्रह्मात्मकत्वम्, सर्वस्य च ब्रह्मात्मकत्वम्, ब्रह्मश्चात्मरूपत्वम्, ॐ कारस्य चात्मपरत्वबोधनात् । अत एव आत्मन्येव नृसिंहे ब्रह्मणि वर्तते इत्युक्तम् । अत एवात्मनः श्रीनृसिंहपरत्वम् नृसिंहस्य च प्रणवरूप त्वम् तस्यैव सर्वोत्कृष्टत्वम् सर्वावतारित्वञ्च । प्रणवस्य नृसिंहवाचकत्वे नियमो न अनेकेषु देवतामन्त्रेषु सामान्येन प्रणवस्य योगदर्शनात् । तेन ॐकारस्य सर्वदेवता वाचकत्वोपपत्तौ नृसिंहस्य सर्वदेवतावाचकत्वं न सेत्स्यति । नवा नृसिंहस्तुति मन्त्रेषु नृसिंहस्य मत्स्यकूर्मवराहादिरूपित्वं नापि नारायणवासुदेवादिवाच-कत्वमुक्तं तेन सर्वावतारित्वमपि न । अपितु ब्रह्मविष्णु महेश्वरविराट् स्व-रूपत्वमेव, तस्य सर्वरूपित्वाश्रवणादवतारित्वमपि न सम्पद्यते । तथा च तत्रैव यो नारसिंहमानुष्टुभमधीते सोऽग्निपूतोभवतीत्यारभ्य यः प्रणवमधीते स सर्वमधीते इति भूयोभूयः कथनात् प्रणवाध्ययनफलस्य सर्वोत्तमत्वं द्योत्यते । प्रणवस्य नृसिंहमन्त्राङ्गत्वेन कथनात् खादिरोयूपोभवति यथा औदुम्बरादियूपैः

वाचकत्व सिद्ध नहीं हो सकेगा । अथवा न ही नृसिंह प्रशंसा परक स्तुति मन्त्रों में नृसिंह का मत्स्य कूर्म वराह आदि स्वरूपवान् कहा गया है । और न ही नारायण वासुदेव आदि का वाचकत्व नृसिंह में है । इसलिये नृसिंह में सर्वावतारित्व भी सिद्ध नहीं होता है । किन्तु ब्रह्मा विष्णु महेश्वर आदि विराट् स्वरूपत्व ही है । उनका कहीं भी शास्त्रों में सर्वरूपित्व नहीं सुना गया है । इसलिये अवतारित्व भी नहीं सिद्ध होता है । और जैसे कि-वहीं नृसिंह तापनीय उपनिषद् में ही 'जो नृसिंह सम्बन्धी अनुष्टुप छन्दोबद्ध मन्त्र का अध्ययन करता है वह अग्नि से पवित्र होता है यहां से आरम्भ कर, जो प्रणव (ॐकार) का अध्ययन करता है, वह सभी का अध्ययन करता है, इत्यादि विषय वस्तु पुनः पुनः कहे जाने के कारण प्रणव के अध्ययन के फल का सर्वोत्तमत्व प्रकाशित होता है । और प्रणव का नृसिंह मन्त्र का अवयव रूपमें कहे जाने से भी ॐकार का सर्वोत्तमत्व सिद्ध है । जिस तरह खदिर वृक्ष से बना हुआ यूप होता है । जैसे उदुम्बर निर्मित यूपों के साथ संयोग प्राप्त कर पराक्रम की कामना करने वाला खदिर काष्ट का यूप निर्माण करे, यहां पर जैसे अन्य यूपों की अपेक्षा

सार्धसंयोगमवाप्य वीर्यकामः खादिरं यूपं कुर्यादित्यत्र यथा विशिष्टफलवत्त्वमुक्तं, तथैवात्र विशिष्टफलप्रदत्वं बुध्यते ननु तस्य सर्वावतारित्वं परत्वञ्चेति ॥४॥

तथा च प्रणवो बहुषु मन्त्रेषु आदौ दृश्यते तेन बहुदेवतावाचकत्वम् । सामान्येन नैकदेवतावाचकत्वम् युक्तिसिद्धं भवति । येन तस्य अवतारित्वं सिध्येत। किञ्च श्रीनृसिंहस्य जगदुत्पत्यादिहेतुत्वं कथमपि न मूलकारणत्व साधकम् । श्रीकृष्णादीनामपि जगदुत्पत्यादिहेतुत्वश्रवणात् । 'ॐ क्षीरोदार्णव शायिनं नृकेशरिणमित्यत्र क्षीरशायित्वश्रवणेन तस्यार्थान्तरपरत्वप्रतिपादनाशक्यत्वात् नावतारित्वं प्रमाणसिद्धम् ।

खदिर का विशिष्ट फल साधकत्व कहा गया है। उसी प्रकार यहां पर विशिष्ट फल प्रदान क्षमत्व नृसिंह का प्रतिपादित होता है पर उसमें सर्वावतारित्व या सर्वापेक्षया परत्व का बोध नहीं होता है ॥४॥

इसप्रकार और भी ओंकार प्रणव अनेक मन्त्रों में आरम्भ में देखा जाता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रणव अनन्त देवताओं का वाचक है। सामान्य रूपसे एक देवता का वाचक नहीं। सभी मन्त्रों में ओंकार का प्रयोग से यह तर्कसंगत होता है। यदि एक देवता का वाचक होता तो श्रीनृसिंह का अवतारित्व सिद्ध होता। और श्रीनृसिंह का जगदुत्पत्ति आदि का हेतुत्व कथन भी मूल कारणत्व को सिद्ध नहीं करता है अतः मूल हेतुत्व साधक नहीं है क्योंकि श्रीकृष्ण आदि देवताओं का भी संसार के उत्पत्ति आदि का कारण रूपमें सुना जाता है। 'क्षीर सागर में सोनेवाले नृसिंह' इस वाक्य में क्षीरशायित्व श्रवण से अन्य अर्थ का प्रतिपादन करना शक्य नहीं है अतः यह प्रमाण सिद्ध होता है कि श्रीनृसिंह अवतारी पदार्थ नहीं।

यदि श्रीनृसिंह को अवतारी नहीं मानते तो श्रीकृष्ण को संसार का मूल कारण मान लें ? जैसे कि मुनिगण ब्रह्माजी से कहे कि सर्वश्रेष्ठ देवता कौन हैं ? तो श्रीब्रह्माजी मुनियों को उत्तर दिये कि श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ देवता हैं। जो गतिशील नहीं होते हुये भी मन के अपेक्षा अधिक वेगपूर्ण गतिशील है इसे प्राचीन काल में यत्न करने पर भी देवता लोग प्राप्त नहीं कर सके इसलिये श्रीकृष्ण हीं सर्वश्रेष्ठ देवता हैं अद्वितीय हैं सर्वव्यापक हैं पूजनीय हैं एक होते हुये भी विभिन्न रूपमें प्रतीत होते हैं। अर्धमात्रा स्वरूप कृष्ण हैं जिस श्रीकृष्ण में सम्पूर्ण संसार प्रतिष्ठित है। क्लीं तथा ओंकार का ब्रह्म वादियों के द्वारा एक रूपता प्रतिपादन किया गया है और उसीका

ननु अस्तु तर्हि श्रीकृष्णस्य मूलकारणत्वम् । यथा मुनयोहवै ब्रह्माणमूचुः कः परमोदेवः, तदुहोवाच ब्रह्मा श्रीकृष्णो परमं दैवतमिति 'अनेजदेकं मनसो- जवीयोनैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत्' तस्मात् श्रीकृष्ण एव परमोदेवः । एकोवशी सर्वगः कृष्ण ईड्यः एकोऽपि सन् बहुधा योविभाति । अर्धमात्रात्मकः कृष्णो यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम् । क्लीं ॐकारस्य ब्रह्मवादिभिः एकत्वं पठ्यते । तस्यैव च सच्चिदानन्दादिबहुविधरूपवत्वम् प्रणवसम एव कामबीजस्यार्थश्रवणात् पृथिव्यादिकारणत्वनिर्देशाच्च अखिलबीजत्वमुच्यते । श्रीकृष्णस्य विग्रहे एव ब्रह्मविष्णुशंकर्षणादीनां विलयश्रवणात् । यथा च 'अवरुह्यागतो विष्णुः पातालाज्जगतीपतिः । स चापिलीनस्तत्रैव राधिकेशस्य विग्रहे' नारदादिभिः तस्यैव आराधनश्रवणात् नारायणादिकारणत्वं सूच्यते । कृष्णकृष्णोति...समन्नाम सहस्त्रकम्, सहस्त्रनाम्नां पुण्यश्रवणात् । सर्वेषु नामसु मुखस्य कृष्णनाम्नां पापमोचकत्वकथनात् । सहस्त्रनामतुल्यतोक्ता । अनयैव युक्त्या सर्वकारणत्व

ही सच्चिदानन्द आदि विभिन्न प्रकार के रूपवान् होना प्रणव के समान ही क्लीं का जो कामवीज है अर्थ कहा गया है और पृथ्वी आदि का कारणत्व भी बताया गया है इससे अखिल जगत बीज क्लीं को कहा जाता है। श्रीकृष्ण के शरीर में ही ब्रह्मा विष्णु शंकर्षण आदि का विलय उपनिषदों में तथा पुराणों में सुना जाता है । जैसे कि लोकनाथ श्रीविष्णु पाताल से पृथ्वी पर आकर राधिकानाथ श्रीकृष्ण के विग्रह में विलीन हो गये । वहीं पर अन्य अवतारों का भी विलय कहा गया । नारद आदि ऋषियों के द्वारा श्रीकृष्ण की ही आराधना की गयी ऐसा सुना जाता है । अतः श्रीनारायण आदि का कारण होना सूचित होता है । कृष्ण कृष्णेति आदि श्लोक के द्वारा सहस्त्रनाम के तुल्य कृष्ण नाम को कहा गया है । कृष्ण सहस्त्रनाम जप करने से जितना पुण्य मिलता है उतना ही पुण्य कृष्ण नामोच्चारण से मिलता है ऐसा कहने से सभी नामों में प्रधानता एवं कृष्ण नाम का पाप निवारक होना कहा गया है । अतएव सहस्त्र नाम की तुलना कही गयी है । इसी युक्ति के आधार पर श्रीकृष्ण का सर्व कारणत्व सिद्ध होता है ऐसा कहें ? तो नहीं कह सकते हैं क्योंकि उसी श्रुति में ही गोपालोपनिषद् में 'पूर्व में एक ही नारायण देवता थे जिसमें सभी लोग ओत-प्रोत थे । इत्यादि वाक्यों के द्वारा ब्रह्मा के द्वारा पूछे जाने पर कि सभी देवताओं में किस की श्रेष्ठता है तो श्रीनारायण भगवान कहते हैं कि सुमेरु पर्वत के शिखर पर सात पुरी

सिद्धिरितिचेन्न तत्रैव गोपालोपनिषदि 'एको हवै पूर्वो नारायणो देवो यस्मिल्लोका ओताश्च प्रोताश्च' इत्यादिभिः ब्रह्मणा पृष्टे सर्वदेवश्रेष्ठत्वं कस्येति तं नारायणोदेवः उवाच मेरोः श्रृङ्गे सप्तपुर्यः सन्ति तत्र द्वादशमूर्त्तयो वर्तन्ते तान् ब्रह्मादयः यजन्ति तत्र सर्वेषामवताराणां कृष्णावतारस्य श्रेष्ठत्वमुक्त्वा तस्य अवतारित्वन्न प्रतिपादितम् । यद्यपि तत्र 'श्रीकृष्णः परमं दैवतम्' इत्युक्तं तथापि तेषां भक्ताभीष्टपूरकत्वमेव अवतारत्वे निश्चिते अवतारित्वासिद्धेः। अन्यदेवापेक्षया एकादशरुद्राद्यवतारपेक्षया च श्रेष्ठत्वं प्रकाश्यते ।

'यत्रासौ संस्थितः कृष्णः त्रिभिः शक्त्या समाहितः । रामानिरुद्धप्रद्युम्नैः रुक्मिण्या सहितो विभुः' इत्यादिभिः शक्तिशक्तिमतोः अभेदप्रतिपादनात् वायोः पञ्चरूपत्वं तथैव लोकहितार्थं श्रीकृष्णस्यापि पञ्चपदीभवनात् श्रीनारायणनृसिंहा द्यवताररूपेण तस्य बहुधा विभावनत्वानुपपत्तेः ।'क्ली' बीजे पृथिव्यप्तेजः सूर्य चन्द्रपञ्चकस्य कारणत्वोक्तेः पृथिव्यादिकारणापेक्षया 'क्लीं' इत्यस्य श्रेष्ठत्वेऽपि हैं उनमें श्रीकृष्ण की बारह मूर्तियाँ विद्यमान हैं उन मूर्तियों की ब्रह्मा आदि उपासना करते हैं उनमें सभी अवतारों में कृष्णावतार की श्रेष्ठता है ऐसा कहकर श्रीकृष्ण का अवतारी होना नहीं कहा गया है । यद्यपि श्रीकृष्ण परम श्रेष्ठ देवता हैं यह कहा गया है तथापि उनका भक्तों के अभिमत पूरक होने से ही अवतारत्व निश्चित हो जाने पर भी अवतारित्व की सिद्धि नहीं होती है । दूसरे देवताओं की अपेक्षा तथा एकादश रुद्रों की अपेक्षा श्रीकृष्ण का श्रेष्ठत्व मात्र प्रकाशित होता है न कि अवतारित्व भी।

जहां ये श्रीकृष्ण तीन शक्तियों से सम्पन्न होकर सम्यक् प्रकार से प्रतिष्ठित हैं। बलराम अनिरुद्ध एवं प्रद्युम्न तथा रुक्मिणी के सहित परम व्यापक श्रीकृष्ण प्रतिष्ठित हैं। इत्यादि वाक्यों से शक्ति एवं शक्तिमान् में अभेद प्रतिपादन करने के कारण एक ही वायु का जैसे प्राण अपान आदि पाँच रूप बताया जाता है उसी प्रकार लोक कल्याण के लिये श्रीकृष्ण का भी पञ्चपदी रूप होने से श्रीनारायण श्रीनृसिंह आदि अवतार रूपमें विभिन्न रूपों में विभिन्न प्रकार से प्रतीत होना युक्ति संगत नहीं होता है। क्लीं इस बीज में पृथ्वी जल, तेज, सूर्य, चन्द्रमा इन पांचों की कारणता कही गयी है। इस कथन में पृथ्वी आदि कारण की अपेक्षा क्लीं इस मन्त्र की श्रेष्ठता होने पर भी तन्मात्रा आदि की कारणता नहीं होती है। क्योंकि श्रीनृसिंहादि मन्त्रों का भी जगत्कारणत्व सुना जाता है। और भूत प्रेत पिशाचादि मन्त्रों का जगत्कारणत्व रूपमें

न तन्मात्रादीनां कारणत्वम् । नृसिंहादिमन्त्राणामपि च जगत्कारणत्वश्रवणात् । भूतप्रेतादिमन्त्राणाञ्च तथात्वाश्रवणात् । तुल्यरूपेण कारणत्वप्रतिपादनेऽपि श्रीनारायणकार्यत्वात् तयोरभेददृष्ट्या एव परमदैवतत्वं सर्वनियन्त्रितत्वं बहुरूपित्वं जगदहेतुत्वादिकञ्च उक्तं भवति ॥५॥

तथैव श्रीनृसिंहाद्यवतारेष्वपि नावतारित्वमिति बोध्यमन्यथा बहूनां तुल्यदैवतत्वे तत्तदुपनिषदां परस्परं विरोधः स्यात्, तेष्वेकस्यावतारित्वाङ्गीकारे अप्रामाण्यं कल्पितत्वं च स्यात् । इतिहासपुराणादिनामपि वेदोपबृंहणरूपत्वात् तथैवाङ्गीकर्तव्यम् । यानि च श्रीकृष्णावतारस्य बोधकानि श्रुतिमूलकानि वाक्यानि साधारण्येनावतारित्वं प्रतिपादयन्ति तस्य चावताराः कुत्रापि न पठ्यन्ते 'नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठेमेधसे । यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशती तनूः' इति न श्रुतिमूलकानि, तेषां केवलमभिरूचिजनकानि, एवंविधानि वाक्यानि पक्षीकृत्यानुमितेरसङ्गतिः स्यात् । श्रीनारायणावतारवाचकश्रुतिव-

नहीं सुना जाता है। इसप्रकार तुल्य रूपसे कारणत्व प्रतिपादन करने पर भी श्रीकृष्ण श्रीनृसिंह आदि का श्रीनारायण का कार्य होने से कारण एवं कार्य में अभेद दृष्टि के द्वारा ही श्रीकृष्ण में परम दैवतत्व सर्व नियामकत्व बहुविध रूपवत्व एवं जगदहेतुत्व आदि कथित होता है ॥५॥

उसी तरह श्रीनृसिंह आदि अवतारों में भी अवतारित्व नहीं है यह समझना चाहिये। यदि इसप्रकार अवतारित्वाभाव नहीं समझेंगे तो बहुतसे देवताओं की समान देवतात्व हो जाने पर तत्तद् देवता सम्बन्धी उपनिषदों का आपस में विरोध होने लगेगा। उनमें से किसी एक को अवतारी एवं शेष को अवतार स्वीकार कर लेने पर अप्रामाणिकता की एवं काल्पनिकता की आपत्ति उपस्थित हो जायेगी। उन उन देवताओं से सम्बन्धित इतिहास पुराण आदि का भी वैदिक सिद्धान्तों का विस्तृत स्वरूपवान् होने के कारण अवतारत्व साधक ही युक्ति है ऐसा ही मानना चाहिये। और जो भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार प्रतिपादन करनेवाले वेद मूलक वाक्य हैं वे सामान्य रूपसे श्रीकृष्ण के अवतारित्व का प्रतिपादन नहीं करते हैं, प्रत्युत श्रीकृष्ण का देवतान्तर रूपमें कोई अवतार कहीं नहीं पढे जाते हैं। अव्याहत प्रतिभापूर्ण बुद्धिशाली उन भगवांन् श्रीकृष्ण को नमस्कार है, जो श्रीकृष्ण समस्त सांसारिक प्राणियों का जन्म मरण बन्धन विमोचक कामनानुसार शरीरों को धारण करते हैं।

चनस्य श्रीकृष्णास्य वेदविपरीतत्वात् मुख्यार्थपरकमपि न सम्भवति, शिष्टप्रतिषेधात् । बलदेवादीनां पंचपदमन्त्रस्य सर्वभूतहितसाधकत्वं 'उशतीतनूः' श्रीनारायणादीनां च श्रीकृष्णविग्रहे विलीनत्वप्रतिपादनं च तदुपासकेच्छाया रुचिजननाय कल्पितत्वात् न प्रामाण्यम् । श्रुतिप्रामाण्येन श्रीनारायणत्वेन संकर्षणस्तत्रोच्यते । तस्यैव च तन्न्यूनतया श्रीकृष्णे विलयत्वमुपपद्यते । 'एतस्मिन्नन्तरे तूर्णमाजगामत्वरान्वितः । शुद्धस्फरिकसंकाशो नाम्ना संकर्षण स्मृतः' इति तत्रोक्तेः । तेन श्रुतौ कमलासनजनको यो नारायणोऽनिरुद्धा परपर्यायः तस्य तत् कारणत्वं न कल्पनीयम्, तथा स्वीकारेऽपि तस्मिन्

इत्यादि वाक्य कलाप वेदमूलक नहीं हैं। केवल उन श्रीकृष्ण भक्तों के अभिरूचि को पैदा करनेवाले हैं। जो अभिरूचि जनक वाक्य हैं इसतरह के वाक्यों को पक्ष बनाकर अनुमान किया जाना सुसङ्गत नहीं कहा जा सकता है। अतः असङ्गति होगी, भगवान् श्रीनारायण के अवतार वाचक वेद वचनों पर आधारित श्रीकृष्णचन्द्र का वेद विरुद्ध अवतारी प्रतिपादन को विपरीत होने से मुख्यार्थ प्रतिपादन परकत्व भी सम्भव नहीं है। क्योंकि इसतरह के प्रतिपादन का शिष्ट पुरुषों के द्वारा प्रतिषेध किया गया है। बलदेव आदि के पञ्चपद मन्त्र का समस्त प्राणी मात्र का हित साधकत्व प्रतिपादनार्थ 'उशती तनूः' कहा है। और नारायण आदि देवों का भगवान् श्रीकृष्ण के विग्रह में विलीनता का निरूपण जो किया है वह श्रीकृष्ण के भक्तों की इच्छा के अनुरोध से उन भक्तों में अभिरुचि उत्पादन करने के लिये केवल काल्पनिक प्रतिपादन है अतः उसकी प्रामाणिकता नहीं हो सकती है। वेद की प्रामाणिकता के अनुसार श्रीनारायण के स्वरूप में वहां पर संकर्षण कहे जाते हैं। और संकर्षण की ही श्रीकृष्ण की अपेक्षा न्यूनता के कारण श्रीकृष्ण शरीर में उनका विलीन होना युक्ति संगत होता है। जैसे कि इसी के मध्य में शीघ्राति शीघ्र सत्वरता से युक्त शुद्ध स्फरिक मणि के सदृश गौर वर्ण श्रीकृष्ण विग्रह में आ गये जो संकर्षण नाम से कहे गये हैं। इसप्रकार वहां कहा गया है। इसलिये वेदमें जो कमलासन ब्रह्मा को जन्म देनेवाले श्रीनारायण कहे गये हैं। वह अनिरुद्ध जिनका पर्याय वाचक है वे नारायण हैं। उनका यह श्रीकृष्ण कारण है ऐसी कल्पना नहीं करनी चाहिये। इसप्रकार स्वीकार कर लेने पर भी उन श्रीनारायण में श्रीकृष्ण की अपेक्षा अधिकता ही उपपन्न होती ही न कि न्यूनता क्योंकि श्रीनारायण का श्रीकृष्ण रूपमें अवतार होता है।

श्रीकृष्णादाधिक्यमेव समायति । 'रामोऽहमनिरुद्धोऽहं प्रद्युम्नोऽहं सनातनः' इति गोपालोपनिषदि, 'एष नारायणः साक्षात् क्षीराब्धिनिकेतनः, नागपर्य्यङ्क मुत्सृज्येहागतोमथुरापुरीमित्यादिवाक्यान्यपि श्रीकृष्णस्य संकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्ध स्वामित्वबोधनात् नागपर्य्यंकवचनाच्च तच्छेषत्वमेवावगमयन्ति । सहस्त्रनाम्न आधिक्यमपि न सम्भवति तस्यावतारित्वे श्रीनारायणादाधिक्यापत्तेः । वेदेषु समानार्थकतन्मूलकवचनाश्रवणात् । तेन ब्रह्मवैवर्तपुराणे पाञ्चाल्योपदेशः देवतान्तरसहस्त्रनामतुल्यस्य श्रीकृष्णनाम्न उक्तं भवतीति बोध्यम् ।

लौकिकावैदिका शब्दा ये केचित् सन्ति पार्वति, नामानि रामचन्द्रस्य सहस्त्रेष्वधिकंमतम् । तादृङ्नामसहस्त्रैस्तु रामनाम समंमतमितिवत् उत्कृष्टत्वमात्र बोधक इतिध्येयम् तत्र श्रीकृष्णनामान्तरेभ्यः कृष्णस्याधिकं महत्वम्, नतु भगवन्नामान्तरेभ्य इति ॥६॥

मैं राम हूँ, मैं अनिरुद्ध हूँ, मैं सनातन प्रद्युम्न हूँ इत्यादि जो गोपालतापनीय उपनिषद् में कहा गया है । ये साक्षात् श्रीनारायण जिनका क्षीर सागर निवास स्थान है वे हैं । ये शेषनाग स्वरूप पलङ्ग का परित्याग कर यहां पर मथुरा पुरी में आ गये हैं । इत्यादि वाक्य कलाप भी श्रीकृष्ण के संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध के स्वामित्व का बोधनकारी है । इसिलिए नागपर्यङ्क वचन से भी श्रीकृष्ण का शेषत्व ही प्रतिपादित होता है यह समझना चाहिये । सहस्त्रनाम की अपेक्षा एकमात्र श्रीकृष्ण नाम की अधिकता भी सम्भव नहीं है । क्योंकि श्रीकृष्ण का अवतारित्व सिद्ध होने पर श्रीनारायण के अपेक्षा अधिकता की आपत्ति होगी । वेदों में समान अर्थ वाले श्रीनारायण मूलक वचन सुना जाने के कारण । इसलिए ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी जो पंचालतनया द्रौपदी को उपदेश है, वह अन्य देवताओं के हजारों नाम के तुलना में श्रीकृष्ण के नाम की महिमा कही गयी है ऐसा समझना चाहिये ।

लोक व्यवहार अथवा वेद के जो शब्द हैं हे पार्वती ! वे जो कोई भी नाम हैं उन हजारों नाम में श्रीरामचन्द्रजी का नाम अधिक महत्वपूर्ण हैं अर्थात् इसप्रकार हजारों नाम एक श्रीराम नाम के समान कहा गया है । इस शिव वाक्य के समान केवल उत्कृष्टता मात्र का प्रतिपादक है, यह ध्यान देना चाहिये । वहां पर श्रीकृष्ण का अन्य नामों के अपेक्षा अधिक महत्व है यही पांचाली को बोध कराना अभिष्ट हैं । न कि भगवान् के अन्य नामों के अपेक्षा अधिकता प्रतिपादन अभिमत हैं ॥६॥

श्रीरामनाम्नस्तु सकलभगवन्नामभ्यो मुख्यतमता महापुरुषेषु प्रसिद्धा । तत्र तत्र भगवन्नामान्युच्चार्य सहस्त्रगुणाधिक्येन प्रतिपादनात् ।

विष्णोर्नामसहस्त्राणां तुल्य एष महामनुः ।
सर्वेषु मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठं वैष्णवमुच्यते ॥
गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदम् ।
वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु राममन्त्राः फलाधिकाः ॥
मन्त्रस्तेष्वप्यनायासफलदोऽयंषडक्षरः ॥ तथा-
लौकिका वैदिका शब्दा ये केचित् सन्ति पार्वति ? ।
नामानि रामचन्द्रस्य सहस्त्रं तेषु चाधिकम् ॥

श्रीराम नाम का तो समस्त भगवत् सहस्त्र नामों के अपेक्षा प्रधानता है यह महापुरुषों में प्रसिद्ध है । उन-उन भगवान् विष्णु के नामों का उच्चारण करके उनके अपेक्षा हजार गुणा अधिकता से प्रतिपादन किये जाने के कारण । जैसे कि श्रीविष्णु के हजारों नामों के तुल्य यह श्रीराम महामन्त्र है, जो समस्त मन्त्र वर्गों में अतिशय श्रेष्ठ है, तथा वैष्णबमन्त्र कहा जाता है गणपति देवता सम्बन्धि मन्त्रों में शिव सम्बन्धी, शक्ति सम्बन्धी एवं सूर्य सम्बन्धी मन्त्रों में यह श्रीराम महामन्त्र सर्वश्रेष्ठ है, एवं भक्तों के अभिमत फल को प्रदान करनेवाला है । वैष्णव मन्त्रों में भी श्रीराम मन्त्र सभी के अपेक्षा अधिक फलदायी है तथा समस्त श्रीराममन्त्रों में भी छ अक्षरों वाला यह श्रीराम महामन्त्र अनायास फल प्रदान करनेवाला है । तथा लोक व्यवहार में प्रयोग में आनेवाले एवं वेद में प्रयोग होने वाले जो कोई भी शब्द हैं, 'हे पार्वती ? जो भी श्रीविष्णु के हजार नाम है अथवा श्रीरामजी के नाम है उऩमें यह सर्वश्रेष्ठ है' विष्णु का एक एक नाम ही सभी वेदों के अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ माना गया है । इसप्रकार के हजारों नामों से तुल्य एत श्रीराम नाम कहा गया है । समस्त वेदों के उच्चारण करने से एवं सभी मन्त्रों के उच्चारण करने से अपेक्षाकृत हे पार्वती ? उनसे कडोरों गुणा अधिक पुण्यदायकता श्रीरामनाम से उपलब्ध होता है । अनन्त भगवान् विष्णु के मन्त्र एक श्रीरामनाम के समान कहे गये हैं । इत्यादि इसतरह के श्रीशिव पार्वती के सम्वाद से समस्त भगवद् विषयक वाक्यों के द्वारा सभी भगवान् के नामों से श्रीरामनाम का हजार गुणा अधिकता सुस्पष्ट होती है ऐसा प्रतिपादन किया गया है । यहां पर श्रीनारायण श्रीवासुदेव श्रीकृष्ण श्रीनृसिंह श्रीवामन आदि के नाम अथवा दूसरे

विष्णोरेकैकनामैव सर्ववेदाधिकंमतम् ।
तादृङ् नामसहस्त्रैस्तु रामनामसमम्मतम् ॥
जपतः सर्ववेदाश्च सर्वमन्त्राश्च पार्वति ? ।
तस्मात् कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ॥
अनन्ता भगवन्मन्त्रा नानेन तु समा कृतः ॥

एवमादिभिर्निखिलैर्वाक्यैः सकलभगवन्नामभ्यः श्रीरामनाम्नः सहस्त्रगुणाधिक्यं स्फुटं प्रतिपादितम् । अत्र श्रीनारायणवासुदेवकृष्णनृसिंहवामनादिनामानि नामान्तराणि वोक्तानि, अतस्तेषामाधिक्यं नोपपद्यते । वैष्णवमन्त्रेष्वेतेषामन्तः देवताओं के नाम भी कहे गये हैं, जिनसे श्रीरामनाम अधिक महत्वशाली हैं। इसलिये उन नामों या मन्त्रों की अधिकता तर्क संगत सिद्ध नहीं होती है। क्योंकि इन भगवत् सम्बन्धी मन्त्रों का वैष्णव मन्त्रों में समावेश होता है। वैष्णव मन्त्रों में भी श्रीराम मन्त्र की अधिक फल प्रदान क्षमता बतलायी गयी है। लेकिन श्रीराममन्त्र का तो इन मन्त्रों में अन्तर्भाव नहीं हो सकता है क्योंकि श्रीराममन्त्र के व्याप्य कोटि में आ जाने पर उसकी अधिकता नहीं रहेगी अपितु न्यूनता की आपत्ति होगी और यह भी कहे जाने के कारण अन्तर्भाव सम्भव नहीं है कि भगवान् के अगणित मन्त्र हैं। और उनमें सहस्त्र गुणा अधिकता है इस श्रीराममन्त्र में इस कथन के द्वारा वैष्णव मन्त्रों के अपेक्षा इस श्रीराम मन्त्र की हजार गुणा अधिक फल प्रदान क्षमता है। एक एक श्रीराममन्त्र का भी सभी से अधिक महत्व, समस्त भक्तजनों के अभिमत फलों का प्रदान क्षमत्व है यह लिङ्ग पुराण में कहे गये हेतुओं से सिद्ध होता है और इसी माहात्म्य प्रतिपादन से लोक एवं वेद व्यवहार में प्रयुक्त होनेवाले जो कोई भी शब्द हैं उन शब्दों की एक वाक्यता भी युक्ति संगत सिद्ध होती है। यहां पर सहस्त्रनाम नाम पद भगवान् श्रीविष्णु के सहस्त्रनाम नाम बोधन परक है। सभी वेद सभी मन्त्रों के जप से श्रीरामनाम की श्रेष्ठता कहे जाने के कारण इसलिये भगवान् विष्णु के नामों का एवं मन्त्रों का उसके अन्तर्गत रूपमें स्वीकार किये जाने से श्रीरामनाम की उन सभी से अधिक ही नहीं हजारों गुणा अधिकता सिद्ध होती है।

और यदि यह कहें कि जिस तरह अन्य स्थानों पर मूल आधार उपलब्ध नहीं होता है उसी तरह इस श्रीरामनाम के विषय में भी मूल नहीं है यह सन्देह करें तो ऐसा सन्देह करना ठीक नहीं, क्योंकि श्रीराम का बहुत रूप धारण कर्तृत्व सुने जाने

पातः, वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु श्रीराममन्त्रस्य फलाधिक्योक्तेः । श्रीराममन्त्रस्य तु न तदन्तर्गतत्वम् । व्याप्यकोट्यापातेन्यूनत्वापत्तेः । अनन्ता भगवन्मन्त्रा इत्युक्तेश्च, सहस्त्रं तेषु चाधिकमिति वैष्णवमन्त्रेभ्योऽस्य सहस्त्रगुणफलत्वम् । एकैकस्यापि सर्वाधिकत्वं सर्वाभिमतप्रदायकत्वञ्चेति लिङ्गपुराणोक्तेः । तेनैव च लौकिक वैदिकशब्दानामेकवाक्योपपत्तेः । अत्र सहस्त्रनामपदं भगवत् सहस्त्रनामपरम् । सर्ववेदसर्वमन्त्रजपतः श्रेष्ठतोक्तेः। अतो भगवन्नाम्नां मन्त्राणां च तदन्तरगतत्वेन अङ्गीकरणात् तेन श्रीरामनाम्नः तेभ्योऽपि सहस्त्रगुणाधिक्यं निष्पद्यते ।

नच यथा अन्यत्र तथैवात्रापि मूलं नोपलभ्यते इति शङ्क्यम् । श्रीरामस्य बहुरूपधारित्वश्रुतेः । मृत्सर्वाङ्गवाचकं यथा मृत्कार्यवाचकत्वेऽपि व्यापकस्य श्रीरामेतिकरणनाम्नः घटशरावादाविव एकदेशवाचित्वेन वाप्येभ्यः भगवन्ना से यह सन्देह असम्भव है । जैसे मिट्टी के समस्त भेद प्रभेद नामरूप समूह का वाचक कारण रूपमें मृत्तिका ही वाचक है इसलिये मिट्टी (मृत्तिका) रूप में जाना जाता है, उसीतरह श्रीरामचन्द्रजी के समस्त भेद प्रभेद नाम रूप आदि समूह को केवल कारणरूप होने के कारण श्रीरामनाम ही वाचक है, कारण अपने समस्त कार्यों का वाचक होता है ऐसा स्वीकार करने पर व्यापक इस श्रीराम कारण नाम की मृत्तिका भेद घटशराब आदि के समान एक देश वाचक होने के कारण व्याप्य नामों की तुलना में अन्य भगवन् नामों से यह व्यापक श्रीरामनाम की सहस्त्र गुणा अधिकता स्वभाव से ही सिद्ध होती है । क्योंकि श्रीरामनाम में अर्थ की तर्क संगतता सहन करने की योग्यता एवं वेद वाक्यों की अनुकूलता ये दोनों विशेषतायें पायी जाती है और वेद सिद्धान्त सम्मत होना भी सिद्ध होता है । अतः 'विश्वरूपस्य ते राम ? विश्व शब्दा ही वाचकाः' इसप्रकार महर्षि श्रीवाल्मीकिजी ने श्रीरामजी को विश्व रूपमें निरूपण कर विश्व के समस्त शब्दों को श्रीरामजी का वाचक निरूपित किया है जो सर्वथा वेदानुकूल है 'तस्माद्रामायणं देवि ? वेद एव न संशयः' ऐसा श्रीशंकरजी ने श्रीपार्वतीजी को कहा है ।

जिस सिद्धान्त या विचार प्रवाह का प्रमाणों से विरोध नहीं है ऐसा होने पर पूर्वोक्त प्रकार के वाक्यों को पक्ष बनाकर (जिसमें साध्य विषयक सन्देह होता है उसे पक्ष कहते हैं) अनुमान हेतु के आधार पर करना चाहिये । इसतरह के शिष्ट पुरुषों के वचन के अनुसार समझा जाता है । इस तरह के विषय में आचार्य जैमिनी के

मान्तरेभ्यः सहस्त्रगुणाधिक्यसिद्धेः । अर्थस्य युक्तिसहत्वात् श्रुत्यनुकूलत्वाच्च वेदसम्मतत्वं सिद्ध्यति ।

असति विरोधे एवं विधानि वाक्यानि पक्षीकृत्य अनुमातव्यम् इति शिष्टवचनात् बुध्यते । उक्तञ्च जैमिनिना-'विरोधे तु उपेक्षं स्यात् ।' अनुमानाकारश्च विमतानि वाक्यानि वेदमूलकानि भवितुमर्हन्ति वेदाविरोधे सति वेदार्थप्रज्ञोक्तत्वात् मन्वादिप्रणीतवाक्यवत् । अनुमानमात्रबोध्यानि औपनिषदानि अपि ब्रह्मादीनां अन्वर्यबोधकः सर्ववाच्यस्य वाचकः स्वभूः ज्योतिर्मयः अनन्तरूपित्वेन रेफारूढमूर्तयः सन्ति । लौकिकवैदिकशब्दान्तरगतेभ्यः गणेशशिवादिकालीभवानीसूर्यादिशब्देभ्यः सर्वेषु मन्त्रेषु वैष्णवं मन्त्रं श्रेष्ठ मुक्तम् । वैष्णवमन्त्रेष्वपि भगवन्नामान्तरेभ्यः श्रीरामनाम्नः सहस्त्रगुणाधिक्यस्य निर्वाधत्वेन उपपत्तेः 'राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः । राम एव परं तत्वं

द्वारा कहा भी गया है कि यदि परस्पर सिद्धान्त में विरोध उपस्थित होता हो तो, उपेक्षा योग्यता होती है । तथा श्रीरामनाम की श्रेष्ठता के विषय में अनुमान वाक्य का स्वरूप यह होगा कि-जिसके विषय में मतभेद है वे वाक्य समूह वेद मूलक हैं । ऐसा होने की इन वाक्यों में योग्यता है । वेद के साथ विरोधाभाव होने के साथ-साथ वेदार्थ तत्व के विशेषज्ञ ऋषियों के द्वारा निरूपित होने के कारण होने से मनु आदि प्रतिपादित धर्मशास्त्र वचनों के समान जैसे मनु आदि के वचन वेद प्रमाण सिद्ध होने से प्रामाणिक हैं उसीतरह यह भी वेद प्रमाण सिद्ध है । वेद विरुद्ध कोई भी स्मृति स्मृति वाक्य वा अन्य कोई भी प्रामाणिक नहीं होता ।

अनुमान मात्र से ज्ञान करने योग्य उपनिषद् सम्बन्धी अर्थात् उपनिषदों में निरूपण किये गये वचन भी जिस तरह ब्रह्म आदि के स्वरूप योग्यता का अनुगतार्थ बोधक हैं । उसी तरह समस्त वाङ्मय मात्र का वाच्यार्थ का प्रतिपादक स्वभूः स्वयं अपनी इच्छानुसार होने वाला ज्योतिर्मय अनन्त दिव्य प्रकाश स्वरूप अनन्त रूपों वाला अर्थात् विराट् स्वरूप का भी रूपी होने से अग्नि वीज रेफ में स्थापित अनन्त स्वरूप हैं । लौकिक एवं वैदिक शब्दों के अन्तर्गत होने से गणेश शिव आदि काली भवानी सूर्य आदि शब्दों के सभी मन्त्रों में विष्णु देवता सम्बन्धी मन्त्र श्रेष्ठ बताया गया है। तथा वैष्णव मन्त्रों में भी भगवान् विष्णु के अन्य नामों से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का नाम की सहस्त्र गुणा अधिक श्रेष्ठता का निर्वाध रूपमें तर्क संगत सिद्ध होता है

श्रीरामो ब्रह्मतारकम्' इतिश्रुतेः 'परान्नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि । यो वै परतमः श्रीमान्रामोदाशरथिस्वराट्' इत्यागमोश्च, श्रीकृष्णादीनां मूलकारणत्वं सिद्ध्यति सर्वेशश्रीरामस्य ॥७॥

गोपालतापनीयोपनिषत् प्रामाण्येन नारायणाथर्वशीर्षप्रामाण्येन चास्तु तर्हि श्रीनारायणस्यैव सर्वावतारित्वम् 'एको ह वै नारायणः आसीन्न ब्रह्मा न ईशानो नापो नाग्नीषोमौद्यावापृथिव्यौ...एकाकी नारायण एवेति, अथ पुरुषो ह वै नारायणो कामयत प्रजा सृजेयेति, नारायणात् प्राणो जायते मनः सर्वेन्द्रियाणि च...नारायणे प्रलीयन्ते' इति उपनिषत् प्रामाण्यात् श्रीनारायणस्य

श्रीरामजी ही परब्रह्म हैं श्रीरामजी ही परम तप हैं श्रीरामजी ही परम तत्त्व हैं एवं श्रीरामजी ही तारक ब्रह्म हैं तथा पररूप श्रीनारायणजी से श्रीकृष्णजी परतर हैं पर उनसे भी स्वयं प्रकाशमान् सर्वकारणभूत दशरथ नन्दन श्रीरामजी परतम हैं यानी 'सर्वापेक्षया सर्वेश्वर श्रीरामजी पर एवं सर्वोत्कृष्ट हैं । इन शास्त्रीय हेतुओं से श्रीकृष्णादि का मूल कारणता सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी में है यह प्रमाण सिद्ध होता है ॥७॥

गोपालतापनीय उपनिषद् की प्रामाणिकता के अनुसार तथा नारायणाथर्वशीर्ष के प्रमाणानुसार श्रीनारायण का ही तब सभीका अवतारी मान लिया जाय इसमें क्या हानि है । इसके पुष्टि के लिये 'निश्चित रूपसे एक मात्र श्रीनारायणजी ही सृष्टि की पूर्वावस्था में थे न श्रीब्रह्माजी थे न श्रीमहादेवजी थे न जल था न ही अग्नि और सोम था तथा अन्तरीक्ष पृथिवी आदि भी नहीं थे । एक मात्र श्रीनारायणजी ही थे अन्य नहीं । इसके वाद प्राणी मात्र के अन्दर विराजने वाले इस श्रीनारायणजी ने कामना किये कि प्रजा की सृष्टि करुँ । श्रीनारायणजी से प्राण की उत्पत्ति होती है । मन एवं समस्त इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई...नारायण में ही विलीन होते हैं' इन उपनिषदों के प्रामाणिकता के अनुसार श्रीनारायणजी का सृष्टि के एवं प्रलय की कारणता सुने जाने से श्रीनारायणजी को अवतारी मानना चाहिये । और श्रीनारायणजी का नित्यत्व निर्विकल्पकत्व, निरञ्जनत्व आदि श्रुति वचनों से प्रमाणित होने से भी एक अद्वितीय श्रीनारायणजी ही है दूसरा कोई भी नहीं है इत्यादि वेद वाक्यों से श्रीनारायणजी का अवतारित्व युक्तिसंगत होता है ऐसा यदि कहें तो यह अवतारित्व प्रतिपादन उचित नहीं । क्योंकि जिसप्रकार श्रीनारायणजी से भिन्न किसी अन्य का प्रतिषेध श्रवण वेदवचन में पाया जाता है उसीप्रकार सृष्टि से पूर्वावस्था में एक मात्र मैं ही पहले

सृष्टिप्रलयहेतुत्वश्रवणात् । तस्य च नित्यत्वनिर्विकल्पत्वनिरञ्जनत्वादिश्रुति-वचनाच्च एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चिदिति तस्यावतारित्वमुपपन्नं भवतीति । तन्न यथा हि श्रीनारायणव्यतिरिक्तस्य प्रतिषेधश्रवणं श्रुतावुपलभ्यते तथैव 'अहमेक प्रथमत आसीत् वर्तानि च भविष्यामि च नान्यः कश्चिन्म त्तोव्यतिरिक्तचेत्यादिभि रुद्राथर्वशीर्षोपनिषदा अपि प्रतिषिद्ध्यते रुद्रव्यतिरिक्त सृष्टिप्रलयादिहेतुत्वञ्चापि तत्रोच्यते । इत्थमुभयत्र समानत्वेन द्वयोरेकस्य मूलका-रणत्वाङ्गीकारेऽन्यत्रातिव्याप्तिदोषापत्तेः, उभयनिष्ठयोर्वाक्ययोरप्रामाणिकत्वे च नेष्टसिद्धिः । तथा च नारायणोपनिषत्सु ह वै इति पदश्रुतेः ह वै पदानाञ्च प्रसिद्धार्थद्योतकत्वम् प्रसिद्धहेतूद्देशेनैव तयोः प्रयोगात् । तथा च 'एको ह वै नारायणो देवः' इतिगोपालोपनिषदि, 'एको ह वै नारायणः' इतिमहोपनिषदि, अथ च 'पुरुषो ह वै नारायणः' इतिनारायणोपनिषदि च श्रवणात् सर्वासां श्रुतीनामनुवादकत्वं सिद्ध्यति कस्यानुवादकत्वमिति जिज्ञासायां शिवरुद्रादि

था हूँ एवं रहूँगा। मुझसे अतिरिक्त दूसरा कोई भी नहीं है इत्यादि रुद्राथर्वशीर्ष वचनों से और उपनिषद के द्वारा भी सृष्टि से पूर्वावस्था में श्रीरुद्र से भिन्न किसी अन्य का निषेध किया जाता है। अर्थात् श्रीरुद्र में सृष्टि प्रलय आदि की कारणता भी कही जाती है। तदनुसार इसमें भी अवतारित्व सिद्ध होता है। इसप्रकार श्रीरुद्र एवं श्रीनारायणजी दोनों में समान रूपसे अवतारित्व रूप मूलकारणता होने पर दोनों में से किसी एक की मूलकारण का स्वीकार करने पर अन्य में अतिव्याप्ति दोष की आपत्ति होगी । अतिव्याप्ति दोष होने से अवतारित्व लक्षण संगत नहीं होगा । दोनों में ही स्थित रहनेवाले वाक्यों की अप्रामाणिकता सिद्ध होने पर अभिमत पक्ष की सिद्धि नहीं होती है। और जैसे कि नारायण उपनिषदों में 'ह वै' पद सुने जाते हैं 'ह वै' पदों के सुने जाने के कारण तथा इन पदों की प्रसिद्धार्थ द्योतकता है इसलिये प्रसिद्ध हेतुओं के उद्देश्य से ही ह वै इन पदों का प्रयोग किया गया है। इसप्रकार जैसे कि 'एको ह वै नारायणोदेवः' इत्यादि रूपमें गोपालतापनीय उपनिषद में प्रयोग किया गया है 'एको ह वै नारायणः' ऐसा महोपनिषद् में कहा गया है । और इसके वाद 'पुरुषो ह वै नारायणः' ऐसा नारायणोपनिषद में सुने जाने से तीनों उपनिषदों में ह वै प्रयोग के श्रवण होने के कारण सभी श्रुति वचनों का अनुवादकत्व मात्र सिद्ध होता है। यदि ऐसी जिज्ञासा हो कि किसका अनुवादकत्व है तो जिज्ञासा शान्ति के लिये शिव, रुद्र

प्रतिपाद्यस्येति । श्वेताश्वतरोपनिषदि रुद्रोपनिषदि च सृष्टिप्रलयावधित्वप्रतिपादकतया नारायणोपनिषद् वाक्यानां चैकवाक्यता भवति समानार्थकत्वात् 'देवा ह वै रुद्रमपृच्छन् कोभवान् इति सोऽब्रवीत् अहमेकः प्रथममासीद् वर्तानि च भविष्यामि च नान्यः कश्चिन् मत्तोव्यतिरिक्त इति' अत्रापि 'ह वै' इतिनिपातौ दृश्येते । द्विष्ठस्य मूलकारणत्वस्यायुक्तत्वात्, क्लृप्तकल्पितयोः क्लृप्तस्यैव च बलीयस्त्वात्, श्रीशिवस्यापि मूलकारणत्वं न युक्तमनुवाद्यत्वात् । यत्तु क्वचित् श्रीरामचन्द्रस्य श्रीशिवाराधकत्वं पुराणादौ श्रूयते, तन्न युक्तत्वम् यतो हि श्रुतौ तु-
अथ तं प्रत्युवाच स्वयमेव याज्ञवल्क्यः-

''श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः ।
मन्वरसहस्त्रैस्तु जपहोमार्चनाभिः ॥
ततः प्रसन्नोभगवान् श्रीरामः प्राह शंकरम् ।
वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर ? इति ॥

आदि पदों से प्रतिपाद्य देवताओं का अनुवादकत्व है यह कहते हैं । श्वेताश्वतरोपनिषद् में और रुद्रोपनिषद में भी सृष्टि से लेकर प्रलय पर्यन्त की कारणता को प्रतिपादन करने वाला होने के कारण और नारायणोपनिषद् के वाक्यों की भी एक वाक्यता होती है क्योंकि दोनों का ही अर्थ समान होने के कारण एक वाक्यता समुचित है जैसे कि देवतागण निश्चित रूपसे रुद्र को प्रश्न किये कि आप कौन हैं इसके उत्तर में रुद्र कहे कि सृष्टि से पूर्वावस्था में मैं ही था वर्तमान में भी मैं ही हूँ एवं भविष्य में भी मैं ही रहूँगा मुझसे अतिरिक्त दूसरा कोई भी नहीं है । इस रुद्रोपनिषद् वाक्य में भी ह वै ये दोनों निपात प्रयुक्त हुए हैं ऐसे देखे जाते हैं । इसप्रकार दो में रहनेवाली मूल कारणता तो अनुपयुक्त है । असंगत मूलकारणता युक्त नहीं है । निश्चित एवं कल्पना प्राप्त दोनों की उपस्थिति होने पर निश्चित ही बलवान् होता है । क्लृप्त शब्द का अर्थ बलिष्ठ है । क्लृप्त की बलिष्ठता के कारण शिव का भी मूलकारणत्व प्रतिपादन युक्ति संगत नहीं है । क्योंकि मूलकारणता असंगत होने के कारण शिव का भी अनुवाद्यत्व ही है । और जो प्रतिवादी गण कहीं पर प्रतिपादन करते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी का श्रीशिवजी का उपासक होना पुराणादि ग्रन्थों में सुना जाता है तो आपके द्वारा प्रतिपाद्य अवतारी श्रीरामचन्द्रजी का श्रीशिवाराधकत्व श्रवण होता है तो यह प्रतिवादियों का कथन वेदशास्त्र सम्मत या तर्कसंगत नहीं है क्योंकि वेद में तो निम्नप्रकार से रहस्य

सहोवाच-मणिकर्णिकायां मत्क्षेत्रे गंगायां वा तटे पुनः ।
म्रियते देहि तज्जन्तोर्मुक्तिः नातोवरान्तरम् ॥

अथ सहोवाच श्रीरामः-

क्षेत्रेऽत्र तव देवेश ? यत्र कुत्रापि वा मृता ।
कृमिकीटादयोप्याशुमुक्ताः सन्तु न चान्यथा ॥

अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये ।
अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु ॥

क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव ? ।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

मूलतत्व का वर्णन मिलता है। परतत्त्व निर्णय परायण मिथिलाधिपति विदेह राजा जनक से सामायोजित सभा में ब्रह्म रुद्र बृहस्पति याज्ञवल्क्य भरद्वाज अत्रि प्रभृति तत्त्वज्ञ महापुरुष संमिलित हुये। चर्चा प्रसङ्ग में श्रीराम पूर्वतापनीय उपनिषद् प्रधानतया केन्द्रविन्दु बनी रही उसमें सर्वेश्वर श्रीरामजी के नाम रूप लीला एवं धाम के विषय में व्यास-समास चर्चा के अनन्तर उत्तरभाग में सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के महामन्त्रों का वैभव विशिष्ट महिमा तथा सम्प्रदाय सम्बन्धी सम्वाद महर्षियों के सम्पन्न हुये। अनन्तर श्रीराम तत्त्वज्ञ महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्यजी ने सर्वेश्वर श्रीरामजी तथा श्रीराम महामन्त्र का परत्व प्रति पादन एवं सम्प्रदाय तथा परम्परा प्रतिपादनार्थ महर्षि अत्रि ऋषिजी के प्रति स्वयं कहा-

सर्वेश्वर श्रीरामजी के ब्रह्मतारक षडक्षर महामन्त्रराज का सहस्रों मन्वन्तर तक जप होम अर्चन एवं आगे निर्दिष्ट सप्तचत्वारिंशत् मन्त्रों द्वारा स्तुति करते हुये वृषभध्वज-श्रीशंकरजी काशी में तप किये अनन्तर ज्ञान बल ऐश्वर्य वीर्य तेज शक्ति प्रभृति छओं ऐश्वर्यों से परिपूर्ण सर्वेश्वर श्रीरामजी प्रसन्न होकर श्रीशंकरजी से कहे-हे परमेश्वर ? जो अभीष्ट हो मांगिये उसे दे देता हूँ।

शरणागत वत्सल श्रीरामजी की दिव्य वाणी श्रवण कर श्रीशंकरजी ने प्रार्थना की सर्वेश्वर श्रीरामजी ? यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो मणिकर्णिका में मेरे इस पञ्चकोशी काशी क्षेत्र में अथवा गंगा के तट में मरे हुये जन्तुओं को मुक्ति प्रदान कर दें यही वर मैं मांगता हूँ दूसरा कोई वर हमें नहीं चाहिये।

श्रीशंकरजी की प्रार्थना सुनकर प्रसन्नतापूर्वक श्रीरामचन्द्रजी ने कहा-हे देवेश ? इस तुम्हारी काशी क्षेत्र में-पञ्चकोशी के अन्दर कहीं भी मरे मनुष्य कीटादि सभी इसी

त्वत्त्वो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम् ।
जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते ॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् ।
उपदेक्ष्यसि मन् मन्त्रं स मुक्तोभविता शिव ? ॥
श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद् ४/१-८

वेदावतारभूते श्रीमद्रामायणेऽन्यत्रागमशास्त्रे च नास्ति गन्धावलेशः श्रीशिवपूजनविषयेऽतः प्रकृतश्रुतिवचनानामननुकुल्येपि लोकशिक्षाभिप्रायेण मानव जन्मान्त में मुक्त होंगे यह मेरा वर है जो असत्य नहीं होगा । इस आपके अविमुक्त क्षेत्र में सभी को मुक्ति प्रदानार्थ पाषाण या अन्य प्रतिमाओं में भी मैं सदा सन्निहित ही रहूँगा ।

हे शिवजी ? जिस महामन्त्र का अनुष्ठान आपने किया है उस मन्त्रराज से कोई भी भक्तिभाव पूर्वक मेरी पूजा करेगा उसे अज्ञानावस्था में हुये ब्रह्महत्यादि पापों से भी मुक्त कर दूँगा इस विषय में आप चिन्ता न करें ।

सर्वेश्वर श्रीरामजी ने कहा श्रीशंकरजी ? जिस षडक्षर ब्रह्मतारक श्रीराम महामन्त्र का अनुष्ठान आपने किया है उस महामन्त्रराज को आपसे या श्रीब्रह्माजी अथवा अविच्छिन्न परम्परागत आचार्यजी से जिसे विधिपूर्वक ग्रहण कर जो साधकवर्ग साधना करेंगे वे जीवन काल में ही मन्त्र सिद्ध होंगे एवं परिणामतः सायुज्य प्राप्तकर मुझे मेरे दिव्यलोक श्रीसाकेतधाम में प्राप्त करेंगे ।

सर्वशरण्य श्रीरामजी के इस वरदान रूप आदेश से श्रीराम महामन्त्र की दो परम्परा चली एक श्रीशंकरजी की जिसमें महर्षि श्रीअगस्त्यजी महर्षि श्रीसुतीक्ष्णजी प्रभृति आते हैं । दूसरी श्रीब्रह्माजी की जिसमें ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठजी महर्षि श्रीपराशरजी महर्षि श्रीव्यासजी परमहंस शिरोमणि श्रीराम ब्रह्मतत्त्वोपदेशक श्रीशुकमुनिजी प्रभृति का समावेश है जिनकी विरक्त एवं गृहस्थ शिष्यों की परम्परा आज तक विश्व में सर्वत्र न्यूनाधिक रूपसे व्याप्त है । इन्हीं महर्षियों की विरक्त परम्परा की धारा में २२.वें श्रीसम्प्रदायाचार्य आनन्दभाष्यकारजी हुये अग्रिम अविच्छिन्न परम्परा में ४१.वें आचार्य के रूपमें मेरी-इस भाष्योद्योत के लेखक की गणना है जिसका क्रमबद्ध विवेचन आगे होगा ।

सर्वेश्वर श्रीरामजी ने पुनः कहा-हे शिवजी ? जिस किसी मुमूर्षु व्यक्ति के

लीलया च तद्बोध्यम्, धर्मनिष्ठराजवंशावतीर्णस्य प्रकटीकृतमानुषदेहस्य लोकशिक्षाधिया तथा व्यवहारस्यौचित्यात् 'यद् यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः' इतिगीतोक्तेः । श्रीशिवस्य श्रीरामसेवकत्ववचनं तु न तथा प्रकृतोदाहृत श्रुतिसामञ्जस्यात् तस्यामानुषत्वादिप्राप्तौ श्रुतौ सेवकत्वेन स्मरणात् । अन्यथा वास्तवमूलकारणत्वानुपपत्तेः । ननु 'नारायणः परंब्रह्म तत्त्वं त्वं नारायणः परः' इत्यादिबृहन्नारायणनचनात् तस्यैवावतारित्वमस्त्विवतिचेन्न, तत्र परशब्दस्य ब्रह्मशब्दस्य च समानार्थकतया विशेष्येऽवतारित्वनारायणे पर्यवसानासम्भवात् ।

दाहिने कान में इस मेरे षडक्षर तारक महामन्त्र का स्वयं उपदेश करेंगे वह अवश्य ही मुक्त हो जायेगा । यहां यह स्मरण रहे परम्परागत आचार्यजी से सविधि उपदिष्ट श्रीराम महामन्त्र से ही मुक्ति सम्भव है मनमुखीपना से नहीं । प्रकृत में जैसे श्रीशिवजी से सर्वेश्वर श्रीरामजी की उपासना निरूपित है उससे सभी की कुशंका शान्त हो जाती है इतना ही नहीं वेद का अवतार श्रीमद्रामायण में भी श्रीरामजी के द्वारा श्रीशिवजी की पूजा का गन्ध भी नहीं है अर्थात् कहीं चर्चा भी नहीं है । श्रीरामचरितमानस का प्रसंग क्षेपक है । तथैव किन्ही पुराणों में चर्चित प्रसंग भी क्षेपक है इस विषय में निबन्धान्तर में विवेचन करुँगा । श्रेष्ठ लोग जो आचरण करते हैं उसका अनुकरण सामान्य लोगों के द्वारा भी किया जाता है इस दृष्टि से लोकशिक्षा के अभिप्राय से मनुजावतार काल में श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा शिवाराधकत्व प्रस्तुत किया गया ऐसा समझना चाहिये । जिस राजवंश में परम्परा से धर्म के प्रति निष्ठा प्रतिष्ठित है उस राजवंश में अवतार धारण किये हुए जो अपने निर्गुण निराकार स्वरूप को कार्य कलापानुसार मानव देह के रूपमें प्रकट किये हैं उन श्रीरामचन्द्रजी की लोकशिक्षा की भावना से उस तरह का सामयिक शिवोपासना गीता वचनानुसार ठीक है पर महान् आश्चर्य की बात तो यह है कि ऊपर लिखे श्रुति में श्रीशिवजी का श्रीरामजी की उपासना करना ही वर्णित है एवं श्रीमद्रामायण तथा अन्य आगम शास्त्र में भी कहीं भी श्रीरामजी के द्वारा श्रीशिवोपासन का कुछ भी वर्णन न होने पर भी कतिपय स्थल के प्रक्षिप्त अंश को लेकर लेखकाभास लोग टूट पड़ रहे हैं जो विचारणीय है इस प्रसंग में पुनः विचार करुँगा ।

भगवान् शिव का श्रीरामचन्द्रजी का सेवकत्व वचन तो उस प्रकार लोक शिक्षा भावना से नहीं है । क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी की अमानुषत्व आदि दशाओं के प्राप्त होने

नच नारायणपरवाक्यानुरोधात् तस्य ब्रह्मणोरूपकल्पनेति वाच्यम्, तदपि न कोऽवताराणां श्रेष्ठः यं स्मृत्वा मुक्ताभवन्ति, इति एकवचनेन ब्रह्मणः प्रश्ने श्रीकृष्णावतारस्य श्रेष्ठत्वज्ञापनाय, नारायणोदेव इत्युक्त्वा एकं रुद्रा यजन्तीत्यादि द्वादशभेदानाह । तत्र च श्रीनृसिंहमत्स्यादीनां नामश्रवणमपि न । तेष्वपि मोक्षप्रदत्वादिसाधने तदधिकत्वानुपपत्तेः । तस्य नारायणावतारबोधकवाक्यतः शङ्खचक्रादिसहितद्वयादिसहस्रान्तभुजत्वब्रह्मावतारत्वबोधकत्वेन 'ब्रह्मणोरूपकल्पना' इत्यादिप्रकरणस्य बलवत्तया ब्रह्मशब्दसामान्यत्वेनाङ्गीकार उपपद्यते । पर वेद में भगवान् शिव को श्रीरामजी का सेवक उपासक के रूपमें प्रतिपादन पूर्वोक्त श्रुति में किया गया है । अन्यथा वास्तविक मूलकारण स्वरूप अवतारित्व की सिद्धि युक्तिसंगत नहीं हो सकेगी ।

यदि यह प्रश्न करें कि 'नारायण ही परब्रह्म हैं । नारायण ही परमतत्व हैं' इत्यादि बृहन्नारायण उपनिषद् के वचनानुसार उन श्रीनारायण का ही अवतारित्व स्वीकार करें तो क्या हानि है । यदि ऐसा कहें तो श्रीनारायणजी को अवतारित्व सिद्ध नहीं किया जा सकता । क्योंकि उस वाक्य में पर शब्द का एवं ब्रह्म शब्द का समान अर्थवाचक होने से विशेष्यभूत अवतारित्व साध्य श्रीनारायण में वाक्यार्थ की सम्पन्नता असम्भव है । और श्रीनारायण परक वाक्यानुरोध से भी उस ब्रह्म की परिकल्पना की गयी है यह भी नहीं कह सकते । क्योंकि उपनिषद् में यह प्रश्न किया गया कि सभी अवतारों में कौन श्रेष्ठ है जिसको स्मरण करके प्राणी जन्म-मृत्यु बन्धन विमुक्त हो जाते हैं । उस वाक्य में 'कः श्रेष्ठः' में एकवचन प्रयोग से ब्रह्म का प्रश्न होने पर श्रीकृष्णावतार की श्रेष्ठता प्रतिपादन करने के लिये उत्तर देते हुए 'नारायणोदेवः' नारायण देवता यह कहकर एक को रुद्रगण उपासना करते हैं इत्यादि भिन्न भिन्न उपासक भेद से बारह भेदों को कहा और उस भेद प्रतिपादन प्रकरण में श्रीनृसिंह श्रीमत्स्य आदि नामों का श्रवण भी नहीं होता है । उन सभी में मोक्षप्रदान करने की क्षमता आदि सिद्ध करने पर उन सवके अपेक्षा श्रीकृष्ण में अधिकत्व सिद्ध होना तर्कसंगत नहीं होता है । उस श्रीनारायणजी का अवतार बोधक वाक्य से शङ्ख, चक्र, गदा आदि के सहित दो से लेकर हजार पर्यन्त बाहुवाला ब्रह्म का अवतार बोधक रूप में कहा गया है न कि ब्रह्म की 'उपकल्पना है' इत्यादि प्रकरण की बलवत्ता से ब्रह्म शब्द सामान्य रूपमें अंगीकार सिद्ध होता है क्योंकि नारायण उपनिषद् में स्वतन्त्र

यतो हि नारायणोपनिषदि स्वतन्त्रस्य ब्रह्मशब्दस्य नारायणशब्दस्य वा कारण वाचकत्वमवतारित्वञ्च न श्रूयतेऽतः पशुछागन्यायेन न पर्यवसानम् ॥८॥

अवतारिब्रह्मविषये श्रुतौ श्रूयते 'न तत्समोऽभ्यधिकश्च श्रूयते' इति। श्रीरामनाममाहात्म्यवन्नारायणमाहात्म्यं न श्रूयते। न वा तत्र सामान्यविशेषत्वेन श्रीराम इव ब्रह्मशब्दवाच्यत्वं दृश्यते। श्रीनृसिंहादावपि तथात्वापत्तेः। श्रीरामब्रह्मणि तु तद्दृढयन् स्ववाच्यस्य तत्तदावतारित्वं साधयन् "इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते" इतिश्रुत्या श्रीरामाख्यस्य ब्रह्मणः सर्वावतारित्वं

ब्रह्म शब्द का अथवा नारायण शब्द का कारणवाचकत्व अथवा अवतारित्व नहीं सुना जाता है। इसलिये पशुछागन्याय से पूर्णता नहीं होती है ॥८॥

अवतारी ब्रह्म के विषय में वेद वचनों में सुना जाता है कि अवतारी ब्रह्म के समान अथवा उनसे बढकर कहीं भी नहीं सुना जाता है। जिस तरह श्रीरामजी के नाम का माहात्म्य है उसी तरह श्रीनारायणजी के नाम का माहात्म्य नहीं सुना जाता है। अथवा न हीं श्रीरामजी के समान सामान्य विशेष स्वरूप में ब्रह्मशब्द वाच्यत्व देखा जाता है। यदि ऐसा स्वीकार करेंगे तो श्रीनृसिंह श्रीकृष्ण आदि में भी उसी प्रकार ब्रह्मत्व होने लगेगा। श्रीराम ब्रह्म में तो अवतारित्व सिद्धान्त को दृढता से निरूपण करते हुए, श्रीराम शब्दार्थ का अवतारित्व सिद्ध करते हुए 'इसप्रकार इस श्रीराम पद के द्वारा परब्रह्म प्रतिपादित हो जाता है' इस वेदवचन के द्वारा श्रीराम नाम से प्रसिद्ध ब्रह्म का सर्वावतारित्व अर्थात् सभी अवतारों का अवतारी ज्ञात कराया गया है। उस परब्रह्म का प्रकरण उपसंहार आदि हेतुओं के द्वारा निश्चय रूपसे प्रतिपादन किया गया है। जो परब्रह्म ब्रह्माण्ड के अन्दर एवं बाहर व्याप्त होकर रहता है, एवं जो विशेष रूपसे सर्वव्यापक विराट् महासागर के मध्य शयन करता हुआ जल में हमे और तुम्हें उत्पन्न किये। इत्यादि वेद वचन एवं धर्मशास्त्र वचनों तथा 'उस सनातन स्वरूप से विराजमान आप हैं एवं किसी से भी जीते नहीं जा सकते हैं सव भूतों की रक्षा हेतु आप ही ने श्रीविष्णु का रूपधारण किये' इत्यादि श्रीमद्रामायणीय ब्रह्माजी की वाणी से यह सिद्ध हो जाता है कि सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का ही अवतार श्रीनारायण आदि हैं। और उन्हीं श्रीरामचन्द्रजी का ही रुद्र आदि का अवतार है यह भी कारण दृष्टि से प्रतिभासित होता है। अथवा दूध के समुद्र में शयन करनेवाले श्रीनारायणजी में ब्रह्म का व्यवहार वेद में सुने जाने के कारण अवतारित्व आरोपित किया जाता है।

बोधितम् । तस्य प्रकरणोपसंहारादिलिङ्गैश्च निर्णयः कृतः । यो ब्रह्माण्ड स्यान्तर्वहिर्व्याप्नोति, यो विराट् महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वां पूर्वमजीजनत् । एवमादिश्रुतिस्मृतिवचोभिः ''ततस्त्वमसि दुर्धर्षात्तस्माद्भावात्सनातनात् । रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान्'' (७/१०४/९) इत्यादि श्रीमद्रामायणस्य वेदावतारभूतस्य वचनैः श्रीरामस्यैव श्रीविष्णुनारायणरूप धारित्वावगनात् तस्यैव च रुद्राद्यवतारित्वमिति कारणदृष्ट्या वा क्षीरसागर

उपनिषदों के अन्दर व्यवहार में आनेवाले सभी ब्रह्म विषयक वाक्यों की एक वाक्यता अर्थात् एक सूत्र में जोड़ने पर दो में होने वाला अवतारित्वपना का प्रतिपादन करना तर्कसंगत नहीं है । क्योंकि दो से प्रारम्भ कर हजार पर्यन्त भुजाओं वाले ब्रह्म का अवतार के स्वरूप में प्रतिपादन किये जाने के कारण अवतारित्व श्रीरामजी में है अन्य में नहीं कारण कि सभी की अपेक्षा उत्कृष्ट होने के कारण और प्रत्यक्ष श्रुति वचनानुसार श्रीरामचन्द्रजी में ही अवतारित्व सम्यक् प्रकार से युक्ति संगत होता है । क्योंकि उपनिषद् में सुने जाने के कारण उन उन प्रकरणों से ज्ञात होने से श्रीरामजी में ही अवतारित्व है । सामान्य शब्द के द्वारा जाना गया ब्रह्म शब्द की विशेष वाचक श्रीरामजी में परिपूर्णता होती है । विशेषभेद के उपस्थित कराने वाले श्रीविष्णुजी के हजार नाम का अनन्त भगवन्नामापेक्षया अगणित गुणाधिक श्रीराम मन्त्रों की तुलना किये समुत्कर्ष जानने के कारण उन्हीं श्रीरामजी में परिपूर्णता होती है । 'इसप्रकार ये श्रीरामचन्द्रजी 'राम' पद के द्वारा श्रुति से परब्रह्म कहे जाते हैं' ''परम चैतन्यमय परमेश्वर'' इत्यादि चैतन्यमयत्व पूर्ण ब्रह्म ही श्रीराम शब्द का वाच्य प्रतिपाद्य है इस तरह श्रुति में देखा जाता है । यह आत्मा ब्रह्म है, प्रत्येक अवस्था में मैं श्रीराम स्वरूप हूँ । इस प्रकार ब्रह्म पद के स्थान पर श्रीराम पद का व्यवहार किये जाने के कारण और चरम मन्त्र के द्वारा भी श्रीरामचन्द्रजी का चराचर जगत का अन्तर्यामित्व सभी अवतारों का अवतारित्व प्रकाशित किया जाता है । भगवान् श्रीविष्णु के हजारों नामों के समान एक श्रीराम नाम है यह विषय भी अवतारित्व प्रकाशन से ही युक्ति संगत होता है । और अवतारित्व प्रकाशन के द्वारा ही सभी की परमकारणता भी सिद्ध होती है यह अच्छी तरह युक्ति युक्त है ।

जिस परम नित्य आनन्द एवं चैतन्यमय श्रीरामचन्द्रजी में योगिजन समाधि जनित परमानन्द की अनुभूति करते हैं इसलिये ये श्रीरामचन्द्रजी परब्रह्म स्वरूप में

शायिनि ब्रह्मश्रुत्यावतारित्वमारोपितम् । सर्वासामुपनिषदन्तर्गतवाक्यानामेकवाक्यतया द्विनिष्ठमवतारित्वसाधनमयुक्तम् । द्वयादिसहस्रान्तहस्तवतां ब्रह्मावतारत्वेन बोधनात् । सर्वोत्कृष्टतया प्रत्यक्षश्रुतेश्च श्रीरामे सम्यगुपपद्यते । उपनिषदि श्रवणेन तत् प्रकरणबोधात् सर्वेशश्रीरामेसर्वावतारित्वं सर्वतोभावेन निष्पद्यते । सामान्य-शब्देन ज्ञातस्य ब्रह्मशब्दस्य विशेषे पर्यवसानम् । विशेषोपस्थापके विष्णुस-हस्रनामनि श्रीरामेऽनन्तभगवन्मन्त्रादिकसमुत्कर्षकथनेन पर्यवसानत्वम् 'इति रामपदेनासौ परब्रह्माधियते' इत्युपक्रम्य 'रामचन्द्रश्चिदात्मकः' इतिब्रह्म-रामयोरभेदः । 'चिन्मयः परमेश्वरः' इत्यादौ चिन्मयत्वं, ब्रह्मरामशब्दवाच्यत्वञ्च

प्रतिपादित किये जाते हैं । उपासकों के अभिमत लक्ष्य की सिद्धि के लिये ब्रह्म की उपकल्पना की जाती है, जो परम चैतन्यमय हैं अखण्ड एवं अद्वितीय हैं निष्कल हैं एवं शारीरिक बन्धन विमुक्त हैं उन परब्रह्म की उपकल्पना की जाती है । यहां पर जो परब्रह्म कहा जाता है उसी अद्वितीय अखण्ड ब्रह्म की उपासकों की अभीष्ट सिद्धि हेतु ब्रह्म की उपकल्पना है इसतरह अन्वय होता है । किन्तु वेदवचन कलाप तो श्रीरामचन्द्रजी में ही परिपूर्ण होते हैं । और जैसे मूल के ज्ञान से समस्त शाखा प्रशाखाओं का उसी के माध्यम से ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में मूलकारणता एवं अवतारित्व को प्रकाशित करती हैं । उन अवतारी श्रीरामचन्द्रजी के ही अवतार स्वरूप श्रीमत्स्य श्रीकूर्म श्रीबराह श्रीनृसिंह श्रीकृष्ण श्रीवामन श्रीनारायण आदि देवगण हैं । उन उन स्थानों पर मत्स्य कूर्मादि जातीय बुद्धि का निवारण करके मत्स्य कूर्मादि में ब्रह्मत्व बुद्धि को अवगत कराते हैं । जिस तरह एक ही कारण स्वरूप सुवर्ण कटक कुण्डल हार आदि आभूषणों की विशेषता को उपलब्ध करके उनके रजतत्त्व आदि बुद्धि का उन कटक कुण्डलादि में निवारण पूर्वक यह सुवर्ण का बना हुआ उसका विकार स्वरूप है इस विषय का बोध कराता है । इसीप्रकार परब्रह्म शब्द भी मत्स्य कूर्म वराहादि की विशेषता को प्राप्त कर प्रतिभासित होनेवाली मनुष्यत्व मत्स्यत्व कूर्मत्व आदि की बुद्धि को निवारित करके ब्रह्मत्व को सिद्ध करता है । इसप्रकार श्रीरामतापनीय उपनिषद् के साथ एक वाक्यता के द्वारा सभी उपनिषदों के प्रतिपादन विषय बने हुए श्रीनारायण श्रीवासुदेव श्रीनृसिंह श्रीकृष्ण श्रीशिव रुद्र आदि सभी अवतारों के कारण स्वरूप अनन्त स्वरूपधारी श्रीरामचन्द्रजी के ही अवतार है यह सिद्ध होता है । अतः अवतारित्व श्रीरामचन्द्रजी में ही है ।

दृश्यते । 'अयमात्मा ब्रह्म' 'सदा रामोऽहम्' इति ब्रह्मपदस्थाने रामपदप्रयोगात् चरममन्त्रेणापि श्रीरामस्य सर्वान्तर्गतत्वं, सर्वावतारित्वं च प्रकाश्यते । श्रीरामनाम्नः श्रीविष्णुसहस्रनामतुल्यत्वमपि तेनैवोपपद्यते । तेनैव च सर्वकारणत्वमपि सूपपाद्यते→

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ।।

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः ।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूपकल्पना ।।

इत्यत्र यः परब्रह्माभिधीयते तस्यैवाद्वितीयस्य ब्रह्मणः तस्यैवोपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूपकल्पनेत्यन्वयः । श्रुतयस्तु श्रीरामे एव पर्यवस्यन्ति सर्वशाखा प्रत्ययन्यायेन मूलकारणत्वमवतारित्वञ्च प्रकाशयन्ति । तस्यैवावतारभूताः श्रीमत्स्यकूर्मवराहनृसिंहश्रीकृष्णवामननारायणादयः सन्ति 'सर्वेषामवताराणा-

यदि यह कहें कि श्रीरामजी का श्रीनारायण आदि अवतार हैं ऐसा नहीं सुने जाने के कारण तथा श्वेताश्वतर एवं रुद्र आदि उपनिषद् के द्वारा शिव रुद्रादि प्रतिपाद्य विषय है यह समझा जाता है । तो उपनिषद् प्रतिपाद्य होने से इन्हें अवतारी मानें, ऐसा यदि कहते हैं तो ठीक है जब तक समाधान नहीं करता हूँ। फिर भी श्रीशिवशङ्कर परमेश्वर आदि शब्दों के द्वारा प्रतिपादन करने योग्य देवताओं का श्रीरामचन्द्रजी का आराधक होना 'श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः । मन्वतर सहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः' 'सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः' इत्यादि श्रुतिस्मृतियों में सुना जाता है, इसलिये श्रीरामजी में ही अवतारित्व है । 'नारायण से रुद्र उत्पन्न होते हैं। नारायण से ग्यारह रुद्र उत्पन्न होते हैं' इत्यादि वार-वार कहे जाने से श्रीरुद्रादि का श्रीनारायण जन्यत्व सिद्ध होता है । श्रीशिव रुद्र आदि का श्रीराम महामन्त्र के उपदेश द्वारा काशी में सभी प्राणियों को मोक्ष प्रदायक होना उपनिषदों में वर्णित है । इससे सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का सभी का स्वामित्व सिद्ध होता है । श्रीशिव रुद्र आदि का श्रीरामजी से उत्पन्न होने के कारण भी श्रीरामजी का ही स्वामीत्व सिद्ध होता है । 'रुद्र का कोई उत्पन्न करनेवाला नहीं है । रुद्र का कोई स्वामी भी नहीं है' इस श्रुति वचन का श्रीरामजी के स्वामित्व निरूपण करने से असङ्गति होती है । ऐसा प्रश्न करने पर इसका समाधान कहा जाता है । श्रीब्रह्मा श्रीरुद्र आदि जीव और ईश्वर भेद

मवतारीरघूत्तमः' इत्यागमोक्तेः । अतः तत्र तत्र तज्जातीयां बुद्धिं निरस्य ब्रह्मत्वमवगमयति श्रीरामस्य । यथा एकएव कारणरूपः सुवर्णः कटक कुण्डलादिविशेषणत्वमवाप्य तस्य रजतत्वादिबुद्धिनिरासपूर्वकं सुवर्ण परिणामत्वं बोधयति । एवं परब्रह्मशब्दोऽपि विशेषणत्वमवाप्य प्रातिभासिक मनुष्यत्वमत्स्यकूर्मत्वादिबुद्धिं निरस्य ब्रह्मत्वं साधयति । इत्थं श्रीरामतापनीयोप निषदैकवाक्यतया सर्वासामप्युपनिषदां प्रतिपाद्यभूताः श्रीनारायणवासुदेवनृसिंह कृष्णशिवरुद्रादयः सर्वकारणस्य बहुरूपिणः श्रीरामस्यैवावताराः प्रकृतोदाहृता-गमप्रामाण्यादतः अवतारित्वन्तु श्रीरामे एव ।

ननु श्रीरामनारायणादीनामवताराश्रवणेन, श्वेताश्वतररुद्राद्युपनिषदा च शिवरुद्रादिप्रतिपाद्यत्वञ्चोपपद्यते । इति चेत् सत्यम्, तथाऽपि शिवशङ्कर परमेश्वरादिशब्दप्रतिपाद्यस्य श्रीरामाराधकश्रवणात् । 'नारायणाद् रुद्रोजायते' 'नारायणादेकादशरुद्राः समुत्पद्यन्ते' इत्यादि पौनः पौन्येन कथनात् नारायण जन्यत्वम् । शिवरुद्रादेः श्रीराममन्त्रोपदेशेन काश्यां प्राणिमोक्षप्रदायकत्व मुपनिषदादिसूपलभ्यते, तेन श्रीरामस्याधिपत्वं सिद्ध्यति । शिवरुद्रादेः श्रीराम

से दो प्रकार के हैं। उनमें जीव स्वरूप जो रुद्र हैं वे श्रीनारायण से उत्पन्न होनेवाले हैं। न कि परमेश्वर स्वरूप श्रीरुद्र नारायण जन्य हैं जिसका तात्विक निरूपण ३-२. मन्त्र के आनन्दभाष्य में हुआ जो वही देखना चाहिये। श्वेताश्वतर उपनिषद् में 'कारण स्वरूप ब्रह्म कौन है ? ये ब्रह्म कहां से उत्पन्न हुए' इत्यादि ब्रह्म शब्द का उपक्रम करके ब्रह्म का पर्याय होने के कारण ब्रह्म का वाचक है। 'श्रीश्चते लक्ष्मीश्च' श्री और लक्ष्मी ब्रह्म की पत्नियाँ हैं, इससे श्री के रमण का सामर्थ्य सभी का कारण स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी का अवतारित्व प्रतिपादक है यह समझा जाता है। उस परब्रह्म के समान अथवा उससे अधिक कोई नहीं सुना जाता है। श्रीरामजी की तुलना कहीं नहीं है, उसका नाम महान् यश स्वरूप है' इन श्रुति वचनों से तुलना रहित होना समान तथा अधिक शून्यता महान् यशस्वी होना सुना जाता है। जिस तरह श्रीराम नाम महान् यशस्वी है इस तरह दूसरा नाम नहीं सुना जाता है। इन श्रुति वचनों से श्रीरामजी का ही सभी का अवतारी होना तुल्य तथा अधिक से राहित्य होना तर्क युक्त सिद्ध होता है। क्योंकि यह 'यश इतना मात्र रघुनायक श्रीरामचन्द्रजी का नहीं है इससे अनन्त गुणा अधिक है जो देवताओं की प्रार्थनानुसार लीला विग्रह धारण करनेवाले अधिकता

जातत्वेन तदाराधकत्वेन च रुद्रस्य "न तस्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः" इतिश्रुतेर नुपपन्नत्वं भवति। अत्रोच्यते ब्रह्मरुद्रादयो जीवेश्वरभेदेन द्विविधाः, तत्र जीवभूत स्य रुद्रस्य नारायणजन्यत्वम् नतु परमेश्वरभूतस्येति। श्वेताश्वतरे "किं कारणं ब्रह्म कुतः स्मजाताः" इत्यादयो ब्रह्मशब्दोपक्रमेण ब्रह्मशब्दपर्यायत्वेन ब्रह्मवाच कत्वम्। 'श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्याविति श्रियोरमणसामर्थ्यं सर्वकारणस्य श्रीरामस्य प्रतिपाद कत्वं बुध्यते। "न तस्य प्रतिमास्ति" तस्य नाम महद् यशः" "न तत् समश्चाभ्यधि कश्च दृश्यते" इति अप्रतिमत्वेन समाभ्यधिकराहित्येन महद् यशस्वी च श्रूयते, यथा श्रीरामनाम्नो मृहद् यश तथा नामान्तरस्य न श्रूयते। तेन सर्वावतारित्वं समा भ्यधिकराहित्यञ्चोपपद्यते 'नेदं यशो रघुपतेः सुरयाञ्चयात्त लीलातनोरधिकसाम्य विमुक्तधाम्नः" इत्थं स्मर्यते शास्त्रेषु तत्र श्रीशु- कार्यमतदीपिकायां जगद्गुरु श्रीगङ्गाधराचार्याः "अधिकसमाभ्यां विमुक्तं धाम प्रभावो यस्य निरतिशया धिकप्रभाववत् इत्याशयः" इत्याहुः। "चिन्म- यस्याद्वितीयस्येत्यद्वितीयत्वश्रुतेश्च मूलकारणत्वबोधकश्रुतीनामप्रमाणत्वा पत्त्या सर्वासामप्युपनिषदामप्रामाण्यं स्यात्। तस्मात् सर्वशब्दप्रतिपाद्यस्य श्रीरामस्यैव श्वेताश्वतराद्युपनिषदां प्रतिपाद्याः शिवशङ्कररुद्रमहेश्वरेशानशब्दाः सामान्य- शब्दवाच्यकारणवाक्यगतशिवादि वाच्यत्वं श्रीरामस्यैव। ते च श्रीरामस्य शेषांशाः "स्वभक्तानां संसाररुजं द्रावयति नरकादिपातेनाभक्तान् रोदयतीति वा

एवं समता से विमुक्त प्रभावशाली हैं' इस तरह श्रीव्यासादि महर्षियों से स्मरण किया जाता है। 'चैतन्यमय अद्वितीय का' इत्यादि के द्वारा अद्वितीयत्व श्रवण से भी मूलकारण के स्वरूप में बोध कराने वाले श्रुतियों की अप्रामाणिकता की आपत्तियां उपस्थित होने से सभी उपनिषदों की भी अप्रामाणिकता उपस्थित हो जायेगी। इसलिए सर्वशब्द के द्वारा प्रतिपादन करने योग्य श्रीरामचन्द्रजी की श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों का प्रतिपादन विषय 'शिवशङ्कर रुद्र महेश्वर ईशान' आदि शब्द सामान्य शब्दार्थ कारण वाक्यगत शिव आदि का वाच्यत्व श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। अर्थात् इन शब्दों के द्वारा कारण ब्रह्म श्रीरामजी ही प्रतिपादित किये जाते हैं। और वे सभी श्रीरामचन्द्रजी के शेषांश हैं। और जो दुर्गाकाली आदि शब्द हैं वे अपने अपने वाच्यार्थ के कारणता को बोध कराते हैं, यहां मूलकारण की द्विनिष्ठता का औचित्य नहीं होने के कारण इन्हें श्रीशिव आदि की पत्नी के रूपमें नहीं स्वीकार करने वालों को श्रीसीताजी एवं श्रीरामजी में पारमार्थिक रूपसे अभेद होने के कारण और सर्वकारण श्रुति

रुद्रः 'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा ये चैकादशरुद्रा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः'' (३।२.) ''तेन समस्तत्समोऽधिकश्च ततोऽधिकश्चापि श्रुत्यादिषु न दृश्यते (६-८) इत्यादिरूपेणानन्दभाष्यकारचरणैर्व्याख्यातत्त्वान्नते रुद्रशिवादिशब्दाः श्रीशिवबोधकाः किन्तु सर्ववेदादिसामञ्जस्यात् सर्वेश्वरश्रीरामस्यैव प्रबोधका इति ध्येयम् । विशेषार्थिभिः प्रकृतोपनिषदानन्दभाष्यं कार्त्स्न्येनानुसन्धेयम् । ये च दुर्गाकालीप्रभृतयः शब्दाः स्व स्व वाच्यस्य हेतुतां गमयन्ति । मूलकारणस्य द्विनिष्ठता अनौचित्यात् शिवादिपत्नीत्वमस्वीकुर्वतः श्रीजानकीरामयोरभेदात् सर्वकारणत्वश्रुतेश्च सर्वशब्दवाच्यायां श्रीजानक्यां पर्यवसानं बोध्यम् । अन्यथा सर्वासां श्रुतीनां विसम्बादित्वेना प्रामाण्यं स्यात् । एवं सूर्यगणेशादिशब्दानामपि पर्यवसाने तथात्वद्योतनं स्वीकर्तव्यम्, वेदाविरुद्धः सिद्धान्त एकवाक्यतयैव सम्पद्यते ॥९॥

एकस्य वेदस्य वेदान्तरपरत्वं न युक्तम् । ''ब्रह्मणोरूपकल्पनेति वदन्येषूपमिषत्सु देवतान्तरवाक्यं न श्रूयते, तथाऽपि यदि कश्चित् स्वेष्टदेवताविषयकं वाक्यं कल्पयित्वोपनिषदि दर्शयेत्तदा तुल्यार्थकवाक्ययोः परस्पर विपरीतार्थकत्वेन समेषामप्रामाण्यं स्यात् प्रत्यक्षब्रह्मणोरूपकल्पनापेक्षया परो-

के आधार पर सर्वशब्द के वाच्यार्थ बनी हुई श्रीजानकीजी में पर्यवसान होता है यह समझना चाहिये । ऐसा नहीं मानने पर समस्त श्रुतिवचनों की विसम्बादिता हो जाने के कारण अप्रामाणिकता हो जायगी । इसी तरह सूर्य गणेश आदि शब्दों का भी सवसे अन्त में उसी पूर्व नियमानुसार श्रीरामचन्द्रजी का शेषांशत्व स्वीकार करना चाहिये वेद से अविरुद्ध सिद्धान्त एक वाक्यता के द्वारा ही समन्वित होते हैं ॥९॥

एक वेद का अन्य वेद परक है ऐसा प्रतिपादन करना युक्ति संगत नहीं है । 'ब्रह्मणो रूप कल्पना' यह जैसे कहा गया है उसीप्रकार अन्य उपनिषदों में देवतान्तर परक वाक्य नहीं सुना जाता है । तथापि यदि कोई अपने अभिमत देवता से सम्बन्धित वाक्य की कल्पना करके उपनिषद् में लिखकर दिखाए तो समान अर्थवाले वाक्यों में परस्पर विपरीत अर्थबोधकता होने से सभी श्रुतिस्मृति वचनों की अप्रामाणिकता सम्भावित होगी । प्रत्यक्ष ब्रह्म की उपकल्पना के अपेक्षा परोक्ष ब्रह्म की उपकल्पना की दुर्बलता होने के कारण कल्पित उपनिषद् वाक्य की कैमुतिक न्याय से अनादरणीयत्व ही है। वेद वाक्य का एक मुख्यार्थपरक होने पर कथा आदि के द्वारा

क्षस्य दुर्बलतया कल्पितस्य कैमुतिकन्यायेनानादरणीयत्वमेव । श्रुतिवाक्यस्यैकार्थपरत्वे सति तदुपबृंहणभूतेष्वितिहासपुराणवाक्येष्वपि तात्पर्यस्यैकविषयकत्वे निर्णीते श्रीरामतन्नाम्नो वाच्यवाचकव्याघातो न शङ्कनीयः, तस्य सर्ववाचककारणश्रीरामनामवाच्यत्वोपपत्तेः ।

विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकाः ।
तथाऽपि मूलमन्त्रस्ते विश्वेषां वीजमक्षयम् ॥ इति ॥ स्मरणाच्च ।

ननु सर्वा अप्युपनिषदो नारायणादीनां जगद्धेतुत्वमुपदिशन्ति । पृथक् पृथक् च जगत्कारणत्वं कथयन्ति सर्वासां स्वार्थलाभाय पार्थक्येन जगत्कारणत्वं नित्यत्वञ्च कथं नोच्यते भवता । तत्र तत्रोपनिषत्सु जगद्धेतुत्वेन नामविशेष

वेद का विस्तार स्वरूप इतिहास पुराण आदि के वाक्यों में भी एक विषयकत्व में ही तात्पर्य है ऐसा निर्णय करलेने पर श्रीराम एवं श्रीरामजी के नाम में वाच्य-वाचकभाव का व्याघात होता है ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिये । क्योंकि श्रीरामजी का सर्ववाचक कारण श्रीरामनाम से वाच्य-वाचकत्व युक्ति संगत होता है । जैसे कि-हे राम चराचर सर्वस्वरूप आपका संसार के सभी शब्द वाचक हैं । तथापि आपका मूलमन्त्र समस्त चराचर जगत् का अविनाशी बीज अर्थात् मूलकारण है इस रूपमें स्मरण किये जाने के कारण भी श्रीरामजी के सर्वावतारी वाचकत्व में सन्देह नहीं है।

यदि कहें कि सभी उपनिषद् श्रीनारायण आदि संसार की कारणता का प्रतिपादन करते हैं तो और आपत्ति होगी कि अलग-अलग संसार की कारणता को कहेंगे । समस्त उपनिषद् वाक्यों के स्वार्थ समन्वय लाभ के लिये पृथकता से संसार की अलग-अलग कारणता एवं नित्यता आपके द्वारा क्यों न कही जाय । क्योंकि उन-उन उपनिषदों में जगत्कारणता के द्वारा नाम विशेष का उच्चारण करके उसके अर्थ का पर्याय वाचकत्व का ज्ञान कराने के लिये एकवचन का निर्देश किया गया है । इससे एक की ही जगत्कारणता है यह विषय सूचित होता है। श्रुति वचनों के परस्पर विरोधिता होने पर अप्रामाणिकता का दोष उत्पन्न होगा । जैसे कि नारायण से संसार उत्पन्न होता है एवं नारायण में ही विलीन होता है । आनुष्टुभ नृसिंह से संसार उत्पन्न होता है । आनुष्टुभ नृसिंह में ही विलीन होता है इत्यादि श्रुतियों में कहा गया है । इसप्रकार किस समय किससे उत्पन्न होता है किस समय और किसमें विलीन होता है इत्यादि प्रकारक कदा कुत्र आदि शब्दों में सन्देह निवारण करने की क्षमता का

मुच्चार्य तदर्थस्य पर्यायवाचकत्वबोधनायैकवचननिर्देशः, एकस्यैव च जगत् कारणत्वं सूच्यते । परस्परविसम्वादे अप्रामाण्यापत्तेः । यथा-'नारायणादुत्पद्यते नारायणेलीयते । नृसिंहादानुष्टुभाच्चोत्पद्यते नृसिंहे अनुष्टुभे वा लीयते । कृष्णादुत्पद्यते तत्रैवलीयते' इत्यादि । एवं कदाकस्माज्जायते, कदा कुत्र च लीयते एवमादिषु कदा कुत्रादिषु सन्देहनिवारकत्वाभावेन, कस्य कोजनकः कस्य को जन्यः कं स्वजनकं स्मृत्वा मुक्तोभवेदित्यादीनामनिर्णायकत्वे वेदानामुन्मत्त प्रलपितत्त्वं स्यात् । तथा सति मुक्तये वेदभिन्नस्योपास्यज्ञानाभावात् । इत्थं स्वपरमनिश्रेयसोऽज्ञानान्निखिलस्यैव जगतो भ्रंसः स्यात् । हेतुनानेन तत्तन्नाम्नो जगत् कारणत्वश्रुतौ उपासनीयत्वं कथयतः समानधर्मत्वेनाभेदत्वं विधाय श्री विष्णुनारायणादीनामुपासनया संसारनिर्वृत्तिर्भवतीति मन्तव्यम् । श्रीविष्णुकृष्ण

अभाव होने से किसका कौन उत्पन्न करनेवाला है कौन जनक है कौन जन्य है किस अपने जनक को स्मरण करके जीवात्मा मुक्त हो सकेगा एवमादि विषयों का निर्णायक नहीं होने के कारण वेदों का उन्मत्त प्रलापिता होना सिद्ध होने लगेगा । अर्थात् वेद उन्मत्त वाक्य है यह प्रमाणित हो जायेगा । वेदों के उन्मत्त प्रलापिता सिद्ध होने पर जीवन मरण बन्धन अभाव स्वरूप मोक्ष प्राप्ति के लिये वेद से भिन्न अन्य कोई उपाय का ज्ञान नहीं होने के कारण इस तरह अपने परम निःश्रेयस का अज्ञान होने से समस्त संसार का ही पतन हो जायेगा । इस कारण से उन-उन नामों का जगत्कारणत्व श्रुति में उपासना योग्यता कहते हुए समान धर्मवाले श्रुति वचनों का परस्पर अभेद निरूपण करके विष्णु नारायण आदि की उपासना करने से संसार बन्धन की निवृत्ति होती है यह स्वीकार करना चाहिये । विष्णु कृष्ण नृसिंह आदि नामों की पर्याय वाचकता है ऐसा स्वीकार कर तात्विक रूपसे इनकी एकता है इस विषय को बोध कराने के लिये 'सृष्टि से पूर्व एक ही नारायण थे । हे सौम्य सृष्टि से पूर्वकाल में वह नित्य ही था, सृष्टि से पूर्व ब्रह्म ही एक मात्र था उसका नाम महान् यशोमय है, एक ही एवं अद्वितीय ब्रह्म है, इत्यादि श्रुति वचनों में एकवचन का उच्चारण करने के कारण उन-उन अवतारों का वाचक के रूपमें वाच्य वाचकता होता है । सर्वनाम का वाच्य नहीं है यह निर्देश करके उन-उन देवताओं का विशेष रूप ज्ञान कराने के लिये श्रीराम पद के द्वारा कहा गया श्रीराम नाम से प्रसिद्ध ब्रह्म का सभी अवतारों का अवतारित्व है, और सर्वशब्द वाच्यत्व है यह सम्यक् प्रकार से सिद्ध किया गया है ।

नृसिंहादिनाम्नां पर्यायत्वं स्वीकृत्य तात्त्विकरूपेणैकत्वं ज्ञापयितुं 'एको ह वै नारायणः' सदेव सोम्येदमग्र आसीत् ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् तस्य नाम महद्यशः, एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म, इत्यादिषु एकवचननिर्देशात् तत्तद्रूपित्वेन वाच्यत्वं भवति । सर्वनामावाच्यत्वं निर्दिश्य तस्य तस्य विशेषरूपबोधाय श्रीरामपदोक्तस्य रामाख्यस्य ब्रह्मणः सर्वावतारित्वं सर्वशब्दवाच्यत्वञ्च संसाधितम् ।

"उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूपकल्पना, सर्ववाच्यस्य वाचक इत्याद्याः श्रुतयोऽशङ्क्यते । ब्रह्मसामान्यशब्देन ज्ञातस्य परब्रह्मशब्दस्य च एकस्मिन्नर्थ रूढित्वं न युज्यते, येन सकलोपनिषदुक्तसकलकारणत्वं युज्येत । सामान्येन तत्तद् विशेषसामानाधिकरण्येनापि न वक्तुं शक्यते । यथा सामान्यः पशुशब्दः छागाश्वगर्दभाद्यर्थबोधकः सन्नपि नैकत्रार्थे रूढः । तत् कथं श्रीरामपरत्वं प्रतिपाद्य तस्य सर्वावतारित्वं सर्वोपनिषद् प्रतिपाद्यत्वञ्चोच्यते । अत्रोच्यते यथा पशुशब्दो सामान्येन गवाश्वागर्दभादिवाचकः सन्नपि 'पशुना यजेत' इति श्रुतौ छागो वा मन्त्रवर्णात्' इति सन्निहितछागविशेषवाच्ये पर्यवस्य तस्यैव यागाङ्गत्वं बोधयति ।

'उपासकों के प्रयोजन सिद्धि हेतु ब्रह्म की उपकल्पना की गयी है । सर्व शब्द वाच्य का वाचक' इत्यादि श्रुतियां शङ्का का विषय बनायी जाती हैं । ब्रह्म इस सामान्य शब्द के द्वारा ज्ञान किया गया पदार्थ का एवं परब्रह्म शब्द का एक ही अर्थ में रूपित्व (अनादि कालीन व्यवहार) कहना तर्कसंगत नहीं होता है । जिसके द्वारा सभी उपनिषदों में कहे गये सभी भगवत् तत्वों का कारणत्व युक्ति संगत हो सके । सामान्य के द्वारा तथा तत्तद् विशेष सामानाधिकरण्य के द्वारा भी सर्वकारणत्व प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है । जिसप्रकार सामान्य चतुस्पाद जन्तु विशेष वाचक पशु शब्द छाग, घोड़ा, गधा आदि अर्थों का बोधक होते हुए भी एक अर्थ विशेष में अनादि काल से रूढ नहीं है तो किस प्रकार सभी ब्रह्म शब्द का सामान्य रूपसे श्रीराम परत्व प्रतिपादन करके उसका सर्वावतारित्व एवं सभी उपनिषदों के प्रतिपाद्यत्व कहा जाता है ? इस विषय का उत्तर देते हैं कि जिस प्रकार पशु शब्द सामान्य रूपसे गो अश्व गर्दभ आदि का वाचक होने पर भी 'पशुना यजेत' इस श्रुति में 'छागो वा मन्त्रवर्णात्' इस सन्निकष्टस्थ वाक्य से छाग विशेष रूप अर्थ में निर्णीत होकर उस छाग अर्थ का ही याग की अंगता को बोध कराता है । उसी तरह ब्रह्म शब्द भी उन-उन श्रीनारायण श्रीनृसिंह आदि का विशेषण रूप तत्तत् अर्थ विशेष वाचकता साधारण में सामान्य शब्द

तथैव ब्रह्मशब्दोऽपि तत्तद् विशेषणत्वेन तत्तद्वाचकत्वसाधारण्ये सामान्यशब्दे ज्ञाते, ''ब्रह्मणोरूपकल्पना'' इतिप्रकरणसन्निहितस्य 'इति रामपदेनासौ परब्रह्मा भिधीयते' इतिश्रुत्या चरममन्त्रेण श्रीरामशब्दार्थे पर्यवस्य तस्यैव सर्वावतारित्वं बोधयति । बहूनां द्वयोर्वादिकारणत्वासङ्गतेः । एकत्र श्रीरामे पर्यवस्यान्यत्रादि कारणत्वानुपपत्तेः । श्रीनृसिंहादिशब्दसामानाधिकरण्यं त्वादिकारणत्वं न बोधयति, किन्तु हिरण्यकशिपोर्वधाय सकलजगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतुना श्रीरामेण परमकारुणिकेनानुग्रहं कुर्वता विलक्षणं श्रीनृसिंहरूपमाविष्कृतम् 'रामो वैशाख शुक्लस्य चतुर्दश्यां तिथौ खलु । श्रीमन्नृसिंहरूपः सन् हिरण्यकशिपुं व्यहन्' इतिश्रीबोधायनमतादर्शकारोक्तेः । हिरण्यकशिपोर्मनसि निरतिशयपुण्याभावात् विष्णुपुराणोक्तदिशा विष्णुस्वरूपं नाभिज्ञातमतस्तत्र ब्रह्मावतारत्वप्रकाशितम् ।

का ज्ञान हो जाने पर 'ब्रह्मणोरूपकल्पना' इस प्रकरण से सन्निकटस्थ वाक्य इस श्रीराम पद के द्वारा यह परब्रह्म कहा जाता है। इस श्रुति वचन से तथा चरम मन्त्र के द्वारा श्रीराम शब्दार्थ में निर्णीत होकर उसी का ही सर्वावतारित्व रूप अर्थ को ज्ञात कराता है। बहुतों का अथवा दो का सर्वकारणत्व होना असंगत होने से एक श्रीराम रूप अर्थ में निर्णीत होकर अन्य अर्थों में आदि कारणत्व होना तर्कसंगत नहीं है।

श्रीनृसिंह आदि शब्द की समानाधिकरणता तो आदि कारणता रूप अर्थ को नहीं बोध कराता है, किन्तु हिरण्यकशिपु नामक दैत्य का वध करने के लिए समस्त चराचर जगत् की उत्पत्ति पालन एवं संहार के कारण परमकरुणामय श्रीराम ने अनुग्रह कर 'वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को श्रीनृसिंह रूपधारण कर श्रीरामजी ने हिरण्य कशिपु का वध किया' ऐसा शास्त्र प्रमाण है अतः अवतारी पुरुष सर्वेश्वर श्रीरामजी ही हैं अन्य नहीं लेकिन हिरण्य कशिपु के मन में निरतिशय पुण्य का अभाव होने से विष्णु पुराण के कथनानुसार विष्णु स्वरूप से पूर्ण परिचित नहीं हुआ। किन्तु श्रीनृसिंह में ब्रह्मावतारत्व प्रकाशित किया गया है। इसी विषय वस्तु को पहले सुवर्ण आभूषणादि उदाहरण के द्वारा प्रकाशित किया गया है।

जो प्रतिवादीगण इस सिद्धान्त को विशेष रूपमें विना जाने ही 'जिससे संसार के चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं। और उत्पन्न होकर जिससे जीवित रहते हैं, एवं जिसमें विलीन होते हैं वह ब्रह्म हैं। जिससे प्राणियों का जन्म आदी होता है वह ब्रह्म है' इत्यादि वेदवचनों के तात्पर्य होने के कारण संसार के उत्पत्ति स्थिति विलय आदि

तदेवपूर्वं सुवर्णादिदृष्टान्तेन प्रकाशितम् । ये तु सिद्धान्तमिममविज्ञाय 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् ब्रह्म' 'जन्माद्यस्य यतः' 'सत्यं ज्ञानमन्तं ब्रह्म' इत्यादिश्रुतिमुदाहृत्य जगज्जन्मादि हेतुत्वादिभिः तस्य तस्य ब्रह्मत्वसाधनपुरस्सरमादिकारणत्वं व्यवस्थापयन्ति, तन्न पूर्वोक्तहेतूना जगज्जन्मादिहेतुना चान्यतरस्य तथात्वेनोपपादने तेनैव हेतुना दृष्टान्तेन च अन्यस्यापि तथात्वसिद्धौ ब्रह्मणो बाहुल्येन कारणवाचकत्वासिद्धेः । एतन्नानावताराणां निधानमित्यादिभिः श्रीनारायणावतारित्वविषयकस्य रौद्यादि द्वादशावतारविषयकत्वेन दूषितत्वात् । एष नारायणसाक्षादित्यादिभिः समाहि-तत्वाच्च नारायणनाभिपङ्कजात् अब्जयोनेरुत्पत्तिश्रुतेः क्षीरसागरशायिनारायण स्य तु इतिहासपुराणादौ अनिरुद्धस्य शङ्करस्य वा अवतारत्वेन प्रतिपादनात् । तस्य वसुदेवसुतस्य श्रीकृष्णस्य कारणत्वानुपपत्तेः । उच्यते । नारायणश्रुतिः न स्वार्थपरा किन्तु श्रीकृष्णगतप्रातीतिकबुद्धिनिरासाय । 'एकोऽपि सन् बहुधा यो

की कारणता आदि से उन-उन अवतारों का ब्रह्मत्व साधन पूर्वक आदि कारणता की व्यवस्था करते हैं । उनकी यह आदि कारणत्व व्यवस्था युक्ति संगत नहीं है पूर्व प्रतिपादित कारणों से और संसार के उत्पत्ति स्थिति आदि की कारणता से दो में से किसी एक की आदि कारणता प्रतिपादित करने पर उसी हेतु के द्वारा और उसी दृष्टान्त से दूसरे की भी बहुमतत्व एवं आदि कारणता सिद्ध हो जाने पर ब्रह्म की बहुलता हो जाने से कारण वाचकता की सिद्धि नहीं हो सकेगी । 'यह अनेक प्रकार के अवतारों का निधान है' इत्यादि नारायण के अवतारित्व विषयक रुद्र आदि के द्वारा उपासनीय बराह अवतारों के विषय से सम्बन्धित होने के कारण पहले ही इस सिद्धान्त का खण्डन किया जा चुका है, तथा 'क्षीरसागर में सोने वाले ये साक्षात् नारायण हैं' इत्यादि वचनों से समाधान किया जा चुका है । भगवान् नारायण के नाभि कमल से कमल योनि ब्रह्मा की उत्पत्ति सुने जाने के कारण क्षीर सागर में शयन करने वाले श्रीनारायणजी का तो इतिहास पुराण आदि में अनिरुद्ध का अथवा शंकर का अवतार रूपमें निरूपण किया जा चुका है श्रीनारायण का वसुदेव तनय श्रीकृष्णजी का कारणत्व युक्ति संगत नहीं होता है यह कहा जाता है क्योंकि नारायण श्रुति स्वार्थ परक नहीं है अपितु वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण में जो प्रतीति जनित मानवता बुद्धि है, उसका निराकरण के लिए 'एक होते हुए भी जो अनन्त प्रकार से प्रतीत होता है । पहले

विभाति' 'एको ह वै नारायण आसीत्' इत्याद्युक्तेः श्रीकृष्णानुवादेन च तस्यैवावतारित्वम् । श्रीरामचन्द्रवत् इतिवदतां समाधानाय उच्यते । वेदविरुद्धस्य इतिहासपुराणादिवचनस्य स्वार्थान्तरपरत्वेन, प्रमाणान्तरनिरपेक्षत्वेन अपौरुषेयस्य वेदस्य वाक्यान्तरविरोधे अर्थान्तरपरत्वस्वीकारात् । वेदवाक्यानामपि तथात्वे सामान्यविशेषभावादिभिः अन्वयात् । श्रीकृष्णस्य च वेदे अवतारित्वा श्रवणात् श्रीकृष्णकारणत्वेन श्रीनारायणस्यैवावतारित्वं बोध्यम्, द्विनिष्ठत्वानुपपत्या श्रीकृष्णनाम्नः अपि श्रीरामपरत्वमुपपाद्यते । किन्तु नहि श्रीकृष्णविषयकत्वेन वेदे कुत्रापि कारणत्वं निश्चीयते । सर्वशाखाप्रत्ययन्यायस्यापि श्रीनारायण नामानुसारित्वमेव । अतः उक्तैर्हेतुभिः 'एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति' इत्यादिश्रुतयः 'महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः । पुरुषान्नपरः कश्चित्'

एक मात्र नारायण ही था' इत्यादि श्रुतियों के द्वारा और श्रीकृष्ण के अनुवाद के द्वारा उसी को क्यों नहीं अवतारित्व मान लिया जाय जिस प्रकार की श्रीरामचन्द्रजी को अवतारी मानते हैं । इस पक्ष का निरूपण करने वाले विद्वानों के समाधान के लिए कहा जाता है । जो वेद के विरुद्ध इतिहास पुराण आदि के वचनों का स्वार्थ से भिन्न अर्थ परकता के रूपमें वचन है तथा जिसे अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं है ऐसे अपौरुषेय वेद के अन्य वाक्यों के साथ परस्पर विरोध होने पर अर्थान्तर भी इसी प्रकार होने की स्थिति में सामान्य विशेष भाव से अन्वय किये जाने से, और वेद में श्रीकृष्ण का अवतारी के स्वरूप में नहीं सुने जाने से, श्रीकृष्ण का कारण होने से श्रीनारायण का ही अवतारित्व है यह समझना चाहिये । दो में होने वाली सर्वकारणता युक्ति संगत नहीं होने से श्रीकृष्ण नाम का भी श्रीराम परत्व युक्ति संगत है वेद में कहीं पर भी श्रीकृष्ण को विषय बनाकर श्रीकृष्ण रूपमें कारणता का निश्चय नहीं किया जाता है । सर्वशाखा प्रत्यय न्याय का भी श्रीनारायण का अनुसरण करनेवाला है यह निर्णय है । अत एव पूर्व में कहे गये कारणों से 'एक होते हुए भी जो अगणित स्वरूप में प्रतीत होते हैं' इत्यादि श्रुतियां, महान् (बुद्धि तत्व से ऊपर अव्यक्त प्रकृति है, प्रकृति से उत्कृष्ट पुरुष परमात्मा) है । परमात्मा से उत्कृष्ट कोई भी तत्व नहीं है, सर्वोत्कृष्ट तत्व परमात्मा ही है' इत्यादि कथनों के द्वारा बुद्धि तत्व का प्रकृति में विलय होता है, प्रकृति का अविनाशी तत्व में विलय होता है । अक्षर तत्व का अन्धकार में विलय होता है । एवं अन्धकार परमेश्वर में एकरूपता को प्राप्त

इत्यादिभिरपि महानव्यक्तेलीयते अव्यक्तमक्षरे अक्षरं तमसि तमः परेदेवे एकी भवति' इत्यादिवचनमवलम्ब्य 'यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः । अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः'' इत्यादिस्मृतयोऽपि नावतारित्व प्रतिपादने क्षमाः श्रीनारायणावतारित्व, ब्रह्मावतारित्वश्रुतिविरोधेन अर्थान्तर परत्वात् । सर्वेषां ब्रह्मावतारत्वे कस्याप्युपास्यस्य विग्रहस्य ब्रह्मत्वानुपपत्तौ एकवचनश्रुतेरपि असंगतत्वं स्यात् । अतो नारायणस्य जलजन्तुविषयक बुद्धिनिरासाय ब्रह्मशब्दविशेषित्वम् । ब्रह्मशब्दस्य नारायणादुत्कृष्टत्वबोधात् । अवतारत्वावच्छिन्नानां ब्रह्मावतारविषयत्वेन बलीयस्त्वात् । द्वयोः श्रुत्योर्मुख्यार्थाङ्गीकारे विप्रलिप्सादोषापत्तेस्तस्यानुवादकत्वमिति बोध्यम् ॥१०॥

सर्वासु नारायणोपनिषत्सु क्षीरशायित्वलिङ्गश्रुतेः ब्रह्मयोनित्वं जगदोत प्रोतत्वं च वर्ण्यते तेन तद्भिन्नपरत्वं नोपपद्यते । तद्विधस्य नारायणशब्दस्य

होता है' इत्यादि वचनों को आश्रय बनाकर-जिस कारण में श्रीकृष्ण विनाशी तत्व रूप क्षर से ऊपर हूँ, एवं अविनाशी तत्व अक्षर से भी ऊपर हूँ, इसलिये मैं लोक व्यवहार एवं वेद व्यवहार में पुरुषोत्तम स्वरूप में प्रसिद्ध हूँ' इत्यादि स्मृति ग्रन्थ भी श्रीकृष्ण को अवतारित्व निरूपण करने में सक्षम नहीं है । श्रीकृष्ण का अवतारी श्रीनारायण को बताने वाली, एवं ब्रह्म को अवतारी निरूपण करनेवाली श्रुतियों के साथ विरोध होने के कारण अन्यार्थ बोधन परक है यह कहा जाता है । सभी विष्णु के अवतारों को ब्रह्म का अवतारत्व स्वीकार करलेने पर किसी भी उपासनीय देवता के शरीर का ब्रह्मत्व नहीं युक्ति संगत होने पर, वेदों में सर्वत्र एकवचन निर्देश श्रवण का भी असंगतत्व होने लगेगा । इसलिये नारायण शब्द का जलीय प्राणी विशेष विषयक बुद्धि का निवारण करने के लिये ब्रह्म शब्द द्वारा विशेषित किया गया है । ब्रह्म शब्द को नारायण के अपेक्षा उत्कृष्ट होने के कारण उसमें श्रेष्ठता के ज्ञान होने से । समस्त अवतारत्व से युक्त भगवत् तत्त्वों का ब्रह्म का अवतारत्व विषय होने के कारण ब्रह्म का श्रेष्ठत्व है । दोनों ही श्रुतियों का मुख्यार्थता स्वीकार करने पर प्रतारित करने की इच्छा रूप दोष का आरोप होता है, इसलिये उसका अनुवादकत्व है यह जानना चाहिये ॥१०॥

समस्त श्रीनारायण सम्बन्धित उपनिषदों में क्षीरसागर शायित्व रूप हेतु सुने जाने के कारण ब्रह्म कारण एवं चराचर जगत् में पूर्ण रूपसे ओत प्रोत हैं ऐसा वर्णन

ब्रह्मसमाभ्यधिकानुपपत्त्या ब्रह्मविरोधेन सर्वावतारित्वानुपपत्तेः । केचनशैवाः कथयन्ति यत् नारायणोपनिषत्सु ब्रह्मरुद्राद्यशेषजगदुत्पत्यादिकारणत्वं यस्य श्रूयते, यस्य च श्रीकृष्णो मुख्यावतारः मत्स्यवराहनृसिंहादयश्चावताराः कथ्यन्ते स हिरण्यगर्भविराडाद्यभिधेयः । तस्य पृथक्त्वेनाश्रवणात् यथा बृहदारण्यके हिरण्यगर्भाङ्गेभ्यो जगदुत्पत्तिर्वर्ण्यते । नारायणोपनिषदि ब्रह्मादीनामुत्पत्तिः । पुराणादिषु च पुरुषशब्दाभिधेयक्षीरसागरशायिनोनाभिपङ्कजाद् ब्रह्मोत्पत्तिस्ततश्च सर्वजगदुत्पत्तिः । यथा-

"जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभिः ।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥

यस्य नाभ्यम्बुजादासीद् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितोलोकविस्तरः ॥

किया जाता है । इस प्रकार के कारणों के होने के कारण श्रीनारायणजी स्वभिन्न परक हैं ऐसा कहना युक्ति संगत नहीं होता है । इसतरह के गुणों से सम्पन्न नारायण शब्द का ब्रह्म के समान अथवा ब्रह्म से अधिक कहना तर्क सिद्ध नहीं होने के कारण, ब्रह्म के समानता आदि का विरोध होने से श्रीनारायण का सर्वावतारित्व निरूपण युक्ति सिद्ध नहीं होता है ।

कतिपय शैवगण ऐसा कहते हैं कि-नारायण सम्बन्धित उपनिषदों में ब्रह्म रुद्र आदि सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति पालन आदि की कारणता जिसकी सुनी जाती है । और जिस श्रीनारायण का श्रीकृष्ण प्रधान अवतार है । और मत्स्य वराह नृसिंह आदि जिस श्रीनारायण के अवतार कहे जाते हैं । वह श्रीनारायण हिरण्य गर्भ विराट् आदि शब्दों के द्वारा प्रतिपादन करने योग्य हैं । क्योंकि इसमें उस श्रीनारायणजी का भिन्न रूपसे शास्त्रों में नहीं सुना जाना हेतु है । जैसे बृहदारण्यक उपनिषद् में श्रीनारायण से ब्रह्मा आदि का उत्पत्ति वर्णन है । और पुराणेतिहास आदि में पुरुष शब्द के द्वारा प्रतिपादनीय क्षीरसागर में शयन करनेवाले श्रीनारायणजी के नाभि कमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई, और ब्रह्माजी से समस्त संसार का प्रादुर्भाव हुआ ।

जैसे कि-भगवान् श्रीनारायण बुद्धि तत्त्व आदि के सहित पुरुष सम्बन्धित स्वरूप को धारण किये । इस चराचर स्वरूप दृश्यमान संसार की रचना करने की

यस्मादेव समुद्भूता देवतिर्यङ्नरादयः ।
एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ॥"

इतिनानावतारहेतुत्वञ्चोच्यते । अन्यत्राप्युपनिषदन्ते कृष्णस्यावतारित्वं, लोकानामोतप्रोतत्वं चोच्यते । 'यच्चकिञ्चिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा । अन्तर्बहिश्च तत् सर्वं व्याप्यनारायणः स्थितः' इतिब्रह्माण्डान्तर्बहिर्व्यापित्वञ्च नारायणस्य, ब्रह्माण्डस्यान्तर्बहिर्योव्याप्नोति स विराडिति व्युत्पत्याचान्तर्बहिर्व्यापित्वादोतप्रोतत्वं कथ्यते । किञ्च बृहन्नारायणे-सहस्त्रशीर्षं देवं विश्वसम्भवं, विश्वं नारायणं देवमक्षरं परमं प्रभुम् । विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं हरिम् । विश्वमेवेदं पुरुषस्तद्विश्वमुपजीवति' इत्यादिषु सहस्त्रशीर्षत्वविश्वसम्भवत्वादि हेतुभिः, नारायणपरब्रह्मेत्यादिब्रह्मविशेषणेन च, मत्स्यादिजलजन्त्वेतरनिवर्तनेन सह क्षीरसागरशायिनः परब्रह्मावतारत्वं ज्ञाप्यते । नारायणशब्दः परब्रह्मावतारत्व बोधनायैव ब्रह्मशब्देन विशेषितः । तस्यैव नृसिंहरूपित्वं, तदुक्तं नृसिंहोपनिषदि- 'क्षीरोदार्णवशायिनं नृकेसरिणमिति ।

न च-आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
ताः तस्य ह्ययनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।

इच्छा से वह सोलह कलाये हुई हैं जिसमें ऐसे स्वरूप से सम्पन्न हो गये । जिस भगवान् श्रीनारायण के नाभि स्वरूप कमल से इस संसार के पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुये थे । जिस लोकपितामह ब्रह्मा के अवयव संस्थानों से इस चराचर दृश्य जगत् की संरचना की गयी । जिससे ही देवता पशु पक्षी एवं मनुष्य आदि समुत्पन्न हुए। यही विभिन्न प्रकार के अनन्त अवतारों का आगार एवं अविनाशी बृद्धि ह्रासादि शून्य बीज अर्थात् हेतु है' इसप्रकार विभिन्न प्रकार के अवतारों का पुरुष स्वरूप नारायण में हेतुत्व निरूपण किया गया है । अन्यत्र भी दूसरे उपनिषदों में श्रीकृष्ण को अवतारित्व बताया गया है । सभी लोकों में ओत प्रोत है इत्याद्दि से व्यापकता कही जाती है । इस भौतिक जगत् में जो कोई भी देखा जाता है, अथवा सुना जाता है, भीतर बाहर उन सभी तत्वों में व्याप्त होकर भगवान् श्रीनारायण विद्यमान हैं, इत्यादि कथन के द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड के अन्दर श्रीनारायण का व्यापक रूपसे स्थित होना कहा जाता है। ब्रह्माण्ड के आन्तरिक एवं बाह्य भाग को जो व्याप्त करता है वह विराट् कहा जाता है । इस व्युत्पत्ति के अनुसार भीतर बाहर में व्यापक रूपसे रहने से ब्रह्माण्ड

नराज्जातानि तत्वानि नारायणविदुर्बुधाः ॥

तस्य तान्ययनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥

इत्यादिभिः नरावतारत्वश्रवणाद् ब्रह्मश्रुतेर्बलीयत्वं, श्रुतिलिङ्गवाक्य प्रकरणस्थानसमाख्यानां पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षादिति लिङ्गात् श्रुतेर्बली यस्त्वम्। तत्राप्युपस्थितानां देवानां शङ्खचक्रादिधारित्वश्रवणात्, 'उपासकानां कार्यार्थमिति ब्रह्मरूपस्य देवतानामवतारत्वबोधात्। श्रीरामाख्यब्रह्मणोऽवतारेषु श्रीनृसिंहकृष्णादीनामन्तर्गतत्वाच्च केवलश्रुतेर्बलीयस्त्वं बुध्यते। पुनश्च श्रीनारा यणशब्दबोध्ये परमेश्वरे ब्रह्मसापेक्षत्वदर्शनेन ब्रह्मशब्दस्य च तथा अदर्शनेन तत्रोत्कृष्टत्वमवगम्यते। यद्यपि क्षीरसागरशायित्वेन मत्स्यादीनां बोधः, तथाप्य-वतारकारणत्वेनोक्तेर्भगवद् विग्रहेषु न वास्तविको भेदो विद्यते। श्रीनारायणस्य में ओत प्रोत होना कहा जाता है। और भी बृहन्नारायणोपनिषद् में अगणित शिर धारण करनेवाले समस्त चराचर जगत् का उत्पत्ति कारण सर्वस्वरूप भगवान् श्रीनारायण अविनाशी देव परमप्रभु सभी से पर उत्कृष्ट नित्य सर्व जगत् स्वरूप श्रीनारायण सभी पापों को हरण करने वाले हरि को संसार के समस्त प्राणी उनको आश्रय बनाते हैं, एवं सारे संसार के वे उपजीव्य हैं। इत्यादि श्रुतियों में सहस्त्र शिर धारी एवं समस्त संसार का उत्पत्ति कारण होना आदि वर्णित कारणों से तथा 'नारायण परं ब्रह्म' इस ब्रह्म विशेषण से मत्स्य आदि अन्य जल जन्तु आदि अर्थों का निवारण के साथ-साथ क्षीर सागर में शयन करनेवाले श्रीनारायण का ब्रह्मावतारत्व है यह अर्थ बोध कराया जाता है। नारायण शब्द परब्रह्म के अवतारत्व रूप अर्थ का बोध कराने के लिये ही 'ब्रह्म' इस शब्द से विशेषण युक्त किया गया है। और नारायण का ही नृसिंह आदि का रूपित्व है यही विषय नृसिंहोपनिषद् में कहा गया है 'क्षीरसागर के अन्दर शयन करनेवाले नृसिंह को' इत्यादि रूपसे कहा गया है।

यदि ऐसा कहें कि जल को नारा कहा गया है जल ही नरों को उत्पन्न करनेवाले हैं, जल ही नर का अयन है इस कारण से नारायण कहा गया है नर से उत्पन्न होने वाले सभी तत्वों को विद्वान् लोग नारायण कहते हैं। नर के जल से उत्पन्न होने वाले तत्व अयन है इसलिये इसे नारायण कहते हैं। इत्यादि वचनों के आधार पर नर का अवतारत्व श्रवण के कारण इसकी अपेक्षा ब्रह्म श्रुति को बलवान् होना ज्ञात होता है। श्रुति, लिङ्ग, वाक्य, प्रकरण, स्थान तथा समाख्या का उत्तरोत्तर दुर्बलत्व होता है, अर्थ

नानावतारकारणत्वमपि श्रुतावुक्तम् 'अवताराह्यसंख्येया हरेः' इतिहरिशब्द प्रयोगाच्च, 'नराज्जातानि तत्वानि नाराणीति बुधा' इतिस्मृत्या नरावतारत्वाव गमाच्च, 'एको ह वै नारायण आसीन्न ब्रह्मा नेशानो' इत्यादिभिः पूर्वमेकस्यैव नरस्य स्थित्यवगमाच्च नरे प्रतीतौ प्रकृतिजीवौ तयोरयनमधिष्ठानमिति नारायण निर्वचनेन नरनारायणयोरैक्यात् कारणकार्यत्ववचनं न युज्यते इति यदाहुस्तन्न नारायणनाम्नः नराधिष्ठानत्वरूपस्य च पश्चाद् भावित्वेनोत्तरावस्थाबोधात् नर-वाच्यकार्यत्वोपपत्तेः ।

की दूरी होने के कारण इस नियम के अनुसार लिङ्ग (हेतु) की अपेक्षा श्रुति की बलवत्ता है । उन नामों से उपस्थित देवताओं का शङ्ख चक्र गदा आदि धारण करनेवाला सुने जाने से भी ब्रह्मावतारत्व है । 'उपासकानां कार्यार्थम्' इत्यादि श्रुति के द्वारा भी ब्रह्म स्वरूप का देवताओं का अवतार ज्ञान कराया जाता है, श्रीराम नामक ब्रह्म के अवतारों में श्रीनृसिंह कृष्ण आदि का समावेश हो जाने से भी केवल श्रुति बलवत्ता समझी जाती है । और भी श्रीनारायण शब्द के द्वारा ज्ञातव्य परमेश्वर में ब्रह्म सापेक्षत्व देखे जाने के कारण और ब्रह्म शब्द का उसतरह नारायण सापेक्षत्व नहीं देखे जाने के कारण ब्रह्म में नारायण के अपेक्षा उत्कृष्टत्व का बोध होता है । श्रीनारायणापेक्षा ब्रह्म में उत्कृष्टत्व ज्ञान होने पर भी यद्यपि क्षीरशायित्व इस विशेषण से मत्स्य आदि का बोध होता है । फिर भी अवतार का कारण के स्वरूप में कहे जाने के कारण जल जन्त्वादि निराकरण पूर्वक भगवद् बुद्धि होती है । क्योंकि विभिन्न अवतारों के भगवद् विग्रहों में वास्तविक भेद नहीं है । क्योंकि श्रीनारायणजी का अनेकानेक अवतारों का कारण होना अनेक श्रुतियों में कहा गया है । सत्वों के निधान श्रीहरि के संख्यातीत अवतार कहे गये हैं । इस तरह हरि शब्द का प्रयोग करने से भी अवतारत्व है । 'नर से उत्पन्न हुए तत्वों को नार कहा जाता है' ऐसा ज्ञानी लोग कहे हैं । इस स्मृति वचन के द्वारा नारायण में नरावतारत्व का भी बोध होता है । 'सृष्टि पूर्वावस्था में निश्चित रूपसे एकमात्र नारायण ही थे, न ब्रह्माजी थे न शंकरजी थे' इत्यादि श्रुतियों के द्वारा सृष्टि से पूर्वावस्था में एकमात्र श्रीनारायण की ही स्थिति बोध होने से भी नारायण का अवतारत्व है । नर में ज्ञात किये गये प्रकृति और जीव तत्व, इन दोनों तत्वों का अधिष्ठान रूप आश्रय होने से नारायण शब्द का निर्वचन के द्वारा नर एवं नारायण इन दोनों में एकता का बोध होने के कारण कारणत्व वचन

केचन तु ईयतेऽनेनेत्ययनं, यन्त्यस्मिन्नित्ययनं, ईयते प्राप्यते यत् तदयनम् नराणां जीवानामयनं प्रापकः प्राप्यश्च आधारश्च यः स नारायण इति निर्वचनेन क्षीरार्णवशायिभिन्नविग्रहवन्तं प्रतिपादयन्ति, तादृशव्युत्पत्तेः श्रुतिषु स्मृतिषु चादर्शनेनाप्रामाणिकम् । 'एको ह वै नारायणः श्रुतिपूर्वकालीन आसीदित्येव प्रामाणिकम् । तस्यैव क्षीरसागरशायिन उपेयत्वं प्राप्यत्वं प्रापकत्वञ्च गोपालनारायणमहोपनिषदादिभिरवगम्यते । शिष्टैर्नारायणस्योपास्यत्वमङ्गीकृतम् । शिष्टाचारानुमितस्य स्मृतिपरिकल्पितश्रुतेश्च प्रमाणेन परत्वं गम्यते ।

एवं कार्यत्व वचन तर्कसंगत नहीं होता है । ऐसा जो कोई प्रतिपक्षी कहे हैं, उनका यह कथन संगत नहीं है, नारायण नाम का और नराधिष्ठानत्व स्वरूप पूर्व पश्चाद् भावित्व होने के कारण उत्तर कालीन परिस्थिति का ज्ञान होता है । तथा इससे नर शब्द वाच्य अर्थ का कार्यत्व बोध की सिद्धि होती है ।

कतिपय विद्वान् तो ऐसा कहते हैं कि जो प्राप्त किया जाता है उसे अयन कहते हैं, अथवा जिस में समावेशित होते हैं उसे अयन कहते हैं, या जो प्राप्त होता है उसे अयन कहते हैं नर शब्द प्रतिपाद्य जीवों का अयन अर्थात् प्राप्त कराने वाला और प्राप्त करने योग्य तथा जो आधार भूत पदार्थ है वह नारायण है इसप्रकार का शब्द निर्वचन के द्वारा क्षीर सागर में शयन करनेवाले से अतिरिक्त शरीर धारी अर्थ वाले को नारायण बतलाते हैं । लेकिन इस तरह की व्युत्पत्ति का वेदों में अथवा धर्मशास्त्रों में श्रवण अथवा दर्शन नहीं होने से प्रामाणिकता नहीं है 'सृष्टि के पूर्वावस्था में एकमात्र नारायण थे' यह श्रुति पूर्व काल में होनेवाला था इसी अर्थ विशेष को बोध कराती हुई प्रामाणिक है । उसी क्षीरसागर शायी विष्णु का उपेयत्व प्राप्यत्व और प्रापकत्व है, ऐसा गोपालतापनीय नारायण तथा महोपनिषद् आदि उपनिषद् के द्वारा तात्पर्य जाना जाता है । प्रामाणिक शिष्ट आचार्यों के द्वारा नारायण की उपासनीयता भी स्वीकार की गयी है । शिष्टाचार कें माध्यम से अनुमान किया गया, एवं स्मृतियों के स्वरूप में परिकल्पित श्रुति वचन के प्रमाण द्वारा श्रीनारायण का परत्व बोध होता है ।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में-कारण ब्रह्म क्या है । एवं कहां से उत्पन्न हुए हैं इत्यादि श्रुतियों के द्वारा कारण वाचक से प्रारम्भ करके पश्चात् 'जिस समय में केवल अज्ञान जनित अन्धकार था उस समय दिन भी नहीं था, रात भी नहीं थी । न सत् पदार्थ था न असत् पदार्थ था केवल एकमात्र शिव ही था, शिव से अतिरिक्त कुछ भी नहीं

श्वेताश्वतरे-'किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता' इतिकारणवाचकेनारभ्य पश्चात्-'यदा तमस्तत्र दिवा न रात्रिर्नसन्नचासच्छिव एव केवलः' इतिशिवस्य कारणवाचकत्वश्रुत्या ब्रह्मशिवयोः पर्यायत्वं ज्ञायते। ''सर्वव्यापी च भगवान् तस्मात् सर्वगतः शिवः'' इतिसर्वगतत्वं च श्रूयते । तस्य सर्वशरीरित्वेन तत् समाभ्यधिकनिषेधश्रवणेन च तस्य ब्रह्मत्वमिति चेन्मैवम् । तस्य सृष्ट्यादि कारणवाचकत्वबोधेऽपि नावतारित्वम् । तत्र सर्वशब्दवाच्याश्रुतेश्च श्रीनारा-यणवासुदेवमत्स्यकूर्मकृष्णादिरूपित्वाश्रवणाच्च । चिदचिद्वाचकवाच्यत्वसि-द्धावप्यवतारिवाचकत्वानुपपत्तेश्च ।

तत्र तत्रोपनिषत्सु 'नारायणः परंब्रह्म, नृसिंहोब्रह्मेत्येवं समानाधिकरण श्रवणेन, तेषां सर्वं व्यापित्वश्रुतेश्च शिवादिसर्वाङ्गीणत्वेन न युज्यते, जग-ज्जन्मादिहेतुत्वेऽपि अवतारकारणत्वाश्रुतेः । सर्वेषां भगवद् विग्रहाणां वस्तुत ऐक्यात् तत्तनिष्ठगुणादिष्वाधिक्यद्वारेणैवकारणत्वमवतारित्वं च निर्णीयते। सुवर्णन्यायेनैव तस्यावताराभवन्तीति श्रीविष्णुनारायणवासुदेवमत्स्यकूर्मकृष्ण शिवरुद्रादिरूपित्वं च यस्य श्रूयते । यन्मन्त्रस्य ब्रह्मात्मकत्वं सच्चिदानन्दाख्यत्वं

था' इत्यादि कथन के द्वारा शिव का कारण वाचकत्व श्रुति के द्वारा ब्रह्म एवं शिव पदार्थों में पर्याय वाचकत्व का ज्ञान होता है। और 'सभी में व्यापक रूपसे स्थित रहने वाले भगवान् शिव ही हैं, अतः शिव सर्वगत हैं' इस वचन के द्वारा शिव का सर्वगतत्व भी सुना जाता है। उस श्वेताश्वतर उपनिषद् प्रतिपाद्य शिव का सभी भगवद् विग्रहों का शरीरी के स्वरूप में और उनके समान अथवा उनसे अधिक होने के वचन का निषेध सुने जाने के कारण उस श्रीशिव में ब्रह्मत्व है यदि ऐसा कहें तो इसप्रकार नहीं कहा जा सकता है। उस श्रीशिव में सृष्टि आदि के कारण वाचकत्व का ज्ञान होने पर भी अवतारित्व का बोध नहीं होता है, इसलिये उसे ब्रह्म नहीं कह सकते हैं। और श्रीशिव में सर्वशब्द वाच्यत्व का भी श्रवण नहीं होता है। श्रीनारायण वासुदेव मत्स्य कूर्म और कृष्ण आदि का शिव में रूपित्व भी कहीं नहीं सुना जाता है। इसलिये शिव में चिदचिद् वाचक वाच्यत्व की सिद्धि हो जाने पर भी अवतार वाचकत्व युक्तिसंगत नहीं होता है।

जगह-जगह पर उन-उन उपनिषदों में-'नारायण परब्रह्म हैं, नृसिंह ब्रह्म हैं' इत्यादि में समानाधिकरण सुने जाने के कारण श्रीनारायण नृसिंह वामन वराह मत्स्य

प्रणवहेतुत्वं, रुद्रोपदेश्यत्वं सर्वपापप्रणाशकत्वं सर्वाभयप्रदातृत्वं स्वशरणागतस्वधामप्रापकत्वमकारादिमन्त्राश्रयत्वादिकत्वञ्च यस्मिन्नस्ति तस्यैव सर्वशरण्यस्य 'शरण्यं शरणञ्च त्वमाहुर्दिव्यामहर्षय:' इतिश्रीमद्रामायणोक्तेः 'सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तम:' इत्याद्यागमप्रामाण्याच्चसर्वेश्वरश्रीरामस्यैवावतारित्वं प्रापकत्वं प्राप्यत्वञ्च युज्यते । सर्वं तच्छ्रीरामस्य तन्मन्त्रस्य च श्रीरामतापनीयोपनिषदि श्रूयते वेदार्थज्ञैरूपपद्यते च ॥११॥

कृष्ण आदि का सर्वव्यापित्व बोधक श्रुति से भी शिव रुद्र आदि का सर्वाङ्गीणत्व रूपमें उपपादन युक्ति संगत नहीं है। संसार के उत्पत्ति स्थिति आदि की कारणता होने पर भी अवतारों के कारणता का शिव आदि में कहीं नहीं सुने जाने के कारण शिव में ब्रह्मत्व नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि श्रीनारायण नृसिंह मत्स्य कूर्म वराह कृष्ण वामन आदि समस्त भगवत् विग्रहों में वास्तविक रूपमें एकरूपता स्वीकार की गयी है। इसलिये तत्तद् अवतारों में होने वाले देवताओं गुण आदि में अधिकता के द्वारा ही अवतारों की कारणता का ज्ञान किया जाता है। गुणों की अधिकता से ही अवतारित्व का निर्णय करते हैं। जैसे एक ही सुवर्ण से कटक कुण्डलादि अनन्त आभूषणों की रचना की जाती है, लेकिन सुवर्णत्व सभी में रहता है, इसी न्याय से ही उस अवतारी के अवतार हुआ करते हैं। इसलिये विष्णु नारायण वासुदेव मत्स्य कृष्णादि एवं शिव रुद्रादि का रूपित्व जिसके विषय में सुना जाता है, जिसके मन्त्र की परब्रह्म स्वरूपता है, एवं सत् चित् और आनन्द नामता है 'रामानाम्नः समुत्पन्नः प्रणवोमोक्षदायकः' इस आगम वचनानुसार जो ओ३ँकार का कारण स्वरूप है, और जिसके मन्त्र का रुद्र उपदेश देते हैं तथा जिसमें अनन्त जन्म जन्मार्जित पाप समूह का पूर्ण विनाशक सामर्थ्य है और जिनमें सभी को अभय प्रदान करने की योग्यता है और जिन में अपने शरण में आये हुए भक्तों को अपने परम धाम श्रीसाकेत में प्रापक शक्ति है एवं अकारादि सभी मन्त्रों का आश्रयत्व भी जिनमें है तथैव महर्षियों ने जिन श्रीरामजी में ही शरणागत वत्सलता का निरूपण किया है और सभी अवतारों के अवतारी सर्वेश श्रीरघुनाथजी हैं ऐसा आगम में वर्णन है, उन्हीं का अवतारित्व प्रापकत्व एवं प्राप्यत्व भी है। ऐसा श्रीरामतापनीय उपनिषद् में सुना एवं देखा जाता है, तथा वेदार्थ तत्त्व ज्ञानियों के द्वारा ऐसा ही स्वीकार भी किया जाता है ॥११॥

नारायणं जगन्नाथमभिरामं जगत्पतिम् ।
कविं पुराणं वागीशं रामं दशरथात्मजम् ॥ इत्यारभ्य
सर्वेषां त्वं परंब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि ।
त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव पुरुषोत्तमः ।
त्वमेव तारकं ब्रह्म त्वत्तोऽन्यन्नैव किंचन ।
रामः सत्यं परंब्रह्म रामात् किञ्चिन्न विद्यते ।

'नारायण जगन्नाथ अभिराम जगत् पति कवि पुराण, वागीश राम आदि दशरथ तनय को' यहां से इन वचनों के द्वारा प्रारम्भ करके सभी का आप परात्पर ब्रह्म हो आप से ही बना हुआ दृश्यादृश्य समस्त लोक हैं । आप अविनाशी उत्पत्ति ह्रास आदि से रहित दिव्य सर्वोत्कृष्ट प्रकाश हो, आप ही पुरुषोत्तम हो, आप ही तारक ब्रह्म हो, भूत भविष्य वर्तमान में आप से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही सत्य परब्रह्म हैं, श्रीरामजी से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, सवकुछ श्रीरामजी ही हैं । हृदय का विमान रूप में शास्त्रों में प्रतिपादित श्रीराम नाम से कहा जाने वाले ब्रह्म' इत्यादि निरूपण पर्यन्त कथन के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का नारायण आदि भगवद् तत्वों का रूपी के स्वरूप में उन-उन नामों के वाच्यत्व कहा है । और श्रीराम नाम का ब्रह्म वाचकत्व कहा है और श्रीराम नाम का ही ब्रह्म वाचकत्व अभिव्यक्त होता है। इसी तरह और सत्य एवं ज्ञान स्वरूप तथा अनन्त ब्रह्म है । सत्य आनन्द एवं चैतन्य स्वरूप जिस अनन्त स्वरूप में योगिजन समाध्यादि के द्वारा रमण करते हैं, इसलिये रमण करने के कारण 'राम' पद के द्वारा परब्रह्म प्रतिपादित होता है । इस समान अर्थ का वाचकत्व के द्वारा भी श्रीराम शब्द का ब्रह्म का विशेष रूपसे बोधकत्व प्रतीत होता है । श्रीरामजी का विशेष शब्दत्व तो 'ब्रह्म में होनेवाला धनुष वाण आदि के सहित दो भुजाओं वाली दिव्य श्रीमूर्ति' आदि स्वरूप का बोधन के द्वारा अभिव्यक्त होता है । और भी समस्त शास्त्र समुदाय में वर्णित जितने भी मन्त्रों के समूह हैं उन समस्त मन्त्र वर्णों में श्रेष्ठ वैष्णव मन्त्र कहे जाते हैं । गणपति देवता सम्बन्धित मन्त्रों में शिव देवता सम्बन्धित मन्त्रों में शक्ति देवता सम्बन्धित मन्त्रों एवं सूर्य देवता सम्बन्धित मन्त्रों में से वैष्णव मन्त्र अभिमत फलों को प्रदान करनेवाले कहे गये हैं। और विष्णु देवता सम्बन्धित भी जितने मन्त्र हैं उन सभी में भी श्रीराम मन्त्र सवसे अधिक फलदाता होने से सर्वश्रेष्ठ है । गणपति आदि देवताओं से सम्बन्धित मन्त्रों

स्मृतहृदयविमानं ब्रह्म रामाभिधानमित्यन्तेन श्रीरामस्य नारायणादि रूपित्वेन तत्तन्नामवाच्यत्वं श्रीरामनाम्नो ब्रह्मवाचकत्वञ्च व्यक्तं भवति ।

तथा च 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' ।

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥

इतिसमानार्थवाचकत्वेनापि श्रीरामशब्दस्य ब्रह्मणो विशेषरूपेण बोधकत्वं ज्ञायते । विशेषशब्दत्वं तु तस्य ब्रह्मनिष्ठधनुर्वाणादिसहितद्विभुजत्वाद्याकृतिबोधनेनावगम्यते । अपि च-

सर्वेषु मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठं वैष्णवमुच्यते ।
गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तशौरेष्वभीष्टदम् ॥

के अपेक्षा अधिक फलदायी होने के कारण श्रीराम मन्त्र करोडों गुणा अधिक श्रेष्ठ है। हे राजश्रेष्ठ श्रीराम मन्त्र तो गुरु आदि के द्वारा दीक्षा के विना ही और पुरश्चरण के विना तथा न्यास विधि विधान आदि के विना भी केवल जपमात्र के द्वारा ही सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं। और उन श्रीराम मन्त्रों में भी ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराममन्त्र विना किसी परिश्रम के ही फल प्रदान करनेवाला है। यह तो ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराममन्त्र तो जन्म जन्मान्तरों से अर्जित समस्त पाप पुञ्जों का विशेष रूपसे नाश करने वाला है। और दिनानुदिन होने वाले जो भी अशुभ फलद दूषित कर्म हैं अथवा पक्ष मास ऋतु एवं वर्ष में होने वाले दुष्कर्मों को जिसमें कुछ भी शेष नहीं रह जाय ऐसे सभी पापों को जिसप्रकार रुई के पहाड को हवा अनायास ही उड़ा देती है उसीप्रकार नष्टकर देता है। जान बूझ कर अथवा विना जाने हुए किये हजारों ब्रह्महत्याओं के पापों को और करोडों प्रकार के या करोडों हजार उपपातकों से होनेवाले पाप समुदाय को भी श्रीराममन्त्र का संकीर्तन करने मात्र से ही सभी प्रकार के पाप समुदाय प्रकर्ष क्षण मात्र में विनष्ट हो जाते हैं। भगवान् विष्णु के हजारों नामों के समान यह श्रीरामचन्द्रजी का एक नाम समान कहा गया है। यह महामन्त्र एक श्रीराम नाम विष्णु सहस्रनाम के तुल्य है। भगवान् के संख्यातीत मन्त्र हैं किन्तु वे सभी मिलकर इस महामन्त्र श्रीराम नाम के समान नहीं कहे गये हैं। इसलिये हे सुमुखि पार्वती यह महामन्त्र श्रीराम नाम एवं विष्णु सहस्रनाम ये दोनों समान नहीं है। लोक व्यवहार में प्रयोग आने वाले अथवा वेद व्यवहार में प्रयोग होनेवाले जो कोई भी शब्द कहे गये हैं। हे पार्वती

वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु राममन्त्राः फलाधिकाः ।
गाणपत्यादिमन्त्रेषु कोटिकोटिगुणाधिकाः ॥
विनैव दीक्षां राजेन्द्र पुरश्चर्यां विनैव हि ।
विनैव न्यासविधिना जपमात्रेण सिद्धिदाः ॥
मन्त्रस्तेष्वप्यनायासफलदोऽयं षडक्षरः ।
षडक्षरोऽयं मन्त्रस्तु सर्वाघौघ विनाशकः ॥
दैनन्दिनं च दुष्कृत्यं पक्षमासर्तुवर्षजम् ।
सर्वं हरति निःशेषं तूलाचलमिवानिलः ॥

श्रीरामचन्द्रजी का नाम एवं श्रीविष्णु का हजार नाम इन दोनों में परम श्रेष्ठ अधिक श्रीराम नाम है ।

इस तरह के हजारों नामों से एक श्रीराम नाम समान कहा गया है । हे पार्वती सभी वेदों के जप करने से और सभी मन्त्रों के जप करने से जो पुण्यराशि उपलब्ध होता है, उसके अपेक्षा करोडों गुणा अधिक पुण्य केवल श्रीराम नाम के उच्चारण मात्र से उपलब्ध होता है । जो भी प्रयोग विभिन्न तन्त्र ग्रन्थों में तत्तत् प्रकार के विभिन्न यत्न प्रयत्नों के द्वारा सिद्ध किये जाते हैं वे समस्त प्रयोग कलाप श्रीराम नाम के संकीर्तन मात्र से शीघ्रातिशीघ्र सफल हो जाते हैं । इत्यादि प्रकार के श्रीराम नाम महत्व प्रतिपादक वचनों के द्वारा वेदार्थ तत्व ज्ञानी ऋषि महर्षियों के वचनों में अन्य भगवान् के मन्त्रों के अपेक्षा प्रकृत श्रीराम मन्त्र का सहस्त्र गुणा अधिक प्रतिपादन किया गया है । वेदार्थ रहस्य ज्ञानियों द्वारा स्मृति स्वरूप में परिकल्पित वचनों के द्वारा श्रीराम मन्त्र का सहस्त्र गुणा अधिक फल श्रवण से तथा करोड़ गुणा अधिक फल श्रवण से श्रीरामचन्द्रजी में अंशित्व सिद्ध होता है । तथा श्रीरामचन्द्रजी का ही सर्वकारणत्व सर्वावतारित्व आदि प्रतिपादित होता है क्योंकि सभी अवतारों के अवतारी रघुकुल श्रेष्ठ श्रीरामजी ही हैं इसप्रकार आगम शास्त्र प्रतिपादन करता है । ब्रह्मत्व बोध परिचायक समस्त ब्रह्मपरक ब्रह्म हरि आदि सभी कारण वाचक शब्द कलाप श्रीराम अर्थ में पूर्ण समन्वित होकर श्रीरामजी की मूलकारणता अर्थ को प्रकाशित करते हैं । महान् विशाल सागर में शयन करते हुए जल के अन्दर से प्राचीन काल में आप मुझको भूयोभूयः उत्पन्न किये । इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का 'हरि' 'नर' आदि शब्दों का वाच्यत्व भली भांति प्रतीत होता है यह समझना चाहिये । और हरि

ब्रह्महत्यासहस्राणि ज्ञानाज्ञानकृतानि च ।
कोटिकोटिसहस्राण्युपपातकजान्यपि ।
सर्वाण्यपि प्रणश्यन्ति राममन्त्रानुकीर्तनात् ॥
विष्णोर्नाम्नां सहस्राणां तुल्य एष महामनुः ।
अनन्ता भगवन्मन्त्रा नानेन तु समाकृताः ।
सहस्रानामतत्तुल्यं रामनामवरानने ।
लौकिका वैदिका शब्दा ये केचित्सन्ति पार्वति ।
नामानि रामचन्द्रस्य सहस्रं तेषु चाधिकम् ।
तादृङ्नामसहस्रैस्तु रामनामसमं मतम् ॥
जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्रांश्च पार्वति ।

नर आदि शब्दों का सामान्यार्थ वाचकता होने पर भी तत् समाभ्यधिक आदि वचनों के सन्निहित होने के कारण विशेष शब्द के द्वारा पशु छाग न्याय से अर्थात् जैसे पशु शब्द सामान्यार्थ वाचक होने पर छाग पद के सान्निध्य के कारण पशु शब्द छाग विशेषरूप अर्थ को कहता है। उसीतरह विशेषण बोधकत्व होता है यह विषय पहले ही प्रतिपादित किया जा चुका है। इस कारण से विष्णु हरि नर आदि शब्द उन श्रीरामचन्द्रजी के ही पर्याय वाचक शब्द हैं यह विषय समझना चाहिये। जिसप्रकार कील के द्वारा सभी पत्ते अच्छी तरह गूँथ दिये जाते हैं। इसी तरह ओंकार के द्वारा समस्त वाणी का ग्रन्थन हो जाता है। इस तरह जो व्यक्ति प्रणव (ॐकार) का अध्ययन करता है। यह बात उपनिषदों में यत्र तत्र व्यवहार किये जाने के कारण और उन-उन सभी मन्त्रों के आदि में ॐकार का व्यवहार होने के कारण वाचकत्व के द्वारा सामान्य शब्दत्व प्रमाणित हो जानें पर उस के द्वारा भी श्रीरामचन्द्रजी का मूल कारणत्व निर्णय किया जा सकता है। निश्चित रूपसे अकार ही समग्र वाणी है' यह प्रसिद्ध अकार वाक् स्पर्श-क से लेकर म पर्यन्त २५.वर्ण उष्मा शषसह आदि के साथ व्यापक रूपसे रहकर बहुत अ से लेकर ह तक के वर्णों के स्वरूप वाली होती है। और उस अकार को प्रणव के आद्यक्षर के रूपमें सुने जाने के कारण अकार का अथवा ॐकार का सर्व वागात्मक (समस्त वाङ्मय स्वरूपत्व) ज्ञान होने से भी श्रीरामचन्द्रजी का ही मूलकारणत्व है। वेदों के प्रारम्भ काल में जो स्वर ॐकार प्रकर्ष मात्रा में कहा गया है। और आत्म परमात्म तत्त्व विद्या स्वरूप बोधक वेदान्त शास्त्र में भी

तस्मात् कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ॥
ये प्रयोगास्तु तन्त्रेषु तैस्तैर्यत्साद्यते फलम् ।
तत् सर्वं सिद्ध्यति क्षिप्रं रामनाम्नस्तु कीर्तनात् ॥

एवमादि वेदार्थज्ञप्रणीतवचनेषु स्मृतिपरिकल्पितश्रुतिप्रमाणेषु वचनेषु इतरभगवन्मन्त्रेभ्यः श्रीराममन्त्रस्य सहस्रगुणाधिकत्वफलश्रुतेः कोटिगुणाधिकफलोक्तेश्च तत्रांशांशित्वासिद्धेः श्रीरामस्यैव सर्वकारणत्वं सर्वावतारित्वं च प्रतिपादितम्भवति 'ततस्त्वमसि दुर्धर्षात्तस्माद्भावात्सनातनात् । रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान्' इतिश्रीमद्रामायणोक्ते 'सर्वेषामवताराणा-मवतारीरघूत्तमः' इत्यागमोक्तेश्च सर्वेऽपि ब्रह्मपरा ब्रह्महरिप्रभृतयः कारणवाचकाः शब्दास्तत्रैव पर्यवसिताः सन्तो मूलकारणत्वं ज्ञापयन्ति । 'महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः' इत्यादिभिः श्रीरामस्य हरिनरशब्दवाच्यत्वागमात् । अतो न मूलकारणस्य द्वित्रिनिष्ठत्वं भवतीति बोध्यम् । हरिनरशब्दादीनां सामान्यवा-
जो ॐकार प्रतिष्ठित है। उस प्रकृति में विलीन सर्व व्यापक के जो पर है वही महेश्वर अर्थात् देवाधिदेव श्रीरामचन्द्रजी हैं।

इस वचन के अनुसार अकार का ही प्रणव ॐकार का मूलकारणत्व रूपमें ज्ञान होता है। यदि यह प्रश्न करें की मकार का भी प्रणव प्रकृति में लीनत्व प्रतिपादित होता है। तो उत्तर है कि-मकार का प्रणव प्रकृतित्व प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है। क्योंकि उसकी अवधि अल्प है। मकार को अनेक वाचक कहा गया है। इसलिये मूलकारणत्व है ऐसा तो नहीं कह सकते। क्योंकि 'राम' शब्द के द्वारा समस्त वेद समस्त मन्त्र आदि के जप से होने वाला पुण्य के अपेक्षा करोड़ करोड़ गुणा अधिक पुण्य उत्पन्न करना स्वरूप अधिक फल श्रवण के कारण ओम् इसका रेफ पर आरूढ स्वरूप होने के कारण तथा रुद्र के द्वारा षडक्षर तारक मन्त्र स्वरूप तारक ब्रह्म के व्याख्यान किये जाने के कारण। ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम मन्त्र का सभी मन्त्रों के प्रकाशक होने के कारण श्रीराम मन्त्र में प्रणव कारणता है यह बोध होता है। यही विषय पहले कहा गया है कि जो वेदों के आदि में ॐकार स्वरूप स्वर प्रकृष्ट रूपसे कहा गया है, और जो प्रणव वेदान्त में भी प्रतिष्ठित है उस प्रकृति में विलीन रहने वाले के से जो पर है वह महेश्वर है सभी वेदों के आदि का स्वर ॐकार है क्योंकि सर्वत्र ॐकार का उच्चारण के वाद ही वेद पढा जाता है। उस ॐकार की प्रकृति

चकत्वेऽपि तत् समाभ्यधिकसन्निहितविशेषशब्देन पशुछागन्यायेन विशेष बोधकत्वं भवतीति पूर्वमेव निरूपितम् । तेन श्रीविष्णुहरिनरायणादयः तस्यैव पर्यायाः सन्तीत्यवधेयम् । यथा शंकुना सर्वाण्येव पर्णानि ग्रथ्यन्ते एवमेवोंकारेण सर्वोऽपिवाक् ग्रथ्यते । एवम् यः प्रणवमधीते स सर्वमधीते । इति उपनिषत्सु प्रयोगेन तत्तन्मन्त्रादौ दर्शनेन वाचकत्वेन सामान्यशब्दत्वसिद्धौ च तेनापि मूलकारणत्वं निश्चेतुं शक्यते । 'अकारो वै सर्वा वाक्' सैषा स्पर्शोष्मादिरूपेण बहुरूपा भवति । तस्य प्रणवादौ श्रवणात् सर्ववागात्मकत्वाच्च ।

यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः ।
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ॥

इति अकारस्यैव प्रणवप्रकृतित्वबोधात् । ननु मकारस्यापि प्रणव प्रकृतिलीनत्वम् । तस्याल्पावधित्वात् अनेकवाचकत्वस्मरणाच्चेतिचेन्न । श्रीरामशब्देन सर्ववेदमन्त्रजपजनितपुण्यापेक्षया कोटिगुणिताधिकपुण्यजनन-फलश्रवणेन ओमित्यस्य रेफारूढस्वरूपत्वस्य रुद्रेण तारकब्रह्मव्याख्यानात् । तस्य सर्वमन्त्रप्रकाशकत्वात् प्रणवकारणत्वबोधाच्च 'रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रण
अर्थात् कारण षडक्षर तारक नाम से प्रसिद्ध श्रीराम मन्त्र है । उस श्रीराम मन्त्र में विलीन के से भी जो पर है वह महेश्वर है अर्थात् ईश्वरों का भी ईश्वर है इसप्रकार का अर्थ पूर्व वचन का सिद्ध होने से श्रीरामचन्द्रजी का मूलकारणत्व ज्ञात होता है। इस वाक्य के द्वारा 'राम' मन्त्र का ही ॐकार कारणत्व सिद्ध होने से श्रीराम मन्त्र का सभी मन्त्रों के कारण होने से श्रीराम मन्त्र के वाच्यभूत अर्थ सभी मन्त्रों के वाच्य है यह विषय तर्क के आधार पर सिद्ध होता है । धनुष धारण धरनेवाले दो भुजाओं वाले आदि स्वरूप गुण से युक्त आकृति सम्पन्न सभी अवतारों के मूलकारण स्वरूप अवतारी समस्त जगत् का मूलकारण श्रीरामचन्द्रजी हैं यह अभिप्राय प्रतीत होता है।

यदि यह प्रश्न करें कि श्रीराम मन्त्र का अन्य देवता सम्बन्धि मन्त्रों के अपेक्षा अधिकता अथवा श्रेष्ठता भले ही हो लेकिन प्रणव ॐकार से अधिक श्रीराम मन्त्र को श्रेष्ठ होना कैसे संभव होगा ? ॐकार अविनाशी अक्षर ही सवकुछ है उसका उपव्याख्यान बना हुआ भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् समस्त तत्त्व है इस कारण से सवकुछ ॐकार में ही समावेशित हो जाते हैं अर्थात् सवकुछ ॐकार ही है । भूत, वर्तमान, भविष्य इन तीनों कालों से अतीत जो कुछ है वह ॐकार ही है इत्यादि

वोमोक्षदायकः' इति श्रीमद्रामायणोक्तेः । तथैवोक्तम्-'यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तः वेदान्ते च प्रतिष्ठितः । तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः । वेदादिस्वरः ॐकारः तस्य प्रकृतिः कारणं श्रीराममन्त्रः षडक्षरतारकसंज्ञकः तत्रलीनस्य यः परः स महेश्वरः ईश्वराणामपीश्वरः इत्यर्थकत्वसिद्धेः । अनेन वाक्येन श्रीराममन्त्रस्यैवोंकारकारणसिद्धेः । श्रीराममन्त्रस्य सर्वमन्त्रहेतुत्वेन तद्वाच्यस्य सर्वमन्त्रवाच्यत्वोपपत्तेः । धनुर्धरद्विभुजाद्याकृतिमान् सर्वावतारीजगत् मूलकारणं श्रीरामचन्द्र इत्यवगम्यते । नन्वस्तु श्रीराममन्त्रस्य मन्त्रान्तरेभ्य आधिक्यं परन्तु प्रणवात् कथन्तस्याधिक्यम् । तदक्षरं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतंभव्यं भविष्यदिति सर्वमोंकार एव, त्रिकालातीतं तदप्योंकार एवेत्यादि भिस्तस्य सर्वोत्कृष्टत्वनिरूपणात् । काशीमृतप्रणवानुपदेशेन न तस्यापकृष्टत्वम् । प्रणवस्य वेदानां चाध्ययने त्रैवर्णिकानामेकाधिकारः, परं वेदानधिकारिणामपि 'जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे' इतिजन्तुमात्रस्याधिकार दर्शनेनोभयगुणवत्वेन सर्वमन्त्रबीजात् षडक्षरस्योत्कृष्टत्वोपपत्तेः ॥१२॥

नच छान्दोग्योपनिषदि 'प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत् तेभ्यस्त्रयीविद्यासंप्रा स्त्रवत् तामभ्यतपत् तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्रास्त्रवन् भूर्भुवः स्वरिति

श्रुति वचनों के द्वारा ॐकार का सभी के अपेक्षा उत्कृष्टत्व निरूपण किये जाने के कारण ॐकार से श्रेष्ठता श्रीराम मन्त्र की कैसे हो सकती है ? प्रणव रूप ॐकार का और वेदों के अध्ययन में ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य इन त्रैवर्णिकों का ही अधिकार है ऐसा शास्त्रों में कहा गया है लेकिन जो वेदाध्ययन के अधिकारी नहीं है ऐसे प्राणियों का भी 'जन्म ग्रहण करनेवाले समस्त प्राणियों के प्राणों का ऊर्ध्वगमन हो जाने पर भगवान् रुद्र उन प्राणियों को षडक्षर तारक ब्रह्म स्वरूप श्रीराममन्त्र का व्याख्यान किये' इत्यादि श्रुति वचनों के आधार पर जन्म ग्रहण करनेवाले प्राणि मात्र का श्रीराममन्त्र में अधिकार देखे जाने के कारण दोनों ही गुणों से सम्पन्न होने से श्रीराम मन्त्र का ही सभी मन्त्रों का बीजत्व (हेतुत्व) सिद्ध होने के कारण षडक्षर तारक ब्रह्म श्रीराममन्त्र की उत्कृष्टता शास्त्र एवं युक्ति के आधार पर सिद्ध होती है ॥१२॥

यदि यह कहें कि छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि प्रजापति ने सभी लोकों को पूर्णरूप से तपाया, उन अभितप्त लोक समूह से वेद विद्या सम्यक् रूपसे प्रस्त्रवित हुई । पुनः प्रजापति ने त्रयी विद्या को अभितप्त किया उस अभितप्त त्रयी विद्या

तान्यभ्यतपत् तेभ्योऽतप्तेभ्यः ॐ कारः संप्रास्त्रवत् यथा शंकुना सर्वाणि पर्णानि संन्तृणान्येवमोंकारेण सर्वा वाक् संतृणा ॐकार एवेदं सर्वमिति प्रणवस्य लोकवेदकारणत्वं श्रूयते, तत् कथं तद्विरुद्धं श्रीराममन्त्रस्य त्वया सर्वकारणत्व मुच्यते इतिवाच्यम् । तस्य प्रणवस्य वह्निवीजविवर्तत्वेन तयोर्नामतो मिथोभेदबोधावपि वस्तुतोऽभेदत्वस्वीकारात् । तथाऽपि हठवादिनां कृतेप्युच्यते अभितप्तेभ्य ॐकारः संप्रास्त्रवदित्यत्र व्यक्तरूपेणोत्पत्तिः श्रूयते, अत्र तु

से अविनाशी तत्व भूर्भुवः स्वः ये सम्प्रस्त्रवित हुए। पुनः भूर्भुवः स्वः इन अक्षरों को अभितप्त किया, इन अभितप्त भूर्भुवः स्वः से प्रणव स्वरूप ॐकार सम्प्रस्त्रवित हुआ। जिसप्रकार शंकु (कील) से सभी पत्ते संग्रथित हो जाते हैं। उसी प्रकार ॐकार के द्वारा समस्त वाणी संग्रथित हो जाती है। इसलिये जो कुछ दृश्य जगत् है सवकुछ ॐकार ही है। इसलिए प्रणव का समस्त लोक एवं वेद की कारणता श्रुतियों में सुनी जाती है। तो कैसे इस श्रुति वचनों के विपरीत आपके द्वारा श्रीराम मन्त्र की सर्वकारणता प्रतिपादित की जाती है ? यह नहीं कह सकते हैं क्योंकि उस प्रणव स्वरूप ॐकार का वह्नि बीज का विवर्त स्वरूप में निरूपण होने के कारण ॐकार एवं श्रीराम मन्त्र इन दोनों का नाम से अलग होने पर भी अर्थात् दोनों का परस्पर भेद बोध होने पर भी वास्तविक रूपमें परस्पर अभेदत्व स्वीकार किया गया होने से श्रीराम रूपमें सर्वकारणता प्रतिपादन वेद विरुद्ध नहीं है। ऐसा होने पर भी हठवादियों के मानसिक संतोष के लिये यह कहा जाता है। उन अभितप्त भूर्भुवः स्वः से ॐकार सम्यक् प्रस्त्रवित हुआ इस श्रुति कथन में सुस्पष्ट रूपसे यह कहा जाता है कि उत्पत्ति हुई, ॐकार की उत्पत्ति सुनी जाती है। और यहां तो वीज के स्वरूप में ॐ यस्य इस श्रुति वचन में सुस्पष्ट रूपसे वह्नि वीज से ॐकार की उत्पत्ति हुई, अर्थात् वह्नि-वीज में ॐकारोत्पत्ति की कारणता है। इस कथन से यह वात सन्देह रहित है। सन्देह रहित एवं सन्देह युक्त इन दोनों में सन्देह रहित की बलिष्ठता होती है। इस कारण से भूर्भुवः एवं स्वः इन तत्वों से ॐकार सम्यक् प्रस्त्रवित हुआ इसलिये ॐकार भूर्भुवः स्वः का कार्य है यह विषय समझा जाता है। सम्प्रास्त्रवत् इस शब्द का प्रादुर्भाव रूप अर्थ का बोधक होने के कारण उत्पत्ति हुई यह सुस्पष्ट है। और छान्दोग्य उपनिषद् की श्रुति भी ॐकार का अग्नि वीज कार्यत्व का बाधक नहीं है। जैसे पूर्ण रूपसे सन्तप्त प्रस्तर से लौह की उत्पत्ति बतायी जाती है। तो लौह में कार्यत्व होता

जीवत्वेनेदमोंयस्येत्यत्र स्फुटं वह्निवीजादुत्पत्तिः, इतीदमसन्दिग्धं सन्दिग्धा सन्दिग्धयोरसन्दिग्धस्य बलीयस्त्वात् भूर्भुवः स्वरितेभ्य ॐकारः संप्राश्रवदिति तत् कार्यत्वमवगम्यते । तस्य प्रादुर्भावार्थकत्वात् । छान्दोग्यश्रुतिरपि न तत् कार्यत्वबाधकम्, अभितप्ताश्मनोर्लोहोत्पत्तिरिव व्याहृतिभ्यस्तस्योत्पत्तेः कार्यत्वम् । यथा-काशीमरणान्मुक्तिः, ऋते ज्ञानान्नमुक्तिरित्यनयोः श्रुतिवाक्ययोः परस्परं विरुद्धार्थकत्वेन बोधेऽपि तयोरेकवाक्यतायां सत्यां काशीमरणोत्तरं ब्रह्मतारकषडक्षरश्रीराममहामन्त्रलाभजनितज्ञानान्मुक्तिरित्यर्थः पण्डितैः क्रियते तथैव अत्रापि व्याहृतिवीजात्तदुत्पत्तिः ।

है उसी तरह अग्नि वीज से उत्पन्न ॐकार में कार्यत्व है । यही कहते हैं व्याहृतियों से ॐकारोत्पत्ति का कार्यत्व है । जिस तरह कहा जाता है कि-काशी में मरण होने से मुक्ति होती है, तथा विना आत्म परमात्म ज्ञान से मुक्ति नहीं होती है, इन दोनों श्रुति वचनों में परस्पर विपरीतार्थ प्रतिपादकता होने के कारण इन दोनों के वाक्यार्थ बोध में भी दोनों श्रुति वचनों की एक वाक्यता करने पर यह ज्ञान होता है कि काशी में मृत्यु हो जाने के उत्तरवर्ती काल में या मरणासन्न काल में ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम महामन्त्र के सदुपदेश से तात्विक ज्ञान होने से मोक्ष होता है यह निर्गलितार्थ सदसद् विवेकी विद्वानों के द्वारा किया जाता है । इसी प्रकार इस प्रकरण में भी यह निर्णीत होता है कि व्याहृति वीज से ॐकार की उत्पत्ति होती है ।

वास्तविक तो यह कि छान्दोग्य उपनिषद् का यह अभिप्राय है कि सारांश रूप में उसकी व्याप्ति का निर्देश करके समस्त वाङ्मय के तत्व के स्वरूप में सर्वरूपी के स्वरूप में सर्वकारणता का प्रकाशन होता है । अप्रधान उपसंहार न्याय से जीवात्मा के स्वरूप में यह ॐकार आदि जिसका इत्यादि उपनिषदों की एक वाक्यता के द्वारा सभी का कारण ॐकार है, ॐकार का रूपी होने के कारण अकार उकार सहित उसके विलय का कारण मकार स्वरूप प्रणव की कारणता के रूप में और उस ॐकार का वह्नि वीजात्मक होने से समस्त वाणी की आत्मात्व निरूपक श्रुति वचन के द्वारा सर्वकारणत्व सिद्ध होता है । उन अकार एवं मकार का आश्रय स्वरूप में रेफ के होने के कारण रेफ में सर्वकारणता है यह समझा जाता है । अक्षर स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी के नाम का जो सर्वथा प्रत्यक्ष है उसकी सर्वकारणता सर्वतोभावेन सिद्ध होती है । परिणाम स्वरूप अन्यान्य मन्त्रों से करोडों गुणा अधिक फल प्रदायकता सुने जाने से

वस्तुतः छान्दोग्ये सारांशत्वेन तस्य व्याप्तिं निर्दिश्य सर्ववागात्मकत्वेन सर्वरूपित्वेन सर्वकारणत्वं प्रकाश्यते । गुणोपसंहारन्यायेन जीवत्वेनेदमोंयस्येति समेषामुपनिषदां एकवाक्यतया सर्वस्य कारणमोंकारः ओंकाररूपितया अकारोकारसहिततल्लयहेतुमकारात्मकप्रणवकारणत्वेन तस्य वह्निवीजावयवतया च सर्ववागात्मकत्वश्रुत्या सर्वकारणत्वं सिध्यति तयोरकारमकारयोराश्रयत्वेन रेफस्य सर्वकारणत्वं बुध्यते । अक्षरात्मकस्य श्रीरामनाम्नः प्रत्यक्षस्य सर्वकारणत्वं निष्पद्यते । फलतः अन्यमन्त्रेभ्यः कोटिगुणाधिकफलश्रवणात् । तदुक्तम्-'जीवत्वेनेदमोंयस्य ब्रह्मादीनां वाचकोऽयं सर्ववाच्यस्य वाचकः एतदेवोपास्यं ज्ञेयं च य एतत्तारकं ब्रह्मणो नित्यमधीते । विष्णोर्नाम्नां सहस्राणां, अनन्ता भगवन्मन्त्राः, जपतः सर्ववेदांश्चेत्यादिभिः अकारमकारवाच्यानामपि प्रत्यक्षरनिर्णयेन रकारवाच्यस्य सर्वकारणत्वं रेफारूढमूर्तयः स्युः शक्तयस्तिस्त्र एवेति श्रुतेः च, चराचरवाचककारणानां सशक्तिकानां ब्रह्मविष्णुशिवादीनां रेफ-वाच्यस्यैव कारणत्वं सिध्यति ।

भी सिद्ध है। यही विषय वस्तु कही गयी है जीव स्वरूप में ओम् जिसका प्रतिपादक है यह सर्व वाच्य का वाचक है। यह ही उपासना करने योग्य एवं जानने योग्य है। जो यह ब्रह्माजी का भी उद्धार करने वाला तारक नामक षडक्षर श्रीराम मन्त्र का अध्ययन करता है। भगवान् विष्णु के हजारों नामों का इत्यादि अगणित भगवानों के मन्त्र है इत्यादि और सभी वेदों एवं जपों से अपेक्षाकृत अधिक श्रीराम मन्त्र हैं, इत्यादि प्रमाणों के आधार पर-और अकार मकार आदि प्रतिपाद्य अर्थों के निर्णय के द्वारा भी रकार इस अक्षर के वाच्यार्थ का सर्वकारणत्व रेफ इस अक्षर पर आरूढ होने वाली मूर्तियां तीन शक्तियां ही है इस श्रुति से भी चराचर अर्थ को प्रतिपादन करने वाले कारणों का जो अपने अपने शक्तियों के सहित हैं ऐसे ब्रह्मा विष्णु एवं शिव आदि तत्वों को रकार से प्रतिपाद्य अर्थ तत्व की ही कारणता सिद्ध होती है।

उपपत्तियों के द्वारा श्रुति वचनों के द्वारा तथा युक्तियों के द्वारा प्रतिपाद्य अर्थ तत्व का वाचक की उत्कृष्टता प्रदर्शन करने से वाच्यत्व जाना जाता है। उपासनीय देवता के नाम का उच्चारण करने मात्र से ही उस संज्ञा वाचक शब्द से प्रतिपाद्यभूत अर्थ का अभिमुखी भवन के द्वारा पात्र आदि के समान अथवा घृत आदि के समान वाचक वाच्य का परस्पर तादात्म्य है इस तात्पर्य को सूचित करता है। लेकिन उस

उपपत्तिभिः श्रुतिभिर्युक्तिभिश्च वाचकोत्कृष्टत्वप्रदर्शनेन वाच्यत्वं ज्ञायते। नामोच्चारणमात्रेण तद्वाच्यस्याभिमुखीभवनम् पर्णादिवद् घृतादिवद् वा तादात्म्यं सूचयति। किन्तु नाकारो दृश्यते। नाधाराधेयभावो नवावयवावयविभावः नापिकृपादयाद्युच्चारसमकालतदाश्रयद्रव्यस्याभिमुखीभवनं दृश्यते। किन्तु नाम्नः स्ववाच्येन गुणगुणीभाव उपपद्यते। नाम्नः स्ववाच्यतः पृथक् सत्ताकत्वेऽपि यथा कृपादयादिशब्दानामुच्चारणकाले झटिति बोधोजायते, तथा नाम्नः स्वोच्चारणसमकाले वाच्यविशेषस्य झटिति बोधात् तादात्म्यभावो भवति। यथा भगवदवताराणां परस्परमभेदस्तथैव तन्मन्त्राणामपि मिथोऽभेदः। 'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ' इतिश्रीरामोपनिषदि, माण्डूक्ये च वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टोजन्ये जन्ये पञ्चरूपो बभूव कृष्णस्तथैकोऽपि जगद्धितार्थं शब्देनासौ

उच्चारित उपास्य देवता की आकृति चर्मचक्षु से गोचर नहीं होती है। उन वाच्य वाचकों का परस्पर आधाराधेय भाव सम्बन्ध अथवा अवयव अवयवी भाव सम्बन्ध नहीं हो सकता है। और भी कृपा दया अनुकम्पा आदि शब्दों के उच्चारण करने पर उन-उन शब्दों के उच्चारण समकाल में उनके आश्रय भूत द्रव्य का अभिमुखी भवन नहीं होता है यह भी देखा जाता है। लेकिन संज्ञा वाचक नाम का अपने वाच्य भूत अर्थ के साथ परस्पर गुण गुणी भाव उपपत्ति युक्त होता है। नाम का अपने वाच्य भूत अर्थ से पृथक् सत्ता है जिसकी ऐसा होने पर भी जैसे कृपा दया आदि शब्दों के उच्चारण करने के समकाल में नाम के साथ कृपा आदि शब्द सम्बद्ध होने पर उच्चारण करने से अत्यन्त शीघ्र अर्थ बोध होता है। उसीप्रकार नाम का अपने उच्चारण समकाल में प्रतिपाद्य अर्थ विशेष का अत्यन्त शीघ्रता के साथ तत्काल अर्थ बोध होने के कारण नाम नामी का परस्पर तादात्म्य भाव सम्बन्ध होता है। जिसप्रकार भगवान् के अनेकानेक अवतारों का परस्पर अभेद सम्बन्ध होता है यह वस्तु निर्विवाद है। उसीप्रकार ही भगवान् के अनन्त मन्त्रों का भी आपस में परस्पर अभेद सम्बन्ध है यह तात्पर्य अभिव्यक्त होता है। 'परस्पर अभिन्न श्रीसीतारामजी इस श्रीसम्प्रदाय में पूजनीय हैं'। इसप्रकार श्रीरामोपनिषद् में और माण्डूक्य उपनिषद् में भी कहा है जिस प्रकार एक ही वायु भुवन में प्रविष्ट होकर उत्पन्न होने वाले प्रत्येक प्राणी में जाकर पांच स्वरूप वाला हो गया। उसी प्रकार एक ही श्रीकृष्ण इस चराचर जगत् का परम कल्याण करने के प्रयोजन से शब्द के द्वारा यह श्रीकृष्ण पांच पदों वाला

पञ्चपदीविभाति, इतिगोपालोपनिषदि, एकांगसङ्गिनीगङ्गापावयेदखिलं जगत्। अङ्गप्रत्यङ्गसुव्यापि नाम किं कर्तुमक्षमम् । अत्र अङ्गप्रत्यङ्गसंव्यापि इति पदं स्ववाच्याङ्गप्रत्यङ्गाभेदत्वेन व्याप्यव्यापकभावबोधात् नाम्नोव्यापकत्वेन वाच्याधिक्ययुक्त्या मूलकारणत्वे, वाच्येऽपि व्यापकत्वेन विनाशित्वादिप्राप्तौ 'रामत्वत्तोऽधिकं नाम यदुक्तैर्वपुमांस्तरेत् । विनाऽपि सेतुनिर्माणमपारम्भवसागरमिति वचोभिः नाम्न अधिक्यद्योतकत्वं, तदुच्चारणे सर्वाधिकारात् सर्वसुलभत्वम् तदेवहृदये निधाय भगवान् पार्वतीपतिः तेजोमयोरेफ इत्यादिना स्ववाच्यांगप्रत्यंगाभेदत्वं स्फुटयामास ॥१३॥

प्रतीत होता है ऐसा गोपालतापनीय उपनिषद् में कहा गया है । प्राणी के एक अङ्ग विशेष के साथ सम्पर्क प्राप्त करनेवाली गङ्गा सम्पूर्ण संसार को पावन बना देती है। प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्ग के साथ सम्पर्क यदि प्राप्त हो जाय तो वह गङ्गा क्या क्या करने में सक्षम नहीं हो सकती है । अर्थात् सकल अभिमत कल्याणों को प्रदान करने में सर्वथा सक्षम है । पूर्व प्रतिपादित वचन में अङ्ग प्रत्यङ्ग संव्यापि यह पद अपने प्रतिपाद्य अवयव प्रत्यवयव के साथ सम्यक् व्यापन आदि अर्थों के साथ अभेद सम्बन्ध के द्वारा उन वाचक और वाच्यभूत अर्थों का परस्पर व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध रूप अर्थ का बोध होने से नाम का व्यापकत्व होने के कारण प्रतिपाद्य अर्थ से अधिकता की युक्ति के आधार के द्वारा मूलकारणता में और वाच्यभूत अर्थ में भी व्यापकता हो जाने के कारण विनाशित्व आदि दोष उपस्थित होने पर 'हे राम आप से कहीं अधिक आपका नाम माहात्म्य धारण करता है, जिस नाम का उच्चारण मात्र करलेने से शरीरधारी प्राणी इस संसार सागर से उद्धार प्राप्त करलेता है । विना सेतु आदि के निर्माणादि प्रयत्न के ही दुस्तर अपार संसार रूपी सागर को पार करलेता है, इन वचनों के द्वारा नामी के अपेक्षाकृत नाम की अधिकता का प्रकाशन होता है तथा श्रीरामजी के नाम का उच्चारण करने का समस्त प्राणी मात्र को अधिकार है यह विशेष गुण होने से श्रीरामचन्द्रजी में सर्वसुलभता स्वरूप गुण सिद्ध होता है । इन्हीं विषय वस्तु को अन्तःकरण में स्थापित कर भगवान् आशुतोष पार्वतीनाथ कहे हैं- तेजोमय रेफ का इत्यादि के द्वारा अपने प्रतिपाद्य के अङ्ग प्रत्यङ्ग के साथ परस्पर अभेद सम्बन्ध है इस अर्थ को सुस्पष्ट किये ॥१३॥

अत्र विषये स्मृतावुक्तम्-

'श्रीरामस्यकलांशाद्वै अवताराभवन्ति हि ।

कोटिकोटिश्च कार्यार्थे सिन्धौवीचीव वै मुने ?' ॥

'कलेशः' स्मृतेरस्य श्रुतिमूलकत्वबोधात् । तत् प्रतिपाद्यः श्रीरामचन्द्रः सर्व रूपी, तत्तत् काले तत्तद् रूपप्रदर्शनपुरस्सरमवतीर्य तानि तानि कार्याणि सम्पादयन् तांस्तांश्च गुणान् प्रकटयन् तत्तत् क्रियागुणनामभिः तासु तासूपनिषत्सु पुराणेषु स्मृतिषु च तेन तेन प्रकारेण तत्त्वविद्भिर्गीयते । इतिसकलश्रुतिस्मृति वचनानामेकवाक्यतयावगम्यते । इत्थं तत्तद् भगवद् विग्रहाणां तत्तदवतारित्व वचनाश्रवणात् । कुत्रचिच्छ्रुतस्यापि तथाविधस्य वचनस्य प्रबलश्रुत्यन्तरविरोधेन

श्रीरामचन्द्रजी के मूलकारणत्व एवं सर्वावतारित्वादि के विषय में स्मृति में कहा गया है। क्योंकि सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के कलांश से ही अनन्त अवतार होते हैं। श्रीब्रह्माजी के निर्णयानुसार श्रीरामजी ही कला के ईश हैं अतः जैसे समुद्र के अन्दर कार्य विशेष सिद्धि के लिये करोडों तरङ्ग उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार प्रयोजन विशेष का सम्पादन करने के लिये सर्वकलाओं के अधीश श्रीरामजी के कलांश से करोडों अवतार होते हैं। इस स्मृति का वेदमूलक ज्ञान होने के कारण, उससे प्रतिपाद्य श्रीरामचन्द्रजी सर्वरूपी हैं, उन उन समयों में उन-उन रूपों को प्रदर्शन करने के साथ साथ अवतार धारण कर उन उन कार्य विशेषों को सम्पादन करते हुए तथा तत्तत् प्रकार के गुणों को प्रकट करते हुए भिन्न भिन्न प्रकार के क्रियाओं गुणों एवं नामों के द्वारा भिन्न भिन्न नामों से प्रसिद्ध उपनिषदों में तत् तत् पुराणों में एवं स्मृति वचनों में भिन्न भिन्न प्रकार से ज्ञानी ऋषियों के द्वारा सुव्यक्त रूपसे कहा जाता है। इसतरह समस्त वेदवचन स्मृति वचनों के एक वाक्यता के द्वारा समझा जाता है। इस प्रकार उन-उन भगवान् के विग्रहों का उन-उन अवतारों के अवतारित्व सुने जाने के कारण कहीं कहीं पर सुने गये भी उसतरह के वचनों का उस के अपेक्षा शक्तिशाली अन्य श्रुतिवचन का विरोध के द्वारा यह वचन अन्यार्थ बोधन परक है ऐसा समझा जाता है। पुराण आदि में सुने गये उन-उन अवतारों के अवतारित्व वचन का वेदमूलक होने के कारण तथा शिष्ट महापुरुष का वचन होने के कारण अन्य अवतार बोधक अवतारित्व वचनों के द्वारा अनुमान किये गये मूलश्रुतियों का बहुत अधिकता होने के कारण बहुत अवतारित्व सिद्ध हो जाने पर एक वचन का दूसरे वचन के साथ विसम्बादिता (परस्पर विपरीत होना) हो जाने पर समस्त श्रुतियों का अप्रामाणिकत्व

अर्थान्तरपरत्वमवबुध्यते । पुराणादिषु श्रुतस्य तत्तदवतारित्ववचनस्य श्रुतिमूलकतया शिष्टवचनतयाचावतारान्तरपरावतारिवचनैरनुमितानां मूलश्रुतीनां बाहुल्यात् वह्ववतारित्वे विसंवादितायां सर्वासां तासामप्रामाणिकत्वापत्तेः । तदनुमापकपुराणवचनानां तु विसम्वःदितायामशिष्टप्रणीतवाक्य इवाप्रामाणिकत्वे शिष्टप्रणीतवचनैः सर्वथा अप्रमाणीकर्तुमयोग्यतया, स्वरूपविशेषेरुचिजननाय अवतारित्वमुक्तम्, तद्विधानां वचनानामर्थान्तरपरत्वेन स्वीकरणीयतया, पुराणादिवर्णिततत्तदवताराणां श्रुतिमूलकत्वेन यथा श्रु-तार्थनिष्पत्तौ, श्रीरामस्य स्वोपनिषदि सर्वरूपित्वसर्वशब्दवाच्यत्वादिश्रवणात्

होने लग जायगा। श्रुति तात्पर्य का अनुमान कराने वाले पुराणों के वचनों का तो परस्पर विपरीतार्थ बोधकता होने पर जैसे अशिष्ट पुरुष विरचित वचनों का अप्रामाणिक करने के लिये औचित्य नहीं होने पर स्वरूप विशेष में अभिरूचि पैदा कराने के लिये अवतारित्व प्रतिपादन यह मानते हैं। इस तरह के वचनों का अन्यार्थ प्रतिपादन परत्व है इस रूपमें स्वीकार करने योग्य होने से पुराण आदि ग्रन्थों में वर्णन किये गये उन-उन अवतारों का वेद पर आधारित वचन होने के कारण जैसा सुना गया है तदनुरूप अर्थबोध होने पर श्रीरामचन्द्रजी का श्रीरामोपनिषद् में सर्वरूपित्व सर्वशब्द वाच्यत्व आदि विशेषता सुने जाने से पुराणादि ग्रन्थों में सुने गये अवतार बोधक वचनों का यह कथन वेद पर आधारित है यह विषय वस्तु दिखाने के लिये इस सिद्धान्त को पक्ष बनाकर (जिसमें साध्य विषयक सन्देह होता है उसे पक्ष कहते हैं) अनुमान के द्वारा पूर्व निर्णीत एवं कल्पना द्वारा उपस्थापित दोनों की स्थिति होने पर क्लृप्त की वलिष्ठता होती है। इस कारण से यह रघुवंशावतीर्ण श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य नहीं हैं। किन्तु भगवान् विष्णु हैं, नारायण आदि का अवतार होने के कारण परमेश्वर हैं। इत्यादि अवतारित्व सिद्धि के विपरीत एवं वेद सिद्धान्त के विपरीत अर्थ को स्वभावतः प्रतीत होने वाले मनुष्य देवतांशत्व आदि विषयक बुद्धि का निवारण करके और वे सभी वाक्य अन्यार्थ सिद्धि परक हैं यह अच्छी तरह युक्ति पूर्वक सिद्ध करके श्रीरामचन्द्रजी का सभी अवतारों के अवतारी के स्वरूप में तथा सर्वशब्द वाच्यत्व के स्वरूप में एवं अनन्त रूपी होने के स्वरूप में चरममन्त्रों में विष्णु नारायण वासुदेव परब्रह्म परमपुरुष मत्स्य कूर्म आदि के रूपित्व शिवरुद्र आदि के रूपित्व सुंना जाता है। इसीलिये तत्तद् शब्दों के वाच्य वाचकत्व आदि कथन युक्ति संगत होता है। समस्त

पुराणादिश्रुतावतारवचनानां वेदमूलकत्वदर्शनाय पक्षीकृत्यानुमानेन क्लृप्त-कल्पितयो: क्लृप्तस्य बलीयस्त्वेन नायं राघवोमनुष्य: किन्तु विष्णु: नारायणाद्यवतारत्वेन परमेश्वर:, इत्याद्यवतारित्वविरुद्धं श्रुतिविरुद्धं चार्थं प्रातीतिकमनुष्यत्वदेवतांशत्वादिबुद्धिं निराकृत्य, तानि च वाक्यान्यर्थान्तर पराणीति साधुसंसाद्य तस्य सर्वावतारित्वेन सर्वशब्दवाच्यत्वेनानन्तरूपित्वेन च चरममन्त्रेषु विष्णुनारायणवासुदेवपरब्रह्मपरमपुरुषमत्स्यकूर्मादिरूपित्वं शिवादि-रूपित्वञ्चाकर्ण्यते । अतएव तद्वाच्यवाचकत्वं युज्यते । सर्वोपनिषत् प्रतिपाद्या-शेषकारणवाच्यनिरूपणीयत्वं च सम्यगुपपाद्यते ।

उपनिषदों के द्वारा निरूपण करने योग्य समस्त कारण वाच्यत्व आदि की निरूपणीयता सम्यक् प्रकार से उपपन्न होता है ।

ब्रह्म शब्द कहीं पर जीव अर्थ बोधन परक है तो अन्य जगह पर प्रकृति विषयक अर्थ बोधक है, कहीं पर तो नृसिह होते हैं, कृष्ण परब्रह्म हैं नारायण परब्रह्म है इत्यादि में उन शब्दों का ब्रह्म शब्द विशेषण बनकर स्वाभाविक रूपसे बोध होनेवाला नृसिंहत्व मत्स्यत्व पानी में पैदा होनेवाला अन्य जीवत्व आदि विषयक बुद्धि को निराकृत करने के लिये प्रयोग किया है । और कहीं पर स्वतन्त्र रूपसे सर्वकारणत्व बोधक 'ब्रह्मणो रूप कल्पना' इत्यादि में व्यवहार किया है । भगवान् के शरीर रूपमें सुशोभित होनेवाला ब्रह्म है । उनके नखों का प्रकाश ब्रह्म है इत्यादि कथनों में ब्रह्म शब्द व्यापकता आदि अर्थों क़ा बोध जनक है ।

यह दृश्य समस्त चराचर जगत् ब्रह्मरूप है । ब्रह्म तत्व को जानने वाला ब्रह्म स्वरूपक होता है । ब्रह्म जैसा होकर ब्रह्मत्व को भी प्राप्त करता है । आनन्द स्वरूप ब्रह्म है । सृष्टि रचना की पूर्वावस्था में केवल सूक्ष्म ब्रह्म ही था । ब्रह्म तत्व ज्ञानी परम तत्व को प्राप्त करता है । सत्य ज्ञान एवं अनन्त स्वरूप वाला ब्रह्म है । जो अन्त:करण की गुफा में स्थित ब्रह्म तत्व को जानता है, वह लोक परलोक की समस्त अभिलाषाओं का उपभोग करता है। वह उपभोग तत्त्व ज्ञान स्वरूप ब्रह्म के साथ करता है। उपासकों के अभिमत प्रयोजन की सिद्धि के लिये ब्रह्म की उप कल्पना की गयी है। इत्यादि उपनिषदों में कहे गये वचनों में ब्रह्म शब्द के द्वारा कहे गये श्रीहरि विष्णु नारायण आदि शब्द अपनी परिस्थिति आदि भेदों में नख के प्रकाशत्व ब्रह्म आदि की सिद्धि नहीं होने पर कारण वाक्य में प्रयोग होने वाला ब्रह्म शब्द सामान्य होने

ब्रह्मशब्दः क्वचिज्जीवपरः अन्यत्र प्रकृतिविषयकः क्वचित्तु नृसिंहोभवति कृष्णः परंब्रह्मनारायणः परंब्रह्मेत्यादौ तेषां शब्दानां विशेषणीभावेन प्रातीतिकनृसिंहत्वमत्स्यत्वजलजातजीवान्तरीयबुद्धिनिराकरणाय । क्वचित् स्वतन्त्ररूपेण सर्वकारणत्वबोधको ब्रह्मणोरूपकल्पनेत्यादौ-हरेस्तनु भाः ब्रह्म, तन्नखज्योतिर्ब्रह्म इत्यादिषु ब्रह्मशब्दोव्यापकादिबोधकः ।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' 'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' 'आनन्दो ब्रह्म' 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्' 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'यो वेदनिहितं गुहायां सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणाविपश्चिता' 'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूप कल्पना' एवमाद्युपनिषद् वचनेषु ब्रह्मशब्देनोक्ता हरिविष्णुनारायणादयः स्वावस्थाविशेषेनखज्योतिष्टासिद्धौ कारणवाक्यगतो ब्रह्मशब्दः सामान्यत्वात् श्रीरामशब्दमहत्ववत् पशुछागन्यायेन के कारण ब्रह्मत्व विशेष बोधक नहीं है। जैसे श्रीराम शब्द का सामान्य रूपसे महत्व निरूपण किया जाता है। लेकिन सभी ब्रह्म शब्द पशु छागन्याय से श्रीरामार्थ विशेष बोध परक हैं ऐसा अभिप्राय प्रतीत होता है। क्योंकि ब्रह्म शब्द सर्वरूपी श्रीरामचन्द्रजी का ही वाचक है, किसी अन्य के ब्रह्मत्व प्रतिपादक नहीं है। ऐसा नहीं स्वीकार कर ने पर मूलकारण की अनन्तता सिद्ध हो जायगी। इसी विषय वस्तु को श्रुति कहती है 'चैतन्यमय अद्वितीय का, चैतन्यमय परमेश्वर है, परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी चैतन्य स्वरूप हैं। इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा वार-वार कह कर परमज्योतिः स्वरूप जो सत् चित् आनन्द अद्वैत एकरसात्मक आदि कथन के द्वारा उपसंहार करने से भी मूल कारणता श्रीरामचन्द्रजी की ही सिद्ध होती है। श्रीरामचन्द्रजी के चिन्मयत्व व्यापकत्व आदि गुण चेतन अचेतन समस्त चराचर वस्तुओं में प्रवेश करके उन समस्त जडचेतनों का नियामकत्व आदि सर्व स्वामित्व प्राणी मात्र पर करुणा शीलता और वात्सल्य भाव से साधारण दुःख से लेकर अविद्या पर्यन्त समस्त दुःखों का निवारण कारित्व आदि, श्रेष्ठ पुरुष से लेकर चाण्डाल पर्यन्त प्राणियों के लिये सुलभ होने के कारण सर्वसुलभत्व, समस्त जीवों का उद्धार करने के लिये लीलाविभूति के स्वरूप में परम पवित्र श्रीमद् अयोध्या नामक नगर में चक्रवर्ती सम्राट् के घर में अवतार धारण कर सर्वाधिपत्य सर्व स्वामित्व आदि तत्वों का अनुमान कराते हुए रीछ बानर निषाद राक्षस आदि के साथ मैत्री के व्यवहार द्वारा समस्त दृश्य चराचर जगत् के शरणागति योग्य

श्रीरामपर इत्यवगम्यते । सर्वरूपिणः श्रीरामस्यैव वाचको नान्यस्य, अन्यथा मूलकारणस्यानन्त्यं स्यात् । तदाह श्रुतिः 'चिन्मयस्याद्वितीयस्य' 'चिन्मयः परमेश्वरः' 'परंब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः' इत्यादिभिः पौनः पुन्येनोक्त्वा परंज्योतिः स्वरूपिणं यः सच्चिदानन्दाद्वैतैकरसात्म्येत्युपसंहाराच्च श्रीरामस्य चिन्मयत्वव्यापकत्वादयो गुणाः चिदचिद्वस्तुषु प्रविश्य तेषां नियमनेन सर्वस्वामित्वं कारुण्येन वात्सल्येन चाविद्यान्तसर्वदुःखहारित्वादिकं आ-पामरजन्तुसुलभत्वं निखिलजीवोद्धाराय लीलाविभूतौ श्रीमदयोध्यायां चक्रवर्ति भवनेऽवतीर्य सर्वाधिपत्यादिकमनुमापयन् ऋक्षवानरगुहराक्षसादिभिः सार्धं मित्रतया सकललोकशरणयत्वं गमयन् स्वभक्तांश्च तोषयन् परमधामप्रयाणकाले सरय्ववगाहनपुरस्सरं परमधामप्रापणेन सर्वभूतदयालुतां प्रकाशयन् तदानीन्तनानां नीचानामपि स्वभक्तानां स्वपरधामाधिकारित्वं गमयति ।

समस्त शरणागत प्रतिपालकत्व आदि भावों का बोध कराते हुए, और अपने आश्रित भक्तजनों को अभिमत सुख प्रदान कर सन्तुष्ट करते हुए अपने परम दिव्य धाम श्रीसाकेत लोक के लिये प्रयाण करने के समय परम पावन सरयू नदीं में स्नान के साथ साथ अपने परम धाम पहुँचाने के कारण समस्त प्राणी मात्र पर दयालुता को प्रकाशित करते हुए, श्रीरामावतार के समकाल में होने वाले नीच से नीच भी अपने भक्तों को परमधाम श्रीसाकेत लोक उपलब्ध करने का अधिकारी बनाये इस अभिप्राय को प्रकाशित करता है ।

श्रीरामचन्द्रावतार के समकाल में भगवान् श्रीरामजी जीवात्माओं के अपने परधाम प्राप्ति के लिये ब्रह्म रुद्र आदि भेद से सम्प्रदायों को सम्यक् रूपसे प्रवर्तित करके अपने उस प्रदेश में उत्पन्न होनेवाले समस्त प्राणियों के साथ सदेह अथर्ववेद में वर्णित अयोध्या दिव्यधाम श्रीसाकेत नामक अपने परमधाम में गये । इस प्रकार श्रीरामतापनीय उपनिषद् के श्रुति वचन अभिव्यक्त करते हैं । चैतन्यमयत्व व्यापकत्व आदि गुण समूह से सुशोभित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के महाराज दशरथ के घर में अवतार ग्रहण करने के पश्चात् श्रीवशिष्ठ वामदेव आदि मन्त्र द्रष्टा ऋषियों के द्वारा परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी के गुण कर्म आदि को समझाते हुए 'राम' ऐसा नामकरण प्रकट किया गया । पुराण आदि ग्रन्थों के कथाओं में प्रसिद्ध अवतार धारण करने के कारणों को प्रकट करते हुए अनादि काल से सिद्ध सत्य आनन्द एवं चैतन्य स्वरूप उनके

तदानीं सर्वेश्वरश्रीरामो जीवानां स्वपरधामोपलब्धये ब्रह्मरुद्रादिभेदेन सम्प्रदायं प्रवर्त्य स्वदेशीयैः सार्धं श्रीसाकेताख्यं स्वदिव्यधाम गतवान् । इति श्रीरामतापनीयः श्रुतयः चिन्मयत्वव्यापकत्वादिगुणगणमण्डितः श्रीरामः दशरथभवने आविर्भावात् परं श्रीवशिष्ठादिभिः ऋषिभिः तस्य गुणकर्मादिकं बोधयन् 'राम' इति नामकारणं कृतम् पुराणकथादिषु प्रसिद्धं 'सर्वेषामव ताराणामवतारीरघूत्तमः' इत्याद्यागमप्रसिद्धं सर्वेश्वरश्रीरामस्यावतारकारणं प्रकटयन् अनादिसिद्धं सत्यानन्दचिदात्मकं तत्स्वरूपं बोधयन् सर्वकारण स्यावतारिणश्चिन्मयस्येत्यादिना आरभ्य द्वैविध्यं स्फुटयन्त्यः श्रीरामतापनीयाः श्रुतयः कल्पितस्य देहस्य सेनादिकल्पनान्ता अर्थाः प्रकाशयन्ति ॥१४॥

वास्तविक स्वरूप को बोध कराते हुए सभी के कारण का एवं सभी अवतारों के अवतारी का चैतन्यमय का इत्यादि कथनों के द्वारा प्रारम्भ करके दो प्रकार का सुस्पष्टता के साथ ज्ञात कराते हुए श्रीरामतापनीय उपनिषद् की श्रुतियां कल्पना द्वारा उपस्थापित शरीर का सेना आदि की कल्पना पर्यन्त अर्थ तत्त्व प्रकाशित करते हैं ॥१४॥

चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ ।
रघुकुलेऽखिलंराति राजते यो महीस्थितः ।
स राम इति लोकेषु विद्विद्भिः प्रकटीकृतः ॥१॥

महाराज रघु के वंश में दशरथ के घरमें महान् व्यापकत्व आदि गुणगण मण्डित चैतन्यमय परम तत्त्व श्रीराम नामक ब्रह्म का प्रादुर्भाव होने पर अर्थात् भक्तों पर अनुग्रहार्थ श्रीरामावतार होने पर जो पृथिवी पर रहकर भक्तों के समस्त मनोऽभिलषित वस्तु प्रदान करते हुए सुशोभित होते हैं वे विद्वानों के द्वारा 'राम' कहे जाते हैं ॥१॥

'रामचन्द्रश्चिदात्मकः चिन्मयः परमेश्वरः, चिन्मयस्याद्वितीयस्येत्याद्युप निषत्सु पौनः पुन्येन पाठात् चिन्मयं ज्योतिर्मयम् स्वप्रकाशम् परं तत्वमेवोपनिषत् प्रतिपाद्यं श्रीराम एव, नेतरे, श्रीहरिविष्णुप्रभृतिपदेषु तथाभ्यासानवलोकनात् ।

श्रीरामचन्द्रजी चैतन्य स्वरूप ज्योतिर्मय हैं । दिव्य प्रकाशमय परमेश्वर हैं, ज्योतिर्मय अद्वितीय के, इत्यादि उपनिषद् ग्रन्थों में भूयो भूयः चिन्मय शब्द के पठन द्वारा चैतन्यमय दिव्य ज्योतिस्वरूप, स्वयं प्रकाश एवं सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म तत्व ही उप

एकत्रवाक्ये अनेकपदानां विशेष्यत्वस्यायुक्तत्वात्, तयोर्व्यापकत्वादिगुणपरतया विशेषणत्वेन सार्थक्यम् । ननु चिन्मयपदं श्रीविष्णुहरिपर इति चेत् तन्न । 'सर्वेषामवतारामवतारीरघूत्तमः' इत्यागमोक्त्या सर्वेश्वरश्रीरामस्यैवावतारिणो भुव्यवतीर्यदाशरथित्वं प्राप्तस्य गुणकर्मनिमित्ततापि 'रामाख्याभुविस्यादित्यर्थिकायाः श्रुतेर्विरोधात् ।

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्देचिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते ॥

इतिमुख्यनामपरोत्तरश्रुतिविरोधात् च बहूनां मुख्यनामत्वानुपपत्तेः । यदप्युच्यते बहुषु गुणनामसु मुख्यत्वसूचकमिदमिति, तदप्यसङ्गतम् । वैष्णवमन्त्रेषु श्रीराममन्त्रस्य फलाधिक्यात्, लौकिकवैदिकशब्देषु श्रीरामचन्द्रनाम्नः सहस्र

निषदों के प्रतिपादनीय तत्व श्रीरामचन्द्रजी ही हैं दूसरे नहीं । श्रीहरि महाविष्णु आदि पदों में जिस तरह श्रीरामजी के लिये कहा गया है उसी तरह पौनः पुन्येन अन्यों को नहीं कहे जाने के कारण प्रकृत वर्ण्य श्रीरामजी ही हैं । एक वाक्य में अनेक विशेष्य बोधक पदों का होना युक्ति संगत नहीं कहा जा सकता है, इसलिये महाविष्णु और हरि पदों में व्यापकत्व आदि गुणार्थ बोधपरकता के कारण विशेषण स्वरूप में समन्वय करने से सार्थकता होती है ।

यदि यह प्रश्न करें कि चिन्मय पद श्रीहरि महाविष्णु परक है न कि श्रीराम परक तो ऐसा नहीं कह सकते । अवतारी श्रीरामचन्द्रजी का ही इस मण्डल पर अवतार धारणकर महाराज दशरथ के पुत्रत्व प्राप्त करके गुण कर्म निमित्तक होने पर भी 'रामाख्या भुवि स्यात्' इस अर्थ वाली श्रुति के साथ विरोध होने से महाविष्णु हरि परक नहीं है ।

सत्य आनन्द एवं ज्योतिर्मय स्वरूप अनन्त परम तत्व में योगिजन समाधि जनित सुखानुभूति करते हुए विहार करते हैं इसलिये वह परब्रह्म 'राम' पद से कहे जाते हैं । इसप्रकार प्रतिपादित मुख्यनाम प्रतिपादक उत्तरवर्ती श्रुति वचन के साथ विरोध होने से हरि महाविष्णु परक नहीं है । तथा बहुतों का मुख्य नामत्व जनित दोष होने लगेगा । और जो यह भी कहा जाता है कि बहुत अप्रधान नामों में प्रधानता का सूचक यह पद है यह भी कथन उचित नहीं समस्त विष्णु देवता सम्बन्धित मन्त्रों में श्रीराम मन्त्र का अधिक फल प्रदायकत्व कहा गया है । लौकिक एवं वैदिक समस्त शब्दों में श्रीरामचन्द्रजी के नाम का हजार गुणा अधिकता कहे जाने से तथा

गुणाधिककथनात् सहस्त्रनामतुल्यत्वात् तत्फलदत्वात् सर्वाभीष्टप्रदायकत्वाच्च श्रीरामपरमेव। किञ्च मुख्यगौणभेदेन श्रीरामपदस्य द्विविधा निरुक्तिरवलोक्यते। प्रथमनिर्वचनेन तन्नामप्रकाशनमन्तरैव दशरथविषये आविर्भावो बोध्यते। शिष्टैरपि तदुपबृंहणे विशेषनामप्रकाशनं विनैव तस्याविर्भावो ज्ञाप्यते। तद्यथा-

सूच्चस्थे ग्रहपञ्चके सुरगुरौ सेन्दौ नवम्यां तिथौ,
लग्ने कर्कटके पुनर्वसुयुते मेषं गते पूषणि।
निर्दग्धं निखिलाः पलाशसमिधो मेध्यादयोध्यारणे,
आविर्भूतमभूदपूर्वविभवं यत् किञ्चिदेकं महः ॥१॥

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे इति च।

सासितूणधनुर्वणपाणिं नक्तञ्चरान्तकम्।
स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम् ॥

चैत्रे मासि नवम्यां तु शुक्लपक्षे रघूद्वहः।
प्रादुरासीत् परंब्रह्म परंब्रह्मैव केवलम् ॥

विष्णु सहस्त्रनाम के तुल्य एक श्रीराम नाम के होने के कारण, तथा सहस्त्रनाम पाठ जनित पुण्य फल प्रदान क्षमता श्रीराम नाम में ही होने के कारण और समस्त भक्तजनों को अभिमत फल प्रदानकारी होने के कारण श्रीराम परक ही है। और भी वेदादि शास्त्रों में श्रीराम पद का मुख्य गौण भेद से दो प्रकार का निर्वचन देखा जाता है। प्रथम निर्वचन के द्वारा श्रीराम नाम के प्रकाशन के विना ही महाराजजी श्रीदशरथजी के घर में आविर्भाव का बोध कराया जाता है। शिष्ट पुरुषों के द्वारा भी श्रीराम नाम के विस्तारिकरण में विशेष नाम का प्रकाश किये विना ही श्रीरामचन्द्रजी का आविर्भाव ज्ञात कराया जाता है। वह जैसे कि-चन्द्रमा तथा बृहस्पति सहित पांच शुभ ग्रहों के उच्च राशि स्थान पर थे शुक्लपक्ष की नवमी तिथि में कर्क नामक लग्न में पुनर्वसु नक्षत्र में भगवान् सूर्य के मेष राशि में स्थित होने पर अयोध्या नामक स्थान पर यागीय समस्त पलाश आदि काष्ठ पूर्ण प्रज्वलित हुआ, जिनका पूर्व से ही अनन्त ऐश्वर्य प्रकट हो चुका था ऐसा कोई अनिर्वचनीय विलक्षण तेजःपुञ्ज अवतार ग्रहण किया। और-वेदों के द्वारा जानने योग्य परम पुरुष दशरथ तनय श्रीरामचन्द्रजी के जन्म लेने पर तलवार तूणीर सहित धनुष वाण है हाथ में जिनके ऐसे निशाचरों के विनाशकारी अपने लीला विलास से समस्त चराचर जगत् का संरक्षण करने के लिये अजन्मा परम

इत्यादि वचनेषु एकं महः, परं पुंसः, अजविश्वादिभिः सामान्यशब्दैः, महाविष्णुहरिपदेषु चिन्मयपदं विशेषणम् तेन महाविष्णुपदं चिन्मयस्य सर्वव्यापकत्वेन अशेषचिदचिन्नियामकत्वेन सर्वस्वामित्वं गमयति । अर्थात् चिद चितोस्तच्छेषत्वं सूचयित्वा, स्वगतमहदिति विशेषणेन विष्ण्वादिभ्यो व्यावर्त्य तस्य मूलकारणत्वं गमयति । आकाशादीनां तु जडत्वात् चिन्मयत्वेनैव व्यावर्तनं भवति । महाविष्णुपदस्य तु तद्व्यापकत्वगुणद्वारा परमेश्वरत्वं, स्वमहिम्ना सर्वान् लोकान् व्याप्नोति व्यापयतीत्यादिना नृसिंहतापनीये उक्तम्, तद् विश्वव्यापकत्वं 'विश्वव्यापीराघवो यस्तदानीमित्यादिना श्रीराघवस्यैवात्र श्रूयते । अविद्यापर्यन्तं स्वभक्तदुःख हरत्वात् हरिः । महाविष्णुपदेन च सर्वव्यापकत्वेन सर्वनियन्तृतया सर्वस्वामित्वम् । अत आश्रयार्हता । किन्तु चिन्मयपदेन प्राकृतशरीरराहित्यं 'रघुकुलेदशरथे चिन्मयेजाते, इतिश्रुतेः । स्वनित्यविग्रहेणैवात्राविर्भावस्तेनाव-तारिणोऽवतारः इतिज्ञाप्यते ।

व्यापक अवतीर्ण श्रीरामजी को। रघुकुल नायक श्रीरामचन्द्रजी चैत्र मास के शुक्लपक्ष नवमी तिथि को प्रादुर्भूत हुए, जो श्रीरामजी परब्रह्म केवल साक्षात् परब्रह्म ही थे। इत्यादि वचनों में 'एकं महः परं पुंसः अजं विभुम्' इत्यादि पदों एवं इन सामान्य शब्दों के द्वारा, तथा महाविष्णु हरि पद में तो चिन्मय पद विशेषण होने के कारण, इसलिये महाविष्णु पद तो चिन्मय का सर्वव्यापकत्व के स्वरूप में समस्त चेतनाचेतन का नियामकत्व के द्वारा सर्व स्वामित्व रूप अर्थ का बोध कराता है। अर्थात् चेतन अचेतन को श्रीरामचन्द्रजी का शेषत्व रूप अर्थ को सूचित कर, अपने में स्थित महत् इस विशेषण के द्वारा विष्णु आदि अर्थों से पृथक् करण करके श्रीरामचन्द्रजी का मूलकारणत्व रूप अर्थ को बोध कराता है। आकाश आदि का तो जडता के कारण चिन्मयत्व पद के द्वारा ही व्यावर्तन हो जाता है। और महाविष्णु पद का तो व्यापकता गुण के द्वारा परमेश्वरत्व सिद्ध है, एतावता गौण परमेश्वरत्व है। 'अपनी महिमाओं के द्वारा समस्त ब्रह्माण्डवर्ती लोकों को व्याप्त करता या व्याप्त कराता है' इत्यादि नृसिंह तापनीय उपनिषद् के कथन द्वारा ज्ञात होता है। और वह विश्व व्यापकत्व, जो उस समय पर विश्वव्यापी रघुवंश में प्रादुर्भूत श्रीरामचन्द्रजी, इत्यादि कथन के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का ही यहां पर श्रवण होता है। 'अविद्या पर्यन्त अपने समस्त भक्तों के दुःख हरण कारी हो' के कारण हरि कहे जाते हैं। और महाविष्णु पद में सर्व

ननु महाविष्णुरेव राघवत्वेनावतीर्ण इति चेन्न । 'अवताराह्यसंख्येया हरेः सत्वनिर्धेद्विजाः, इत्युक्तेः हरिरेवावतीर्णः, द्वौमिलित्वा श्रीरामरूपत्वं गतौ इत्यपि न चिन्मयेऽस्मिन्निति कारणपरकैकवचनविरोधात् । पर्यायवाचिनां तेषामेक एव वाच्य इत्यपि नोचितम् । पदान्तरोपादानं व्यर्थं स्यात् । उपनिषदः पूर्वापरवचनविवेचनेनापि चिन्मयस्येत्यनूद्य परंब्रह्माभिधीयते इति परब्रह्मवाचक श्रीरामपदस्योपादानात् । किं च श्रीरामस्य 'रामाख्या भुवि स्यात्' इति एकस्यैव चिन्मयतत्त्वस्यावतारीदशायामवतारदशायाञ्च श्रीरामनामत्वबोधकं श्रुति वचनम् श्रीरामनिष्ठपरंब्रह्मत्वबोधकम् । महाविष्णवादीनां तु व्यापकत्वादिगुण योगात् गुणनामत्वम्, एकनिष्ठस्य मूलकारणत्वस्यौचित्यात् । सच्चिदानन्दार्थकस्य श्रीरामस्य परब्रह्माभिधायकत्वश्रुतेः, ततश्च यत् परंब्रह्म रामपदेनाधीयते तस्यैव रामाख्यस्य चिन्मयस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः उपासकानां कार्यार्थमुपकल्पनेति द्वयोश्रुत्योरन्वयः । तदेव 'विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकाः । तथाऽपि रामनामेदं विश्वेषां वीजमक्षयमित्यादिभिः स्फुटीभवति । यदि तु महाविष्णु व्यापकत्व सर्व नियामकत्व आदि गुण होने के कारण सर्व स्वामित्व है । इन्हीं कारणों से आश्रयार्हता है । लेकिन चिन्मय इस पद के द्वारा प्रकृति जनित शरीर धारण शून्यता बोध होता है । 'रघुकुल में महाराज दशरथ के राज्य में चिन्मय दिव्य ज्योतिः स्वरूप तत्व के अवतार धारण करने पर' इस श्रुति वचन के आधार पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का अपने नित्य परम जयोतिर्मय शरीर के द्वारा ही अयोध्या में अवतार हुआ इस कथन से अवतारी श्रीरामचन्द्रजी का ही अवतार हुआ यह अभिप्राय बोध कराया जाता है ।

यदि यह कहें कि महाविष्णु ही दशरथ तनय के स्वरूप में अवतीर्ण हुए, तो यह नहीं कह सकते हैं । 'हे ब्राह्मणों सत्व गुण के आगार समस्त स्वभक्त दुःख निवारक भगवान् के संख्यातीत अवतार कहे गये हैं' इस कथन के कारण महाविष्णु अवतीर्ण हुए यह नहीं कह सकते । हरि ही श्रीराम रूप में अवतार ग्रहण किये, अथवा हरि तथा महाविष्णु दोनों मिलकर अवतार धारण किये यह भी नहीं कह सकते हैं । 'चिन्मयेऽस्मिन्' इस कारण बोधन परक एक वचन के साथ विरोध के कारण ऐसा नहीं कह सकते हैं । अथवा पर्यायार्थ वाचक उन सभी का एक एक ही वाच्यार्थ है यह भी नहीं कह सकते हैं । यदि ऐसा होता तो अन्य पदों का ग्रहण करना निष्फल हो जायगा । उपनिषद् के पूर्वापर वचनों का विवेचन करने पर भी 'चिन्मयस्य' इस

हरिशब्दादिषु चिन्मयपरतत्वमुख्यवाचकत्वमभिमतं स्यात् तदा 'वेवेष्टि सकलं यस्माच्चिदचिदात्मकं जगत् । तस्माद् विष्णुपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते' इत्युक्तं स्यात् । नतु-

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्देचिदात्मनि ।

इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते इति ॥

नचावतारपरश्रीरामशब्दनिर्वचनार्थमिति चेन्न । रघुकुलेऽखिलंरातीत्या-रभ्य रामस्य रामाख्या भुवि स्यादित्यन्तानि वाक्यानि श्रूयन्ते । तस्माद् राघव गौणमुख्यनामबोधकं वचनं उत्तरवाक्यबोधितस्य श्रीरामशब्दस्य चिन्मय-परतत्वमुख्यवाचकत्वम् प्रतिपाद्य पूर्ववाक्यबोधितस्य श्रीरामशब्दस्य तद् गुण
कथन के द्वारा उद्देश्य करके परब्रह्म कहे जाते हैं इस पर ब्रह्म वाचक पद का ग्रहण करने के कारण महाविष्णु हरि परकत्व नहीं होता है। और भी श्रीरामजी का 'रामाख्या भुवि स्यात्' इससे एक का ही चिन्मय तत्व का अवतारी अवस्था में तथा अवतार अवस्था में श्रीराम नामत्व का बोध कराने वाले श्रुति वचन श्रीराम में स्थित रहनेवाला परब्रह्मत्व का बोध कराने वाला है। महाविष्णु आदि का तो व्यापकत्व आदि गुणों का सम्बन्ध होने के कारण अप्रधान (गौण) नामत्व है। एक में ही रहनेवाला मूलकारणत्व का औचित्य होने के कारण। सत् चित् आनन्द अर्थ है जिसका ऐसे श्रीराम का परब्रह्मत्व प्रतिपादक श्रुति वचन होने से श्रीरामजी का ही मूलकारणत्व है। तथा इसके पश्चात् जो परब्रह्म श्रीराम पद के द्वारा कहे जाते हैं उन्हीं परब्रह्म का ही जो श्रीराम नाम से प्रसिद्ध है उनका चिन्मय अद्वितीय ब्रह्म का उपासकों के अभिमत प्रयोजन की सफलता के लिये उपकल्पना की गयी है यह दोनों श्रुति वचनों का परस्पर सम्बन्ध होता है। वही हे श्रीरामचन्द्रजी समस्त विश्व ही रूप है जिसका ऐसे आपका संसार के सभी शब्दकलाप वाचक हैं। फिर भी यह श्रीरामचन्द्र नाम सभी का अविनाशी वीज है, इत्यादि वचनों के द्वारा अभिव्यक्त होता है। यदि तो महाविष्णु हरि आदि शब्दों में चिन्मय परतत्व का मुख्य वाचकत्व श्रुति वचनों को अभिमत होता तो जिससे समस्त जगत् बँधता है अर्थात् जिससे जडचेतनात्मक सकल जगत् बँधता है, इसलिये वह विष्णु इस पद के द्वारा परब्रह्म कहा जाता है ऐसा कहा जाता न कि 'रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते' ऐसा कहते। यह भी नहीं कह सकते कि अवतार परक 'राम' शब्द का निर्वचन करने

क्रियादिभिः तद् गौणनामसूचनवत् नामान्तराणामपि गौणत्वं सूचयित्वा महाविष्णुहरिपदयोरपि व्यापकत्वादिगुणबोधकत्वेन गुणनामत्वं प्रकाशयतीति बुध्यते ।

ननु रघुकुलेऽखिलं रातीत्यादिश्रुतिभिः तद्गुणक्रियादिभिः श्रीरामशब्दस्य दाशरथिपरत्वं ज्ञापनवत् 'परंब्रह्माभिधीयते' इतिवाक्यस्यापि दाशरथिपरत्व ज्ञापनेनापि चिन्मयब्रह्मपरत्वं प्रकाशयति नत्ववतारित्वादिकमिति यथानारायण कृष्णादिशब्दा महाविष्णुहरिशब्दयोः ब्रह्मपरत्वं वारयन्ति तथैवेति चेन्न अत्र

के लिये यह कहा गया है। 'रघुकुल में रहकर समस्त वस्तु प्रदान करते हैं' यहां से प्रारम्भ करके 'राम की रामनाम से प्रसिद्धि पृथिवि में हो' इत्यादि पर्यन्त के वाक्य सुने जाते हैं। इसलिये 'राघव' यह अप्रधान प्रधान नाम को बोध कराने वाला वचन उत्तर वाक्य के द्वारा बोध कराया गया 'राम' शब्द का चिन्मय इस शब्द के द्वारा कथन परतत्व रूप अर्थ का मुख्य वाचकत्व है। इस विषय वस्तु का निरूपण करके पूर्ववर्ती वाक्य के द्वारा ज्ञात कराया गया 'राम' शब्द का 'राम' में होने वाले गुण और क्रिया आदि के द्वारा जिसप्रकार श्रीरामचन्द्रजी के अप्रधान नाम का कथन किया जाता है उसी प्रकार अन्य हरि कृष्ण नृसिंह आदि नामों का भी अप्रधानत्व है इस तात्पर्य को सूचित करके महाविष्णु और हरि पदों का भी व्यापकत्व नियामकत्व स्वभक्त सर्वदुःख हारित्व आदि गुणों के बोधक के स्वरूप द्वारा गुण नामत्व को प्रकाशित करता है यह अभिप्राय समझ में आता है अर्थात् श्रुति का यही तात्पर्य है।

यदि यह प्रश्न करें कि 'रघुकुल में समस्त वस्तुओं को परिपूर्ण करते हैं।' इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी के गुण क्रिया आदि के माध्यम से 'राम' शब्द के दशरथ तनय परत्व जिस तरह बोध कराया जाता है उसी तरह परब्रह्म अर्थ कहा जाता है इस परब्रह्म बोधक वाक्य का भी दशरथ तनयत्व रूप अर्थ परकत्व बोधन कराने के द्वारा भी चिन्मय ब्रह्म परत्व स्वरूप अर्थ का प्रकाशन करता है उसी तरह ऐसा यदि कहें तो ऐसा नहीं कह सकते हैं क्योंकि जिस तरह नारायण कृष्ण आदि शब्द महाविष्णु हरि इन शब्दों का ब्रह्मत्व परकत्व का निषेध करता है, उसीप्रकार यहां पर भी ब्रह्मत्व परत्व का बाध नहीं करता है यह कहें तो नहीं कह सकते। क्योंकि यहां पर हरि महाविष्णु आदि शब्दों का मुझ से ब्रह्मत्व परत्व का खण्डन नहीं किया जा रहा है, लेकिन 'सत्य ज्ञान एवं अनन्त स्वरूप वाला ब्रह्म तत्त्व

महाविष्णवादिशब्दानां ब्रह्मपरत्वखण्डनं न विधीयते, किन्तु सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति निरूप्यमाणं सच्चिदादिसमस्तवाचकत्वाश्रवणेन तेषां साक्षान्न ब्रह्मतादात्म्ये मुख्यवाचकत्वमिति तन्निवारणं विधीयके ॥१॥

नारायणादीनां व्यापकत्वादिगुणद्वारा ब्रह्मपरत्वं तु न वार्यते। तद्द्वारा तत् तत् परत्वस्येष्टापत्तेः। 'रमन्ते योगिनः' जीवत्वेनेदमोंयस्येत्याद्याः श्रुतयः सर्ववाचकत्वेन ब्रह्मतादात्म्योपगतेन सर्वशब्दकारणप्रणवकारणत्वेन च श्रीराम शब्दस्य तन्मुख्यवाचकत्वम्। अस्मात् गुणकर्मार्थवाचकत्वेन तद् व्यापकत्वादि

है, इस श्रुति वचन के द्वारा निरूपित किया जा रहा, सत् चित् आदि समस्त तत्वों के वाचकत्व इन शब्दों में नहीं सुने जाने के कारण उन शब्दों का साक्षात् ब्रह्म के साथ तादात्म्य अर्थ में वाचकता नहीं है। इस विषय वस्तु का निवारण मुझसे प्रकृत प्राकरणिक श्रुति द्वारा प्रतिपादन किया जाता है ॥१॥

श्रीनारायण हरि आदि का व्यापकत्व आदि गुणों से सम्बन्ध होने के कारण ब्रह्मपर का तो खण्डन नहीं कर रहे हैं। क्योंकि व्यापकत्वादि गुण सम्बन्ध द्वारा यदि ब्रह्म परकत्व है, तो यह आपत्ति अभीष्ट ही है। 'रमन्ते योगिनो यस्मिन्' 'जीवत्वेन इदमों यस्य' इत्यादि श्रुतियां सर्व वाचकता होने से और ब्रह्म के साथ तादात्म्य रूपता को प्राप्त होने से और सभी के कारण प्रणव का कारण होने के कारण श्रीराम शब्द का ब्रह्म के साथ मुख्यत्व वाचकत्व अक्षुण्ण है। श्रीरामजी का मुख्यरूप से ब्रह्म वाचकत्व के द्वारा उनमें होनेवाले व्यापकत्व आदि सम्बन्ध होने से महाविष्णु हरि आदि पदों में अवतारित्व का खण्डन करके 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इत्यादि श्रुतियों के आधार पर श्रीराम शब्द का रघुकुल में जन्म धारण करना चिन्मयत्व आदि गुण कर्मार्थकत्व आदि धर्म सूचन के द्वारा तथा श्रीराम शब्दार्थ वाच्यत्व होने के कारण अवतारत्व रूप अर्थ को प्रकाशित करते हैं। लेकिन उसके उत्तरवर्ती वाक्य के द्वारा अनादिकाल से स्वभाव सिद्ध सच्चिदानन्दत्व स्वरूपवाचक श्रीराम शब्द का ही अवतारित्व सिद्ध होता है यह कह कर अन्य नारायणादि शब्दों के द्वारा वाच्य का अवतारित्व निवारण करते हैं। वास्तविक में तो 'चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ' इस श्रुति वचन में 'महाविष्णौ चिन्मये हरौ' इत्यादि पदों के द्वारा दशरथ पुत्र श्रीरामचन्द्रजी में केवल मनुष्य का निवारण करके परतत्व का अवतारत्व स्वरूप अर्थ को प्रकाशित करता है। 'रामाख्या भुवि स्यात्' इस कथन के द्वारा उस दशरथ तनय श्रीरामचन्द्रजी

गुणयोगेन महाविष्णुहरिपदादिष्ववतारित्वं निरस्य, 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इतिश्रुतेः श्रीरामशब्दस्यावतारित्वमुपपादितम् । श्रीरामशब्दस्य रघुकुलजातत्व चिन्मयत्वादिगुणकर्मार्थकत्वादिसूचनेन तद् वाच्यत्वेन दाशरथेरवतारित्वं सूचयन्ति, तदुत्तरवाक्येन अनादिसिद्धसच्चिदानन्दस्वरूपवाचकस्य श्रीराम-शब्दवाच्यस्यैवावतारित्वं कथयित्वा शब्दान्तरवाच्यस्यावतारित्वं निवारयति । वस्तुतस्तु 'चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ' इतिश्रुतिः 'महाविष्णौ हरौ चिन्मये' इति पदैः दाशरथेः केवलमनुष्यत्वं वारयित्वा परतत्त्वावतारत्वं गमयति । 'रामाख्या भुवि स्या' दितिकथनेन तस्यैव दाशरथेः परस्वरूपत्वं सर्वावतारित्वं सर्वनिदानत्वादिकं ज्ञापयति ।

में सर्वोत्कृष्ट स्वरूपत्व एवं सर्वावतारित्व रूप और सर्व कारण कारणत्व आदि धर्मों का प्रकाश करता है ।

और इसीप्रकार अन्य उपनिषद् गण श्रीनारायण शिव आदि का संसार के उत्पत्ति स्थिति आदि की कारणता प्रतिपादन करते हैं । लेकिन श्रीनारायण शिव आदि का तो अवतारित्व एवं परत्व आदि का प्रतिपादन नहीं करते हैं । लेकिन श्रीरामतापनीय उपनिषद् प्रतिपादन करता है कि 'रमन्ते योगिनोऽनन्ते' स्वयं प्रकट होनेवाला दिव्य तेज पुञ्ज स्वरूप अगणित रूपधारी अपने ही दिव्य ज्योतिर्मय प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं । जीव स्वरूपता के द्वारा ओम् जिनका रकार अक्षरादि मूर्तियां हों, सर्ववाच्य का वाचक और ओम् इति च 'ब्रह्मात्मका सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम्' इत्यादि मन्त्रों के द्वारा एक मात्र ये ही उपासना करने योग्य हैं यह तात्विक अभिप्राय समझना चाहिये । उपर्युक्त इन कारण प्रतिपादक वचनों के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का स्वतः सिद्धत्व स्वयं प्रकाशमानत्व प्रणव ॐकार की कारणता सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप ब्रह्मात्मकत्व आदि को प्रतिपादित कर श्रीरामचन्द्रजी को एक मात्र उपासनीय जानने योग्य आदि विशेषताओं का निरूपण कर के 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' यह कहकर, पुनः इसप्रकार के श्रीनारायण शिवादि में भी सर्वकारण कारणत्व आदि की भावना न जाय इसका निवारण करने के लिये चरममन्त्रों के द्वारा श्रीरामजी में ही सर्वावतारित्व है इस अभिप्राय का प्रकाशन किया गया 'चिन्मयेऽस्मिन्' इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा दशरथ तनय श्रीरामचन्द्रजी का ब्रह्मपर स्वरूप अत्यन्त सुस्पष्ट किया गया है ।

यदि इस विषय में यह प्रश्न करें कि-विवेचनीय उपनिषद् इस श्रीरामतापनीय

तथा चोपनिषदन्तराणि नारायणशिवादीनां जगदुत्पत्यादिहेतुत्वं निरूपयन्ति, नतु सर्वावतारित्वादिकम् तत्तु 'सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः' परान्नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि । यो वै परतमः श्रीमान् रामोदाशरथि स्वराट्'' इत्याद्यागमोक्त्या परत्वावतारित्वे श्रीरामस्यैवेति तत्त्वम् । श्रीरामतापनीयोपनिषन्निरूपयति-'रमन्ते योगिनोऽनन्ते' 'स्वभूज्योतिर्मयोऽनन्त रूपीस्वेनैव भासते जीवत्वेनेदमोंयस्य' 'रेफारूढामूर्तयः स्युः' 'सर्ववाच्यस्य वाचक' इत्यादि च ब्रह्मात्मकाः सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम्, एतदेवोपास्यमिति ज्ञेयमिति चेत्यादिकारणवचनैः श्रीरामचन्द्रस्य स्वतः सिद्धत्वं स्वप्रकाशत्वं प्रणवकारणत्वं सच्चिदानन्दब्रह्मत्वादिकञ्च प्रतिपाद्य तदेकोपाश्य ज्ञेयत्वादिनिरूपणं विधाय सर्ववाच्यस्य वाचक इत्युक्त्वा पुनस्तद्विध सन्देहनिवृत्तये चरममन्त्रैः सर्वावतारित्वं प्रकाशितम् । चिन्मयेऽस्मिन्नित्यादिना दशरथात्मजस्य सर्वावतारिपरब्रह्मत्वं स्फुटीकृतम् ।

में ही 'चिन्मयेऽस्मिन्' इत्यादि मन्त्रों के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी के अवतारित्व स्वरूप का उपक्रम करने से तथा 'ब्रह्मणोरूपकल्पना' इस मन्त्र के द्वारा इस अभिप्राय का स्पष्टीकरण करने से वही सत्य है वही परब्रह्म है इस मन्त्र के द्वारा उक्त अभिप्राय का पौनः पुन्येन कथन द्वारा 'विश्वाधारं...ब्रह्मा तुष्टाव' समस्त ब्रह्माण्डों के आधार श्रीरामचन्द्रजी की ब्रह्माजी स्तुति किये इस उपसंहार के द्वारा यह प्रतीत होता है कि चरममन्त्रों की श्रीरामचन्द्रजी की प्रशंसा परकता है। इसलिये महाविष्णु अथवा श्रीहरि का श्रीरामचन्द्रजी का अवतारित्व है ऐसा अर्थ समझ में आता है। 'जाते दशरथे हरौ' इत्यादि उपक्रम से 'रघुकुलेऽखिलं राति' इसके द्वारा भूयोभूयः कथन के द्वारा कल्पित शरीर की सेना आदि की कल्पना की गयी है। तथा शङ्ख चक्र गदा आदि का अन्तर्धान होने आदि के वर्णन करने के कारण श्रीरामचन्द्रजी अवतारित्व हैं यह आशय समझ में आता है। यदि इसप्रकार कहते हैं तो ऐसा नहीं कह सकते हैं। इसी श्रीरामतापनीय उपनिषद् का ही 'रामाख्या भुवि' 'परंब्रह्माभिधीयते' इत्यादि इन दोनों श्रुतिवचनों के द्वारा महाविष्णु और हरि का अवतारित्व दाशरथि श्रीरामचन्द्रजी की है इस आशय को अच्छी तरह समझा करके सत् चित् आनन्द स्वरूप अर्थ है जिसका ऐसे चिन्मय श्रीरामचन्द्रजी का अवतारित्व प्रतिपादन किया जाता है। और यदि श्रुति वचन का श्रीनारायण हरि आदि में अवतारित्व निरूपण अभिमत होता तब 'हरि का अथवा

नन्वत्रैव श्रीरामतापनीये चिन्मये इत्यादिना श्रीरामस्यावतारित्वोपक्रमेण ब्रह्मणोरूकल्पनेति स्फुटीकरणात् तत् सत्यं तत् परंब्रह्मेत्यभ्यासात् विश्वाधारं ब्रह्मातुष्टावेत्युपसंहाराच्च चरममन्त्राणां तत् प्रशंसा परत्वं ज्ञायते । तेन महाविष्णोर्हरेर्वा श्रीराघवावतारित्वं बुध्यते 'जाते दशरथे' इत्युपक्रमात् 'रघुकुलेऽखिलं रातीत्यभ्यासात्' कल्पितस्य शरीरस्य सेनादिकल्पनया, शङ्खचक्रगदाद्यन्तर्धानवर्णनाच्चावतारत्वं बुध्यते इति चेन्न । अस्या एवोपनिषदः 'रामाख्या भुवि' 'परंब्रह्माभिधीयते' इतिश्रुतिभ्यां महाविष्णोर्हरेश्च दाशरथेर वतारित्वं बोधयित्वा सच्चिदानन्दार्थकस्य चिन्मयस्य श्रीरामस्यावतारित्वं निरूप्यते । यदि च श्रुतेः हर्यादीनामवतारित्वमभिमतं स्यात्तदा, हरेर्विष्णोर्वा रामाख्या भुवि स्यात्, 'इति विष्णुपदेनासौ' 'इति हरिपदेनासौ' वा परंब्रह्माभिधीयते इति च वदेत् । तच्च नोक्तमिति श्रीरामाख्यस्य परब्रह्मणो दाशरथ्यवतारित्वम् । तथैवान्येषामपि श्रुतीनां समन्वयोविधेयः ।

ननु श्रुतेरुपबृंहणात्मके श्रीमद्वाल्मीकीयेऽपि-

तमब्रुवन् सुराः सर्वे समभिष्टूय सन्नताः ।
त्वां नियोत्स्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया ॥

विष्णु का रामाख्या भुवि स्यात्' और भी-'इति विष्णुपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते' ऐसा कहती। ऐसा श्रुति नहीं कहती है। इन कारणों से जिनका श्रीराम नाम है ऐसे परब्रह्म स्वरूप दाशरथी का अवतारित्व है यह सिद्धान्त निर्विवाद प्रतीत होता है और इसीतरह अन्यान्य श्रुति वचनों का भी परस्पर समन्वय कर लेना चाहिये ।

प्रश्न करते हैं कि वेदका तात्पर्य विस्तारीकरण स्वरूप विशिष्ट ग्रन्थ श्रीमद् वाल्मीकीय श्रीमद्रामायण में प्रतिपादन किया गया है कि-वे महान् तेजःपुञ्ज सम्पन्न समस्त देवता भगवान् विष्णु की सम्यक् प्रकार से पूर्ण विनम्रता एवं सावधानी के साथ स्तुति करके निवेदन किये कि-हे विष्णु आपको समस्त चराचर जगत् एवं अन्य लोकों के कल्याण की अभिलाषा से हम नियोजित करेंगे । हे विभो आप अयोध्या नगरी के राजाधिराज धर्मतत्व वेत्ता याचकों की इच्छा से अधिक दान देने के कारण वदान्य महर्षियो के समान महान् तेजस्वी राजा दशरथजी के श्री ह्री एवं कीर्ति के सदृश गुणगण सम्पन्न तीन महरानियों में हे विष्णु आप स्वयं को चार भागों में विभाजित करके चार प्रकार पुत्रत्व को प्राप्त करें। अर्थात् स्वयं को चार भाग में विभक्त

राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ।
धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः ॥
तस्य भार्यासु तिसृषु श्रीर्ह्रीः कीर्त्युपमासु च ।
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम् ॥
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रबृद्धं लोककण्टकम् ।
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम् ॥
एवं दत्वावरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान् ।
मानुषे चिन्तयामास जन्मभूमिमथात्मनः ॥

करके राम लक्ष्मण भरत एवं शत्रुघ्न इन चार रूपों में राजा दशरथ के तीन रानियों में पुत्रत्व को प्राप्त करें । और महाराज दशरथ के घर में उत्कर्ष प्राप्त लोक को कांटे के समान कष्टदायक, देवताओं के द्वारा नहीं मारने के योग्य रावण नामक राक्षस को हे विष्णु आप संग्राम में मारें, इसप्रकार भगवान् विष्णु जो अपने स्वरूप गुण धर्मादि के तत्वज्ञ थे वे देवताओं को अभिमत वर प्रदान कर इसके पश्चात् मनुष्यलोक में अपनी जन्मभूमि के विषय में चिन्तन किये । इसप्रकार की भूमिका द्वारा उपक्रम करके सनातन भगवान् विष्णु यज्ञ में शत्रुओं के स्वाभिमान का खण्डन करनेवाले हे विष्णु आप आइये आप का मङ्गल हो सौभाग्यवश आप प्राप्त हुए हैं । इसके पश्चात् महान् तेजोराशि परिपूर्ण भगवान् विष्णु लोक पितामह ब्रह्माजी को कहे कि-इत्यादि वचनों के द्वारा विष्णु शब्द का पौनः पुन्येन प्रयोग के द्वारा तत्पश्चात् जिसप्रकार पूर्वकाल में भगवान् विष्णु स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित थे, उसीप्रकार स्वर्ग लोक में पुनः प्रतिष्ठित हुए। इत्यादि कथन से विष्णु शब्द के द्वारा उपसंहार करने से भी श्रीरामचन्द्रजी का भगवान् विष्णु का अवतारत्व प्रतीत होता है । इसलिये विष्ण्वतारत्व निरूपण कामना से पुनः, आप अपने सनातन विष्णुत्व के भाव से लोक शत्रुओं के लिये दुर्धर्ष है । प्राणी मात्र की रक्षा विधान करेंगे इसलिये पुनः विष्णुत्व को प्राप्त किये । इत्यादि वचनों का श्रीरामजी के कारण भूत विष्णु के साथ अभेद सम्बन्ध प्रतिपादन करने की भावना से प्रशंसा परक वचन होने के कारण श्रीरामजी में विष्णु का अवतारत्व सिद्ध होता है । विष्णु का ही अवतार श्रीरामजी के होने के कारण जनक नन्दिनी श्रीसीताजी का आप श्री के श्रीत्व हो, आपकीर्ति में रहनेवाला धर्म कीर्तित्व हो, आप पृथिवी में

इत्युपक्रम्य-यज्ञे विष्णुः सनातनः, आगच्छ विष्णो भद्रन्ते दृष्ट्या प्राप्तो सिमानद । अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाचह । इत्यभ्यासात्ततःप्रतिष्ठितो विष्णुः स्वर्गे लोके यथा पुरा, इत्युपसंहाराच्च श्रीरामस्य विष्ववतारत्वमवगम्यते तदनुरोधेन च 'ततस्त्वमसि दुर्धर्षः तस्माद्भावात् सनातनात् । रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥ इत्यादीनां तत्कारणाभेदधिया स्तुतिपरत्वात् । अतएव श्रीजानक्याः श्रियः श्रीत्वं कीर्तेः कीर्तिः क्षितेः क्षमा इत्यादिना पृथिव्या जडत्वादधिकक्षमावतीत्वमुक्तम् । श्रीजानकीजगदीश्वरीत्वेन सर्वं कर्तुमकर्तु मन्यथा कर्तुं क्षमापि श्रीहनुमता प्रार्थितापि राक्षसीः न ताडितवती, तथा च श्रीरामः शिवस्य प्रभुः नतु विष्णुः, इत्यादीनां विवेचनेन पूर्वापरवाक्ययोर्न विरोध इति चेन्न । 'रमन्ते' 'चिन्मयस्येत्यादि' श्रुतिविरोधेन कल्पितस्य शरीरस्य तस्य सेनादिकल्पनेत्यादिश्रुतिविरोधेन च तस्यावतारित्वमेव । इत्थं यदि श्रुत्यभिमतं न स्यात्तदा सामान्यावतारान्तरवत्तस्य द्वयादिसहस्रान्तभुजत्वबोधकं श्रुतिवचनं च निरर्थकं स्यात् । बलाबलविचारेश्रुतेरेवबलीयस्त्वाच्च ॥२॥

रहनेवाला धर्म पृथिवी क्षमा (सहनशीलता) हो, इत्यादि श्रीसीताजी विषयक प्रशंसा वचनों के द्वारा पृथिवी का जडत्व के कारण उससे अधिक क्षमा शालिनीत्व कहा गया है।

जनकतनया श्रीसीताजी सर्वलोक स्वामिनी है इसिलिए सब कुछ करने के लिए नहीं करने के लिए अथवा दोनों के विपरीत करने के लिए सक्षम होने पर भी तथा श्रीहनुमानजी के द्वारा प्रार्थना करने पर भी राक्षसियों को नहीं आघात पहुँचाई इससे श्रीजानकीजी का पृथिवी के अपेक्षा अधिक क्षमाशीलता बोध होता है, और इसीप्रकार श्रीरामजी श्रीशिवजी के प्रभु हैं न कि विष्णु शिवजी के प्रभु हैं इत्यादि विषय वस्तु का विवेचन के द्वारा पूर्व वाक्य एवं परवाक्यों में किसी प्रकार का विरोध नहीं है, इसलिए श्रीरामजी विष्णु का अवतार हैं ऐसा कहें तो नहीं कह सकते हैं। क्योंकि 'रमन्ते योगिनः, चिन्मयस्य' इत्यादि श्रुतिवचनों के साथ विरोध होने के कारण एवं कल्पित शरीर का उसकी सेना आदि की कल्पना इत्यादि वचनों से और भी श्रुति तथा स्मृति वचनों के विरोध के कारण श्रीरामचन्द्रजी का अवतारित्व ही है ऐसा यदि श्रुति वचन का अभिमत तात्पर्य नहीं होता तो सामान्य रूपसे अन्य अवतारों के समान श्रीरामचन्द्रजी का दो से लेकर सहस्र भुजा पर्यन्त का बोध कराने वाला श्रुति वचन निरर्थक हो जाता इसिलिए श्रीरामजी में अवतारित्व ही है अवतारत्व नहीं ॥२॥

तत् पृथग् वाक्यमवतारान्तरपरमित्यपि दाशरथिं विहायान्यत्र न युज्यते इत्यपि न वक्तव्यम् । 'स्वेनैव भासते' इति 'स्वभूः' इति विरोधात् । श्रीरामस्य विष्णवाद्यवतारत्वे स्वभवनत्वं न युज्यते । 'जीवत्वेनेदमों यस्य' श्रीरामनामनिष्ठ प्रणवकारणपरकश्रुतिविरोधाच्च नोपपद्यते । कार्यविग्रहबोधकवचनस्य कारणविग्रहपरशब्दकारणपरत्वबोधनं न संगतम् । अस्यामन्यासुचोपनिषत्सु भगवत् स्वरूपनाम्नोस्तादात्म्यबोधात् सर्वकारणप्रणवकारणश्रीरामशब्दवाच्य

वह अलग से जो वाक्य कहा है वह अन्य अवतार बोधक है। यह भी दाशरथी श्रीरामजी को छोड़कर अन्यत्र संगत नहीं होता है यह भी नहीं कहना चाहिये। 'स्वयं से ही जो देदीप्यमान होता है वह स्वभू है' इस वचन से विरोध होने के कारण। श्रीरामचन्द्रजी का विष्णु आदि का अवतारत्व स्वीकार करने पर स्वभवनत्व कथन युक्ति संगत नहीं होता है। 'जीवत्वेनेदमों यस्य' इत्यादि श्रीराम निष्ठ प्रणव कारणत्व बोध परक श्रुति वचन के साथ भी विरोध होने से, तर्कसंगत नहीं होता है। व्यावहारिक शरीर बोध करानेवाला वचन का कारण शरीर बोध परक शब्द का कारण परक होना कहना युक्ति युक्त नहीं है। इस श्रीरामतापनीयोपनिषद् एवं अन्यान्य उपनिषदों में भगवान् का स्वरूप एवं भगवान् के नाम का परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध बोध कराये जाने के कारण समस्त ब्रह्माण्ड का कारण स्वरूप प्रणव का कारण श्रीरामचन्द्र शब्द से प्रतिपाद्य तथा सर्वशब्द वाच्यता सिद्ध होने के कारण कार्य विग्रह बोधक का कारण परत्व कथन संगत नहीं है। ॐ जो श्रीरामचन्द्रजी हैं, वे भगवान् हैं जो परब्रह्म हैं जो विष्णु हैं जो महाविष्णु हैं इत्यादि के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी में होनेवाला सर्वरूपित्व अर्थ को प्रकाशित करनेवाला उपसंहार मन्त्रों के साथ विरोध होने के कारण श्रीरामचन्द्रजी में सर्वकारणत्व होना विवाद रहित है। 'श्रीब्रह्माजी ने स्तुति किया' आदि अर्थ को प्रकाशित करनेवाली 'तुष्टाव' इत्यादि मन्त्र का वहां श्रवण होने से उपसंहार वाक्य के अपेक्षा उपक्रम वाक्य के बलवान् होने के कारण उपसंहार वाक्य का प्रशंसा अर्थ वाचक परत्व है यह कथन तो सन्देह रहित उपक्रम वाक्य के लिये ही नियामक है क्योंकि सन्देह युक्त उपक्रम वाक्यार्थ का तो वाक्य शेष के द्वारा ही निर्णय किया जा सकता है। इसतरह का भगवान् मीमांसा सूत्रकार जैमिनि का मत है। जिस तरह (आक्ताः शर्कराः उपदधात्) सनी शर्करा को उपस्थापित करता है। इस वचन का अभिप्राय निर्णय करने के लिये प्रश्न उठता है कि किस द्रव्य से

स्य सर्वशब्दवाच्यतोपपत्तेः । 'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यः परंब्रह्म यो विष्णुः यो महाविष्णुः ...' इतिश्रीरामनिष्ठसर्वरूपित्वप्रकाशकोपसंहारमन्त्रैर्विरोधात् सर्वकारणत्वं निर्विवादम् । तुष्टावेति तत्र श्रवणात् उपसंहारादुपक्रमस्य बलीयस्त्वेनोपसंहारवाक्यस्य प्रशंसापरत्वमिति तु असन्दिग्धोपक्रमस्यैव, सन्दिग्धोपक्रमार्थस्य तु वाक्यशेषादेव निर्णय इति भगवान् जैमिनिः । यथा

सनी हुई घृत से तेल से अथवा चर्वी से इस अवस्था में सन्देह होने पर 'आयुर्वैघृतम्' घृत ही आयुष्य का कारण है इस वाक्य शेष के द्वारा निर्णय होता है कि घृत से सनी हुई शर्करा को उपस्थापित करता है । यह निर्णय जिस तरह वाक्य शेष से होता है। और जिस तरह इस अमृत की जिह्वा को ग्रहण किये, इस श्रुति वाक्य में घोड़ा और गदहा इन दोनों में से किस की जिह्वा को धारण इस तरह का सन्देह होने पर यह कहकर अश्व शब्द से अभिहित होनेवाले प्राणी की जिह्वा को पकडता है इस वाक्य शेष के द्वारा श्रुति वचन तात्पर्य का निर्णय होता है । इसी प्रकार इस सन्दर्भ में भी उपक्रम वाक्यार्थ को सन्देह युक्त होने की स्थिति में वाक्य शेष के द्वारा निर्णय किया जाना चाहिये । श्रुति वचनों के द्वारा ब्रह्म हरि विष्णु आदि शब्दों के भगवान् के समस्त विग्रहों में होनेवाले साधारण धर्मत्व दुःख निवारकत्व, महाव्यापकत्व आदि अर्थों का बोध जनकत्व होने पर भी उच्चारण श्रवण समकाल में ही शीघ्रातिशीघ्र किसी भी सामान्य शरीराकृति वाली भगवान् के आकृति की उपस्थिति नहीं होने के कारण सामान्य भगवत् तत्व का बोध होता है । और यह भी जो आपके द्वारा कहा जाता है कि ब्रह्म एवं हरि शब्दों का सामान्यत्व होने के वाबजूद विष्णु विष्णु महाविष्णु में विष्णु महाविष्णु शब्दों का पर्यायार्थ वाचकता होने के कारण स्मरण किये जाने से तत्पश्चात् इन विष्णु एवं महाविष्णु शब्दों का पशु छागन्याय के द्वारा विष्णु अर्थ में ही सम्पन्नता होती है इसलिये ये विष्णु और महाविष्णु उस श्रीरामजी के ही अवतारी पुरुष हैं इस आशय को ज्ञात कराते हैं । ऐसा यदि कहते हैं तो यह भी नहीं कह सकते हैं । क्योंकि चरम मन्त्र में विष्णु एवं महाविष्णु इन दोनों में पृथकता होने के कारण इन दोनों में एक शरीरत्व नहीं है यह ज्ञात होता है । वैदिक साहित्य व्यवहार प्रयुक्त विष्णु का संसार का पालन करनेवाला चार भुजाओं वाला विष्णु अर्थ परक है । संसार की रचना, परिपालन तथा संहार करने ब्रह्मा विष्णु एवं शंकर का एक साथ पाठ होने से चतुर्भुज विष्णु ही वैदिक देव हैं । महाव्यापक महाविष्णु शब्द

'आक्ता शर्करा उपदधाति' इत्यत्र घृतेन तैलेन वशया वा केनेति सन्देहे 'आयुर्वैघृतमिति वाक्यशेषेणाक्तत्वनिर्णयो यथा भवति। यथा च-इमामगृभ्णन् रशनामृतस्येत्यत्राश्वगर्दभयोर्मध्ये कस्य रशनामगृह्णन्निति सन्देहे इत्यश्वाभिधानीमादत्ते इतिवाक्यशेषान्निश्चयो भवति। तथात्राप्युपक्रमस्य सन्दिग्धत्वे निश्चयोविधेयः, श्रुतिभिः ब्रह्महरिमहाविष्णुशब्दानां भगवत् सर्वविग्रहसाधारणधर्मत्वदुःखहरत्वमहाव्यापकत्वाद्यर्थबोधकत्वेऽपि झटिति कस्यचिद् भगवद् विग्रहस्यानुपस्थितेः। यत्त्वुच्यते ब्रह्महरिशब्दयोः सामान्यत्वेऽपि विष्णुर्विष्णुर्महा

चिन्मय परतत्व में स्थित रहने वाला तत्त्व विशेष में विष्णु की कारणता है यह आशय सिद्ध होता है। और स्मृति शास्त्र व्यवहार में प्रयुक्त विष्णु शब्द का तो आकाश आदि अर्थों का प्रतिषेधक के स्वरूप द्वारा विष्णु शब्द का पर्याय वाचकत्व है। श्रीरामचन्द्रजी परक होना तो इन दोनों विष्णु एवं महाविष्णु शब्दों का तथा अन्यान्य अवतार बोधक विशेष शब्दों का श्रीरामचन्द्रजी के अनेक शरीर वाचकता के द्वारा श्रीरामजी में समावेश हो जाने से तत्तद् विग्रह वाचकत्व होता है। 'चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ' इस श्रीरामतापनीयोपनिषद् वाक्य में महत् शब्द का व्यवहार आकाश आदि अर्थ का निषेध करने के लिये नहीं किया गया है। क्योंकि आकाशादि जडपदार्थ का निषेध तो 'चिन्मय' इस विशेषण के द्वारा स्वतः हो जाता है। इसके लिये महत् पद विशेषण आवश्यक नहीं है न ही वद्ध जीवों का निषेध करने के लिये महत् शब्द का प्रयोग है क्योंकि 'जाते' इस कथन के द्वारा ही निराकरण हो जाता है तथा जीवों के चिद्रूपी होने पर भी अचित् शरीर के साथ जन्म देखे जाने के कारण भी निराकरण होता है, नहीं मुक्तात्माओं का व्यावर्तन के लिए महत् विशेषण है क्योंकि मुक्तात्माओं का श्रीरामचन्द्रजी के विग्रह से पृथक् विग्रह सुना जाता है 'सीतारामौ तन्मयौ अत्र' इत्यादि के द्वारा चिन्मय दाशरथी श्रीरामचन्द्रजी का संसार का मूलकारण के स्वरूप में शास्त्रों में सुने जाने के कारण एवं मूल जीवात्माओं का 'जगद्व्यापारवर्जम्' इस ब्रह्मसूत्र के द्वारा संसार की अथवा सृष्टि की कारणता का निषेध करने के लिए भी सिद्धान्त होने से महत् विशेषण उपयुक्त नहीं होता है। तब महाविष्णु पद में महत् विशेषण क्यों दिया गया है इसप्रकार की जिज्ञासा होने पर उत्तर कहा जाता है कि परब्रह्म का महाव्यापकत्व सूचित करने के द्वारा सर्व व्यापक भगवान् विष्णु का भी कारणत्व बोध कराने के लिए महत् शब्द का प्रयोग किया गया है। ॐ 'जो ये श्रीरामचन्द्रजी हैं

विष्णुरित्यनयोः पर्यायत्वेन स्मरणात् ततः तयोः पशुछागन्यायेन विष्णौ पर्यवसानात्तौ तस्यैवावतारित्वं बोधयतः इति चेत् तदपि न । चरममन्त्रे विष्णु महाविष्णुशब्दयोः प्रयोगेऽपि पार्थक्यात् नैकविग्रहत्वम् । श्रौतस्य विष्णोः जगत् पालकचतुर्भुजविष्णुपरत्वम्, सृष्टिस्थितिलयकर्तॄणां ब्रह्मविष्णुरुद्राणां साहचर्येण पाठात् । महाव्यापको महाविष्णुशब्दः चिन्मयपरतत्वनिष्ठविष्णुकारणत्वं निष्पद्यते । स्मार्तस्य तु विष्णुशब्दस्याकाशादिप्रतिषेधकत्वेन विष्णुपर्यायत्वम्

वे समस्त ऐश्वर्य सम्पन्न भगवान् हैं जो ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर हैं' इत्यादि उपसंहार वचन में श्रीरामचन्द्रजी को विष्णुरूपित्व श्रुति के द्वारा प्रतिपादन होने से विष्णु कारणत्व का बोध होता है । प्राणियों की रक्षा करने की इच्छा करते हुये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विष्णुत्व स्वरूप को उपलब्ध-धारण किये ऐसा श्रीमद्रामायण में देखे एवं सुने जाने के कारण श्रीरामजी में विष्णु कारणत्व प्रतीत होता है । ॐ जो श्रीरामचन्द्रजी हैं वे समस्त ऐश्वर्य सम्पन्न भगवान् हैं जो इस ब्रह्माण्ड के अन्दर एवं बाहर सभी को व्याप्त करते हैं, वे नारायण हैं यह श्रुति कहती है 'ॐ' भगवान् वासुदेव के लिये नमस्कार है जो वासुदेव महाविष्णु हैं इस मन्त्र में श्रुति ने वासुदेव का और महाविष्णु का श्रीरामरूपत्व निरूपण किया है इसीप्रकार नारायण का भी श्रीरामरूपत्व प्रतिपादन करना श्रुति का अभिमत है ।

श्रुति के अपेक्षा स्मृति वचन का दुर्बलता के रूपमें शास्त्रों में व्यवहार देखा जाता है तो भी स्मृति का पर्याप्त प्रयोग वस्तु निर्णय प्रसङ्ग में उपलब्ध होता है अतः स्मृति वचन से भी श्रीवासुदेव महाविष्णु नारायण आदि का श्रीरामचन्द्रजी कारण हैं यह अभिव्यक्त होता है वेद वचन के अनुकूल अर्थात् वेदाविरुद्ध स्मृति शास्त्र प्रतिपादित वचन का भी 'महत्' इस विशेषण का आकाश आदि जड तत्त्व में अतिव्याप्तिदोष निवारण करने के लिए महत् शब्द की सार्थकता होती है इसप्रकार उपसंहार वाक्य में प्रयोग किया गया महाविष्णु शब्द का श्रीरामचन्द्रजी के कार्यरूपता होने के कारण महाविष्णुगत महत् शब्द महाव्यापकत्व अर्थ बोधन परक है इस तरह का समन्वय करना चाहिये । इसप्रकार चरम मन्त्रों में विद्यमान महाविष्णु शब्द सन्देह युक्त उपक्रम वाक्य से अर्थ निर्णय को वाक्य शेष की अधीनता के कारण-जिसमें योगिजन समाधि आदि अवस्था में रमण करते हैं, स्वयं आविर्भूत होनेवाले दिव्य ज्योति परिपूर्ण, भगवान् रुद्र तारक ब्रह्म का व्याख्यान किये ब्रह्मा आदि समस्त

श्रीरामपरत्वं तु तयोरन्येषां च विशेषशब्दानां तदनेकशरीरवाचकत्वेन श्रीरामे पर्यवसानात् तद्वाचकत्वं भवति । 'चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णोरित्यत्र महत्शब्दो नाकाशनिषेधार्थं चिन्मयपदेनैव तन्निषेधात् । नापि बद्धजीवनिषेधाय 'जाते' इत्यनेनैव व्यावृत्तिः, जीवानां चिद् रूपित्वेऽपि अचित् शरीरेण सहजन्मदर्शनात् । नापि मुक्तानां तेषां श्रीरामविग्रहात् पृथक् श्रवणात् । 'सीतारामौ तन्मयावत्रेत्या दिना चिन्मयस्य दाशरथेर्जगत् कारणत्वश्रवणात् । 'जगद् व्यापारवर्जमिति' ब्रह्मसूत्रेण मुक्तजीवानां जगद्धेतुत्वनिषेधात् च । तत् किमर्थमिति जिज्ञासा-

देवताओं का भी उद्धार करने दीर्घानल को...। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के ब्रह्म तारक मन्त्र को वृषभ है वाहन जिनका ऐसे शङ्कर वाराणसी नगरी में निवास करते हुए जप किये, इसतरह के अन्यान्य वचनों के द्वारा चिन्मय परम तत्व आदि अर्थों को प्रकाशित करने वाले वचनों के द्वारा उपक्रम वाक्य में सुना गया महाविष्णु शब्द का परिशेष वचनों से महाव्यापकत्व आदि धर्मों का प्रकाशन करनेवाला महत् शब्द है यह ज्ञात होता है। क्योंकि जिसप्रकार 'हरि' शब्द अपने उच्चारण के समकाल में किसी आकृति विशेष को शीघ्र प्रकाशित नहीं करता है, किन्तु अपना स्वार्थ मात्र बोध कराता है। उसी तरह 'महाविष्णु' शब्द भी अपने उच्चारण समकाल में झट से किसी भी अर्थ विशेष की आकृति को उपस्थित नहीं करता है इसलिये हरि शब्द के समान महाविष्णु शब्द का भी सामान्य ही अर्थ है यह अभिप्राय जानना चाहिये । 'रमन्ते योगिनः' इत्यादि श्रुति वचनों में श्रीराम शब्द की शब्द व्युत्पत्ति के अनुरूप सार्थक होने का श्रुति वचन होने से यह सिद्ध होता है कि श्रीरामजी की यह संज्ञा अनादि सिद्ध है उस अभिप्राय को श्रुति वचन के द्वारा प्रकाशन होता है । यही 'रमन्ते योगिनः' इस श्रुति वचन का अभिप्राय समझा जाता है यानी यही नियत अर्थ है ।

इस तरह श्रीराम शब्द के साथ उच्चारण किया गया ही परम ज्योतिर्मय महान् व्यापकत्व आदि धर्म वाला दो से आरम्भ कर हजार पर्यन्त भुजाओं के समान श्रीरामजी में अशेष अवतारों का मूलकारणत्व है यह समझे जाने से पुनः पुनः कथन रूप अभ्यास भी श्रीराम शब्द के द्वारा कहा गया है यह सिद्ध हुआ । इसप्रकार उपक्रम वाक्य में सुना गया महाविष्णु शब्द सभी जगत् का आधार महाविष्णु को इत्यादि कथन के द्वारा उपसंहार से सुना गया और चरम मन्त्रों में सुना गया महाविष्णु शब्द भी श्रीरामजी का ही सूचक है यह युक्ति युक्त कथन सिद्ध होता है ।

यामुच्यते । परब्रह्मणो महाव्यापकत्वसूचनद्वारा सर्वव्यापकस्य विष्णोरपि कारणत्वबोधनार्थम् । 'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यो ब्रह्माविष्णुरीश्वरः' इत्युपसंहारवचनेविष्णुरूपित्वश्रुतेः । 'रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुप जग्मिवान्' इतिश्रीमद्रामायणोक्तेश्च । 'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्, यो ब्रह्माण्डस्यान्तर्बहिर्व्याप्नोति स नारायणः' इत्याहश्रुतिः । 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय यो महाविष्णुरित्यत्र वासुदेवस्य महाविष्णोश्च श्रीरामरूपत्वम् नारायणस्यापि तथा, श्रुतेरपेक्षयास्मृतेर्दुर्बलतया शास्त्रेव्यवहारेऽपि श्रुत्यनुकूलस्य स्मार्तस्य महदिति विशेषणस्याकाशादावतिव्याप्तिनिरासार्थकत्वेन सार्थक्यम् । एवमुपसंहारवाक्यगतमहाविष्णुशब्दस्य श्रीरामकार्यत्वेन महाव्यापकत्वादिपरत्वेन नेयः । इत्थं चरममन्त्रगतो महाविष्णुशब्दः सन्दिग्धोपक्रमार्थनिर्णयस्थवाक्य-शेषाधीनत्वात् 'रमन्ते योगिनः' 'स्वभू जोतिर्मयः' 'रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे तारकं दीर्घानलं' 'श्रीरामस्य मनुंकाश्यां जजाप वृषभध्वजः' एवमादिवचनैः चिन्मयपरतत्वादिप्रकाशकैरुपक्रमश्रुतमहाविष्णुशब्दस्य परिशेषात् महाव्याप कत्वादिधर्मप्रकाशकत्वम्, यतो हि हरिशब्द इव महाविष्णुशब्दस्याप्युच्चा-रणकाले झटितिकस्यापि विग्रहस्यानुपस्थितेः सामान्यत्वमेवज्ञेयम् । 'रमन्ते योगिनः' इत्यादिषु श्रीरामशब्दस्यान्वर्थकत्वश्रुतेरनादिसिद्धाया रामेति संज्ञायाः प्रकाशनं श्रुतेरभिप्रायोबुध्यते ।

इसप्रकार उपक्रम उपसंहार आदि हेतुओं के द्वारा सत् चित् और आनन्दमय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला अनादि काल से सिद्ध श्रीराम शब्द के द्वारा कहा गया अर्थ को ही 'राम' जिनका नाम है ऐसे परब्रह्म का ही सभी भगवद् विग्रहों का अवतारित्व है यह तात्पर्य निष्पन्न होता है। पूर्व वर्णित कारणों से अवतारी दो भुजाओं को ही धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी का नित्य आकृति के स्वभाव से ही श्रीमान् महाराज दशरथ के भवन में अवतार हुआ यह तात्पर्य भी सिद्ध होता है। जो किसी पुरुष विशेष के द्वारा प्रवर्तित नहीं है ऐसे वेद वचन के अपेक्षया किसी पुरुष के द्वारा प्रवर्तित वचन की दुर्बलता के कारण 'विष्णु' 'नारायण' आदि भगवद् विग्रहों के अवतारित्व साधक इतिहास पुराण आदि ग्रन्थों के वचनों का तात्पर्य श्रीरामचन्द्रजी परत्व ही हैं यह शास्त्र का आशय प्रतीत होता है। यदि इतिहास पुराण आदि मुख्यार्थता हो तो उन श्रुति वचनों का विपरीत अर्थ बोधकता के कारण प्रामाणिकता नहीं होगी।

इत्थं श्रीरामशब्दोच्चारितस्यैव चिन्मयस्य महाव्यापकत्वधर्मवतोद्वयादि-सहस्रान्तकरवदशेषावतारनिदानत्वबोधात् अभ्यासोऽपि श्रीरामशब्दाभिहितस्यैवोपपन्नः । एवमुपक्रमश्रुतो महाविष्णुः 'विश्वाधारं महाविष्णुमित्युपसंहारश्रुतश्च चरमोपश्रुतमहाविष्णुश्च श्रीरामरूपत्वोपपन्नो भवति । इत्थमुपक्रमोपसंहारा-दिभिः सच्चिदानन्दार्थकानादिसिद्धश्रीरामशब्दाभिहितस्यैव श्रीरामाख्यस्य परब्रह्मणः सर्वावतारित्वं निष्पन्नं भवति । तेनावतारिणो द्विभुजस्यैव श्रीरामस्य नित्याकृतिस्वभावादेव श्रीमतोदशरथस्य भवनेऽवतारः सिध्यति । अपौरुषेय-वचनापेक्षया पौरुषेयवचनस्य दुर्बलतया श्रीविष्णुनारायणाद्यवतारिपरेतिहास पुराणादिवचसां श्रीरामपरत्वमेव गम्यते । मुख्यार्थत्वे तु तेषां श्रुतीनां विपरीतार्थकत्वेनाप्रामाण्यं स्यात् । श्रुतिवचनमिव स्मृतिरपि श्रीरामस्यैवा-वतारित्वमाह-

'पूर्णः पूर्णावतारश्च श्यामो रामो रघूद्वहः ।
अंशा नृसिंह कृष्णाद्या राघवो भगवान् स्वयम् ।
श्रीरामस्य कलांशाद् वै अवताराभवन्ति हि ।
कोटिकोटिश्च कार्यार्थे सिन्धौ वीचीव वै मुने ?' इति ॥३॥

मन्त्रभागादर्थवादभागस्य पृथगङ्गीकारात् 'तुष्टाव' इति श्रुतेः चरममन्त्राणां प्रशंसामात्रत्वकथनमनुचितम् । यथा लोके गुणगणोत्कृष्टस्य पुरुषस्य गुणान्

जिसतरह श्रुति वचन श्रीरामजी के अवतारित्व को प्रतिपादन करती है उसी तरह स्मृति भी श्रीरामचन्द्रजी को ही अवतारी कहती है जैसे कि-सभी तरह से पूर्ण एवं पूर्णावतार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं जो श्याम वर्ण के हैं एवं रघुकुल नायक हैं । और उन रघुकुल नायक श्रीरामचन्द्रजी के आंशिक अवतार श्रीनृसिंह श्रीकृष्ण आदि हैं राघव श्रीरामचन्द्रजी तो साक्षात् स्वयं सर्वेश्वर सर्वावतारी भगवान् हैं । क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी के कला अंश से अनन्त अवतार हुआ करते हैं । जो करोडों करोडों की संख्या में कार्य विशेष सम्पादन हेतु अवतार होते हैं जैसे महा समुद्र के अन्दर अगणित तरंग हुआ करते हैं इत्यादि ॥३॥

सभी मनीषीगण मन्त्र भाग से अर्थ भाग को अलग स्वीकार किये हैं इसलिये 'तुष्टाव' ब्रह्माजी स्तुति किये इस श्रुति वचन के कारण चरम मन्त्रों का प्रशंसा मात्र बोधकता है यह जो कहते हैं, उनका कहना समुचित नहीं है । जिस तरह लोक व्यवहार

पुरुषान्तरस्य स्तुतिर्विधीयते, यथा स्वरूपान्तरस्थस्य परब्रह्मादिरूपित्वस्य श्रीरामचन्द्रे आरोप्यते इति तु न युज्यते । सर्वशब्दवाच्यवाचकत्वेन प्रणवहेतुत्वेन रुद्रोपदिष्टत्वेन विष्णवादिसहस्त्रनामतुल्यत्वेन च स्मृतस्य श्रीरामनाम्नः वाच्यान्तरापकृष्टत्वकथनमनुचितम् । यथा 'आदित्यो यूपः' इत्यत्र गुण-वादादर्थवादत्वम् । तथा 'अग्निर्हिमस्य भेषज' मित्यत्र प्रत्यक्षप्रमाणज्ञातस्य नार्थवादत्वमेवं ब्रह्मादिरूपित्वबोधकमन्त्राणां प्रमाणान्तरज्ञातानां च नानु-वादाख्यमर्थवादत्वम् । तस्मादेव 'वायव्यं श्वेतमालभेत' इतिविधेः सान्निध्यात् 'वायुर्वैक्षेपिष्ठादेवता' इतिविधिशेषात् अर्थवादत्वं युज्यते तेन प्रमाणान्तराव गतस्य ज्ञापकत्वात् पूर्वार्थस्य अर्थवादत्वं भवति । अनादिसिद्धः स्वाभाविकः श्रीरामस्तत्परब्रह्मपरंपुरुषादिसामान्यशब्दवाच्यः श्रीविष्णुनारायणादीनां रूपीति

में अनेकानेक गुण समुदाय के कारण प्रशंसनीय पुरुष के गुणों को जिनमें वे गुण वास्तविक में नहीं है ऐसे अन्य पुरुषों में आरोप करके उस पुरुष की प्रशंसा की जाती है । उती तरह अन्यान्य भगवद् विग्रहों में होने वाले गुणों का परब्रह्म परमेश्वरादि रूपित्व का गुणगण श्रीरामचन्द्रजी में आरोप किया जाता है । यह कहना तो युक्ति संगत नहीं होगा । सर्व शब्द वाच्य का वाचकत्व धर्म होने के कारण तथा प्रणव स्वरूप ॐकार की कारणता होने के कारण रुद्र के द्वारा तारक ब्रह्म के स्वरूप में उपदिष्ट होने के कारण एवं विष्णु आदि भगवद् विग्रहों के सहस्त्रनामों के समानता श्रीराम नाम में होने से और शास्त्रकारों द्वारा कथित श्रीराम नाम का अन्य वाच्य भगवद् विग्रहों की तुलना में न्यूनता निरूपण 'सहस्त्रनामतातुल्यम्' इस शास्त्रीय प्रामाणानुसार अनुचित होता है । जिस प्रकार 'यह यूप आहित्य' है इसमें यूप आदित्य नहीं है यह प्रत्यक्ष रूपसे देखा जाता है, किन्तु उसमें आदित्य का आरोप है इसलिये गौण में प्रधान का आरोप होने से गुणवाद के कारण अर्थवादत्व होता है, उसी प्रकार अग्नि हिम की औषधि है इस वाक्य में प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा जाना गया होने के कारण अर्थवादत्व नहीं है, इसी तरह ब्रह्म आदि के रूपित्व का बोध कराने वाले मन्त्रों का अन्य प्रमाणों के द्वारा ज्ञात किये गये विषयों का अनुवाद नामक अर्थवादत्व नहीं कहा जा सकता है । इसीलिये ही 'वायु देवता सम्बन्धित श्वेत पशु का आलम्भन करे' इस विधि वाक्य का सान्निध्य होने के कारण वायु ही अत्यन्त तीव्र गामी देवता हैं । इस विधि शेष वाक्य से जैसे अर्थवादत्व होता है उसी तरह, विधान करने वाले अन्य वाक्यों के

एषामर्थानां स्वतन्त्रप्रमाणत्वं सिद्ध्यति । चरममन्त्राणां श्रीरामनिष्ठपरब्रह्मश्रुत्या तदनुकूलानां चार्थानां स्मृत्या प्रकाशनात् श्रीनारायणादिरूपित्वस्य बाधाभावेन सर्वावतारित्वं श्रीरामस्य निष्पन्नं भवति । इत्थं चरममन्त्रप्रदर्शितन्यायेनैव 'स्वभूर्ज्योतिर्मयः' 'जीवत्वेनेदमों यस्य' इत्यादिस्वपि श्रीरामनामपरत्वबोधक उपनिषद् वचनविरोधेन एषामर्थान्तरपरत्वकल्पनं युक्तमिति चेन्न । उपसंहारेण श्रीरामशब्दकार्यत्वपूर्वकं प्रणवस्य सर्वरूपित्वसिद्धेः । ॐ इत्येतदक्षरं सर्वं रामनामपरत्वं ॐ इति अनयोः परस्परं विपरीतार्धपरत्वेन अन्योपनिषद् वचनसहकृतस्य एतदुपनिषत् प्रणवपरवचनस्य प्रावल्यमितिविज्ञाय प्रणव कार्यत्वाङ्गीकारेण दोषपरिहारः । 'अग्निषोमीयं पशुमालभेत' इतिवाक्यस्य 'न हिंस्यात् सर्वाभूतानि' इत्यर्थस्य विरोधेन एकांशे संकोच इव 'ॐ इत्यक्षरं सर्वम्'
सन्निकटता के कारण अर्थवादत्व कहना तर्कसंगत माना जाता है। इससे प्रतीत होता है कि किसी दूसरे प्रमाण के द्वारा जाने गये अर्थ का बोध कराने वाला दूसरा प्रमाण होने के कारण पूर्व अर्थ का अर्थवादत्व होता है। अनादि काल से सिद्ध अपने स्वभाव से ही होनेवाला अर्थात् जिनका कोई कारण या प्रेरक दूसरा नहीं है ऐसे श्रीरामचन्द्रजी हैं वही परंब्रह्म एवं सर्वेश्वर तथा सर्वावतारी हैं। एवं परमपुरुष पुरुषोत्तम आदि सामान्य शब्द प्रतिपाद्य हैं। तथा विष्णु महाविष्णु नारायण आदि भगवद् विग्रहों के रूपी हैं। इन समस्त अर्थों का इस आधार पर स्वतन्त्र प्रमाणता सिद्ध होती है।

चरममन्त्र गण श्रीरामचन्द्रजी में पूर्ण रूपसे स्थित परब्रह्मत्व का निरूपण करने वाली श्रुति के अनुसार और उन श्रुतियों के अनुकूल अर्थों को प्रकाशित करनेवाली स्मृति के द्वारा अभिव्यक्त करने के कारण नारायण आदि के रूपित्व का निरूपण में किसी तरह की बाधा नहीं होने से श्रीरामचन्द्रजी का सर्वावतारित्व सभी प्रकार से सिद्ध होता है। इसप्रकार चरममन्त्र में दिखाये गये न्याय से ही 'स्वभूर्ज्योतिमयः' 'जीवत्वेनेदमों यस्य' इत्यादि मन्त्रों में भी श्रीराम नाम परत्व का बोध कराने वाले उपनिषदों के साथ इन वचनों का परस्पर विरोध होने के कारण इन शब्दों का अन्यार्थ प्रतिपादन परक होने की कल्पना संगत ही है ऐसा कहें तो यों नहीं कह सकते। क्योंकि उपसंहार वचनों के द्वारा श्रीराम शब्द का कार्यत्व निरूपण पूर्वक प्रणव स्वरूप ॐ कार का सर्वरूपित्व होने की सिद्धि होने से।

ॐस्वरूप यह अक्षर (अविनाशी तत्व) सवकुछ है यह वचन एवं श्रीराम नाम

इत्यादिना प्रणवनिष्ठं सर्वरूपित्वमुक्तेऽपि अस्योपनिषदः एकवाक्यतया श्री-रामपदवाच्यस्य महाव्यापकस्य सर्वावतारित्वनिश्चयात् मूलकारणस्य द्विनिष्ठत्वा नुपपत्तेश्च उपनिषदन्तरकारणपरशब्दानामपि श्रीरामपरत्वं सिद्ध्यति । इतिहास पुराणादयोऽपि इममर्थं स्फुटयति । श्रीरामस्य कलांशादेव तेऽवतारा भवन्ति इत्यादिना । श्रीमद्वाल्मीकीये श्रीरामस्योपक्रमादिहेतुभिरवतारत्वमवगम्यते इति प्रतिपादन परक ॐ इन दोनों ॐकार का आपस में विपरीत अर्थ का बोधन परक होने के कारण दूसरे उपनिषदों के निरूपित वचनों के सहकार से निरूपित इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् के प्रणव स्वरूपार्थ बोधन परक वचन की प्रबलता सिद्ध होती है। यह अच्छी तरह समझ कर श्रीरामजी का प्रणव कार्य है यह सिद्धान्त स्वीकार करने पर ही दोष का समाधान होने से परस्पर समन्वय होता है । अग्नि तथा सोम देवता है जिसका ऐसे तत्सम्बन्धी पशु का आलम्भन करे, इस वधि वाक्य का किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिये, इस अर्थ का विरोध होने के कारण विधि के एक अंश में जैसे संकोच होता है उसीप्रकार ॐ यह अक्षर ही सव कुछ है इत्यादि उपनिषद् मन्त्र के द्वारा प्रणव में स्थित सर्वरूपित्व को कहे जाने पर भी इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् की एक वाक्यता के द्वारा श्रीराम पद के द्वारा प्रतिपाद्य महाव्यापकत्व अर्थ का सर्वावतारित्व स्वरूप में निश्चय होने के कारण और मूलकारणता के दो में स्थित होना युक्ति संगत नहीं होने के कारण अन्य उपनिषदों में कारण परक शब्दों का भी श्रीरामचन्द्रजी परत्व ही है यह सिद्ध होता है । इतिहास पुराण धर्मशास्त्र आदि भी इसी अभिप्राय को प्रस्फुटित कराते हैं । जैसे कि 'श्रीरामचन्द्रजी के कलांश से ही अनन्त अवतार हुआ करते हैं' इत्यादि वचनों के द्वारा श्रीरामजी को सर्वावतारी बोध स्फुट रूपसे कराते हैं । श्रीवाल्मीकीय श्रीमद्रामायण में भी उपक्रम उपसंहार आदि हेतुओं के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का अवतारत्व प्रतीत होता है ऐसा तो नहीं कहना चाहिये । क्योंकि उपक्रम उपसंहार आदि वाक्यों का प्रकृत सन्दर्भ के साथ विरोध होने के कारण और श्रीवाल्मीकीय श्रीमद्रामायण में ही प्रतिपादित पूर्वापर वाक्य के साथ परस्पर विरोध के द्वारा श्रीराम नाम से प्रतिपाद्य अर्थ विशेष का व्यापकत्व आदि गुण के द्वारा प्रभु (सर्व समर्थ का) का प्रभुत्व विदित होता है ।

चार मुखों वाला स्वयम्भू श्रीब्रह्माजी अथवा समस्त देवगण का नायक इन्द्र

तु न वक्तव्यम् उपनिषदुपक्रमादिवाक्यसंदर्भविरोधेन तत्रत्य पूर्वापरवाक्य विरोधेन च श्रीरामनामवाच्यस्य व्यापकत्वादिगुणद्वारा प्रभोः प्रभुत्वं बुद्ध्यते ।

ब्रह्मास्वयंभूश्चतुराननो वा, इन्द्रोमहेन्द्रः सुरनायको वा ।
रुद्रस्त्रिनेत्रः त्रिपुरान्तको वा, त्रातुं न शक्ता युधि रामवध्यम् ॥१॥

'न कालस्य न रुद्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च ।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनुमतः'

इत्यत्र श्रीहनुमत् कर्मणो विष्णुकर्माधिक्योक्तेः तत् स्वामिनः कथं न विष्णो राधिक्यम् ? उपसंहारेऽपि

या महेन्द्र अथवा त्रिपुरासुर का संहार करने वाला एवं तीन आँखों वाला रुद्र देवता, ये सभी देवगण संग्राम के अन्दर श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा वध करने योग्य व्यक्ति की रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। न यमराज का, नहीं रुद्र का, न विष्णु का और नहीं कुवेर का श्रीरामचन्द्रजी के जैसे लोक प्रसिद्ध क्रिया कलाप सुने जाते हैं जिसप्रकार के संग्राम के अन्दर क्रिया कलाप श्रीहनुमानजी के सुने जाते हैं। इस सन्दर्भ में श्रीहनुमानजी के क्रिया कलाप का भगवान् विष्णु की अपेक्षा अधिकता कहे जाने के कारण-इन सभी से समधिक महत्व श्रीहनुमानजी का हैं। तब श्रीहनुमानजी के जो परम प्रभु हैं उनका सामर्थ्य कितना अधिक होगा यह अनुमान किया जा सकता है। इससे श्रीरामजी में अधिकता है यह कैमुतिक न्याय से स्वतः सिद्ध है। उपसंहार वचन में भी-क्योंकि प्राचीन काल में सभी लोकों को समेटकर स्वयं ही अपनी माया शक्ति के द्वारा सभी को समेट कर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महासागर के जल मध्य में शयन करते हुए आप जल में पूर्व काल में मुझे उत्पन्न किये थे। जिसको महासागर के जल में आपने जन्म दिया वह मैं सम्प्रति भार मुक्त हो कर सकल चराचर श्रेष्ठ स्वामी आपकी उपासना करना चाहुता हूँ। आप मेरे प्रभाव को उत्पन्न करनेवाले हैं अतः आप ही समस्त प्राणियों की रक्षा करें। पूर्वकालीन उस सनातन भाव के होने के कारण आप जिस किसी से धर्षित नहीं किये जा सके ऐसे अतुल पराक्रम सम्पन्न हो, समस्त चराचर की रक्षा करने की कामना करते हुए श्रीरामजी ही विष्णुत्व स्वरूप को धारण किये। इसतरह उपक्रम अभ्यास तथा उपसंहार वचनों के द्वारा जो श्रीरामचन्द्रजी का विष्णु नारायण आदि भगवद् विग्रहों का कारणत्व प्रकाशित किया गया-इन उपक्रम अभ्यास एवं उपसंहार के द्वारा महाविष्णु आदि शब्दों का जिसप्रकार

संक्षिप्य हि पुरा लोकान् मायया स्वयमेव हि ।
महार्णवेशयानोप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ॥
सोऽहं सन्यस्तभारो हि त्वामुपास्ये जगद्गुरुम् ।
रक्षां विधत्स्व भूतेषु मम तेजस्करो भवान् ॥
ततस्त्वमसिदुर्धर्षस्तस्माद् भावात् सनातनात् ।
रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥

अन्यार्थ परकत्व का बोध किया जाता है। उसी तरह विष्णु आदि शब्दों का भी यथा पूर्व अन्यार्थ परकत्व समझना चाहिये।

इस प्रकरण में 'अपने आप को चार तरह से विभाजित करके' ऐसा कहकर, इसप्रकार वे देवाधिदेव देवताओं के लिये वर प्रदान किये वे आत्मवान् विष्णु हैं' ऐसा कहा गया है। इस प्रासङ्गिक वचन में आत्मन् शब्द का प्रयोग किया गया है। अब यह प्रश्न उठता है कि उस आत्मन् शब्द का क्या अर्थ है। और किस प्रकार अर्थ विशेष का निर्णय होगा, इस तरह तात्विक निर्णय जानने की इच्छा होने पर, समाधानार्थ कहा जाता है। आत्मन् शब्द का प्रयोग देह, धैर्य, जीवात्मा, स्वभाव तथा परमात्मा अर्थों में होता है। इस कोश वचन के अनुसार आत्मन् शब्द की अनेकार्थता है। इस परिस्थिति में विष्णु को प्रत्यक्ष रूपसे उपस्थित होने के कारण विष्णु अर्थ नहीं हो सकता है। संग्राम आदि का प्रकरण नहीं होने के कारण आत्मन् का धीरता अर्थ भी नहीं हो सकता है, किसी प्रयोजन विशेष को दृष्टिगत करके शब्द प्रयोग किया जाता है। ऐसा कोई प्रयोजन नहीं होने से जीवात्मा अर्थ भी नहीं हो सकता है। तब अन्य कोई उपाय नहीं होने से परिशेषात् आत्मन् शब्द का इस प्रकरण में परमात्मा अर्थ है। और उस परमात्मा अर्थ से उपलक्षित कारण परत्व बोध होता है। इस तरह रावण नामक दुःसाहसी पराक्रमी राक्षस का वधकी आकांक्षा रखने वाले इत्यादि श्रीब्रह्माजी के वचन का उपसंहार वचन के द्वारा, मनुष्ययोनि सम्बन्धित शरीर में अपना मन सुस्थिर किये, इत्यादि ब्रह्माजी के वचन का उपसंहार वचन के साथ मनुष्य योनि सम्ब्रन्धित शरीर में लगाया, इस सन्देह रहित वचन के अनुरोध से भगवान् विष्णु अपने स्वरूप अर्थ अपना कारण स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी की जन्मभूमि को मनुष्य लोक विचार किया, यह अभिप्राय प्रकाशित होता है। श्रीवाल्मीकीय श्रीमद्रामायण के वालकाण्ड में कहा गया चार प्रकार में स्वयं को विभाजित कर, इस तरह से भगवान्

इतिव्यक्तीकृतं यत् सर्वेश्वरश्रीरामस्य श्रीविष्णुनारायणादिकारणत्वम् । इत्युपक्रमाभ्यासोपसंहारैर्महाविष्ण्वादिशब्दानां यथार्थान्तरपरत्वं तथा विष्ण्वादीनामपि ज्ञेयम् । अत्र कृत्वात्मानं चतुर्विधमित्युक्त्वा, एवं दत्वावरं देवो देवानां विष्णुरात्मवामित्युक्तम्, तत्रात्मन् शब्दस्य प्रयोगः तस्य कोऽर्थः कथञ्च विशेषार्थनिश्चय इतिजिज्ञासायां सत्याम्मुच्यते->आत्मा देहे धृतौ जीवे स्वभावे परमात्मनि' इत्यनेकार्थत्वम् । तत्र प्रत्यक्षत्वात् न विष्णुः, युद्धादिप्रकरणाभावात् धृतिश्च न, प्रयोजनाभावान्न जीवः, तदेवं परिशेषात् परमात्मार्थस्तदुपलक्षितं कारणपरत्वम् । इत्थं रावणस्य बधाकांक्षीत्यादिब्रह्मणोवचनस्योपसंहारवचनेन 'मानुषेषु मनोदधे' इत्यसन्दिग्धवचनानुरोधेन विष्णुः स्वात्मनः स्वकारणस्य श्रीरामस्य जन्मभूमिं मानुषे लोके चिन्तयामास इत्यर्थः । बालकाण्डोक्तस्य चतुर्विधमित्यस्य विष्णुप्रतिदेवकृतायाः प्रार्थनायाः->

विष्णु के प्रति देवताओं की द्वारा की गयी प्रार्थना का-इन चारों भाइयों में श्रेष्ठ महान् प्रभाव शाली अपने पिता दशरथजी को महान् आनन्द प्रदान करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी प्राणियों में स्वयम्भू ब्रह्मा के समान अतिशय श्रेष्ठ गुणवान् हुए । वे श्रीरामचन्द्रजी देवताओं के द्वारा उन्मत्त किया गया रावण का वध चाहने वाले देवताओं के प्रार्थना किये जाने पर मनुष्य लोक में सनातन विष्णु प्रादुर्भूत हुये । इसका आशय यह है कि सर्वव्यापक विष्णु जो अनादि अजन्मा आदि गुणों से युक्त हैं वे देवताओं के द्वारा यज्ञ में प्रार्थित हुए, इसप्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के प्रति की गयी देवकृत प्रार्थना का इस तात्पर्यार्थ के द्वारा विरोध का परिहार होता है । और यहां पर 'विष्णुत्व को उपलब्ध किया' यह वचन ही प्रमाण स्वरूप है । दोनों ही स्थानों पर देवताओं के द्वारा की गयी प्रार्थना के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी को परत्व समझा जाता है । अखण्ड परब्रह्म परमात्मा का खण्डन नहीं करने योग्य धर्म के होने पर भी चार भागों में विभाजन, उन विभाजन में भी न्यूनता अधिकता, स्वामित्व और सेवकत्व भाव का सम्बन्ध ये सभी वातें युक्ति युक्त संगति को नहीं प्राप्त करती है । 'वैशेष्यात् तद्वादस्तद्वादः' इस ब्रह्मसूत्र के कथनानुसार प्रमाण के आधार पर जैसे पांच महाभूतों से युक्त भौतिक शरीर के होने पर भी अधिक अंश होने के कारण यह पार्थिव शरीर है यह व्यवहार किया जाता है । क्योंकि शरीर में पृथिवी की प्रधानता है इसलिये, स्वामी और सेवक सम्बन्ध होने पर विष्णु का एवं विष्णु के कारण स्वरूप श्रीराम

तेषामपि महातेजाः रामोरतिकरः पितुः।
स्वयम्भूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः ॥
स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
अर्थितोमानुषे लोके यज्ञे विष्णुः सनातनः ॥

सर्वव्यापकोऽनादिः विष्णुः देवैः यज्ञे अर्थितः, इति श्रीरामं प्रतिकृतायाः देवकृतप्रार्थनायाः परस्परविरोधपरिहारः, अत्र च विष्णुत्वमुपजग्मिवानिति प्रमाणम् । उभयत्र देवप्रार्थनया श्रीरामपरत्वं बुध्यते । परमात्मनोऽखण्डस्य ब्रह्मणः केनाऽपि भेदकेन खण्डनानर्हतया, चतुर्धाविभाजनं तत्रापि न्यूनाधिक्यम्, स्वाम्यनुचराभावश्चनोपपद्यते । 'वैशेष्यात्तद्वादस्तद्वादः' इतिब्रह्मसूत्रप्रमाणेन यथा पञ्चभूतात्मकेऽपि शरीरे पार्थिवं शरीरमित्युच्यते, तत्र पृथिव्यां प्राधान्यात्, तथा स्वाम्यनुचरेषु विष्णोः तत्कारणस्य च विष्णुपदस्य तदात्मपदस्य वा तत्तदनुचरलक्षकत्वात् चतुर्विधत्वम् । तेन कृत्वात्मानं चतुर्विधमित्यस्यानुचरैः सहितमात्मानं विधायेत्यर्थः श्रीरामनिष्ठविष्ण्वाद्यवतारित्वबोधकतदनुचरलक्ष्मणादीनाञ्च शेषाद्यवतारित्वपरवचनानुरोधात् । विष्णुत्वमुपजग्मिवान् इत्यस्य-
'स त्वं वित्रास्य मानासु प्रजासु जगतां वर ।
रावणस्य वधाकांक्षी मानुषेषु मनोदधा'

चन्द्रजी का विष्णु पद का तथा विष्णु के आत्मा पद का या परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी के अनुचर अर्थ को लक्षित करने वाला होने के कारण 'कृत्वा आत्मानम् चतुर्विधम्' में चतुर्विधत्व सिद्ध होता है। इससे कृत्वा आत्मानम् चतुर्विधम्, इस वाक्य का सेवकों के सहित अपने स्वरूप को बना कर यह अभिप्राय होता है। श्रीरामचन्द्रजी में स्थित होने वाला विष्णु आदि भगवद् विग्रहों के अवतारित्व का बोध कराने वाले और श्रीरामजी के अनुचर लक्ष्मण आदि का शेष के अवतारित्व सूचक वचनों के अनुरोध से यह विभाजन है। और 'विष्णुत्वमुपजग्मिवान्' इस वचन का हे सभी लोकों में श्रेष्ठ भगवान् श्रीराम ? इसप्रकार के गुणगण सम्पन्न आप समस्त प्रजाजन को विशेष रूपसे उद्विग्न किये जाते हुए होने पर उस रावण का वध करने का अभिलाषुक होकर मानव शरीर में अपने मनको लगायें। और इस वचन के साथ जो विष्णु स्वरूपता को प्राप्त किये श्रीरामजी जिनका नाम है वे विष्णु के कारणरूप का ही महाराज दशरथजी के घर में प्रादुर्भाव हुआ यह तात्पर्य सुस्पष्ट किया जाता है। जो आप

इतिवचनेन च यो विष्णुरूपत्वं प्राप्तवान् श्रीरामाख्यस्तत्कारणस्यैव राज्ञो दशरथस्य भवने प्रादुर्भाव इतिस्फुटीक्रियते । यस्त्वं विष्णुत्वमुपजग्मिवान् स त्व मित्यन्वयः । तेन कारणाभेदबुद्ध्या प्रयोग इत्यवगम्यते ॥४॥

श्रुत्यनुगामित्वमन्तरा लौकिकवाक्यस्य पुरुषवाङ्मनसातीतस्य केवल शब्दप्रमाणवेद्यस्य परब्रह्मणो बोधाय नहि प्रामाण्यं भवति । श्रुत्युपसंहारापेक्षया स्मृत्युपसंहारस्य दुर्बलत्वात्, ब्रह्मणोदूतमुखेन श्रीरामस्य स्वर्गारोहणाय प्रार्थना,
विष्णुत्व को उपलब्ध किये थे वे आप श्रीरामचन्द्रजी हैं इस प्रकार समन्वय होता है। इसलिये कार्य कारण में अभेद की भावना से व्यवहार किया गया है यह प्रतीत होता है ॥४॥

यदि लौकिक प्रमाण वाक्य वेद वचन का अनुगामी होता है तो प्रामाणिक होता है। वेदानुसारित्व के विना लोक द्वारा प्रयुक्त वाक्य का मानव के वाणी तथा मन के अतीत सभी अन्य प्रमाणों को छोड़कर केवल शब्द प्रमाण मात्र से जानने योग्य परब्रह्म परमेश्वर का ज्ञान करने के लिये प्रामाणिकता नहीं होती है। वेद वचन के उपसंहार वाक्यों की तुलना में स्मृति वचनों के उपसंहार की दुर्बलता के कारण, श्रीब्रह्माजी के दूत के मुख से श्रीरामचन्द्रजी के स्वर्गारोहण के लिये प्रार्थना किया जाना तथा श्रीब्रह्माजी के माध्यम से श्रीरामजी का चरित्र का अभिप्राय प्रकाशन के लिये 'समुद्र जल के मध्य में शयन करते हुए आपने पूर्व काल में मुझे जल में जन्म दिया' इत्यादि कथन, व्यापक तथा अनादि काल से परम व्यापक श्रीरामचन्द्रजी मानव रूपमें जन्म लिये। आदि निरूपण भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के विषय में होने वाली प्रतीति जनित साधारण बुद्धि का निराकरण करने के लिये ही है। जो 'विश्व व्यापी राघव' इत्यादि कथन के द्वारा 'ॐकार कारणस्वरूप जो श्रीरामचन्द्रजी हैं जो विष्णु हैं, महाविष्णु हैं' इत्यादि श्रीरामतापनीयोपनिषद् के चरममन्त्रों के द्वारा इस उपनिषद् में श्रीरामचन्द्रजी में होनेवाली विश्व व्यापनशीलता आदि श्रुति वचनों से ज्ञात होता है कि श्रीरामचन्द्रजी श्रीविष्णु नारायण महाविष्णु आदि स्वरूपधारी होने के कारण सर्वावतारी हैं यह जानना चाहिये। तत्पश्चात् व्यापक श्रीरामचन्द्रजी जैसे पूर्वकाल में स्वर्ग में प्रतिष्ठित थे उसीप्रकार पुनः प्रतिष्ठित हो गये। जिन श्रीरामचन्द्रजी से यह सबकुछ चराचर सहित तीनों लोक व्याप्त है। यहां पर साधारण जीव के समान श्रीरामचन्द्रजी की भी स्वर्ग की प्राप्ति हुई। इस विषय का निराकरण करने के लिये-'जैसे पूर्व काल'

तच्चरितप्रकाशनाय 'अप्सु मां त्वमजीजनः' इत्यादिकथनं 'जज्ञे विष्णुः सनातनः' इति च श्रीरामविषयकप्रातीतिकबुद्धिनिरासायैव 'विश्वव्यापी राघवो यः' इत्यादिना 'यो वै श्रीरामचन्द्रः यो विष्णुः यो महाविष्णुः' इत्यादिचरममन्त्रैश्च रामतापनीये श्रीरामनिष्ठविश्वव्यापकत्वादिश्रुतेः श्रीरामोविष्णुनारायणादिरूप धारित्वेन सर्वावतारीति ज्ञेयम् ।

ततः प्रतिष्ठितो विष्णुः स्वर्गे लोके यथा पुरा ।
येन व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

इस शब्द का व्यवहार किया गया है। श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य नहीं थे, इस मनुष्यत्व बुद्धि का खण्डन करने के लिये विष्णु शब्द का प्रयोग किया गया है।

साधारणतया मुक्त जीवात्मा का भी शास्त्रों में धर्मभूत ज्ञान द्वारा व्यापकत्व सुना गया है इसलिये 'येन व्याप्तम्' जिससे यह चराचर सहित तीनों लोक व्याप्त है, ऐसा कहा गया। श्रीमद्रामचन्द्रजी में सदैव अपनी मानवीय वंश परम्परा का प्रभाव होने के कारण मनुष्यत्व की भावना है-'मैं अपने आपको मानव कुलोत्पन्न मानता हूँ। दशरथ महाराज का आत्मज रामचन्द्र को' इत्यादि श्रीरामजी के द्वारा अपने कण्ठ से कहे जाने से मनुष्यत्व बुद्धि प्रमाणित होती है। महर्षि श्रीवशिष्ठजी के द्वारा विभिन्न प्रकार से, वत्स, राघव, रघुनन्दन, दशरथ तनय आदि शब्दों के द्वारा नाम का उच्चारण किया जाना भी मानवीय भावना का परिचायक है। 'हा सीते हा जानकी' इत्यादि शब्दों के माध्यम से साधारण मानव जिसप्रकार प्रिय वियोग में विलाप करता है उस तरह शोकाकुल मनुष्य के आचरण के समान चरित्र दिखाने से साधारण मनुष्य के समान जनक तनया श्रीसीताजी में आसक्ति प्रदर्शन भी मनुष्यत्व बुद्धि का परिचायक है। राक्षसराज रावण की भी श्रीरामजी के प्रति मनुष्य भावना थी। हिरण्य कशिपु नामक दैत्य की भी भगवान् नृसिंहजी के प्रति नृसिंहत्व भावना थी, यह भगवान् के द्वारपाल को दिया गया ब्राह्मण शाप का निर्वाह के लिये हुई। और शिशुपाल को देहावसान के समय में अमानुषत्व बुद्धि हुई अर्थात् सकल चराचर नायक भगवान् हैं यह भावना हुई। और भगवद् बुद्धि के कारण ही जय विजय को मोक्ष लाभ हुआ। इसी विषय को विष्णुपुराण में मैत्रेय के प्रश्न का उत्तर देते समय कहा गया है। इसके वाद यह शिशुपाल श्रीकृष्णजी के द्वारा मारे जाने पर जिन भोगों को देवताओं के द्वारा भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है, इस संसार में और परलोक में भगवत् सायुज्य

अत्र साधारणजीववत् श्रीरामस्यापि स्वर्गप्राप्तिनिरासाय 'यथा पुरा' इति मनुष्यत्वनिरासाय 'विष्णुरिति' जीवात्मन अपि स्वधर्मभूतज्ञानेन व्यापकत्व श्रवणात् अतो 'येन व्याप्तमित्युक्तम् । श्रीरामचन्द्रे मनुष्यत्वबुद्धिः सदास्वकुलाचा रावेशात् 'आत्मानं मानुषं मन्ये' 'रामं दशरथात्मजमिति स्वकण्ठत उक्तेः । महर्षिणा श्रीवशिष्ठेनापि बहुधा वत्स, राघव, रघुनन्दन दशरथात्मजेत्यादिना नामोच्चारणम्, 'हा सीतेत्यादिना शोकाकुलमानववत् चरित्रप्रकाशनम् सामान्य जन इव जानक्यामासक्तिः, रावणस्य मनुष्यबुद्धिः, हिरण्यकशिपोरपि नृसिंहत्वबुद्धिः ब्राह्मणशापनिर्वाहाय, शिशुपालस्य चान्तकाले अमानुषत्व बुद्धिस्तेनैव च जयविजययोर्मुक्तिः स्तदुक्तं विष्णुपुराणे मैत्रेय प्रश्ने 'अथायं निहतो भोगानप्राप्यानमरैरपि । नालभत्तत्र चैवेह सायुज्यं स कथं पुनः ॥ संप्राप्तः शिशुपालत्वे सायुज्यं शाश्वते हरौ । तदुक्तं श्रीपाराशरेण नृसिंहाख्यमपूर्वशरीरा

स्वरूप मोक्ष को किस कारण से प्राप्त किया जब रावण हिरण्य कशिपु का देह था तब प्राप्त न कर सका और शिशुपालत्व प्राप्त करने पर भगवान् विष्णु में शाश्वत सायुज्य मुक्ति को कैसे प्राप्त किया ।

यही विषय पराशर पुत्र भगवान् वेदव्यासजी के द्वारा भी कहा गया है कि मनुष्य और सिंह का मिला जुला नृसिंह नाम का अपूर्व शरीर के आविर्भूत करने पर भी हिरण्य कशिपु की यह भावना नहीं हुई कि यह भगवान् विष्णु हैं, अपितु नृसिंह हैं यही बुद्धि हुई। दशमुख धारी रावण जन्म धारण की अवस्था में भी तीनों लोकों से अधिक भोग योग्य साधन सम्पत्ति ऐश्वर्य को उपलब्ध करने पर भी, जिनका कभी आरम्भ जन्मादि निधन मृत्यु नहीं होता है ब्रह्मस्वरूप नित्य श्रीरामजी में कामातुर होने के कारण जनकनन्दिनी श्रीसीताजी में आसक्ति होने से दशरथ का पुत्र मनुष्य है यही बुद्धि रही, न कि ब्रह्म बुद्धि हुई। लेकिन जब शिशुपाल शरीर धारण किया उस समय पर तो शयन भोजन ग्रहण बिहार आदि समस्त क्रिया कलापों में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के नाम का ही भूयोभूयः स्मरण होने के कारण जिसका अनेक जन्म सञ्चित समस्त पापों के दूर हो जाने से चित्त निर्मलता वश सुदर्शन चक्र के प्रकाश पुञ्ज से रमणीय तथा रेशमी पिताम्बर धारी भगवान् परमेश्वर को देखा इसलिये उसी समय भगवद् विग्रह विज्ञानवशगत शिशुपाल उसी समय श्रीकृष्ण द्वारा सुदर्शन चक्र से मार दिया गया। मृत्यु काल में समस्त जन्म जन्मार्जित पापपुञ्ज को भस्मसात् हो

विर्भावेऽपि विष्णुरयमिति तात्त्विकबुद्धिर्नाभूत । दशाननत्वेऽपि त्रैलोक्याधिकभोगसम्पदाप्तेरनादिनिधने श्रीरामे कामपरवशतया श्रीजानक्यामासक्त्या च दाशरथित्वबुद्धिरेवाभूत् । शिशुपालत्वे तु शयनाशनाटनविहरणादिषु तन्नाम्न एव स्मरणात् अपगताखिलमलत्वात्, चक्रांशुमालोज्वलं पीतकौशेयवाससं भगवन्तमद्राक्षीत् तदैवाशु व्यापादितः । तदानीं दग्धाखिलसञ्चितमलत्वात्तस्मिन्नेवलयमुपययौ । इत्थं विप्रशापवशाद् जन्मद्वये नृसिंहत्वमानुषत्वदृष्टेः मोक्षाभावः शापावसाने च तत् स्वरूपज्ञानपूर्वकं परब्रह्मणोज्ञानात् तस्मिन्लयः ।

जोने से उन परमात्मा श्रीकृष्ण में ही विलय को प्राप्त किया । इसप्रकार ब्राह्मण के शाप के कारण हिरण्य कशिपु एवं रावण इन दोनों जन्मों में नृसिंहत्व एवं मनुष्यत्व दृष्टि होने से तत्व ज्ञान के अभाव में उनकी मुक्ति नहीं हुई । लेकिन ब्राह्मण शाप का अन्तकाल होने पर, भगवान् के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होने के पश्चात् तत्व ज्ञान पुरस्सर परब्रह्म का ज्ञान होने पर सायुज्य मुक्ति स्वरूप परब्रह्म में विलय हो गया। मृत्यु से पूर्व कालीन अवस्थाओं में श्रीकृष्ण मनुष्य है भगवान् नहीं इस मानवीय भावना वश रागद्वेष था, विशिष्ट प्रकार के द्वेष से अनुवद्ध मानस होने से मनमें पुनः पुनः विशेष प्रकार से निन्दा करना, सम्यक् रीति से डराना धमकाना आदि क्रियाओं में पुनः पुनः कृष्ण का संस्मरण होने से मानसिक निर्मलता का समुदय होने पर भगवान् श्रीकृष्ण को तात्विक रूपसे दर्शन किया 'समस्त चराचर में व्याप्त सर्वात्मा ईश्वर कृष्ण में अपत्य (पुत्र) की भावना नहीं करना' इत्यादि वचनों के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि वसुदेव देवकी आदि की भी भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति पुत्र आदि की भावना थी । भगवान् कृष्ण आदि के शरीर में तो जनसाधारण को परमेश्वरत्व की भावना नहीं थी, सामान्य गोपाल कृष्ण पुत्र सखा शत्रु आदि की ही बुद्धि थी । इसीलिए गीता में अर्जुन के प्रति भगवान् श्रीकृष्णजी के द्वारा कहा गया है कि-'हे अर्जुन तुम इस लौकिक चर्मचक्षु के द्वारा सर्वभूतात्मा जगदीश्वर श्रीकृष्ण को अपनी आँखों से नहीं देख सकते हो, मैं दिव्य (अलौकिका) चक्षु (नेत्र) तुम्हारे लिये प्रदान करता हूँ । तुम मेरे ईश्वर सम्बन्धी योग को दिव्य दृष्टि से देखो' ऐसा कहा है । वह लोक शास्त्र प्रसिद्ध तथ्य प्रतीति कारिणी बुद्धि मोक्ष प्रदान करनेवाली हुआ करती है। इसीलिए शिशुपाल आदि के प्रति भस्मसात् हो चुका है समस्त जन्म जन्मान्तर सञ्चित पाप संग्रह जिसका ऐसा कहा गया है। जब जय विजय

पूर्वस्मिन् काले तु श्रीकृष्णोमनुष्य इत्येव बुद्धिः, विद्वेषानुबद्धचित्ते भूयो भूयोविनिन्दनसन्तजादिषु स्मरणेन नैर्मल्यात् परब्रह्मभूतं भगवन्तमद्राक्षीत् 'मापत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे' इत्यादिभिरनुमातुं शक्यते यद् वसुदेवादीनामपि पुत्रादिबुद्धिरासीत् । कृष्णादिशरीरे तु सामान्यलोकस्य न परमेश्वरत्वबुद्धिः । अतएवोक्तम्-'न च मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा । दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्' इति । सा प्रातीतिकीबुद्धिर्मुक्तिसाधिका, 'दग्धाखिलाघसञ्चयः' इतिशिशुपालादिपरः, पार्षदत्वे पापाभावात् । 'एकशृङ्ग वराहस्त्वम्' 'श्रीमान् चक्रायुधः प्रभुः' इत्याद्यौपनिषद्वाक्यैः परब्रह्मत्वादि सर्वरूपित्वप्रकाशनात् । केवलमानुषबुद्धिर्मुक्तिवाधिका 'प्रकृतेर्विकृतेर्वापि यत्रोक्तिः स्याद् द्वयोरपि । वाचकः प्रकृतेः संज्ञा गृह्णाति विकृतेर्नतु' इति वचनेन वाच्यस्य श्रीरामस्यैव प्रकृतित्वोपपत्तिः । एकशृंगवराहादिकथनेन शौभरिवत् युगपत् क्रमेण वा श्रीरामस्य बहुरूपधारित्वं सर्वरूपित्वं मुख्यत्वं चोपपद्यते ।

स्वरूप में भगवान् का नित्य पार्षद था, उस स्थिति में पाप होने की बात ही कहां। 'आप एक शृङ्गधारी भगवान् वराह हो, आप समग्र शोभा सम्पन्न सुदर्शन चक्रधारी कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ परमेश्वर हो' इत्यादि उपनिषद् सम्बन्धी वाक्यों के द्वारा परब्रह्मत्व परमेश्वरत्व सर्वरूपित्व आदि धर्मों का प्रकाशन होने से सकल जगन्नियन्ता परमात्मा में साधारण मनुष्य होने की भावना मोक्ष प्राप्ति में बाधा उपस्थित करने वाली है। प्रकृति (मूलकारण) अथवा विकृति (कार्य) का इन दोनों का ही जहां एक साथ कथन होता है वहां पर वाचक शब्द प्रकृत्यर्थ का सम्यग् बोधक होता है न कि विकृति वाचक अर्थ का। अर्थात् प्रकृति विकृति वाचक दोनों शब्दों का एक साथ प्रयोग होने की दशा में प्रकृत्यर्थ बोध ही होता है। इस वचन के द्वारा प्रकृत्यर्थ प्रतिपाद्य श्रीरामचन्द्रजी की ही संज्ञा होगी इसलिये मूलकारण स्वरूप अर्थ की युक्ति के आधार पर सिद्धि होती है। एक मात्र शृङ्ग धारण करने वाला वराह आदि कथन से, जिसप्रकार पौराणिक कथा में है कि जीव कोटि के ऋषि श्रीशौभरी ने अनन्त शरीर धारण कर जन्म जन्मान्तर सञ्चित पुण्य पाप को एक साथ भोग कर लिया था। तव सर्वेश्वर श्रीरामजी का एक कालावच्छेदेन अथवा क्रमशः भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का अनन्त स्वरूप धारण शालिता अथवा सर्वरूप धारण शीलता और सर्वदेव प्रभुखता आदि सिद्ध होने में कौनसी आश्चर्य की वात है।

प्रणवस्य श्रीरामकार्यत्वश्रुतेः श्रीरामनाम्नः विष्णुसहस्रनामतुल्यश्रुतेश्च कारणापेक्षया कार्यस्य दुर्बलत्वाच्च विष्णुनारायणवासुदेवनृसिंहगोपालशिव दुर्गागणेशादिबहुदेवतामन्त्रादीनामवयवत्वं प्रणवस्य । तेन च साधारण्यम् । यथा षडक्षरतारकनाम्नः श्रीराममन्त्रस्य बीजमन्त्रशेषयोः विवर्ण्यविवरणसारूप्यं भवति, माहात्म्यतश्चैकरूपता दृश्यते न तथाऽन्यत्र । यद्यपि मन्त्रेषु श्रेष्ठताविषये तारतम्यमवलोक्यते, यथा गाणपत्यादिमन्त्रापेक्षया वैष्णवमन्त्रस्य श्रेष्ठत्वम्, किन्तु युक्तिसिद्धोऽयं पक्षः श्रुत्यपेक्षया दुर्बलः । उपनिषत्सु वाच्यश्रेष्ठत्वम-श्रेष्ठत्वञ्चाश्रित्य वाचकस्य श्रेष्ठत्वमश्रेष्ठत्वं वाबगम्यते । 'सीतारामौ तन्मया-वत्रपूज्याविति वाचकवाच्ययोस्तादात्म्यबोधात् । 'ओमित्येतदक्षरं सर्वमित्यादिना

प्रणव स्वरूप ओंकार का भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का कार्यत्व प्रतिपादक श्रुति वचनानुसार और भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का श्रीविष्णुके हजारों नामें के तुल्यत्व प्रतिपादक श्रुति के अनुसार, कारण के अपेक्षा कृत कार्य की दुर्बलता के कारण श्री विष्णु नारायण वासुदेव नृसिंह गोपाल शिव दुर्गा गणेश आदि बहुत से देवताओं के मन्त्रों के प्रारम्भ में उच्चारण होने के कारण सभी देवताओं के मन्त्रों का आदि अङ्ग ॐकार स्वरूप प्रणव है । और इससे सिद्ध होता है कि सभी मन्त्रों में समान रूपसे ॐकार का प्रयोग होने से सामान्यता है । जिसप्रकार षडक्षर ब्रह्म तारक नामक श्रीराम महामन्त्र के बीज स्वरूप मन्त्र एवं मन्त्र शेष चतुर्थ्यन्त नमः पदान्त मन्त्रों का अर्थात् बीज मन्त्र एवं मन्त्र शेष का विवरण करने योग्य एवं विवरण इन दोनों में एकरूपता देखी जाती है । वैसे इस श्रीराम महामन्त्र के महत्व निरूपण में भी समान रूपता देखी जाती है । उसप्रकार अन्य देवता श्रीविष्णु नारायण आदि मन्त्रों में एवं उन मन्त्रों के माहात्म्य निरूपण में समान रूपता नहीं देखी जाती है । यद्यपि मन्त्रों के विषय में यह देखा जाता है कि किसी मन्त्र का कम महत्व है उसकी अपेक्षा अन्य की अधिकता उससे भी इतर की अधिकता इसतरह न्यूनाधिक महत्व देखा जाता है । ऐसा श्रेष्ठता विषयक तारतम्य है, जैसे गाणपत्य आदि मन्त्रों की तुलना में उसकी अपेक्षा वैष्णव मन्त्र की श्रेष्ठता है, लेकिन तर्क के आधार पर सिद्ध यह पक्ष है । अतः श्रुति वचन की तुलना में यह पक्ष कमजोर है, उपनिषदों में प्रतिपाद्य अर्थ की श्रेष्ठता है। या श्रेष्ठता नहीं है इस विषय को आधार मान कर वाचक शब्द की श्रेष्ठता अथवा अश्रेष्ठता का निर्धारण समझा जाता है । अर्थात् वाच्य अर्थ की श्रेष्ठता होने पर ही

श्रुतिवचनेन प्रणवार्थप्रकाशनेन विवरणं श्रूयते । विष्ण्वादि मन्त्राक्षराणां प्रणवार्थसारूप्यं न दृश्यते । श्रीरामोपनिषदि तु श्रीराममन्त्रकृत्स्नार्थप्रकाशकत्वं मूलविवरणयोरक्षरसारूप्यं महत्वसाम्यमर्थसाम्यञ्च दृश्यते, वह्निवीजाकृतेः इव मन्त्रशेषाकृतेश्च दर्शनं भवति, विष्ण्वादिनाम्नो मन्त्राणां चापेक्षयोत्कृष्टत्वश्रवणात् । अत्रोपनिषदि जीवेश्वरयोः शेषशेषिभावः सम्बन्धादिः 'रेफारूढामूर्तयः स्युः' 'क्रियाकर्मेज्यकर्तॄणामर्थमन्त्रोवदति' स्मृतिवाक्यान्यवलम्ब्य ब्राह्मणत्वसम्पादिनीं परमेश्वरनामात्मिकां गायत्रीमुपदिशन्ति आचार्याः, ध्यानादिकं तु पश्चात् । जपात्तेनैव देवतादर्शनं करोति, कलौ तु-

वाचक की श्रेष्ठता निर्धारित होती है । 'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ' इस उपनिषद् वचन में यह देखा जाता है कि वाचक और वाच्य दोमों में ही तादात्म्य सम्बन्ध होने से एकरूपता है, यह उपनिषद् के आधार पर समझा जाता है । ॐ यह अक्षर ही सवकुछ है, सभी की कारणता होने से दोनों अर्थात् कारण कार्य में तादात्म्य मानकर सर्वत्व निरूपण है । इत्यादि श्रुति वचन के द्वारा ॐकार स्वरूप प्रणव का अर्थ स्फुटीकरण के द्वारा मन्त्रार्थ विवरण सुना जाता है । और विष्णु आदि देवता सम्बन्धित मन्त्रों के अक्षरों का अर्थ तथा उसके सहोच्चारित प्रणव का अर्थ इन दोनों में एकरूपता नहीं देखी जाती है । प्रणवार्थ एवं मन्त्राक्षरार्थ में भेद होता है । लेकिन श्रीरामतापनीय उपनिषद् में तो ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम मन्त्र का तात्विक अर्थ प्रकाशन करने में समग्र अर्थों की प्रकाशनशीलता, मन्त्र का मूल अर्थ तथा विवरणार्थ इन दोनों में समान अक्षर होने से समरूपता, और सभी के महत्व के विषय में भी समानता देखी जाती है और सभी के अर्थ में भी समानता है ऐसा देखा जाता है । जैसी वह्नि वीज रकार की आकृति है उसीप्रकार मन्त्र शेष की आकृति का भी दर्शन होता है । किन्तु अन्य भी विशेषता है कि विष्णु आदि नाम के मन्त्रों की अपेक्षा शास्त्रों में उत्कृष्टता भी सुनी गयी है इसलिये इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् में जीवात्मा एवं परमात्मा का परस्पर सम्बन्ध शेष शेषी भाव आदि है । परमात्मा शेषी है एवं जीवात्मा शेष है इनका उपास्य उपासकभाव आदि सम्बन्ध है । रेफ पर आरूढ मूर्तियां हैं । क्रिया कर्म एवं उपासना कर्ताओं का अर्थ को मन्त्र स्फुट करता है । स्मृति वचनों को आधार बनाकर ब्रह्मत्व का प्रतिपादन करनेवाली परमेश्वर के नामात्मक गायत्री का आचार्यगण उपदेश अपने शिष्यों को करते हैं । लेकिन मन्त्र की दृढता हो जाने के पश्चात् ध्यान आदि का उपदेश

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥
रामेतिवर्णद्वयमादरेण सदाजपन् जन्तुरुपैति मुक्तिम् ।
कलौयुगेकल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलुनाधिकारः ॥

इत्यादिरूपेण श्रुतिस्मृतिभिः कलौयुगे मुमुक्षून् प्रत्युपायान्तरपरित्यागेन श्रीरामनामैकोपायत्वं शिक्षितम् । श्रुतिप्रमाणावगतस्य नाममहत्वस्य निर्बाधात् वाच्यस्य निर्वाधत्वं सर्वोत्कृष्टत्वं च सूचितं भवति । सम्प्रदायतत्वज्ञैरिदमवधेयं यद् 'जज्ञे विष्णुसनातनः' इत्यस्यार्थः→कथम्भूतो रामः विष्णुः व्यापकगुणः सनातनः अनादिव्यापकः इति । ये तु निर्णीतमपीममभिप्रायं न जायन्ति, ज्ञात्वापि न धा-
देते हैं । जप करने के पश्चात् उसी के द्वारा देवता का साक्षात्कार करता है ऐसी पूर्वकाल की स्थिति है । किन्तु कलियुग में तो सभी प्रकार से पाप हारक हरि-श्रीरामजी का नाम ही मेरा जीवन है, नाम शब्द का तीन वार प्रयोग कर इसके साथ ही नास्त्येव का तीन वार प्रयोग कर यह अभिप्राय किया जाना कि कलियुग में श्रीहरि सर्व पाप ताप हारक श्रीराम नाम के सिवाय आत्मोद्धार का दूसरा कोई भी उपाय नहीं है । प्राणी मात्र आदरता पूर्वक 'राम' इस दो अक्षरों वाला नाम को अहर्निश जप करता हुआ मोक्ष को प्राप्त करता है । इस कलियुग में पापपुञ्ज का विनाश करने के लिये श्रीराम नाम जपको छोड़कर अन्य धर्म में अधिकार नहीं है । श्रीराम नाम ही ऐसा प्रभाव शाली मन्त्र है जो सभी पापों से प्राणी का उद्धार कर सकता है । वेद एवं स्मृति शास्त्रों के द्वारा इस कलियुग में मोक्ष प्राप्त करने के अभिलाषी व्यक्ति के प्रति कहा जाता है कि अन्य कोई भी कल्पित उपाय का परित्याग के सांथ एक मात्र श्रीराम नाम स्मरण ही उपाय है यह शिक्षा दी जाती है। वेद के प्रमाणानुसार ज्ञात किया गया भगवान् के नाम के माहात्म्य का बाधा रहित होने के कारण प्रतिपाद्य अर्थ की भी निर्बाधता और सर्वोत्कृष्टता सूचित होती है। साम्प्रदायिक परम्परा के रहस्यभूत तत्वों के जानकार महानुभावों को यह ध्यान पूर्वक समझना चाहिये कि 'जज्ञे विष्णुः सनातनः' का यह अभिप्राय है कि किस प्रकार के श्रीरामचन्द्रजी विष्णु अर्थात् व्यापक गुणों वाला सनातन अर्थात् अनादि काल से व्यापक है और जो विद्वान् तो सुस्पष्टता एवं प्रमाण दिग्दर्शन पूर्वक निश्चित इस अभिप्राय को समझते ही नहीं । अथवा समझ करके भी स्थिरता पूर्वक अपने मनमें धारण नहीं करते हैं अथवा जानबूझ कर भी इस तात्विक

रयन्ति नवा उपदिशन्ति स्वशिष्यान् ते परोपदिष्टार्थाच्छादितपरतत्वा-ज्ञानचक्षुषोनादरणीयाः । यतः श्रीमद्वाल्मीकीये 'प्रभोः प्रभुरित्यादिभिः श्री-विष्णवादिकारणत्वं तं प्रति प्रभुत्वं सर्वेशश्रीरामस्योपपद्यते ॥५॥

यदि कश्चिद्वदेद् श्रीरामशब्दस्य परतत्वाभिधायकत्वे तस्यैव प्रातीतिकबुद्धि निवर्तकत्वसिद्धेः 'विष्णोः पुत्रत्वमागच्छ' 'आगच्छ विष्णो भद्रन्ते 'अथ विष्णुर्महातेजाः' 'जज्ञे विष्णुः सनातनः' 'ततः प्रतिष्ठितो विष्णुरित्यादिषु 'भवान्

ज्ञान को दुराग्रहवश अपने शिष्यों को उपदेश नहीं करते हैं, वे दूसरे द्वारा उपदेश दिये गये अर्थों से आच्छादित परम तत्व ज्ञान रहित नयनो वाले लोक से आदर योग्य नहीं है क्योंकि श्रीवाल्मीकीय श्रीमद्रामायण से 'प्रभु के भी प्रभु' इत्यादि वचनों के द्वारा श्रीविष्णु आदि का कारणत्व एवं उनके प्रति श्रीरामचन्द्रजी का स्वामित्व का ही प्रतिपादन होता है ॥५॥

यदि कोई इस प्रकार कहे कि श्रीराम शब्द का परतत्त्व वाचकता में श्रीराम शब्द की ही प्रतीति मात्र से उत्पन्न होने वाली बुद्धि का निवर्तक सिद्ध होने के कारण से-'आप विष्णु को पुत्र के रूपमें प्राप्त करें' 'हे विष्णु आइये आपका मङ्गल हो' इसके पश्चात् महाप्रभाव शाली विष्णु, सनातन विष्णु आविर्भूत हुए, इसके पश्चात् विष्णु स्वर्ग में प्रतिष्ठित हुए, इत्यादि प्रयोगों में तथा 'भगवान् नारायण देव' इत्यादि वचनों में भी विष्णु नारायण आदि पदों के स्थान पर 'राम' शब्द का ही व्यवहार शास्त्रकारों के द्वारा क्यों नहीं किया गया ? इस विषय में समाधान किया जाता है कि स्वाधीन निरपेक्ष ध्वनि स्वरूप वेद के होने के कारण वेदका एवं देवताओं की परोक्ष प्रियता होने के कारण उन-उन स्थानों पर श्रुति स्मृति के द्वारा विष्णु नारायण आदि शब्दों के स्थान पर श्रीराम शब्द का प्रयोग नहीं किया गया । जैसे श्रुति में कहा गया है 'तदिदं सन्तमित्याचक्षते परोक्ष प्रिय इव हि देवा' इत्यादि श्रुति वचनों से देवताओं का परोक्ष प्रियत्व व्यक्त होता है । स्मृति में भी कहा है कि यह वेद परोक्ष विषय को प्रतिपादित करनेवाले और परोक्ष मेरा प्रिय है । कोई विशिष्ट प्रकार का अधिकारी ही इस विषय को समझे, अन्य साधारण जनसमूह नहीं समझे यह विचार कर वेद में श्रीराम शब्द का मुख्य वाचकत्व छिपाया गया है ।

रावण नामक राक्षसराज का वध चाहने वाले देवों एवं मानवों के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर सभी स्थानों पर व्यापक रूपसे विराजमान सनातन अर्थात् अनादि सत्

नारायणोदेव' इत्यादिषु च विष्णवादिपदस्थाने श्रीरामशब्दस्यैव प्रयोगः किं न कृतः ? अत्रोच्यते स्वतन्त्रकार्यव्यापारपरकश्रुतेः नियोज्यानुयोज्यविषयत्वात् वेदस्य देवानाञ्च परोक्षप्रियत्वात् तथानोक्तम्, तदिदं सन्तमिन्द्रमित्याचक्षते 'परोक्षप्रिया इव हि देवा' इत्यादिश्रुतिभ्यः प्रतिपादितम् । 'परोक्षवादो वेदोऽयं परोक्षं च मम प्रिय' इतिस्मृतेश्च । कश्चिद् विशिष्टाधिकारी जानातु नान्य इतिवेदेन श्रीरामशब्दस्य मुख्यवाचकत्वं गोपितम् । रावणस्य वधाकांक्षिभिः लोकैः देवैश्चार्थितः सर्वत्रव्यापकः सनातनः अनादिः सच्चिदानन्दः अपरिच्छिन्नात्मकः चित् आनन्द स्वरूप असीमित स्वरूपधारी श्रीरामचन्द्रजी इस भूमण्डल पर आविर्भूत हुए । यह 'जज्ञे विष्णुः सनातनः' का निर्गलितार्थ है । इस प्रकरण में श्रीराम पदका क्रियान्वयी होने के कारण अर्थात् क्रिया के साथ साक्षात् सम्बन्ध होने के कारण वाक्य में विशेष्यता है एवं श्रीविष्णु पद की विशेषणता है । श्रीराम शब्द में होने वाला समस्त सत् चित् आनन्द स्वरूप परब्रह्म का साक्षात् प्रतिपादक है । और भी कहा गया है कि स्वयं प्रकाशमान जिनका कोई अन्य प्रकाशक नहीं है, दिव्य ज्योति स्वरूप अगणित स्वरूपों को धारण करनेवाले स्वयं अपने तेज से ही प्रकाशित होते हैं । सत् चित् आनन्द जिनका नामकरण है इनकी उपासना करनी चाहिये । जिनके नामाक्षर के रेफ पर आरूढ मूर्तियां हैं । इत्यादि श्रुतियों के द्वारा दिव्य चैतन्य स्वरूप में श्रीराम शब्द का परब्रह्म वाचकत्व है । और श्रीरामचन्द्रजी में ब्रह्मा विष्णु शिव आदि को आश्रय प्रदायकत्व है । इसप्रकार श्रुति स्मृति वचनों से अवगत होता है । उस श्रीरामचन्द्रजी नामक परब्रह्म परमेश्वर जो परात्पर हैं ''परान्नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि । यो वै परतमः श्रीमान् रामोदाशरथिस्वराट्'' इत्यादि रूपसे आगम ने श्रीनारायण से परतर श्रीकृष्णजी से भी परतम यानी परात्पर स्वरूप है एवं दो भुजाओं को धारण किये हैं, इसप्रकार की जिनकी नित्य आकृति है, वे अपने नित्य आकृति से ही अयोध्या नामक प्रदेश विशेष में आविर्भूत हुए, ऐसा अभिप्राय समझना चाहिये ।

यदि तो 'चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ' 'जज्ञे विष्णुः सनातनः' 'विष्णोपुत्रत्व मागच्छ' इत्यादि श्रुति स्मृति के वचनों में विष्णु शब्द मात्र का श्रवण के कारण विष्णु को श्रीरामचन्द्रजी का कारणत्व स्वीकार कर लेते हैं तब 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ इत्यादि श्रुति वचनों का भी केवल श्रवण मात्र से ही द्वैतार्थ बोधकता है ऐसा सिद्धान्त

श्रीरामः जज्ञे आविर्भूव इति 'जज्ञे विष्णुः सनातनः' इत्यस्यार्थः । अत्र श्रीराम पदस्य क्रियान्वयित्वेन विशेष्यत्वं विष्णुपदस्य च विशेषणत्वम् । श्रीराम शब्दनिष्ठाशेषसच्चिदानन्दस्वरूपपरब्रह्मसाक्षात् प्रतिपादकत्वम् तथा च- 'स्वभूर्ज्योतिर्मयोऽनन्तस्वरूपीस्वेनैव भासते' 'सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासि- तव्यम्' 'रेफारूढा मूर्तयः स्युः' इत्यादिश्रुतिभिः चित् स्वरूपत्वेन परब्रह्मवाच कत्वं ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्रयत्वं चावगम्यते । तस्य परब्रह्मणः श्रीरामाख्यस्य परात्परस्य द्विभुजादिनित्याकृत्यैवात्रायोध्यायामाविर्भाव इतिबोध्यम् ।

यदि तु 'चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ' 'जज्ञे विष्णुं सनातनः' 'विष्णो पुत्रत्व मागच्छ' इत्यादिषु विष्णुमात्रश्रुतेः विष्णोः कारणत्वमङ्गीक्रियते तदा 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादीनामपि श्रुतिमात्रेण द्वैतार्थकत्वं स्वीकर्तव्यं स्यात् । तेन श्रीरामपरत्वहानिरिवद्वैतस्य विशिष्टाद्वैतस्य च हानिः, अद्वैतवादिभिरपि 'भोक्ता स्वीकार करना पड़ जायगा । द्वैतार्थ बोधन परकता स्वीकार कर लेने पर जिसप्रकार श्रीरामचन्द्रजी के परत्त्व की हानि होगी उसी तरह द्वैत सिद्धान्त अद्वैत सिद्धान्त एवं विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त की भी हानि होगी । अद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादक मनीषियों के द्वारा भी-भोग करने वाला, भोग करने योग्य एवं प्रेरणा प्रादन करनेवाला समझ कर जानकार चित, नहीं जानने वाला जड, अजन्मा ईश्वर शासन कर्ता, पराधीन (ईश्वर के अधीन रहनेवाला) इत्यादि श्रुतिवचनों का सुस्पष्ट रूपसे द्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादक होने से अद्वैतमत की सुस्पष्ट रूपसे हानि होगी । इसलिये जैसा न्यायोचित है उस सिद्धान्त को मानकर, ब्रह्म शब्द की ब्रह्मात्मकता अर्थ में समन्वय करके श्रौतविशिष्टाद्वैत मत में ही समस्त श्रुतियां अविरोध रूपसे समन्वित होती हैं इस आशय को जानना चाहिये । इस तरह समन्वय करने पर द्वैतार्थ बोधन परत्व एवं विशिष्टाद्वैतार्थ बोधन परत्व युक्ति एवं तर्क के आधार पर उपपन्न होता है । ऐसा श्रीवैष्णवों के द्वारा स्वीकार किया जाता है । सभी श्रुतियों का अविरोध समन्वय प्रकार को जगद्गुरु श्रीश्रुतानन्दाचार्य प्रणीत सर्वश्रुतिसमन्वय में देखना चाहिये ।

इसप्रकार श्रुति स्मृति वचनों के अनुरोध से अप्रधान अर्थ बोधक होने के कारण श्रीरामजी का कारण श्रीविष्णु हैं इस कारणतावाद का निराकरण करके श्रीरामचन्द्रजी निष्ठ कारण परकता का सिद्धान्त वारम्वार प्रतिपादन किया जा चुका है। यह सिद्धान्त स्फुट रूपसे समझ में आवे इसलिये श्रीरामनिष्ठ कारणता का मणी

भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा' 'ज्ञाज्ञावजावीशानीशौ' इत्यादिश्रुतीनां स्फुटं द्वैतार्थबोधकत्वेनाद्वैतस्य हानिः । तस्माद् यथान्यायं ब्रह्मशब्दस्य ब्रह्मात्मके लक्षणया 'अहं ब्रह्मात्मकोऽस्मि' इतिद्वैतार्थपरत्वं श्रौतविशिष्टार्थपरत्वं चोपपाद्यते श्रीवैष्णवैः । एवम् श्रुतिस्मृतिवचनानुरोधेन गौणार्थकतया श्रीविष्णुकारणपरत्वं निरस्य श्रीरामनिष्ठकारणपरत्वमसकृदुपपादितमस्माभिः । तत्त्वविद्भिः सर्वेषां श्रुतिस्मृतिवचनानां बलाबलत्वं गौणमुख्यार्थकत्वं च विविच्य सत्सम्प्रदाय तत्त्वविद्भिः विद्वद्भिश्चिन्मयस्यावतारित्वेनावतारत्वेन चैकरूपत्वं, सर्वव्याप- कत्वादिगुणविशिष्टत्वेन च सर्वोत्कृष्टत्वं, स्वाश्रितजनदुःखहारित्वेनातिकारुणि कत्वं, चोपपादितम् । तस्य सच्चिदानन्दब्रह्मणोनिःशेषवाचकत्वेन श्रीरामेति मुख्यनामध्येयमस्ति । इत्युपपादयितुं दशरथगृहाविर्भावानन्तरं तस्य 'राम' नाम बभूव, पूर्वन्तु विष्णवादिसंज्ञासीदिति तु अन्धपरम्परैव । विचारहीनानां श्रीरा-

अवलोकन न्याय से अनेक वार मुझ से निरूपण किया गया है। तत्त्व ज्ञानी महानुभावों के द्वारा समस्त श्रुति स्मृति वचन कलाप को बलिष्ठता एवं दुर्बलता का अच्छी तरह विचार करके कहां पर प्रधानार्थ बोधकता है एवं कहां पर गौणार्थ बोधकता है इस तथ्य का गुण दोष विवेचन करके प्रशंसनीय साम्प्रदायिक रहस्य तत्त्वज्ञानी विद्वानों के द्वारा भी बलाबल गौण मुख्यार्थ बोधकत्व आदि का विचार करके समझना चाहिये कि चिन्मय सर्वावतारी श्रीरामचन्द्रजी का सर्वावतारी के रूपमें एवं अवतार के स्वरूप में एकरूपता है, भेद नहीं । और सर्व व्यापकत्वादि गुण विशिष्टत्व के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का सर्वोत्कृष्टत्व सिद्ध होता है। अपने आश्रय में आगत प्राणियों का समस्त दुःख निवारक के स्वरूप से अत्यन्त करुणाशीलता रूप अर्थ प्रकाशित होता है यह प्रतिपादित किया गया। उन श्रीरामचन्द्रजी का सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप परिपूर्ण ब्रह्म का वाचक होने के कारण श्रीरामचन्द्रजी इस मुख्य नाम का ही ध्येयत्व सिद्ध होता है। इस अभिप्राय का प्रतिपादन करने के लिये कि महाराज दशरथजी के घर में आविर्भाव के पश्चात् ही उनका 'राम' यह नामकरण हुआ पूर्वकाल में तो उनकी 'विष्णु' यह संज्ञा थी–इस तरह का विचार स्वीकार करना तो अन्ध परम्परा मात्र ही है। जो विवेक रहित हैं एवं श्रीरामचन्द्रजी में जिनकी न्यूनता की भावना है ऐसे लोगों को ही इस प्रकार की मति भ्रान्ति होती है। इसलिये इन न्यूनतावादी दृष्टि वालों के विचार का खण्डन करके 'जिन में योगिजन रमण करते हैं' इत्यादि

मचन्द्रन्यूनदृष्टीनां तादृशमतिभ्रान्तिस्तन्निरस्य 'रमन्ते योगिनः' इत्यादिभिः श्रीरामनामनिर्वचनं च विधाय श्रीरामनाममुख्यत्वं 'रघुकुलेखिलं रातीत्यारभ्य 'परब्रह्माभिधीयते' इत्याद्याः श्रुतयः प्रकाशयामासुः ॥६॥

वचनों के द्वारा श्रीराम नाम का अच्छी तरह निर्वचन करके श्रीराम नाम की प्रमुखता 'रघुकुलेऽखिलं राति' इस वचन से प्रारम्भ कर-'परब्रह्माभिधीयते' पर्यन्त की सभी श्रुतियां श्रीरामजी की प्रधानता का प्रकाशन की ॥६॥

रघुकुलेऽखिलं राति, राजते यो महीस्थितः।
स राम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटीकृतः ॥१॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी रघुकुल में अवतीर्ण होकर अपने समस्त भक्त जनों के सभी कामनाओं की परिपूर्णता प्रदान करते हैं। इस भारत धरा पर विराजमान रहकर समस्त भक्तजनों के लिये सर्वथा सर्वदा सुलभ हैं। वे समस्त योगिजनों के हृदयाभिराम राम है यह तत्त्वज्ञानी विद्वानों के द्वारा अनादि सिद्ध श्रीरामनाम का सभी लोकों में प्रकाशन किया गया ॥१॥

श्रुतिरियं श्रीरामनाम्नः निर्वचनं करोति। तत्र निरुक्तिद्वयमाह-एका तु राति इत्यर्थके रा शब्दे महीस्थित इति मकारे योजिते सति 'राम' इतिनिष्पत्तिः। द्वितीया तु राजते इत्यर्थके रा शब्दे महीस्थित इत्यस्य म कारे योजिते सति 'राम' शब्दो निष्पद्यते। तत्र प्रथमस्यायमर्थोयत् यः चिन्मयः रघुकुले आविर्भूय राति

यह 'रघुकुलेऽखिलम्' इत्यादि श्रुति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का व्याकरण शास्त्रादि व्युत्पत्ति निरूपण भावना से निर्वचन करती है। उस निर्वचन में 'राम' नाम का दो तरह से निर्वचन किया गया है। प्रथम निर्वचन तो 'रा दाने' इस अर्थ वाला रा धातु प्रदान करते हैं एतदर्थ बोधक राति का रा एवं महीस्थित का म इन दोनों वर्णों की योजना करने पर 'राम' शब्द निष्पन्न होता है। दूसरी व्युत्पत्ति तो यह है कि राजते अर्थात् सुव्यक्त रूपसे विराजमान है इस अर्थ वाला राजते का रा एवं महीस्थित शब्द के म वर्ण इन दोनों वर्णों की योजना करने पर 'राम' शब्द निष्पन्न होता है। इन दोनों व्युत्पत्ति मूलक शब्दों में प्रथम 'राम' शब्द का यह अर्थ होता है कि-जो दिव्य ज्योतिर्मय महाराज रघु के वंश में आविर्भूत होकर अपने समस्त भक्तजनों के लिये सभी प्रकार के चाहे गये मनोरथों को प्रदान करते हैं वे 'राम' हैं।

स्वभक्तानां कृते सकलमभिमतं ददाति इति 'रामः' । तथा च यो निजभक्तजनाभिमतप्रदोराजते महीस्थितः सन् स 'रामः' इतिसर्वेषु लोकेषु तन्निवासिजनेषु विद्वद्भिस्तत्त्वस्वरूपयाथातथ्यविद्भिः श्रीवशिष्ठपराशरव्यास शुकादिभिः प्रकटीकृतः । तत्त्वविदां विदुषां माध्यमेन ते लोकाः तस्य परब्रह्मणः 'राम' इति संज्ञां ज्ञातवन्तः । चिन्मयमहीस्थितपदाभ्यां सर्वजनसुलभत्वं सुसेव्यत्वञ्च बुध्यते । महीस्थितः सन्नखिलं राति इति तु सुलभत्वे सत्यखिलाभीष्टप्रदत्वं, अखिलाभीष्टप्रदानाय वा सुलभीभूतमिति चाश्रयार्हत्वं

और इसीप्रकार दूसरे का यह अभिप्राय है कि-जो अपने समस्त भक्तगण के अभीष्ट मनोरथ को प्रदान करनेवाले विराजमान हैं वे इस भूमण्डल की पावन भूमि में विराजमान होकर स्थित है वे श्रीरामजी हैं । उक्त मन्त्र में सर्वेषु लोकेषु-इस कथन से सभी लोकों में निवास करनेवाले लोगों में, तथा विद्वद्भिः शब्द के द्वारा तत्त्व के वास्तविक स्वरूप के सत्यता असत्यता को यथार्थ रूपमें जाननेवाले विद्वानों के द्वारा अप्राकशित तत्त्व सुस्पष्ट रूपसे प्रकाशित किया गया । रहस्य तत्त्वों को जानने वाले विद्वानों के माध्यम से वे सभी लोकों में निवास करनेवाले प्राणी उस परब्रह्म परमेश्वर की 'राम' इस संज्ञा को समझ पाये । चिन्मय एवं महीस्थित इन पदों के द्वारा-भगवान् श्रीरामचन्द्रजी आबालबृद्ध एवं आपामर विद्वज्जन सभी लोगों के लिये सुलभ होते हुए, सभी के द्वारा सरलता पूर्वक उपासना करने योग्य हैं यह अर्थ समझा जाता है। पृथिवी पर विराजमान होते हुए सभी भक्तगण के लिये सुलभ होकर सभी लोगों के मनोभिलषित फलको प्रदान करनेवाला अथवा सभी भक्तजनों को अभिमत फल प्रदान करने के लिये दुर्लभ होते हुये भी अनुकम्पावश सुलभ हो गये हैं, इसलिये आश्रय ग्रहण करने योग्य हैं यह तात्पर्य विशेष रूपसे ज्ञात होता है । 'महीस्थित' इस पद के द्वारा उन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के समान अथवा उनसे वढकर कोई अन्य देवता नहीं है इसतरह का अभिप्राय समझ में आता है । तत्त्वज्ञानी महापुरुषों के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का नाम तीनों लोकों में प्रकाशित किया गया इस कथन के द्वारा यह अभिप्राय प्रकाशित होता है कि-भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में अपने आश्रित भक्तगण के मनोभिलषित समस्त कामनाओं को प्रदानशीलता है । एवं श्रीरामचन्द्र भगवान् में इस भूमण्डल में उपलब्ध होने से पृथिवी पर प्रकाश शीलता है अर्थात् इस पृथिवी पर ही स्थित हैं, उनकी प्राप्ति के लिये लोक लोकान्तर में भटकने की जरुरत नहीं है ।

चेति विज्ञायते । 'महीस्थितः' इतिपदाभ्यां तत् समाऽभ्यधिकश्च नान्यकश्चिदिति बोध्यते । 'विद्वद्भिः प्रकटीकृतः' इत्यनेन च निजभक्तजनाभीष्टप्रदत्वं मह्यां प्रकाशमानत्वञ्च 'रामे' त्यभिधानस्य हेतुरुच्यते । इत्थमत आरभ्य 'रामाख्याभुवि स्यादित्यन्तं तस्य गौणश्रीरामस्य तस्य गुणादयश्च बोध्याः । वक्ष्यमाणस्य चानादिसिद्धस्य श्रीरामस्य चिन्मयपरत्वे आविर्भूते सति अप्रधानस्य श्रीरामस्य प्रवृत्तिहेतवः तत् सम्बन्धिनोगुणाः प्रदर्शिताः 'रघुकुलेराती'त्यादिना, चिन्मयस्य तत्त्वस्याविर्भावानन्तरं तदीयगुणकर्मादीनां प्रकाशनमभिलक्ष्य विद्वद्भिस्तस्य 'रामे'तिनाम्नः प्रकटीकरणात् गौणश्रीरामनाम्नः सुसिद्धिर्भवति । यद्यपि वेदार्थोपबृंहणस्वरूपेष्वितिहासपुराणादिषु श्रीरामावतारोक्तिः न संगच्छते, तथाऽपि भूयोभूयः अवताराणामाविर्भावतिरोभावश्रवणेनानादित्वे न हानिः । तद् गुणाविष्करणस्याप्यनादित्वं सिध्यत्येव ।

यही 'रामचन्द्र' इस नामकरण का कारण कहा जाता है। अर्थात् 'राम' इस नामकरण से ही यह आशय प्रकाशित होता है कि सर्वजगत् कारण श्रीरामजी इस धरा पर अपने भक्तों के लिये सुलभ हैं। इसप्रकार इस 'रघुकुलेऽखिलं राति' इस मन्त्र से आरम्भकर 'रामाख्या भुवि स्यात्' इस मन्त्र पर्यन्त अप्रधानीभूत श्रीरामचन्द्रजी का एवं श्रीरामचन्द्र भगवान् के गुण क्रिया आदि विशेष धर्म आदि को समझना चाहिये। जिनके तात्विक स्वरूप गुण क्रिया आदि वैशिष्ट्य का आगे निरूपण किया जाना है इसप्रकार के अनादि काल से सिद्ध भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का चिन्मय स्वरूपार्थबोधन परक परम तत्त्व सर्वकारण महाराज दशरथजी के घर रघुकुल में आविर्भूत होने पर अप्रधान राम के व्यवहार के कारण बने हुए श्रीरामचन्द्रजी से सम्बन्धित वात्सल्य औदार्य कारुणिकत्व आदि गुण प्रदर्शित किये गये हैं। रघुकुले राति इत्यादि मन्त्र के माध्यम से, उन परम दिव्य तेज स्वरूप चिन्मय तत्त्व का आविर्भाव होने के पश्चात् उनसे सम्बन्धित गुण क्रिया आदि का समस्त लोकों में प्रचार-प्रसार आदि के द्वारा सभी प्राणियों की कल्याण भावना लक्षित कर तत्त्व विज्ञानी विद्वानों के द्वारा उन चिन्मय तत्त्व का श्रीरामचन्द्रजी इस अनादि सिद्ध नाम का प्रकटीकरण के कारण अप्रधान रामनाम की भी सरलतापूर्वक सिद्धि हो जाती है। यद्यपि श्रुति वचनों के तात्पर्यार्थ का उदाहरण प्रत्युदाहरण आदि के द्वारा सम्बर्धन स्वरूप इतिहास पुराण आदि ग्रन्थों में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के अवतारत्व का निरूपण संगत नहीं होता है। ऐसी

अथ द्विविधश्रीरामनामनिर्वचनेन तस्य द्वैविध्यं सूचयित्वा, स्वपूर्ववाक्यैः श्रीरामनाम्नोऽप्रधानत्वम् 'रमन्ते योगिनः' इत्याद्युतरवाक्येन च तस्य मुख्यत्वं सूचयित्वा तद्वाच्यस्वरूपपरत्वेन तस्य तादात्म्येन मुख्यवाचकत्वञ्च प्रकाश्य- 'चिन्मयेऽस्मिन्' 'रामाख्या' इतिवाक्याभ्यामवतारिण अपि चिन्मयस्य श्रीरामस्य सच्चिदानन्दार्थकप्रधानश्रीरामनामवाच्यत्वेनावतारित्वं गौणश्रीरामनामवाच्यत्वेन च गुणादिप्रकटनं, तस्य भुव्यवतरणादवतारत्वम् । इत्थं तस्यावतारिणः सतः स्वयमेव भुव्यवतारः । अयमेवार्थः 'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूपकल्प- ने'त्यादिभिः श्रुतिभिः प्रकाश्यते ॥७॥

साधारण रूप असंगति दृष्टि गोचर होने पर भी वार-वार अवतारों का होना एवं उसे उद्देश्य हो जाना स्वरूप आविर्भाव तिरोभाव ग्रन्थों में सुने जाने के कारण श्रीरामचन्द्रजी के अनादित्व में किसी तरह की क्षति नहीं होती है। उन श्रीरामचन्द्रजी के गुणों का प्रकटीकरण की भी अनादित्व की साधकता ही होती है।

इसके वाद यह निरूपण किया जाता है कि दो तरह से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का निर्वचन किये जाने से श्रीरामचन्द्रजी की द्विविधता को प्रकाशित करके उपनिषद् ने अपने पूर्व प्रतिपादित वाक्यों के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम की अप्रधानता बताया। पुनः रमन्ते योगिनः इत्यादि वचनों के द्वारा उत्तर कालिक वाक्यों से श्रीरामचन्द्रजी की प्रधानता को सूचित करके उस राम नाम के वाच्यार्थ स्वरूप बोधन परक होने से उस वाच्यार्थ के परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध होने के कारण प्रधानार्थ वाचकता रूपका प्रकाशन करके चिन्मयेऽस्मिन्.., रामाख्या भुवि...इत्यादि वाक्यों के द्वारा अवतारी अनादि सिद्ध चिन्मय श्रीरामचन्द्रजी का भी सत् चित् आनन्द स्वरूप अर्थ है प्रधान जिसका ऐसे श्रीराम नाम का वाच्य अर्थ होने से अवतारित्व एवं अप्रधान श्रीराम नाम के द्वारा उनके गुण क्रिया आदि का आविष्कार किया जाना, उन श्रीरामचन्द्रजी के मुख्य अवतारत्व को प्रकाशित करता है। इसप्रकार उन अवतारी श्रीरामचन्द्रजी के होते हुए भी स्वयमेव मुख्य अवतारत्व प्रतिपादित होता है। और इसी तात्पर्यभूत अर्थ को 'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूपकल्पना' इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा निरूपित किया गया है ॥७॥

अथ पुनः तस्य भगवतो रामस्य नाम्नः प्रकारान्तरेण निर्वचनम् 'राक्षसायेन' इत्यादिना मन्त्रेणाह-

राक्षसायेन मरणं यान्ति स्वोद्रेकतोऽथवा ।
रामनाम भुवि ख्यातमभिरामेण वा पुनः ॥२॥

इसके वाद पुनः उन सर्वलोक विख्यात भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का फिर से अन्य प्रकार से निर्वचन 'राक्षसायेन' इत्यादि मन्त्र के द्वारा करते हैं कि-जिन कारणभूत श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा राक्षसगण मृत्यु को प्राप्त करते हैं । अथवा अपने में 'राम' की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होने की शङ्का से अधिक सामर्थ्यवान् श्रीरामजी के हाथों से मृत्यु को प्राप्त करते हैं । अथवा पुनः सर्वतोभावेन सौन्दर्य सम्पन्नता के कारण प्राणी मात्र के मन को आनन्दित करने से 'राम' यह नाम इस भूमण्डल में विख्यात हुआ ॥२॥

येन हेतुभूतेन श्रीरामचन्द्रेण स्वस्य आत्मनः सामर्थ्याद्यतिक्रमणवशाद् स्वापेक्षश्रीरामनिष्ठाधिक्यतः राक्षसा मृत्युं प्राप्नुवन्ति, श्रीरामेणमारिता इति भावः । तेन श्रीरामनामभूमौ विख्यातम् । अत्र राक्षसार्थके 'रा' शब्दे मरणं यान्तीत्यर्थेन म कारेण सह योजनायां 'राम' शब्दस्य निर्वचनं भवति । एतेन श्रीरामः स्वभक्तानामनिष्टकारिणः कामक्रोधलोभमोहादीन् विनाशयतीति बोध्यते । तस्य नाम्नोऽन्यन्निर्वचनमाह श्रुतिः→अभिरामेणेति-सुन्दरेण कमनीयेन वपुषा वा श्रीरामनामभुवि प्रसिद्धम् । वपुषा 'रामः' सुन्दरः' इतिश्रीराम-शब्दार्थः । तथा च कालिदासः-

"राम इत्यभिरामेण वपुषा तस्य नोदितः । नामधेयं गुरुश्चक्रे जगत्प्रथममङ्गलम्"

जिन कारणभूत श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा जिन राक्षसों में श्रीरामजी को जीतने का सामर्थ्य नहीं है किन्तु अज्ञानवश अपने सामर्थ्य आदि का अतिक्रमण करने के कारण अपनी अपेक्षाकृत श्रीरामजी की अधिकतावश राक्षसगण श्रीरामजी के हाथों से मृत्यु को प्राप्त करते हैं । अर्थात् श्रीरामजी के द्वारा राक्षसगण मार दिये गये । इस कारण से श्रीरामचन्द्रजी का नाम इस भूमण्डल में विख्यात हुआ । इस मन्त्र के राक्षस अर्थ वाला रा शब्द में मरणं यान्ति इस अर्थ वाला म अक्षर को जोड़ देने पर 'राम' शब्द का निर्वचन होता है । इस निर्वचन के आधार पर यह अभिप्राय प्रकाशित होता

एतेन भगवन्नामान्तराणां सौन्दर्यप्रकाशकत्वाश्रवणात् अस्य तु सौन्दर्य परत्वश्रुतेः सर्वेश्वरश्रीरामवाच्ये सर्वोत्तमश्रृङ्गारसम्पत्तिः श्रूयते । इममेवाभिप्रायं श्रीमद्रामायणे 'रूपबृंहयामास' 'सदैव प्रियदर्शनः' 'सर्वलोकप्रियः साधुः' इत्यादिरूपेण निरूपितम् । तथा च-

"चन्द्रकान्ताननं राममतीवप्रियदर्शनम् ।
रूपौदार्यगुणौ पुंसां दृष्टिचित्तापहारकम् ॥
रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम् ।
ददृशुः विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः ॥

है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने भक्तजनों के अमङ्गल करने वाले अन्तःकरण में स्थित काम क्रोध लोभ मोह आदि आन्तरिक शत्रुओं का संहार करते हैं । यह तात्पर्य समझा जाता है । श्रुति उस 'राम' नाम का दूसरा निर्वचन अन्य प्रकार से कहती है। 'अभिरामेण' इस शब्द से अर्थात् सुन्दर सर्वतोभावेन कमनीयता (चाहने योग्य) होने से अर्थात् अनुपम सुन्दरता सम्पन्न शरीर होने से 'राम' नाम पृथिवी पर प्रसिद्ध हुआ। शरीर से 'राम' सुन्दर है यह श्रीराम शब्द का दूसरा अर्थ हुआ । इसीप्रकार महाकवि श्रीकालिदासजी कहते हैं कि-सर्वतोभावेन सुन्दरता युक्त शरीर होने के कारण उनके शरीर सौन्दर्य से प्रेरित होकर उनके पिता महाराज दशरथ संसार का सर्वमुख्य मङ्गल बोधक 'राम' यह नामकरण किये । इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् के अन्य नामों के सुन्दरता का प्रकाशक नहीं सुने जाने से, और इस श्रीरामनाम का सौन्दर्य अर्थ बोधन परक होने से श्रीरामचन्द्रजी के नाम के वाच्य (प्रतिपाद्य) अर्थ में सभी लोकों के सर्वोत्तम श्रृङ्गार सम्पत्ति है ऐसा सुना जाता है । इसी अभिप्राय को भगवान् महाकवि श्रीवाल्मीकिजी विस्तार युक्त करके कहते हैं→सभी समयों में प्रिय है दर्शन जिनका ऐसे संसार के सभी चराचर प्राणियों के लिये प्रिय एवं सत् जन । इसीप्रकार और भी चन्द्रमा के समान निरतिशय चराचर कमनीय सुन्दर मुख जिनका है । सर्व लोक प्रिय दर्शन जिनका है रूप एवं उदारता गुणों से सम्पन्न श्रीरामजी का प्राणी मात्र के मन को चुरानेवाले सौन्दर्य युक्त शरीर शोभा सुकुमारता एवं सुन्दर वेषभूषा को देखकर सभी वनमें निवास करनेवाले प्राणी अपने तन मन धन को भूल कर आश्चर्य चकित स्वरूप होकर तन्मयता पूर्वक देखे । पद्मपुराण में भी इसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के सौन्दर्य के सम्बन्ध में कहा गया है-प्राचीन काल में सभी दण्डकारण्य नामक वनमें

पाद्मेऽपि तथैवोक्तम्-पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः । दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम् ॥८॥
निवास करने वाले महर्षिगण जन्म जन्मान्तरीय समस्त पाप एवं सन्ताप को हरण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी को दण्डकारण्य में देखकर उन दिव्य रमणीय सुन्दर शरीर शोभा को निर्तिमेष दृष्टि से आत्मसात् कर लेने की इच्छा किये ॥८॥

राक्षसान् मर्त्यरूपेण राहुर्मनसिजं यथा ।
प्रभाहीनांस्तथा कृत्वा राज्यार्हाणां महीभृताम् ॥३॥
धर्ममार्गं चरित्रेण ज्ञानमार्गं च नामतः ।
तथा ध्यानेन वैराग्यमैश्वर्यं यस्य पूजनात् ॥
तथा रामस्य रामाख्या भुवि स्यादथ तत्त्वतः ॥४॥

जिसप्रकार राहु चन्द्रमा को हतप्रभ कर देता है, उसीप्रकार मरण धर्म मनुष्य का स्वरूप धारण कर रावण आदि क्रूरकर्मा राक्षसों को हतप्रभ कर देते हैं। उसीप्रकार राज्य शासन सञ्चालन करने योग्य पृथिवी पालक राजाओं के लिये अपने चरित्र अर्थात् आचार विचार के द्वारा धर्ममार्ग, अपने मङ्गलमय नाम से ज्ञानमार्ग और ध्यान (चिन्तन आदि के) द्वारा वैराग्य, तथा जिनकी पूजा उपासना आदि से सर्वविध ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये उपदेश देते हैं, अतः इस संसार में सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का 'राम' यह नाम इस तरह तात्विक रूपसे प्रसिद्ध हुआ ॥३/४॥

अत्रश्रुतौ श्रीरामनाम्नोऽन्यन् निर्वचनमाह-यथाराहुः ग्रहणसमयेमनसिजं चन्द्रं प्रभाविहीनं करोति तथैव यः श्रीरामचन्द्रः रावणादीन् राक्षसान् मरणधर्मणो मानवस्याभिनयेन प्रभाहीनान् विधाय, मर्त्यरूपमिवरूपं यस्य तेनेति समासः, सूर्यचन्द्रवंश्यानां राज्ययोग्यानां महीभृतां राज्ञां धर्माचरणेन चरित्रेण धर्ममार्गं ज्ञानमार्गं ध्यानेन वैराग्यं पूजनात् ऐश्वर्यं राति ददाति भगवान्, अस्मात् अनादिसिद्धसच्चिदानन्दार्थकस्य रामाख्या वर्णितगुणगणवशात् रामेति संज्ञा

जिसप्रकार राहु ग्रहण के समय आने पर 'चन्द्रमा मनसो जातः' इस श्रुति के अनुसार मनसिज अर्थात् चन्द्रमा को प्रकाश से विहीन कर देता है उसीप्रकार जो सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी रावण आदि राक्षसगण को मरण धर्मा मनुष्य के अभिनय के द्वारा प्रभाव से विहीन करके, यहां पर मर्त्य के स्वरूप के समान स्वरूप है जिनका

भुवि पृथिव्यामित्युपलक्षणाद्लोकत्रयेऽपि जाता । अत्र चिन्मयस्य रामाख्या इतिश्रुतेः अनादिसच्चिदानन्दार्थकपरब्रह्मवाचकश्रीरामपदवाच्यस्य भुवि श्रीरामाभिधानोक्तेः तस्यैवावतारित्वम् । दशरथगृहेऽवतीर्णस्य तद् गुणकर्मार्थक रामपदवाच्यत्वेनावतारत्वञ्च निरूपितं भवति । अन्यथा विष्णोः हरेः नारायणस्यान्यस्य वा 'रामाख्या' भुवि स्यादित्येवोक्तं स्यात् । रातेः कर्तरि औणादिकम्प्रत्ययेन 'रामः' तस्य चात्र राकारमकारयोश्चत्वारोऽर्थाः, राक्षसान् मर्त्यरूपेण इति एकोऽर्थः, राहुर्मनसिजं यथेति, द्वितीयः । रा प्रभातया हीनान् इतितृतीयः रादीप्ताविति, मकारस्तु लयः स्मृतः इत्युक्तेः । चतुर्थस्तु राज्यार्हाणाम्महीभृतामिति चरित्रादिना कथं राज्ञां धर्मादिसिद्धिरिति जि-ज्ञासायामुच्यते । चरित्रं नामसदाचार उच्यते, स च धर्महेतुः, भगवतः श्रीरामस्य

इस तरह मध्यम पद लोपी समास है। सूर्य तथा चन्द्रवंश में जन्म ग्रहण करनेवाले राज्य शासन व्यवस्था करने योग्य पृथिवी पालक राजाओं का धर्म आचरण द्वारा चरित्र से धर्म मार्ग को, ध्यान के द्वारा ज्ञान मार्ग को, पूजन उपासना से परम वैराग्य को एवं ऐश्वर्य को प्रदान करते हैं। इन कारणों से अनादि काल से सिद्ध सत् चित् आनन्द इस अन्वर्थक 'राम' यह नाम वर्णन किये गये गुण समूह के कारण 'राम' यह नाम इस भूमण्डल पर प्रसिद्ध हुआ, यहां पर भू पद उपलक्षण होने से तीनों ही लोकों में 'राम' यह नाम प्रसिद्ध हुआ। श्रीमद्रामायण में महर्षिजी लिखते हैं 'रामो राम राम इति लोकानामभवद् ध्वनिः' इति। अतः तीन लोक चौदह भुवन में श्रीराम नाम गुँज उठा ऐसा अर्थ है। यहां पर चिन्मय तत्त्व का 'राम' नाम है इस श्रुति वचन से अनादि सत् चित् आनन्दार्थक परब्रह्म वाचक 'राम' शब्द प्रतिपाद्य इस पृथिवी पर हुआ, इस कथन से उसी श्रीरामचन्द्रजी का अवतारित्व है अन्य का नहीं यह व्यक्त होता है। अयोध्याधिपति महाराज श्रीदशरथजी के भवन में आविर्भूत श्रीरामजी का 'राम' में होने वाले गुणों एवं कर्म अर्थ वाले 'राम' पदका वाच्यार्थ होने के कारण अवतारत्व भी प्रतिपादित होता है। यदि ऐसा नहीं होता तो विष्णु हरि नारायण अथवा किसी अन्य दूसरे का पृथिवी पर 'राम' नाम प्रसिद्ध हुआ ऐसा कहा जाता ? ऐसा नहीं कहा गया है इसलिये 'राम' का ही अवतारित्व एवं अवतारत्व स्वतः सिद्ध है। रा धातु से कर्ता अर्थ में उणादिगण निरूपित म प्रत्यय करने पर 'राम' यह शब्द निष्पन्न होता है। उस 'राम' शब्द का यहां पर रा कार एवं म कार का चार तरह के अर्थ होते

सदाचारमवलोक्याकर्ण्य च राजानः अपि तथैवाचरन्ति, तेन धर्मो जायते। अर्थपञ्चकज्ञानपूर्वकम् परमात्मनः श्रीरामनाम्नो निरन्तरमर्थानुसन्धानसहितजपेन तेषां नृपाणां स्वरूपपरस्वरूपोणायस्वरूपोपेयस्वरूपसम्बन्धस्वरूपाणां ज्ञानेन तत्तद् विरोधिस्वरूपयाथातथ्यज्ञानं जायते, सर्ववेदहेतुप्रणवहेतुभूतस्य श्रीरामनाम्नो निखिलवेदमूलकत्वात्, वेदानाञ्च स्फुटमर्थपञ्चकबोधकत्वात्। कारणविज्ञानेन तत्कार्यभूतसकलवेदार्थज्ञानं भवतीतिबोध्यम्। क्रियाकर्मेज्यकर्तृणामर्थं वेदोवदति, मन्त्रार्थबोधनकालेऽभियुक्तवाक्यादर्थपञ्चकमवगम्यते।

प्राप्यस्य ब्रह्मणोरूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः।
प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेः तथा प्राप्ति विरोधिनः॥
वदन्ति सकला वेदाः सेतिहासपुराणकाः।
मुनयश्च महात्मानोवेदवेदांगवेदिनः॥ इति॥

तथा नामात्मकस्य मन्त्रस्याप्यर्थपञ्चकपरत्वं बुध्यते। तानि च ज्ञेयानि। अतिसुन्दरश्रीरामचन्द्रश्रीविग्रहध्यानेन परमानन्दानुभूतेर्विषयेभ्यो वैराग्यम्। सविधिश्रीरामपूजनात् ऐश्वर्यलाभः। ये राजानः श्रीरामचरितश्रवणानुष्ठानादिपराः त एव धर्मादिसम्पन्नाः, तच्चरित्ररत्याद्यभावेन धर्माद्यनुत्पत्तेः। किञ्चास्यां श्रीरामतापनीयोपनिषदि 'राज्यार्हाणाम्महीभृतामित्युक्तेः श्रीरामरति-
हैं। राक्षसों को मर्त्य के स्वरूप में यह एक अर्थ है, राहु जैसे चन्द्रमा को यह दूसरा अर्थ हुआ अर्थात् इन पदों में रा एवं म होने से दो अर्थ हुए, तीसरा-रा का अर्थ है प्रभा उस प्रभा से हीनो को यह अर्थ है। चौथा अर्थ तो 'राज्यार्हाणां महीभृताम्' इन पदों में वर्तमान रा और म से होता है। रा धातु प्रकाश अर्थ में तथा म कार लय अर्थ में प्रयोग किया गया है। चरित्र आदि के द्वारा किस तरह राजाओं की धर्म आदि की सिद्धि होती है ऐसी जिज्ञासा होने पर कहा जाता है। चरित्र सदाचार को कहा जाता है। वह सदाचार का आचरण धर्म का कारण स्वरूप कहा गया है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के सदाचार को देख सुनकर राजाओं का समुदाय भी धर्मजनक होने के कारण जैसे भगवान् श्रीराम आचरण किये उसी तरह ये भी आचरण करते हैं। और भगवान् श्रीरामजी जैसे आचरण करने के कारण राजाओं के धर्म की अभिबृद्धि होती है। अर्थपञ्चकों का तात्विक ज्ञान पूर्वक परब्रह्म परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के नाम का अविरत अर्थ का अनुशीलन पूर्वक जप (मानस

विहीनानां राज्यानर्हत्वम् । तेन श्रीरामचरित्रश्रवणमर्थानुसन्धानपूर्वकं जपः तद्ध्यानं चावश्यकं कर्तव्यम् प्रजानाञ्च राजानुसारित्वात् सर्वैरपि प्राणिभिस्तद् योग्यतामनुसृत्य श्रीराम एवोपास्यः इतिश्रुतेरस्याभिप्रायः । तदुक्तम्-

'सुरोऽसुरोवाप्यथवानरोनरः सर्वात्मनायः सुकृतज्ञमुत्तमम्

भजेतरामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत् कोशलान् दिवम्' इति ।

किञ्च राक्षसायेन मरणमिति श्रीरामस्य स्वभक्तद्रोहिविनाशे आग्रहातिशयो दर्शितः । तथा च रघुवंशे दशरथगृहे आविर्भावानन्तरं स्वभक्ताभीष्टप्रदत्वं प्रदर्शितम् । तथा च श्रीरामस्य वपुषो निरतिशयाभिरामत्वात् राक्षसादीनां मार णत्वादिभिर्भुवि विद्वद्भिर्गुणकर्मनिमित्ता 'रामाख्या' प्रकटीकृतेति प्रकाशयित्वा अवाधितस्वरूपं सच्चिदानन्दात्मकं सर्वेश्वरपरब्रह्मतत्त्वं बोधयितुं गौणनाम-निरूपणानन्तरं 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'आनन्दं ब्रह्मे'त्यादिश्रुतिभ्यो निरूपितं तत्त्वं प्रकाशनाय 'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्' इत्यादिभिः चरममन्त्राच्च उच्चारण) के द्वारा उन भगवत् सदाचारानुयायी स्वरूप उपाय स्वरूप एवं उपाय द्वारा प्राप्त करने योग्य उपेय स्वरूप एवं इन सभी का परस्पर सम्बन्ध स्वरूप के ज्ञान के द्वारा, एवं इस प्राप्य प्रापक आदि के उन-उन विरोधि स्वरूपों के वास्तविकता का पूर्ण रूपसे ज्ञान होता है । इसलिये अर्थपञ्चक तत्वज्ञ होना परम आवश्यक है । समस्त वेदों के कारण एवं प्रणव का कारण स्वरूप सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के नाम का समस्त वेदों का मूलकारण होने से कारण का विशेष रूपसे तात्त्विक ज्ञान होने से कार्य का तात्त्विक विशिष्ट ज्ञान होता है ऐसा नियम सुना जाता है । इससे यह सिद्ध होता है कि-श्रीरामजी का अर्थ विषयक विशिष्ट ज्ञान हो जाने पर श्रीराम नाम का कार्यभूत ॐकार एवं उसका कार्यभूत समस्त चराचर जगत् का ज्ञान होने से श्रीराम नामार्थ ज्ञान से समस्त वेदों के अर्थ का ज्ञान हो जाता है यह समझना चाहिये । क्रिया कर्म एवं यज्ञ के द्वारा उपासना करने तथा अधिकारी आदि अर्थों को वेद कहता है । श्रीराम मन्त्र का अर्थ बोध के समय परम प्रामाणिक वचनों के द्वारा उनके वाक्य से अर्थ पञ्चक समझे जाते हैं ।

प्राप्त करने योग्य परब्रह्म का स्वरूप और प्राप्त करने वाला कर्ता का प्रत्यगात्म चैतन्य स्वरूप, उन परमात्मा को प्राप्त करने का उपाय, और परमात्मा को प्राप्त कर लेने का परिणाम, तथा उन परमात्मा की प्राप्ति में प्रतिबन्धक (विरोधी तत्त्व) क्या

प्रतिपादयन्नाह तथा स्मृतिः→'तत्त्वस्वरूपं पुरुषं पुराणं स्वतेजसा पूरित विश्वमेकमिति' श्रीरामचन्द्रस्य मुख्यं स्वरूपतत्त्वमाह । पूर्वं गुणकर्माधारेण श्रीरामस्य 'रामाख्या' प्रकटीकृता, अथ सच्चिदानन्दात्मकं तत् स्वरूपमधिकृत्य तद् वाचकेन तादात्म्यभावेन यथा अनादिसिद्धा 'रामाख्यान्वार्थिका च श्रुता तथैव' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'यः सच्चिदानन्दात्मेति सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम् ।'चिद् वाचको रकारः स्यात् सद् वाच्याकार उच्यते । मकारानन्द वाची स्यात् सच्चिदानन्दमव्ययम् ।'

क्या हैं इनके नाम अर्थपञ्चक कहे जाते हैं । इन्हीं अभिप्रायों को समस्त वेदों और सभी इतिहास एवं सभी पुराण ग्रन्थ भी इन्हीं अर्थ पञ्चकों को कहते हैं । और सभी मुनि महात्मागण भी इन्हीं अर्थपञ्चक को कहते हैं । जो समस्त वेद एवं सभी वेदों के अर्थ तत्त्व को जानते हैं । उसीप्रकार नाम स्वरूप वाला मन्त्र का भी अर्थपञ्चक निरूपण परकत्व समझा जाता है । उन-उन अर्थपञ्चक स्वरूपों को अवश्य जानना चाहिये । समस्त ब्रह्माण्ड के सभी प्राणी एवं वस्तुओं की सुन्दरता से अत्यन्त उत्कृष्ट भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सुन्दरता युक्त शरीर का भूयोभूयः अनुशीलन के द्वारा परमानन्द की अनुभूति होने से संसार के समस्त वस्तुओं को उसकी तुलना में अत्यन्त तुच्छ होने के कारण सांसारिक विषय वस्तुओं से वैराग्य होता है । पाञ्चरात्र आदि साम्प्रदायिक परम्परागत पूजा विधान के अनुसार पूजा करने पर अनन्त ऐश्वर्य का लाभ होता है। जो राजागण सर्वेश्वर श्रीरामजी के सुन्दर चरित्र को सुनते हैं, श्रीरामचन्द्रजी के समान अपना अपना आचरण करते हैं, एवं उन आचरणों में तत्पर रहते हैं । वे ही राजा राजागण धर्म आदि से परिपूर्ण हैं । अन्य नहीं, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र आदि में अनुराग का अभाव होने से उनमें धर्म आदि की उत्पत्ति नहीं होती है । और भी इस प्रतिपाद्य श्रीरामतापनीय उपनिषद् में राज्य के योग्य राजाओं के इसप्रकार का कथन होने से, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के प्रति अनुराग से विहीन राजाओं की राज्य प्राप्ति की योग्यता नहीं है । सर्वेश्वर श्रीरामजी के प्रति अनुराग होना ही इसमें शुभ लक्षण है । इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र का श्रवण तथा श्रीराम नाम के अर्थ का अनुशीलन पूर्वक जप करना, श्रीरामचन्द्रजी के स्वरूप का ध्यान समस्त राजाओं एवं प्रजाओं का अति आवश्यक कर्तव्य है । क्योंकि प्रजाओं का राजा के आचरण का अनुसरण करना स्वभाव होता है । अतः सभी प्राणियों के द्वारा उस

इतिश्रुतिस्मृतिषु श्रीरामशब्दस्य सच्चिदानन्दब्रह्मात्मकत्वं श्रूयते । अतएव श्रीरामतापनीयोपनिषत् स्फुटं निरूपयामास→

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।

इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥ इति ॥

स्वरूप योग्यता का अनुसरण करके भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही उपासना करने योग्य हैं यही इस श्रुति वचन का अभिप्राय है→यही कहा भी गया है । देवता हो अथवा दैत्य राक्षस आदि अथवा मनुष्य या तिर्यग् योनि प्रसूत वानर भालु ही क्यों न हो अर्थात् किसी भी जाति या योनि में क्यों न हो किन्तु जो प्राणी सर्वतोभावेन प्राणियों के शुभ कर्मों को जानने वालों में सर्वश्रेष्ठ पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी को जो मानव की आकृति में हैं तो भी जन्म जन्मान्तर सञ्चित समस्त पाप ताप का हरण करने वाले हैं, उनके शरणागत होकर भजन करे, जो उत्तर कोशल अयोध्या निवासी आकीट पतङ्ग समस्त प्रजाओं को अपने नित्यधाम में साथ ले गये, अर्थात् श्रीरामजी के सेवक का उद्धार तो अवश्य ही होगा क्योंकि उनसे वढ़कर दूसरा दयालु कोई नहीं है । और भी 'राक्षसायेन मरणम्' इस श्रुति वचन से प्रमाणित होता है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने अपने भक्तों के शत्रुओं का विनाश करने में सीमातीत आग्रह दिखाया है । और इसीप्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का महाराज दशरथजी के घरमें आविर्भाव के पश्चात् यह बोध होता है कि श्रीरामचन्द्रजी का स्वभाव है कि वे अपने भक्तों के अभिमत फल को अवश्य प्रदान करते हैं यह प्रदर्शित किया गया है । और इसीप्रकार श्रीरामचन्द्रजी के शरीर की सीमातीत रमणीयता के कारण एवं सभी तरह से आनन्द प्रदायक होने से और राक्षस आदि का वध करने से एवं अन्य विलक्षण कार्यों समस्त त्रैलोक्य में तत्त्व ज्ञानी विद्वानों के द्वारा गुणों एवं क्रियाओं के हेतु 'राम' यह नाम प्रकट किया गया इस आशय को प्रकाशित कर निर्बाध युक्त स्वरूपता एवं सत् चित् आनन्द स्वरूपता युक्त परब्रह्म तत्त्व को बोध कराने के लिये गुण क्रिया पर आधारित श्रीरामजी का नाम निरूपण करने के पश्चात् सत्य ज्ञान एवं परमानन्द स्वरूप ब्रह्म है, आनन्द ही ब्रह्म है, इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा प्रतिपादन किया गया तत्त्व स्वरूप को प्रकाशित करने के लिये 'ॐ जो श्रीरामचन्द्रजी हैं वे भगवान् षड् विध ऐश्वर्य सम्पन्न हैं' इत्यादि श्रीरामतापनीय श्रुति वचनों के द्वारा तथा चरम मन्त्रों से प्रतिपादन करते हुए कहते हैं । तथा स्मृति भी कहती है-संसारादि के मूल तत्त्व स्वरूप पुराण

यत्र सत्यानन्दे चिदात्मनि साक्षात्कृदात्मतत्त्वपरतत्त्वा योगिनो रमन्ते, स सत्यानन्दचिदात्मा श्रीरामः मुमुक्ष्ववस्थायां मुक्तावस्थायाञ्च योगिजनरतिस्थानत्वेन तदुपेयोपायभूतं सत्यानन्दचिदात्मकं बृहद्गुणयोनिपरतत्त्वं श्रीरामशब्दमुख्यवाच्यमिति निर्गलितार्थः । यदि तूपक्रमवाक्यश्रुतयोः महाविष्णु हरिशब्दयोः अन्यतरस्य वा चिन्मयपरतत्त्वमुख्यवाचकत्वं स्यात् श्रुत्यभितम् तदा 'इति हरिपदेनासौ महाविष्णुपदेनासौ वा परब्रह्माभिधीयते' इत्येव वदेत् । तस्मा

पुरुषोत्तम जो अपने अनुपम प्रभाव से समस्त विश्व अर्थात् त्रैलोक्य को भर दिये हैं ऐसे परम पुरुष अद्वितीय सर्वकारण स्वरूप को प्रणाम करता हूँ। इत्यादि वचनों द्वारा द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का प्रधान स्वरूप प्रतिपादन किया। पहले तो गुण और क्रिया के आधार से श्रीरामचन्द्रजी की तीनों लोकों में 'राम' यह आख्या तत्त्व विज्ञानी विद्वानों के द्वारा प्रकट की गयी। इसके पश्चात् सत् चित् आनन्द स्वरूप उन परब्रह्म परमेश्वर का स्वरूप को विषय बनाकर उसके वाचक शब्द और पारमार्थिक अर्थ का तादात्म्य सम्बन्ध के द्वारा जिस तरह अनादि काल से सिद्ध अर्थात् किसी के की गयी नहीं श्रीरामचन्द्रजी की 'राम' यह आख्या हुई। यह जैसा नाम तदनुरूप अर्थ वाली यह अन्वर्थक संज्ञा हुई और इसीतरह सुनी भी गयी। उसीप्रकार ही सत्य ज्ञान एवं आनन्द स्वरूप जो परब्रह्म सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी हैं वे ही सत् चित् आनन्द स्वरूप हैं। इसलिये उनका सच्चिदानन्द यह नाम है। उस सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी की उपासना करनी चाहिये। 'राम' शब्द का सच्चिदानन्दार्थ प्रतिपादकता है इसका निरूपण करते हुए कहते हैं कि-चित् तत्त्व का प्रतिपादक र कार है एवं सत् अर्थ का प्रतिपादक आ कार को कहा जाता है और म कार आनन्दमय अर्थ का बोधक है इसलिए 'राम' यह शब्द अविनाशी परम नित्य अनादि सर्वकारण सच्चिदानन्द है'। इसप्रकार अन्य सभी श्रुति एवं स्मृतियों में श्रीराम शब्द का सत् चित् आनन्दमय ब्रह्म स्वरूपता सुनी जाती है। इसीलिये श्रीरामतापनीय उपनिषद् में सुस्पष्ट रूपसे इस अभिप्राय को प्रतिपादन किया कि-जिस सत्य आनन्द चित् स्वरूप अनन्त ब्रह्म तत्त्व में योगिजन रमण करते हैं इसलिये वे परब्रह्म 'राम' पद से तत्त्व ज्ञानियों के द्वारा कहे जाते हैं। जिस सत्य आनन्द एवं चिदात्म स्वरूप में जिह्नोंने आत्म तत्त्व एवं परमात्म तत्त्व का साक्षात्कार करलिये हैं ऐसे योगिजन समाधि आदि के द्वारा परम आनन्द की अनुभूति करते हैं वे ही सत् चित् आनन्दमय श्रीरामचन्द्रजी जो मुक्ति प्राप्ति

दिदं गुणनाममनिर्वचनं पूर्वतनं तदुत्तरतनं 'रमन्ते' इत्यादि च श्रीरामस्य द्वितीयमूलकारणपरं प्रतिपाद्यान्येषां गौणत्वमुपपादितम् ॥९॥

नच गौणश्रीरामनामभिः केवलं दाशरथित्वं बोध्यते न तु प्रातीतिकम नुष्यत्वबुद्धिः निवर्तते अतो 'रमन्ते' इतिश्रुतिः सच्चिदानन्दार्थनिर्वचनेन तद्वाच्य स्य प्रातीतिकबुद्धिनिवर्तनाय ब्रह्मावतारत्वं ज्ञापयतीति शंक्यम् । 'चिन्मयेऽस्मिन्

करने की इच्छा वाले की अवस्था में हैं। अथवा मोक्ष प्राप्त स्वरूप में हैं ऐसे समस्त योगिजनों के परम अनुराग का आश्रय स्थान के रूपमें उनके उपेय अर्थात् उपाय द्वारा प्राप्त करने योग्य, एवं उपाय परम लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन स्वरूप बने हुए सत्य आनन्द एवं चिदात्मक, असाधारण बृहत् गुणगण गरिमा युक्त परम तत्त्व 'राम' शब्द का प्रधान वाच्यार्थ है यह 'रमन्ते योगिनः' इस मन्त्र का सार स्वरूप अभिप्राय है।

यदि तो उपक्रम वाक्यों में सुने गये महाविष्णु तथा हरि शब्दों का अथवा महाविष्णु हरि में से किसी एक शब्द का चिन्मय परतत्त्वरूप अर्थ की प्रधान वाचकता होती तो यह अर्थ श्रुति स्मृति वचनों का अभिमत होता तव 'इति हरि पदेनासौ' अथवा 'इति महाविष्णु पदेनासौ परब्रह्म अभिधीयते' यही श्रुतियां कहती। ऐसा कहीं पर भी नहीं कही है इसलिये गुण पर आधारित 'राम' नाम का निर्वचन पूर्व काल में प्रतिपादन किये वचनों से निरूपण करके उसके परवर्ती वचनों के द्वारा सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के परम तत्त्व भूत अर्थ का प्रतिपादन करने के लिये 'रमन्ते योगिनः' इत्यादि से श्रीरामचन्द्रजी के अद्वितीय मूलकारण बोधन परक परम तत्त्व का प्रतिपादन कर दूसरों का गौणत्व निरूपण किया ॥९॥

यदि ऐसा कहें कि गुण कर्म पर आधारित श्रीरामचन्द्रजी के नामों से केवल दशरथ पुत्र श्रीरामचन्द्र मात्र अर्थ का बोध होता है। महाराज दशरथ के पुत्र श्रीरामजी का तो ज्ञान होता है लेकिन सामान्य प्रतीति से उत्पन्न मनुष्यत्व की भावना की निवृत्ति नहीं होती है। इसलिये 'रमन्ते योगिनः' इत्यादि श्रुति वचन सत् चित् आनन्दमय स्वरूप अर्थ का निर्वचन के द्वारा उस श्रीराम शब्द से प्रतिपाद्य अर्थ का प्रतीति जनित सामान्य रूप से ज्ञात मनुष्यत्व बुद्धि का निवारण करने के लिये श्रीरामचन्द्रजी सामान्य मनुष्य नहीं अपितु सर्व जगत् कारण परब्रह्म के अवतार हैं इस अभिप्राय को प्रकाशित करता है ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये, क्योंकि 'चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते

महाविष्णौ जाते दशरथे हरा' वित्यादिना परब्रह्मावतारत्वज्ञापनेनम-नुष्यत्वबुद्धिनिराकरणात् । तस्मात् ''रमन्ते'' इतितन्निष्ठावतारित्वज्ञापनेनैव सार्थकता । यद्यप्युपनिषत्सु ब्रह्मादिशब्दानां प्रणवस्याकारमकारादीनाञ्च बहुमाहात्म्यं श्रूयते, सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म नारायणः परंब्रह्मनृसिंहोब्रह्मेत्यादिभिः परतत्त्वमवगम्यते । तथाऽपि ब्रह्मपरब्रह्मादिशब्दानामनेकदेवताविशेषणत्वदर्शनात् गायत्र्याश्च पूर्वशुद्धानां ब्राह्मणादीनामेव संशोधकत्वात्, अस्य तु तेषां संशोध-नेन सह गायत्र्याद्यनधिकारिणां मलिनशूद्राद्यनधिकारिणामपि विग्रहविशेषस्या

दशरथे, भुवि' इन मन्त्रादि द्वारा श्रीरामचन्द्रजी का महाराज दशरथ के भवन में साक्षात् परब्रह्म का आविर्भाव होना ज्ञापित करके ही श्रीरामचन्द्रजी में मनुष्यत्व बुद्धि का निराकरण कर दिया जाता है । इसलिये ही 'रमन्ते योगिनः' इत्यादि मन्त्र के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी निष्ठ अवतारित्व बोधन करने से ही इस प्रासङ्गिक मन्त्र की सार्थकता होती है ।

यद्यपि उपनिषदों में ब्रह्म आदि शब्दों का और प्रणव का एवं अकार मकार आदि का अतिशय अधिक माहात्म्य सुना जाता है । जैसे सत्य ज्ञान एवं आनन्द स्वरूप तथा अनन्त स्वरूप ब्रह्म है । भगवान् श्रीनारायणजी ही परब्रह्म हैं, नृसिंह ही ब्रह्म है, इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा पर तत्त्व वास्तविक रूपसे समझा जाता है । तथाऽपि ब्रह्म परब्रह्म आदि शब्दों का विष्णु नारायण नृसिंह कृष्ण आदि अनेक देवताओं का विशेषण के स्वरूप में प्रयोग किये जाने के कारण ऐसा देखे जाने से और गायत्री मन्त्र का, पहले जन्म परम्परा से जो शुद्ध और संस्कार सम्पन्न है, ऐसे ब्राह्मण आदि द्विज का ही संशोधक होने से इसके साथ ही उत्तम वर्णों का ब्राह्मण आदि का श्रीराम के द्वारा संशोधन के साथ साथ जो गायत्री मन्त्र के अधिकारी नहीं है ऐसे मलिन वर्ण शूद्र आदि अनधिकारियों का भी सामान्य रूपसे संशोधक होने से, और ब्रह्म आदि शब्दों का उच्चारण समकाल में किसी प्रकार के विग्रह विशेष का स्फुरण नहीं होने के कारण एवं इन वातों से प्रतीत होता है कि ब्रह्म आदि शब्दों का सामान्यत्व है । और सामान्य वाचक शब्द का पशुना यजेत के छागो वा मन्त्र वर्णात् इस पशु छाग न्याय से विशेष अर्थ का निश्चायकत्व ही प्रतीत होता है । कारणार्थ बोधन परक जो सामान्य वाचक शब्द हैं वे कारणार्थ बोधपरक विशेष शब्दों में श्रीरामचन्द्रार्थ बोधपरक 'राम' शब्द की ही सभी के अपेक्षा उत्कृष्टता है । यह श्रुति द्वारा निरूपित है । और

स्फुरणाच्च तेषां ब्रह्मादीनां सामान्यत्वं सिद्ध्यति, सामान्यस्य च छागन्यायेन विशेषनिश्चायकत्वमेव, कारणपरसामान्यशब्दाः कारणपरविशेषशब्देषु श्रीरामशब्दस्यैव सर्वोत्कृष्टत्वश्रुतेः, स्मृतेश्च, तदुच्चारणसमकाले च द्विभुज धनुर्धरादिविग्रहविशेषानुभवकत्वाच्च श्रीरामशब्दस्यैव प्रणवकारणत्वश्रुतेः, जलादिकारणीभूतेषु ककारलकारादिषु रेफमकाराद्यवयवत्वदृष्टेश्च तेषां रेफाप-कृष्टत्वम् । रेफस्य च श्रीरामपरत्वं ब्रह्मादिशब्दानां च श्रीरामशब्दद्वारैव नित्यविग्रहनिश्चायकत्वं श्रीरामशब्दस्यैव तन्मुख्यवाचकत्वम्, प्रणवाद्यपकृतार्थानां शूद्रादिपापयोनिजातानां कृतार्थीकरणात् सर्वजीवाश्रयार्हत्वं सिद्ध्यति । श्रीकृष्णनारायणादिशब्दा अपि तत्पर्यायवाचकत्वेन श्रीरामसदृशाबोध्याः । श्रूयते चात्र 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इति, स्मर्यते च-

'विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकाः ।
तथाऽपि रामनामेवं सर्वेषां वीजमक्षयमिति ।'

स्मृति के द्वारा भी कहा गया है। और 'राम' शब्द का उच्चारण समकाल में दो भुजाओं आदि से विशिष्ट धनुष वाण को धारण करनेवाला विग्रह विशेष का शब्द के द्वारा अनुभव कराये जाने से श्रीराम शब्द का ही प्रणव का कारणत्व बोधक श्रुति वचन से श्रीरामजी का सर्वकारणत्व निश्चय होता है। जल आदि तत्त्वों का कारण स्वरूप बने हुए ककार लकार आदि वर्णों में रेफ और मकार आदि का अवयवत्व देखे जाने से यह सिद्ध होता है कि उन वर्णों का रेफ के अपेक्षा अपकृष्टत्व (न्यूनता) है। और रेफ का श्रीरामचन्द्रार्थ परकत्व है। और ब्रह्म आदि शब्दों का 'राम' शब्द के द्वारा ही नित्य विग्रह स्वरूपार्थ का निश्चायकत्व है। और उन सभी में 'राम' शब्द का ही मुख्यवाचकत्व है। और प्रणव आदि के द्वारा जो वेदानधिकारी कृतार्थ नहीं किये जाते हैं ऐसे शूद्र आदि पाप योनियों में पैदा हुए प्राणियों को कृतार्थ करने के कारण श्रीरामचन्द्रजी में समस्त प्राणि के द्वारा आश्रय ग्रहण योग्यता सिद्ध होती है कृष्ण नारायण आदि शब्द भी श्रीरामजी का पर्याय वाचक होने से 'राम' के ही समान हैं यह अभिप्राय समझना चाहिये। और इस विषय में सुना भी जाता है कि सभी प्रतिपाद्य अर्थों का बोधक 'राम' शब्द है। और स्मृति द्वारा भी कहा जाता है कि-समस्त चराचर है रूप जिनका ऐसे हे श्रीराम आपके सभी शब्द वाचक हैं, इसलिये समस्त शब्द के रामार्थ वाचकत्व होने पर यह 'राम' नाम सभी का जिसका कभी भी क्षय नहीं हो ऐसा अविनाशी मूलकारण है।

ननु एकविग्रहवाचकेषु शब्देषु बहुत्वे कस्य मुख्यत्वं यथा श्रीकृष्णविग्रहं प्रतिकृष्णास्य मुख्यता तथाऽपि समस्तविग्रहेषु तद्वाचकेषु च श्रीरामस्य मुख्यत्वमवगम्यते । अन्यच्चात्रकारणविग्रहं प्रतिमुख्यतोच्यते नतुकार्यविग्रहं प्रति। सर्वेषां भगवदवताराणां तत्त्व ऐक्यात् तेषां सर्वविग्रहबोधकत्वेऽपि येन येन तादात्म्यं तद्विग्रहं प्रतिमुख्यत्वम् । तदन्तरंप्रति च गौणत्वं यथा श्रीकृष्ण विग्रहस्य कृष्णं प्रतिमुख्यत्वं विष्णवादिशब्दस्य व्यापकत्वादिगुणगौणत्वम् । तेन कृष्णवाचकत्वम् रामवाचकत्वञ्च, तथाऽपि गौणस्यापि श्रीरामशब्दस्य सहस्त्रगुणाधिकफलश्रवणात् । 'वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु राममन्त्रः फलाधिकः' इतिस्मृतेश्च श्रीरामनिष्ठं गुणकर्माधिक्यमवगम्यते । 'अनन्ताभगवन्मन्त्रा नानेन तु समाः कृताः । श्रियोरमणसामर्थ्यात् सौन्दर्यगुणसागरात्' इत्यत्रानन्त-भगवन्मन्त्रेभ्यः श्रियोरमणसामर्थ्यादिगुणकर्मकृतकार्यविग्रहं प्रति कारणविग्रहं

यदि ऐसा प्रश्न करें कि एक स्वरूप विशेष का वाचक शब्दों में बहुत में से एक शब्द की प्रधानता होती है। जैसे कृष्ण आदि विग्रह के प्रति श्रीकृष्ण शब्द की प्रधानता होती है। ऐसा होने पर भी सभी देवता स्वरूपों में और उन-उन स्वरूप विशेष के वाचक शब्दों में 'राम' शब्द की प्रधानता है ऐसा समझा जाता है। और दूसरी वात यह है कि यहां पर कारण बोधक विग्रह के प्रति प्रधानता कही जाती है न कि कार्यबोधक स्वरूप के प्रति प्रधानता कही जाती है। भगवान् की सभी अवतारों में वास्तविक रूप में एक रूपता होने से उन सभी शब्दों के समस्त भगवत् स्वरूपार्थ बोधकत्व होने पर भी जिस जिस शब्द के साथ तादात्म्य सम्बन्ध होता है उसी भगवत् स्वरूप के प्रति उस शब्द की प्रधानता होती है। और उस शब्द का अन्य शब्द के प्रति तो अप्रधानता होती है। जैसे कृष्ण भगवान् के शरीर का 'कृष्ण' शब्द द्वारा बोध होता है इसलिये उसके प्रति मुख्यता है। लेकिन विष्णु नारायण आदि शब्दों की व्यापकत्व आदि गुण के कारण अप्रधानता ही होती है। इसलिये 'राम' शब्द का सर्ववाचकत्व होने से 'कृष्ण' वाचकत्व एवं 'राम' वाचकत्व है अन्य का नहीं। पर्यायत्वेन सर्ववाचकत्व है। ऐसा होने पर भी अप्रधान 'राम' शब्द का भी अन्य देवता नामों के अपेक्षा हजार गुणा अधिक फल श्रवण के कारण, और समस्त वैष्णव मन्त्रों में भी श्रीराम मन्त्र अधिक फलदायी है। इस स्मृति वचन के कारण श्रीरामचन्द्रजी में रहने वाली गुण क्रिया की अधिकता जानी जाती है। भगवान् के

प्रति च मुख्यवाचकत्वम्, सत्यानन्दचिद्धनादिकृतं गौणवाचकत्वं गौणस्येति। कार्यविग्रहस्यापि रामब्दस्य परशुरामापेक्षया दाशरथेः अधिकं माहात्म्यमव गम्यते। कारणविग्रहस्य च ब्रह्मात्मका सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम् इतिश्रूयते। नन्वत्र वाच्याधिक्यस्य वाचकाधिक्ये हेतुरुच्यते, अन्यत्र च वाचकाधिक्यस्य वाच्याधिक्ये हेतुत्वं स्वीकृतमितिचेन्न, वाच्याधिक्यस्यैव वाचकाधिक्ये हेतुत्वम्। वाचकस्य वाच्याश्रिततत्वेन स्ववाच्योत्कृष्टत्वानुपपत्तेः।

'एकाङ्गसङ्गिनी गङ्गा पावयेदखिलं जगत्।
अङ्गप्रत्यङ्गसंव्यापि नाम किङ्कर्तुमक्षमम्' इति॥

यस्य नामसंसर्गवशाद् द्विवर्णौ नष्टस्वरौमूर्ध्निगतौ स्वराणां तद् रामपादौ हृदिनिधाय देही कथं नोर्ध्वगतिं लभेत। लोकेऽपि वाच्योत्कृष्टमकृष्टत्वमविचार्य वाचकोच्चारणं दृश्यते। तद्यथा-

अगणित मन्त्र समूह हैं लेकिन इस 'राम' शब्द के समान कोई भी नहीं कहे गये हैं। लक्ष्मी का आनन्द प्रदायकत्व सामर्थ्य के कारण और सुन्दरता गुण के महासागर होने से यह अनन्त भगवन् मन्त्रों से गुण क्रिया प्रयुक्त कार्यबोधक स्वरूप के प्रति एवं कारण स्वरूप बोधक के प्रति मुख्य वाचकत्व है। सत्य आनन्द एवं चिद् घनत्व आदि प्रयुक्त अप्रधान वाचकत्व गौण श्रीराम शब्द का है। कार्य विग्रहार्थ बोधक का भी श्रीराम शब्द का परशुराम के अपेक्षा दशरथ तनय श्रीरामजी का अधिक महत्त्व समझा जाता है। और कारण स्वरूपार्थ बोधक शब्द का भी ब्रह्मस्वरूपमय सत् चित् आनन्द नाम है जिनका ऐसे सच्चिदानन्दत्वेन प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्रजी की उपासना करनी चाहिये इसप्रकार सुना जाता है।

यहां यदि प्रश्न करते हैं कि प्रतिपाद्य अर्थ की अधिकता का प्रतिपादक शब्द की अधिकता में कारण आपके द्वारा कहा जाता है। और दूसरे स्थानों पर प्रतिपादक शब्द की अधिकता का प्रतिपादन योग्य अर्थ में कारणता स्वीकार की गयी है। इस तरह निरूपण में दोहरा व्यवहार कैसे होगा ? यदि ऐसा कहें तो नहीं कह सकते हैं। क्योंकि वास्तविक में तो व्यवस्था यही है कि प्रतिपादनीय अर्थ की अधिकता का ही प्रतिपादक शब्द में अधिकता होने की कारणता है। क्योंकि प्रतिपादक शब्द का प्रतिपाद्य अर्थ पर आधारित होने के कारण, अपने प्रतिपाद्य अर्थ के अपेक्षा प्रतिपादक शब्द में उत्कृष्टता का निरूपण किया जाना युक्ति एवं तर्क सम्मत नहीं कहा जा सकता

राम?त्वत्तोऽधिकं नाम यदुक्त्यैव पुमांस्तरेत् ।

विनापि सेतुनिर्माणमपारं भवसागरम्' इति ।

वाच्याद् वाच्याधिक्यं स्मर्यते, तस्य सर्वजनसुलभत्वात् । उच्चारणमात्रेण संसारसन्तारकत्वाच्च ।

ननु मूलकारणत्वस्य एकस्मिन्नेव तादात्म्यस्वीकारे नृसिंहाद्युपमिषत्सु तत्तन्मन्त्राणां जगदुत्पत्त्यादिहेतुत्वस्य का गतिस्यादित्यत्रोच्यते । नृसिंहोपनिषद् नारायणोपनिषद् गोपालोपनिषदादिषु तत्तन्नाम्नां ख्यातिस्तु कार्यकारणयोरभेदात् कार्यविग्रहस्यापि जगदुत्पत्यादिहेतुत्वमुक्तम्भवति । श्रीविष्णुनारायणमत्स्यादीनां
लेकिन यहां की परिस्थिति तो विलक्षण ही है। जैसे कि एक किसी अङ्ग विशेष का सम्पर्क प्राप्त करनेवाली, अर्थात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरण मात्र का सङ्ग प्राप्त करनेवाली गङ्गा अथवा उपासक के किसी अङ्ग विशेष का भी जिसका स्पर्श हुआ है ऐसी गङ्गा समस्त भूमण्डल को पावनतम बनाती है। तब जिसका अङ्ग प्रत्यङ्ग से सम्पर्क होता है, उसके लिये क्या नहीं कर सकती है। जिन मर्यादापुरुषोत्तम अखिल जगत् नियामक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का सम्बन्ध मात्र से ही दो वर्ण जिनके स्वर नष्ट हो गये हैं तो भी मूर्धा स्थान को प्राप्त किये हैं। अर्थात् सभी स्वरों में उच्च स्थान को प्राप्त किया है। ऐसे भगवान् श्रीरामजी के चरणों को हृदय में स्थापित कर संसार के सभी शरीर धारी प्राणी कैसे ऊर्ध्व लोकों में गति को नहीं प्राप्त कर सकेगा। इस सांसारिक व्यवहार में भी ऐसा देखा जाता है कि प्रतिपाद्य अर्थ विशेष की उत्कृष्टता अपकृष्टता आदि विषय का विना विचार किये ही वाचक शब्द का उच्चारण किया जाता है। जैसे कि-हे भगवन् श्रीरामचन्द्र ? आप से कहीं अधिक वढचढ कर आपका शुभ नाम है, क्योंकि समाधि आदि के द्वारा कठिनता से स्वरूप दर्शन कर प्राणी मुक्त होगा, इसकी अपेक्षा केवल नामोच्चारण मात्र से संसार के पुरुष संसार सागर को पार कर जाता है, विना सेतु पुल आदि की संरचना के ही दुष्पार संसाररूपी महासागर को प्राणी श्रीरामनाम उच्चारण करने मात्र से पार हो जाता है। इस स्मृति के द्वारा वाच्यार्थ की अपेक्षा वाचक शब्द की अधिक माहात्म्य प्रतिपादन किया गया है। और श्रीरामजी के नाम का उच्चारण सभी लोगों के लिये सुलभ होने से और केवल उच्चारण करने से ही संसार सागर का सन्तारक होने से वाच्य के अपेक्षा वाचक की अधिक माहात्म्य सुना जाता है।

श्रीरामरूपत्वेन कार्यत्वं श्रीरामचन्द्रस्य तु सर्वरूपित्वेनकारणत्वमिति उपसंहार मन्त्रनिर्वचनप्रस्तावे विशेषेण वक्ष्यते ॥१०॥

प्रश्न करते हैं कि मूलकारणता का एक में ही तादात्म्य सम्बन्ध स्वीकार करने पर, नृसिंह गोपाल तापनीय आदि उपनिषदों में उन-उन देवताओं के मन्त्रों का संसार के उत्पत्ति स्थिति पालन आदि का कारणत्व प्रतिपादन की गति की क्या स्थिति होगी ? तो इस सम्बन्ध में समाधान कहते हैं। नृसिंहोपनिषद् नारायणोपनिषद् गोपालोपनिषद् आदि में उन-उन नामों की कारण स्वरूप में प्रसिद्धि तो कार्य कारण में अभेद सम्बन्ध होने के कारण है कार्य बोधक भगवद् विग्रह का भी संसार की उत्पत्ति स्थिति एवं प्रलय आदि की कारणता निरूपण की जाती है। विष्णु नारायण मत्स्य आदि का श्रीरामचन्द्र स्वरूप होने से कार्यत्व है और श्रीरामचन्द्रजी का सर्वरूपित्व होने के कारण कारणत्व है। इस विषय का उपसंहार मन्त्रों का निर्वचन करते समय उस प्रसङ्ग में विशेष रूपसे प्रतिपादन किया जायगा ॥१०॥

अथ 'रमन्ते' इत्यादिना सच्चिदानन्दार्थकमुख्यश्रीरामनामनिर्वचनेन श्रीरामशब्दस्य परतत्त्वाभिधायकत्वं प्रकाशयन्नाह-

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।

इतिरामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥५॥

इसके वाद 'रमन्ते' इत्यादि मन्त्र के द्वारा सत् चित् और आनन्दमय अर्थ है जिसका ऐसे मुख्य श्रीराम नाम का अर्थ निर्वचन के द्वारा श्रीराम शब्द का परतत्त्व अर्थ बोधकता का निरूपण करते हुए कहते हैं जिस अनन्त सत्य आनन्द एवं चिदात्म स्वरूप में योगिजन आत्म क्रीडानुभूति करते हैं इस कारण से वह परब्रह्म 'राम' शब्द के द्वारा प्रतिपादित किये जाते हैं ॥५॥

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'आनन्दो ब्रह्म' 'प्रज्ञानं ब्रह्मेत्यादिश्रुतिभि-रुक्तेऽनन्तसत्यानन्दात्मकेऽपरिच्छिन्नचित् स्वरूपे यस्मिन् योगिनो रमन्ते स सत्यानन्दगुणकोऽनन्तं चिदात्मा रामः । रमुक्रीडायामित्यस्मादधिकरणेऽर्थे हल-

सत्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप एवं अनन्त स्वरूप ब्रह्म है। आनन्द स्वरूप ही ब्रह्म है। प्रकृष्ट ज्ञान धन ब्रह्म है, इत्यादि श्रुतियों के द्वारा निरूपित अनन्त सत्य एवं आनन्द स्वरूप जिसे परिच्छेद नहीं किया जा सकता ऐसे जिस चित् स्वरूप में योगिजन आत्म

श्चेति सूत्रेण घञ् प्रत्यये कृते 'राम' इत्यस्यसिद्धिः। तस्य परब्रह्माभिधायकत्वेन तेन तादात्म्यप्राप्तेन तस्य श्रुतावुपासितव्यमित्यभिधानात्, स सर्वव्यापकः सर्वावतारीसर्वनिदानं महाव्यापकत्वादिगुणको रामः सत्यानन्दचिदात्मकः परब्रह्मशब्देनोच्यते, कारणकार्यावस्थास्थितयोरपि द्विविधरामशब्दयोः सारूप्यं बुध्यते। तदुच्चारणसमये विशेषविग्रहस्योपस्थितेः। महाविष्णुपरब्रह्मादि शब्दानामपि तस्मिन्नेव परतत्त्वे पर्यवसानम्। ब्रह्मपरब्रह्मादिशब्दानां वाच्यविशेषा श्रवणेन सामान्यशब्दत्वं तेषां विशेषार्थोपस्थापके विशेषेपर्यवसानं समुचितम्।

क्रीडा विहार करते हैं, वह सत्य एवं आनन्द है गुण जिनका ऐसे अनन्त चिदात्मा स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी हैं। 'रमु' क्रीडायाम् इस अर्थ वाला धातु से अधिकरण अर्थ में घञ् प्रत्यय करने पर 'राम' शब्द की निष्पत्ति होती है। उस शब्द का ब्रह्म अर्थ वाचक होने के कारण उस ब्रह्म अर्थ के साथ तादात्म्य भाव सम्बन्ध होने से और उस 'राम' का उपनिषदों में उपासना योग्य कहे जाने से यह सिद्ध होता है कि वे श्रीरामचन्द्रजी सर्वव्यापक हैं, सभी अवतारों का मूलकारणभूत अवतारी हैं, सभी का आदि कारण हैं, और महान् व्यापकत्व गुण वाले हैं। और ऐसे गुणगण विशिष्ट सत् चित् आनन्द स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी परब्रह्म शब्द से कहे जाते हैं। कारण अवस्था में अवस्थित 'राम' एवं कार्य अवस्था में अवस्थित 'राम' ये दोनों प्रकार के ही 'राम' शब्दों की समान रूपता समझी जाती है। उन दोनों रूपों में वर्तमान 'राम' शब्द का उच्चारण समकाल में विशेष प्रकार के द्विभुजत्व धनुर्वाण धारकत्व आदि विशिष्ट अर्थ की उपस्थिति होने से, महाविष्णु परब्रह्म आदि शब्दों का भी उन्हीं श्रीरामचन्द्र स्वरूप परम तत्त्व में समावेश होता है। ब्रह्म परब्रह्म आदि शब्दों का प्रतिपाद्य अर्थ विशेष कहीं भी नहीं सुने जाने के कारण इनका सामान्य शब्दत्व है। सामान्य वाचक शब्दों का केवल विशेषार्थोपस्थापकत्व ही होता है इसलिये उनकी विशेष अर्थ में ही पूर्णता होती है ऐसा समुचित है। और उपनिषद् के वचनों में मूलकारणत्व के बोधक ब्रह्म आदि शब्दों से सत् चित् आनन्दमय जिनका स्वरूप है ऐसे श्रीराम शब्द से कहा गया दशरथ के पुत्र श्रीरामजी का ही सभी भगवद् विग्रहों की तुलना में उत्कृष्टता का ज्ञान होता है। अपने अभीष्ट अर्थ के संयोग से उत्पन्न होने वाली जो क्रीडा है उसे रति कहा जाता है। उस रति के कारण रमण करने योग्य श्रीरामचन्द्रजी का समस्त सीमाओं को लाङ्घकर विद्यमान सुन्दरता युक्त की साकारता का निरूपण करके, जैसा स्वरूप

उपनिषद् वचनेषु च मूलकारणत्वबोधकाद् ब्रह्मादिशब्दात् सच्चिदानन्दात्मक रामशब्दोक्तदाशरथेरेव सर्वोत्कृष्टत्वं बोध्यते । अभिमतार्थसंयोगजक्रीडारतिः तया रम्यस्य श्रीरामस्य निरतिशयसौन्दर्यवतः साकारत्वं निरूप्य, स्वरूपसमानाकारगुणत्वात् रममाणानां योगिनां सत्यानन्दयो रममाणत्वात् कोमलमानसत्वं बोध्यते । 'अनन्त' इत्युक्तेः रतेविच्छेदाभावेन समरसत्वं गम्यते सत्यत्वं नाम अबाधित स्वरूपत्वं सर्वदा नामरूपविभागयोग्यत्वञ्च । आनन्दस्य सुखरूपत्वात् ब्रह्मण आनन्दस्वरूपत्वात् च तत्र रममाणानां योगिनामानन्दोपलब्धिरेव पुरषार्थः । अनन्तत्वञ्च स्वरूपगुणाभ्यां त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वम् । तेन सर्वव्यापकत्व सर्वज्ञत्वादिगुणानां सिद्धिः । चिदात्मनीत्यनेन चितः स्वप्रकाशज्योतिरूपस्य विकारित्वाभावात् प्राकृतिकशरीरसम्बन्धाभावेन तद्विग्रहस्यापि चित् स्वरूपत्वं

है उसके समान रूपवाले गुणों के होने के कारण रमण करते हुए योगिजनों के सत्य एवं आनन्द स्वरूपों में रममाणत्व के कारण उन योगियों का मानस की कोमलता प्रतीत होती है यह समझना चाहिये । 'राम' में अनन्त यह विशेषण कहे जाने से अनुराग का कभी भी विच्छेद नहीं होने से समरसता प्रतीत होती है । निर्बाध स्वरूपता होना और भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालों में हर समय नाम एवं स्वरूप की विभाजन योग्यता होना सत्यत्व कहा जाता है । आनन्द को सुख स्वरूप होने से और ब्रह्म को आनन्दमय स्वरूप होने के कारण उस आनन्दमय ब्रह्म स्वरूप में आत्म क्रीडाऽनुभव करते हुए योगिजनों के परमानन्द की उपलब्धि करना ही उनका परमपुरुषार्थ है । और अनन्तत्व तो स्वरूप एवं गुण की दृष्टि से तीन प्रकार के परिच्छेदों से रहित होना है । इस तरह त्रिविध परिच्छेद राहित्य के होने से परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी में सर्वव्यापकता एवं सर्वज्ञता आदि गुणों की सिद्धि होती है । प्रकृत मन्त्र में चिदात्मनि कहा है इससे चित् का अर्थात् स्वयं प्रकाश स्वरूप दिव्य ज्योतिर्मय स्वरूप का कि अन्य का परिणाम न होना अर्थात् प्रकृति आदि जनित शरीर नहीं होने से प्रकृतिजनित शरीर सम्बन्ध का अभाव होने से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के दिव्य तेजोमय शरीर का भी चित् स्वरूपता समझी जाती है । यहां पर सत्य आनन्द एवं अनन्त निरूपण ज्ञान शक्ति एवं बल का और सत्य कामता सत्य सङ्कल्पता आदि गुणों का उपलक्षण है । यदि पूर्वोक्त गुणों का उपलक्षम नहीं स्वीकार किया जाय तो परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी के गुणों का प्रयोजन के अवसर पर उन गुणों के अभाव होने से सम्भावित कार्य की पूर्णता

बुध्यते । अत्र सत्यानन्दानन्तवचनं ज्ञानशक्तिबलानां सत्यकामसत्यसङ्कल्पत्वादि गुणानाञ्चोपलक्षणम् । अन्यथा तद् गुणप्रयोजनकाले तेन विनाकार्यासिद्धेरा नन्दमये ब्रह्मणि दुःखित्वमपि प्रसज्जेत । दुःखित्वेन च संसारित्वस्य प्रसक्तिः स्यात् । रमणस्य क्रीडाविहाररूपतया विग्रहं विना तन्न सम्भवति तेन परब्रह्मणो योगिनाञ्च सविग्रहत्वं सिध्यति । 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः' इतिश्रुतेः । 'तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः' इतिश्रुतेः 'नीलं नभः' इतिप्रतीतेश्च, आकाशस्यापि जन्यत्वम् रूपवत्वञ्च, दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोः साम्यात् ब्रह्मणः सविग्रहत्वं व्यापकत्वञ्चायाति ।

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्रया बुध्या सूक्ष्मया तत्त्वदर्शिभिः ॥

नहीं होने पर परमानन्दमय ब्रह्म में सुखित्व के स्थान पर दुःखित्व होने का भी प्रसङ्ग हो जायगा तौ उन्हें आनन्दमय निरूपण का औचित्य नहीं रहेगा इसलिये उपलक्षण मानना ही चाहिये । और परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी में दुःखित्व होने सांसारिकता स्वीकार करने का प्रसङ्ग हो जायगा । रमण को क्रीडा विहार स्वरूप होने से वह क्रीडा विहार शरीर सम्बन्ध के विना सम्भव नहीं है । इसलिये परब्रह्म परमेश्वर और योगिजनों का भी सशरीरत्व होना सिद्ध होता है । यदि कहें कि शरीर सम्बन्ध मानने पर मृत्यु भी मानना होगा तो पुनः सांसारिकता की आपत्ति होगी तो कहते हैं-योगियों एवं परब्रह्म का देह आकाश के समान होता है । श्रुति भी कहती है आकाश के समान परब्रह्म सर्वगत है एवं उत्पत्ति विनाशादि रहित नित्य है । यदि कहें कि आकाश की कहां उत्पत्ति होती है तो श्रुति वचन है-उस परमात्मा से आकाश उत्पन्न हुआ । नीलाभ (नील रंङ्ग की जिसकी आभा है) आकाश है ऐसी लोक व्यवहारगत भी प्रतीति होती है । इस आधार पर सिद्ध है कि आकाश की भी जन्यता है, प्रादुर्भाव योग्य जन्य कहा जाता है । एवं आकाश का भी रूपत्व है । दृष्टान्त-उदाहरण, दृष्टान्तिक-जिसके लिये उदाहरण दिया जाता है । इन दोनों की समानता होने से ब्रह्म का सशरीरत्व एवं सर्वव्यापकत्व ये दोनों वातें प्रमाणित हैं । यह परब्रह्म परमेश्वर जगत्कारण श्रीरामचन्द्रजी समस्त प्राणी मात्र के अन्तःकरण में विराजमान रहते हुए भी, अत्यन्त गुप्त रूपसे हृदयाकाश में होने से प्रतीत नहीं होते हैं ।

लेकिन प्रणिधानादि सम्पन्न अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा अनुभव विषय होते

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्य इत्यादिश्रुतेः ब्रह्मणोदृश्यत्वेऽपि न विनाशित्वं सम्भवति । जन्यत्वे सति दृश्यत्वं विनाशित्वे हेतुरस्ति ब्रह्मणोऽजन्यत्वात् । साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वस्योपाधित्वात् जन्यत्वमुपाधिरितिचेत् न, ईश्वरः सावयवोऽपि न विनाशीघटादिषु सावयवत्वे सति जन्यत्वमस्ति ईश्वरेसावयवत्वेऽपि जन्यत्वाभाव एवास्ति । यदि प्राकृतं सावयवत्वं विनाशित्वे हेतुस्तदा ईश्वरस्याप्राकृतावयवात् न विनाशित्वम् । न चैनं कश्चित् चक्षुषा पश्यति, यन् न मनोऽनुमनुते 'यतोवाचोनिवर्तन्ते अप्राप्यमनसा

हैं। वह भी सभी के द्वारा नहीं अनुभूत किये जा सकते हैं। अपितु सूक्ष्म बुद्धिशाली तत्त्व दर्शी योगियों के द्वारा ही अनुभव किये जाते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य ने जनक से कहा भी है, अरे इस आत्मा को देखा जाना चाहिये । इस आत्मा को सुनना चाहिये। तथा इस आत्मा के विषय में मनन करना चाहिये । इन श्रुतियों द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म की दर्शन योग्यता एवं सविग्रहत्व आदि होने पर भी परमात्मा में दृश्यत्व होने पर भी विनाशित्व नहीं है। यदि कहें कि दृश्यत्व होना विनाशित्व का साधक है तो यह परब्रह्म में सम्भव नहीं है। क्योंकि जन्यत्व गुण युक्त होने पर यदि दृश्यत्व होता है तो विनाशित्व होता है, परमात्मा अनादि अजन्मा अनन्त आदि गुण युक्त है अतः विनाशी नहीं है। ब्रह्म को अजन्य होने से विनाशित्वाभाव है। साध्य में जो हेतु व्यापक रूपसे रहते हुए साधन में व्यापक नहीं रहता है वह सद् हेतु न होकर उपाधि है। ऐसा यदि कहते हैं तो यह कहना उचित नहीं । क्योंकि ईश्वर अवय सम्पन्न होते हुए भी विनाशी नहीं हो सकता है। घट पट आदि सांसारिक पदार्थों में अवयव सहित होने पर जन्यत्व है, इशलिये विनाशित्व भी है। लेकिन ईश्वर में सावयवत्व होने पर भी घट पटादि के समान जन्यत्व नहीं है अपितु जन्यत्व का अभाव है । क्योंकि घटपटादि में प्रकृति जनित सावयवत्व है, यदि प्रकृति जनित सावयवत्व विनाशित्व होने में कारण होता है ऐसा स्वीकार करते हैं तब ईश्वर का अप्राकृत अवयव युक्त होने से ईश्वर में विनाशित्व नहीं होता है। और इन परमेश्वर को कोई भी व्यक्ति सांसारिक चर्मचक्षु के द्वारा परब्रह्म परमेश्वर को नहीं देखता है। जिसे मन भी अनुमान नहीं करता है जहां से मनके सहित वाणी परमात्मा को नहीं पाकर पीछे लौट आती है। अर्थात् परमात्मा साक्षात्कार में वाणी और मनकी भी गति सामर्थ्य नहीं है । इत्यादि श्रुतियां कहती हैं कि-परमेश्वर प्रकृति जनित इन्द्रियों का

सह' इत्याद्याः श्रुतयः प्राकृतेन्द्रियागोचरत्वमेवगमयति, तथाचोक्तं गीतायाम् 'न च मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा । दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरमिति, ईश्वरीयरूपलावण्यातिशयस्यापारतया कात्स्न्र्येन बोद्धुमशक्य त्वात् याथातथ्येन दर्शनाय तत् कृपादृष्ट्यैवावलोकनीयताभवति, अन्यथा 'हृदा मनीषा मनसा भिक्लृप्तः' 'यमेवैष वृणुते स तेन लभ्यः' इतिश्रुतिः व्याकुप्येत । तथा च 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'आनन्दो ब्रह्म' इत्यादिश्रुतयो ब्रह्म-सच्चिदानन्दस्वरूपं बोधयन्ति । 'रमन्ते योगिनः' 'ब्रह्मात्मका सच्चिदानन्दाख्या'

गोचर (प्रत्यक्ष) नहीं होता है । इसी तरह कहा भी गया है गीता में श्रीकृष्णजी अर्जुन से कहते हैं-हे अर्जुन तुम मुझे इस प्रकृति जनित चर्मचक्षु के द्वारा मेरे दिव्य ज्योतिर्मय विराट् स्वरूप को नहीं देख सकते हो । इसलिये मेरा वास्तविक रूप को देखने के लिये तुम्हें दिव्य चक्षु प्रदान करता हूँ । तुम मेरे ईश्वर सम्बन्धी योग को देखो । ईश्वर सम्बन्धी स्वरूप सौन्दर्य लावण्य आदि को अतिशयित एवं अपार होने के कारण समग्र रूपसे समझने के लिये अशक्य होने के कारण जैसे परमात्मा है उनके वास्तविक स्वरूप को देखने के लिये उन परमात्मा की कृपा दृष्टि से ही परमात्मा का दर्शन करने की योग्यता साधक में होती है । यदि परमात्मा की अनुकम्पा नहीं हो तो परमात्मा का साक्षात्कार सम्भव नहीं । हृदय के द्वारा, मननशील बुद्धि के द्वारा सभी तरह से निश्चित किया होने पर भी, यह परमात्मा जिस भक्त को अपना कृपा पात्र स्वरूप में स्वीकार करते हैं वे परमात्मा उस भगवदनुकम्पा सम्पन्न उपासक के द्वारा ही प्राप्त करने योग्य हैं । इस श्रुति वचन का विरोध होने लग जायगा । इसीप्रकार और भी-सत्य ज्ञान एवं अनन्त स्वरूप ब्रह्म है । आनन्द स्वरूप ब्रह्म है इत्यादि श्रुतियां ब्रह्म को सत् चित् और आनन्द स्वरूप प्रतिपादन करती हैं । जिनमें योगिजन रमण करते हैं। ब्रह्म स्वरूप सच्चिदानन्द नामक इत्यादि श्रुतियां एवं उन परब्रह्म का वाचक रकार आदि हैं इत्यादि स्मृति वचन भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का 'राम' नाम एवं ब्रह्म स्वरूप का समग्र रूपसे साक्षात् वाचकत्व है इस अभिप्राय को प्रकाशित करती हैं । उन श्रुतियों के द्वारा अप्रत्यक्ष रूपसे प्रकाशन एवं इन श्रुतियों के द्वारा प्रत्यक्ष रूपसे प्रकाशन किया जाता है । यह विचार कर अन्य भगवद् विग्रहों के नामों से अपेक्षाकृत श्रीराम नाम की प्रधानता है, अन्य भगवद् विग्रह नाम तो गुण क्रिया आदि की अपेक्षा के कारण गौण (अप्रधान) हैं । सभी नित्यों में नित्य है । सभी चेतनों में चेतन है,

इत्याद्याः श्रुतयः, 'तद्वाचको रकारः' इत्याद्याः स्मृतयश्च श्रीरामनाम्नः ब्रह्मस्वरूपस्य कात्स्न्येन साक्षाद् वाचकत्वं प्रकाशयन्ति इतिकृत्वानामान्तरेभ्यो मुख्यत्वं नामान्तराणि तु गुणापेक्षतया गौणानि । 'नित्यो नित्यानां' 'सदापश्यन्ति सूरयः' 'नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयंसनातनः' इत्यादिश्रुतिस्मृतिभिः जीवानामपि नित्यत्वमाह तेन रम्यगुणाश्रयत्वेन श्रीरामस्य नित्यत्वेऽनादित्वे च न कश्चित् क्षतिः । 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चनेति यथानन्दस्य ब्रह्मसम्बन्धित्वं तथा चिन्मयस्याद्वितीयस्य, चिन्मयः परमेश्वरः, रामचन्द्रश्चिदात्मकः' इत्याद्यास्सामानाधिकरण्येन स्वरूपसमानाकाराधर्माः । तथा च-

चिद् वाचको रकारः स्यात् सद्वाच्याकार उच्यते ।
मकारानन्दवाची स्यात् सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥

सदैव तत्त्व विज्ञानी विद्वज्जन देखते हैं । नित्य है सभी में रहने वाला है, स्थायी है अचल है एवं सनातन है, अर्थात् उत्पत्ति विनाश बृद्धि ह्रास आदि जिसका कभी नहीं होता है । इत्यादि श्रुति स्मृति वचनों के द्वारा जीवात्माओं की भी नित्यता को प्रतिपादित करते हैं । इसप्रकार नित्यता आदि गुण जीवात्मा एवं परमात्मा दोनों में ही होने से भी, रमणीय गुणों का आश्रय होने के कारण भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की नित्यता एवं अनादित्व में किसी तरह की हानि नहीं होती है । तत्त्व ज्ञानी पुरुष परब्रह्म के आनन्द स्वरूप को जानकर फिर किसी से भी भयाक्रान्त नहीं होता है । इस कथन के द्वारा जिस तरह आनन्द का ब्रह्म सम्बन्धित्व का रूप से बोध होता है, उसी तरह चिन्मय अद्वितीय का, चिन्मय परमेश्वर हैं, श्रीरामचन्द्र चित् स्वरूप हैं । इत्यादि श्रुति वचन विशेष्य विशेषण बोधक पदों में समान विभक्तित्व होने के कारण जैसा भगवान् का स्वरूप है उन्हीं के समान स्वरूपधारी धर्म भी भगवान् में है । इसीप्रकार और भी कहा है-चित् स्वरूप का प्रतिपादक 'र'कार है एवं सत् स्वरूप प्रतिपादक 'आ'कार कहा जाता है । और 'म'कार आनन्द स्वरूप वाचक है । इसलिये 'राम' अविनाशी सच्चिदानन्द वाचक है, 'राम' में साक्षात् सच्चिदानन्द वाचकता है । इसप्रकार श्रुति स्मृति वचनों के आधार पर श्रीरामचन्द्रजी का सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म का साक्षात् वाचकत्व प्रमाणित होता है ।

यद्यपि कृष् धातु भूमि अर्थ वाचक है तथा ण शब्द पर निवृत्ति रूप अर्थ वाचक है वे दोनों मिलकर भगवान् श्रीकृष्ण शब्द का भी सदानन्द रूप अर्थ का

इत्थं श्रीरामस्य सच्चिदानन्दपरब्रह्मवाचकत्वं श्रुतिस्मृतिभ्यां संभवति। यद्यपि 'कृषिभूवाचकः शब्दः णश्च निर्वृत्तिवाचकः' इत्यतः श्रीकृष्णस्यापि सदानन्दवाचकत्वं नामान्तरेभ्य उत्कृष्टत्वञ्चोक्तम्, तथा सदानन्दयोर्गुणयोरेव तथा बोधः। चित् पदाध्याहारस्तु सच्चिदानन्दाख्या इत्यस्मादेव भवति। यदि तु सद प्रत्याहार उच्यते तदपि न, दकारस्य हलन्तत्वौचित्यात्। श्रीरामनाम्नस्तु कृष्णादि नामप्रकाशकत्वेन मुख्यत्वमुत्कृष्टत्वञ्च, स्पष्टीकृतमिदं सदाशिवेन-

सर्वं वसति वै यस्मिन् सर्वस्मिन् वसते तु यः।
तमाहुर्वासुदेवेति मुनयः शास्त्रकोविदाः॥ इत्यारभ्य-
कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
तयोरैक्यं महाविद्ये कृष्ण इत्यभिधीयते॥

वाचक होते हैं। और अन्य नामों की अपेक्षा अधिक उत्कृष्टता भी 'कृष्ण' में है ऐसा कहा गया है। तो श्रीकृष्ण को भी सबसे उत्कृष्ट क्यों नहीं मानें? उसप्रकार उन सत् और आनन्द नामक गुणों का ही वैसा बोध होता है, न कि सच्चिदानन्द रूप अर्थ का। यदि कहें कि चित् पद का अध्याहार करके पुनः सच्चिदानन्द रूप अर्थ का बोध करेंगे। तब तो चित् पद का अध्याहार सच्चिदानन्दाख्या इत्यादि श्रुति से ही होता है। यदि कहें कि सत् का स से लेकर आनन्द का द के साथ आदिरन्त्येन सहेता इस व्याकरण नियम से सद् प्रत्याहार मानकर सच्चिदानन्दार्थ बोध होता है। तो यह भी नहीं कह सकते हैं। सद् प्रत्याहार में दकार को हलन्त होना चाहिये और यहां पर आनन्द का दकार हलन्त नहीं है। और श्रीराम नाम का तो श्रीकृष्ण आदि के नाम का प्रकाशक होने के कारण मुख्यता है तथा सर्वोत्कृष्टता है। यह विषय भगवान् शंकर के द्वारा सुस्पष्ट किया गया है। जैसे कि-

जिसमें सभी निवास करते हैं, और जो समस्त चराचर ब्रह्माण्ड में निवास करता है। उन्हें समस्त वेदादि समस्त शास्त्र पुराणों के तत्त्व ज्ञानी मुनिगण वासुदेव शब्द से कहे हैं। कृष्ण शब्दगत कृष् शब्द भू अर्थ सत्तार्थ को कहनेवाला शब्द है, एवं ण शब्द आनन्द रूप अर्थ का वाचक है। अर्थों की एकता का जो महाज्ञानी है वे 'कृष्ण' इस शब्द से कहे जाते हैं। नारायण नृसिंह विष्णु आदि जो भगवद् विग्रह के नाम समूह हैं जो बहुत अधिक संख्या में कहे गये हैं। उन सभी नामों की आत्मा तो श्रीराम नाम ही है एवं उन सभी नामों का प्रकाशक भी श्रीराम नाम ही है। जो

नारायणादिनामानि कीर्तितानि बहून्यपि ।
आत्मा तेषां तु सर्वेषां रामनामप्रकाशकः ॥

अतति सर्वेषु सच्चिदानन्दादिरूपेणेति आत्मा । उक्तञ्च तत्रैव-

सच्चिदानन्दरूपैस्तु त्रिभिरेभिः पृथक् पृथक् ।
वर्तते रामनामेदं शक्यं द्रष्टुं महेश्वरि ॥

इत्यन्तेन वचनेन श्रीरामनाम्नः सच्चिदानन्दरूपत्वं सर्वनामवाचकत्वम्, तदुपासनया ज्ञानेन च सर्वे उपास्या ज्ञेयाश्च स्युरिति । अतएव च शिवागस्त्यादिभिः सहस्त्रगुणाधिक्यं सर्ववेदपाठफलप्रदत्वम्, जपमात्रेण सर्वाघौघविनाशकत्वादिक मुक्तम् । हारीतेनापि स्मृतिकृतोक्तम्-

श्रीरामाय नमो ह्येतत्तारकं ब्रह्मसंज्ञकम् ।
विष्णोर्नाम्नां सहस्त्रेण तुल्य एष महामनुः ॥

अनन्तांभगवन्मन्त्रा नानेन तु समाकृताः ।
श्रियोरमणसामर्थ्यात् सौन्दर्यगुणसागरात् ॥

समस्त भगवद् विग्रहों के अन्दर सच्चिदानन्द स्वरूप में गतिशील रहता है वह आत्मा है । और वहीं पर कहा भी गया है इन तीनों के साथ अर्थात् अलग-अलग सत् चित् और आनन्द रूपके साथ एवं सच्चिदानन्द इस सम्बलित स्वरूप के साथ यह श्रीराम रामनाम विद्यमान है, हे महेश्वरी इन तत्त्वों को देखा जा सकता है । सर्वं वसति से लेकर यहां तक कथन के द्वारा श्रीराम नाम का सच्चिदान्द स्वरूपत्व और समस्त नाम वाचकत्व उस 'राम' एवं रामनाम की उपासना के द्वारा तथा ज्ञान के द्वारा जितने भी उपासना योग्य एवं जानने योग्य भगवत् तत्त्व हैं, वे सभी उपासित एवं ज्ञात हो जाते हैं । और इन्हीं कारणों से भगवान् शिव एवं अगस्त्य आदि महर्षियों के द्वारा श्रीराम नाम का अन्य विष्णु नामों से हजार गुणा अधिकता एवं रामनामोच्चारण मात्र से सर्व वेद पारायण फल प्रदानशीलता कहा गया है । और जप मात्र से ही समस्त पाप पुञ्ज का विनाशकत्व आदि निरूपण किया गया है । धर्मशास्त्रकार महर्षि हारीत के द्वारा भी कहा गया है-'श्रीरामाय नमः' यह मन्त्र ही ब्रह्म तारक महामन्त्र कहा गया है । क्योंकि यह महामन्त्र भगवान् विष्णु के हजारों नामों के समान है । भगवान् के अगणित संख्या में अनन्त मन्त्र कहे गये हैं लेकिन इस 'रामनाम' के समान एक भी मन्त्र नहीं कहे गये हैं । लक्ष्मी के साथ रमण सामर्थ्य सम्पन्नता के कारण एवं अनुपम

सच्चिदानन्दत्रिकाणां साक्षाद् वाचकत्वम् नामान्तराधिक्ये हेतुः । चिद् वाचको रकार इत्यादिभिरुक्तम् । तत्रैव च गुणक्रियाधिक्यमवलम्ब्य नामान्तरेभ्यः सहस्रगुणाधिक्यमुपपद्यते । वाचकाधिक्यसिद्धौ हेतूनां सर्वथा स्वरूपपर्यवसायित्वेन वाच्यसम्बन्धः कारणम् । 'सीतारामौ तन्मयावत्रपूज्याविति रामतापनीयवचनेन नामस्वरूपयोस्तादात्म्यं बुध्यते । तेनैव च वाच्यस्य वाचकरूपत्वम् ॥११॥

सौन्दर्य गुण सागरत्व आदि के कारण, सत् चित् एवं आनन्द इन तीनों अवयवों का श्रीरामनाम में साक्षाद् वाचकत्व है, इसलिये यह अन्य नामों से अधिकता में कारण है । 'चित् तत्त्व का वाचक र कार है' इत्यादि के द्वारा साक्षाद् वाचकत्व कहा गया है । और वहीं पर गुण क्रिया आदि की विशेषता से अधिकता को आधार बनाकर अन्य नामों के अपेक्षा हजार गुणा अधिकता की सिद्धि तर्कसंगत होती है । वाचक शब्द की अधिकता सिद्ध हो जाने के पश्चात् सभी कारणों का सभी प्रकार से अपने स्वरूप में सम्पन्नता शील होने से वाच्यार्थ के साथ सम्बन्ध होने के कारण बनता है । 'सीतारामौ तन्मयावत्रपूज्यौ' इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् वचन के द्वारा जो समान स्वरूप वाले हैं उन्हीं का तादात्म्य सम्बन्ध समझा जाता है । असमान स्वरूप वालों का तादात्म्य सम्बन्ध नहीं समझा जाता है । और इसी कारण से प्रतिपाद्य अर्थ का प्रतिपादक शब्द के साथ समान रूपता होती है ॥११॥

श्रीरामचन्द्रस्य परब्रह्मशब्दोक्तस्य सर्वावतारित्वं प्रकाशयन्नाह-चिन्मयस्येति ।

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः ।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूपकल्पना ॥६॥

ब्रह्म शब्द से प्रिपाद्य श्रीरामचन्द्रजी का सर्वावतारित्व सर्वमूलकारणत्व आदि विषयों को स्फुट रूपसे अभिव्यक्त करते हुए श्रीरामतापनीय उपनिषद् का प्रकृत मन्त्र चिन्मयस्य आदि कहता है । चिन्मय अद्वितीय निष्कल प्राकृत भौतिक शरीर रहित परब्रह्म की उपासक भक्तों के भुक्ति मुक्ति आदि अभिमत प्रयोजन की सिद्धि के लिये भक्त हितार्थ अनेक रूपों की कल्पना की गयी है ॥६॥

चिदात्मकं ब्रह्म 'राम' पदेनोच्यते तस्य चिन्मयस्य परब्रह्मणः उपकल्पना, अत्र प्रकृतिजीवव्यावर्तकत्वेन परमिति विशेषणस्थाने अद्वितीयस्येति विशेषण

प्रदानेन परब्रह्माद्वितीयब्रह्मशब्दयोः अभिन्नार्थकत्वबोधः, तेन 'राम' शब्दाभिहितस्याद्वितीयस्य चिन्मयस्य ब्रह्मणोरूपकल्पनेति समन्वयः । चिन्मयस्येति तद्विग्रहस्य चिद्रूपत्वमुक्तम्भवति । व्याख्याननिरतश्चिन्मयः ब्रह्मानन्दैकविग्रहः यः सच्चिदानन्दात्मेत्यग्रेऽपि वक्ष्यमाणत्वात् श्रीरामस्य सत्यं चिदानन्दमयस्व-

चित् स्वरूप ब्रह्म 'राम' पद से कहा जाता है । उस चिन्मय ब्रह्म की उपकल्पना की गयी है । यहां पर प्रकृति और जीव में यह लक्षण समन्वित नहीं हो इसलिये इन दोनों का निवारण हेतु 'परम्' इस पद विशेषण के स्थान पर 'अद्वितीयस्य' इस विशेषण पद का उपयोग करने पर परब्रह्म एवं अद्वितीय ब्रह्म शब्दों को अभिन्नार्थ बोधक समझा जाता है । इससे ज्ञात होता है कि 'राम' शब्द के द्वारा निरूपण किया गया द्वितीय समाभ्यधिक रहित चिन्मय ब्रह्म के रूप की कल्पना की गयी है । इसप्रकार अर्थ का समन्वय होता है । 'चिन्मयस्य' ऐसा कहकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के शरीर का चिद् रूपत्व प्रतिपादित किया है । 'व्याख्यान में तत्पर चिन्मय ब्रह्मानन्दमय शरीर धारी जो सत् चित् आनन्द स्वरूप' इत्यादि विषय इस उपनिषद् में आगे प्रतिपादित किया जायगा । इसलिये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सत् चित् एवं आनन्दमय स्वरूपता सिद्ध होती है । इसीप्रकार कहा गया है-शृङ्ग निर्मित धनुष को धारण करनेवाले एवं चिदानन्दमय स्वरूप को धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी को 'निरतिशय तेजस्वी सत् चित् और आनन्दमय शरीर धारी अपनी क्रिया सम्पन्न किये' इत्यादि वचनों के द्वारा तात्विक रूपसे एवं स्वरूप के दृष्टि से और शारीरिक दृष्टि से स्मृतियों में सच्चिदानन्दमयता का प्रतिपादन किये जाने से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का दिव्य तेजोमय अप्राकृत शरीर सिद्ध होता है । ऐसा यदि नहीं स्वीकार करें तो जीवात्माओं का भी स्वरूप के दृष्टि से चैतन्यमय होने से परब्रह्म में चिन्मयत्व निरूपण की निष्फलता हो जायगी । 'अर्धमात्रा स्वरूप रामचन्द्र सच्चिदानन्दमय दिव्य विग्रहवान् हैं' इत्यादि वचनों के द्वारा श्रीरामजी का दिव्य विग्रह (शरीर) वान् सुने जाने से प्रस्तुत ऋचा में 'अशरीरिणः' इस कथन से हेय (दुःखादि मिश्रित त्याज्य) शरीर से रहित होना समझा जाता है । मन्त्र में 'अद्वितीयस्य' इस कथन से परब्रह्म श्रीरामजी को अन्य किसी सहायक कारण से शून्य होना प्रतिपादित होता है । जैसे कुम्भार जुलाहा आदि का घट पटादि रचना में दण्डचक्र चीवर आदि एवं जुलाहा के तन्तु वेमा आदि सहायक अपेक्षित होता है । अन्यथा विना साधन के वह

रूपत्वम्। तथोक्तम्-'श्रीशाङ्र्गधारिणं रामं चिन्मयानन्दविग्रहम् । विरराम महातेजाः सच्चिदानन्दविग्रहः' इति । तत्त्वतः स्वरूपतः विग्रहतश्च सच्चिदानन्दमयत्वस्मरणात् । अन्यथा जीवानामपि स्वरूपतो चिन्मयत्वेन चिन्मयत्वोक्तेर्वैयर्थ्यं स्यात् । 'अर्धमात्रात्मको रामः सच्चिदानन्दविग्रहः' इतितस्य दिव्यविग्रहश्रुतेः 'अशरीरिण' इतिहेयशरीरराहित्यं बुध्यते । अद्वितीयस्येति सहायान्तरशून्यत्वम्, कुलालादीनां दण्डचक्रादीनां सहायत्वम् । 'न तत् समश्चाभ्यधिकश्च श्रूयते' इतिश्रुतेः, तत् समाभ्यधिकशून्यस्य वेति ज्ञेयम् । 'नैतद्यशो रघुपतेः सुरयाञ्चयात्त लीलातनोर्ह्यधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः' इतिस्मृतेश्च । निष्कलस्येति निर्गताः कलाः प्राकृतावयवा यस्मात् । अथवा निःसृताः कलाः मूर्तयो यस्मात् इतिसर्वावतारनिदानस्येत्यर्थः । अथवा-निष्कलस्य माया संश्लेषरहितस्येति । 'अशरीरिणः' इतिकर्मनिमित्तं हेयशरीरं निषिध्यते । 'पृथिवी कार्य सम्पादन नहीं कर सकता है। लेकिन परब्रह्म इच्छा मात्र से अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं। परमेश्वर के समान अथवा उनसे वढकर कोई भी नहीं सुना जाता है' इस श्रुति वचन से अद्वितीयस्य का तात्पर्य परमात्मा के समान अथवा परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी से वढकर दूसरा कोई भी नहीं है यह समझना चाहिये। 'रघुकुल नायक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने से समान या अधिक प्रभाव से रहित लीला हेतु देह धारण किये हैं, उनका इतना ही यश नहीं है' इस स्मृति वचनानुसार भी अपने समान या अधिकता से रहित श्रीरामजी हैं। निष्कलस्य इस शब्द का तात्पर्य है कि-जिनसे प्राकृत अवयव रूप कलायें निकल चुकी हैं अथवा जिन श्रीरामजी से कला अर्थात् मूर्तियां विरचित हुई है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार समस्त अवतारियों के मूलकारण स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी का यह तात्पर्य है। अथवा निष्कलस्य का अर्थ माया सम्पर्क से शून्य श्रीरामजी का है। अशरीरिणः इस विशेषण कथन से कर्म मूलक हेय शरीर की शून्यता का निरूपण किया जाता है। अर्थात् कर्म हेतुक शरीर का निषेध किया जाता है। 'जिनका समग्र पृथिवी शरीर है। आत्मा जिनका शरीर है, संसार के समस्त पदार्थ में सर्वेश्वर के शरीरत्व है' इत्यादि श्रुति वचनों के आधार पर परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी का दिव्य शरीरत्व सिद्ध होता है। तथा अर्धमात्रा स्वरूप श्रीराचन्द्रजी केवल दिव्य आनन्दमय विग्रहवान् हैं। इसस्मृति के अनुसार भी भगवान् का दिव्य विग्रह है। इन वातों से प्रमाणित है कि परमात्मा के शरीर होने में किसी प्रकार का विवाद नहीं है।

यस्य शरीरम्' 'आत्म शरीरं' 'जगत् सर्वं शरीरन्ते' इत्यादिश्रुतेः परब्रह्मणो दिव्य शरीरं सिद्ध्यति । 'अर्धमात्रात्मको रामोदिव्यानन्दैकविग्रहः' इतिस्मृतेश्च परमात्मनः शरीरत्वे न मतभेदः । यथा 'अग्निषोमीयं पशुमालभेत' इत्यत्रेव 'न हिंस्यात् सर्वाणिभूतानि इत्यस्यां श्रुतेरेकदेशत्वेन संकोचः, तेनाग्निषोमीयपशु व्यतिरिक्तसिंहानिषेधवत् विरुद्धश्रुतीनामपि दिव्यशरीरव्यतिरिक्तभगवच्छरीरनिषेधपरत्वेनबोध्यः श्रीमद्रामायणकोशनिरुक्तादिशास्त्रसामञ्जस्ये त्वालम्भनशब्दः संश्लेशालिङ्गनस्पर्शादिपरो न तु सिंहादिपर इत्यन्यत्रप्रपञ्चयिष्ये । कल्पितस्य शरीरस्येति वचनेन तस्य निराकारत्वं न भवति । किं च-

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः ।
हानोपादानरहिताः नैव प्रकृतिजाः क्वचित् ॥
परमानन्दसन्दोहाः ज्ञानमात्राश्च सर्वतः ।
सर्वे सर्वगुणाः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः ॥

जिस तरह अग्नि सोम देवता सम्बन्धी पशु का आलम्भन करना चाहिये, इस विधिवाक्य के साथ में ही-किसी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिये, यह विरोधी श्रुति होने से हिंसा निषेध करनेवाली श्रुति के एकांश रूपमें संकोच किया जाता है कि-अग्नि सोम देवता सम्बन्धित पशु से भिन्न पशु का आलम्भन नहीं करना चाहिये। उसीतरह परस्पर विरुद्ध अर्थों का बोध कराने वाली श्रुतियों का भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का दिव्य शरीर से भिन्न प्राकृतिक शरीर नहीं है एतदर्थ बोधक जानना चाहिये वेदार्थ प्रतिपादक निरुक्त श्रीमद्रामायण एवं कोशादि वचनों के परिप्रेक्ष में आलम्भन शब्द का अर्थ संश्लेश स्पर्श आदि होता है सिंहा नहीं इस विषय पर अन्य स्थल में शास्त्र सामञ्जस्यानुकूल विस्तृत विचार किया जायगा । ऋचा में-'कल्पितस्य शरीरस्य' इस कथन द्वारा परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी का निराकार होना सिद्ध नहीं होता है । किन्तु इससे तो उस परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी का सभी प्रकार के शरीर नित्य त्रिकाल व्यापक, एवं शाश्वत है । उनका शरीर ह्रास और बृद्धि से सर्वथा शून्य है । और कहीं पर भी सर्वेश्वर श्रीरामजी का शरीर प्रकृति जनित नहीं है अर्थात् सभी अलौकिक हैं । सर्वोत्कृष्ट आनन्दों का पुञ्ज रूप और सर्वतोभावेन केवल ज्ञानमय शरीर है । उनके समस्त शरीर अनिन्द्य समस्त गुणों से परिपूर्ण हैं । अर्थात् सभी प्रशंसनीय गुण हैं, एक भी दोष नहीं है । यह वाराहपुराण का वचन भी परमेश्वर के प्राकृत

इतिवाराहपुराणवचनमपि परमात्मनः प्राकृतं शरीरं निषेधयति । 'निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवयद्यं निरञ्जनं' 'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्' इत्यादिश्रुतिभिः अविद्याप्रत्यनीकस्य ब्रह्मणः कथमपि प्राकृतं शरीरसम्बन्धकल्पनं न युक्तम् । तस्य च परब्रह्मणोविग्रहो द्विभुजो मानव इवेति गम्यते तच्च सर्वेश्वरश्रीरामस्वरूपमेव तद्यथा-'द्विभुजः कुण्डलीरत्नमालीधीरोधनुर्धरः' इति 'ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृत' इति च 'बाहू' इतिद्विचनोपादानेन द्विभुजत्वं बुध्यते । 'प्रसन्नलावण्यसुभृन्मुखाम्बुलं जगच्छरण्यं शरणं नरोत्तमम् । दयापरं दाशरथिं महोत्सवं स्मरामि रामं सह सीतया सदा ॥ द्विभुजस्यैव रामस्य सर्वशक्तेः प्रियोत्तम ? ध्यानमेवं विधातव्यं सदा रामपरायणैः' इत्यादिरूपेणाचार्यचरण श्रीआनन्दभाष्यकारोक्तेश्च सर्वशरण्यस्य सर्वध्येयस्य परेशश्रीरामस्य द्विभुजत्वं शरीर का निषेध करता है और दिव्य शरीर को संसाधित करता है । कला से रहित क्रियाओं से शून्य परम शान्त निन्दनीयता से विमुक्त एवं सभी प्रकार के क्लेशों से शून्य सूर्य के समान तेजोमय वर्णवाला, एवं अन्धकार से अत्यन्त दूर' इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा अविद्या के परम विरोधी परब्रह्म का किसी भी प्रकार से प्रकृति जनित शरीर के साथ सम्बन्ध योजना की कल्पना करना समुचित नहीं है । और उस परब्रह्म का शरीर दो भुजाओं वाला मनुष्य के समान है यह तात्पर्य प्रतीत होता है । जो सर्वेश्वरश्रीरामजी के स्वरूप में समुपासनीय है जैसे कि दो भुजाओं वाले कुण्डल धारी मणि माणिव्य आदि रत्नों से विरचित माला को धारण करनेवाले, परम धैर्य परिपूर्ण स्वरूप तथा धनुष वाण को धारण किये हुये इत्यादि स्मृति तथा इस परमेश्वर का ब्राह्मण मुख है । क्षत्रिय भुजायें हैं इत्यादि श्रुति वचन में 'बाहु' शब्द में द्विवचन का निर्देश होने से श्रीरामचन्द्रजी का द्विभुजत्व है यह निश्चित रूपसे समझा जाता है 'जिनका मुख कमल विलक्षण शोभा से सर्वदा युक्त रहता है तथा जो परमात्मा स्वरूप हैं, और शरणागत व्यक्तियों के रक्षण करने के लिये सर्वदा प्रयत्नशील रहते हैं । वे एक दो व्यक्तियों का ही रक्षण करते हैं ऐसा नहीं है किन्तु जगन्मात्र सम्पूर्ण संसार का रक्षक हैं नरोत्तम हैं । दशरथ राजा के पुत्र के रूपमें अवतार लिये हैं । जो स्वयं महोत्सव रूप हैं तथा परम दयालु हैं तथा श्रीसीताजी से सर्वदा युक्त हैं ऐसे सर्वेश श्रीरामजी का मैं सर्वदा स्मरण ध्यान करता हूँ हे प्रियोत्तम सुरसुरानन्द ? सर्वशक्तिमान् द्विभुज श्रीरामजी का ही शुभेच्छु श्रीराम भक्त पुरुष को सदा ध्यान करना चाहिये'

निश्चप्रचं तदेव च ध्येयस्वरूपमिति च । 'रमन्ते योगिनः' इत्यस्यां पूर्वश्रुतौ निरूपितस्य 'राम' शब्दोक्तस्य उपासकानां भक्तानां भुक्तिमुक्तिप्रभृत्यभिमत प्रयोजनसिद्ध्यर्थं रूपकल्पनेति सम्बन्धः । जीवादिव्यावर्तनाय पूर्वं ब्रह्मशब्दः परशब्देन विशेषितोऽत्राद्वितीयशब्देनेति तयोस्तादात्म्यावगतेः 'रामाख्यस्य चिन्मयास्याद्वितीयब्रह्मणोरूपकल्पनेति । अत्र शब्दानामनुशासनमाचार्येणा-चार्यस्य वा, इत्यत्रेव ब्रह्मशब्दस्य विभाषामिच्छन्ति विद्वांसः, तेन 'ब्रह्मणः' इत्यत्र कर्तरि रूपाणामित्यत्र च कर्मणि षष्ठीसमासः । कल्पितस्य शरीरस्येत्युक्तेः रूपपदं

इसप्रकार श्रीआनन्दभाष्यकारजी ने दो हाथ वाले सर्वेश्वर श्रीरामजी का ही ध्यान का विधान किया है अतः द्विभुज श्रीरामजी से अतिरिक्त कोई भी ध्येय तत्त्व नहीं है । 'रमन्ते योगिनः' इत्यादि पूर्व निरूपित श्रुति वचनों में प्रतिपादन किया गया श्रीराम शब्द के कथन का ब्रह्म के स्वरूप कल्पना की जाती है । श्रीरामचन्द्रजी की उपासना करनेवाले भक्तजनों समस्त सांसारिक भोग एवं शरीरान्त में मोक्ष आदि अभीष्ट प्रयोजनों की सफलता के लिये श्रीरामरूप की कल्पना की गयी है ऐसा पदों का सम्बन्ध समझें । जीव आदि के साथ सम्बन्ध का निराकरण करने के लिये पहले ब्रह्म शब्द पद शब्द के द्वारा विशेषण युक्त किया गया, और इस ऋचा में तो ब्रह्म शब्द 'अद्वितीय' इस पद के द्वारा विशेषण युक्त किया गया है । इसलिये 'पर' एवं 'अद्वितीय' शब्दों के अर्थ विषय में परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध है ऐसा ज्ञात होता है । 'राम' जिनका नाम है ऐसे दिव्य तेजोमय विग्रहधारी अद्वितीय ब्रह्म के रूप की कल्पना की गयी है । यहां पर महाभाष्य में 'अथशब्दानुशासनम्' इस वार्तिक का शब्दों का अनुशासन आचार्य के द्वारा अथवा आचार्य का यह व्याख्या जैसी की गयी है उसीतरह यहां पर भी ब्रह्म शब्द का विकल्प से सम्बन्ध चाहते हैं ऐसा विद्वानों का अभिमत है । इसलिये 'ब्रह्मणः' इस शब्द में कर्ता अर्थ में षष्ठी है । एवं रूपों की कल्पना यहां पर कर्म अर्थ में षष्ठी समास किया गया है । क्योंकि आगे कहा गया है-कल्पना किया गया शरीर का, इसमें रूप पद शरीर अर्थ बोध कराने हेतु है । इससे 'राम' नाम से विख्यात दो भुजा वाले ब्रह्म के साथ अपने नित्य रूपमें मत्स्य कूर्म वराह नृसिंह वासुदेव आदि का चार भुजाओं वाले आदि शरीरों के साथ कल्पना की जाती है अर्थात् चतुर्भुजादि रूप आविष्कृत किये जाते हैं । मणि के समान रूपों का आविष्कार होता है । जिसतरह वैदुर्य नामक मणि अपने स्वभाव से शुक्लवर्ण के

शरीरार्थकम्, तेन 'रामाख्येन ब्रह्मणा स्वनित्यरूपे मत्स्यकूर्मवराहनृसिंह वासुदेवादीनां चतुर्भुजादिशरीरैः कल्प्यन्ते आविष्क्रियन्ते मणिवत् । यथा वैदुर्यमणिः स्वभावतः शुक्लरूपोऽपि नीलपीतरक्तहरितपुष्यादिसान्निध्यात् तत्तद् रूपमाविष्करोति तथैव रूपाण्याविष्करोति । उक्तञ्च पाञ्चरात्रे →

मणिर्यथाऽविभागेन नीलपीतादिभिर्युतः ।
रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात्तथाच्युतः ॥

नन्वत्ररूपशब्दस्य सामान्यवाचकत्वेन वाहनशक्तिसेनाजीवादीनामपि संग्रहः स्यादिति चेत् न किं द्विभुजादिसहस्त्रभुजान्ताः सर्वेऽवताराः तदङ्गनाः तदस्त्रादीनि च संगृहीतानि स्युः ? सर्वेषामविशेषेण वा ब्रह्मणि कल्पना उपास कानामित्युक्तेरुपासकत्वेन ब्रह्मादिजीवानां तदुपासकतया तच्छेषत्वं बुध्यते, कार्यार्थमित्युक्तेश्च कार्यनिष्पादक्षमस्य ब्रह्मणः सर्वज्ञत्वसर्वशक्तिमत्वादिना उपास्यत्वसर्वेश्वरत्वादिज्ञायते । अवतारस्य च तत् पृथक्त्वासिद्धेः अवताराणां ब्रह्मणि कल्पना । वर्णवाहनसेनास्त्रशस्त्रादीनाञ्च तत् सम्बन्धित्वमेव ब्रह्मण्येव हि

स्वरूप वाला होने पर भी नील पीत हरा लाल पुष्प आदि के साहचर्य से उन-उन रङ्गों से अपने स्वरूप को प्रकट करता है, उसी तरह सर्वावतारी श्रीरामजी भी भक्तों पर अनुग्रहार्थ भक्तेच्छा परिस्थिति आदि के अनुसार अनन्त रूपों को आविष्कृत करते हैं। पाञ्चरात्र स्मृति में कहा भी है-जैसे वैदुर्य मणि अपने से अभिन्न रूपमें नीलपीतादि रूपों को आविष्कृत करता है उसी तरह अच्युत सर्वेश्वर श्रीरामजी ध्यान भेद से अनन्त रूपों को प्रकट करते हैं। यदि यह कहें कि यहां रूप शब्द सामान्य वाचक है इसलिये वाहन शक्ति सेना जीव आदि का भी संग्रह होने लगेगा ऐसा नहीं है। क्योंकि द्विभुज से आरम्भ कर सहस्त्र भुजान्त भगवान् के सभी अवतार उन अवतारों की पत्नियां उनके अस्त्र शस्त्र आदि भी रूप शब्द से संगृहीत होंगे। अथवा सभी का सामान्य रूपसे बोध होने लगेगा। क्योंकि ब्रह्म में कल्पना उपासकों के हितार्थ होती है यह कहे जाने से। उपासकों का उपासकत्व ही ब्रह्मा से लेकर जीव पर्यन्त का श्रीरामजी का उपासक होने के कारण उनका (ब्रह्म का) शेषत्व समझा जाता है। 'कार्यार्थम्' यह शब्द कहे जाने से कार्य को परिपूर्ण करने में समर्थ व्यक्ति स्वरूप ब्रह्म की सर्वज्ञता सर्वशक्तिमत्ता आदि के द्वारा उपास्यत्व सर्वेश्वरत्व सर्व मूलकारणत्व आदि ज्ञात होता है। और ब्रह्म के अवतारों का ब्रह्म से अलग होना सिद्ध नहीं होने से अर्थात् श्रीरामाभिन्न होने से

पञ्चधेति उपसंहारवचनस्य अजहत् स्वार्थया लक्षणया ब्रह्मणि तत् प्रधानेषु मुख्य वृत्यावाहनादिषु च गौणवृत्याबोधः, प्रधानत्वाद् ब्रह्मणोनिर्देश उपपद्यते ॥१२॥

यथा यस्य यत्र प्रधानता भवति तस्यैव प्रधानेन हि व्यपदेशा भवन्ति इतिन्यायेन व्यवहारोजायते, यथेन्द्रियाणां पार्थक्येनापि तेषां प्राणस्य प्रधा-नतोपनिषत्सु श्रूयते । यथा च पञ्चीकृतेषु महाभूतेषु सर्वेषु सत्स्वपि पृथिव्याः पृथिवीत्वव्यवहारः जलस्य च जलत्वेन, तथैव ब्रह्मणः प्रेरकतया वाहनसेनादिषु ब्रह्मत्वेपि ब्रह्मणः प्राधान्यम् । यथा च वाहनसेनादिसहिते राजनि गच्छति राजासौगच्छतीति, तेन वाहनसेनादिसहितस्य राज्ञोबोधः, तथैव ब्रह्मणः प्राधान्यात् ब्रह्मशब्देन समेषां बोधः । तेन च 'ब्रह्मणोरूपकल्पनेति वचनस्य तैः सहितस्य बोधात् । 'रामाख्येन ब्रह्मणा स्वनित्यरूपे विष्ण्वादिकल्पनाकृता,
अवतारों की ब्रह्म में कल्पना होती है यह ज्ञात होता है । ब्रह्म के वर्ण वाहन सेना अस्त्र शस्त्र आदि का भी ब्रह्म से सम्बन्धित्व ही है । 'ब्रह्म में पांच प्रकार से' इस उपसंहार वचन का अजहस्त्वार्था लक्षणा वृत्ति के द्वारा ब्रह्म में अथवा ब्रह्म की जिन में प्रधानता है उनमें मुख्य अभिधा शक्ति के द्वारा और वाहन आदि में अप्रधानता वृत्ति लक्षणा शक्ति के द्वारा बोध होता है । प्रधान होने के कारण 'ब्रह्मणः' यह निर्देश करना युक्ति-तर्कसंगत होता है ॥१२॥

जिसकी जहां पर प्रधानता होती है, उसी के नाम से समूह होने पर भी मुख्य रूपसे व्यवहार होता है । क्योंकि प्रधान के द्वारा ही अमुख्य से मुख्य व्यवहार स्वरूप व्यपदेश होता है यह नियम है । ऐसा ही लोक व्यवहार देखा जाता है । जैसे आँख कान नाक आदि इन्द्रियों के पृथक् पृथक् स्वरूप एवं कार्य होनें पर भी प्राण के होने पर ही ये इन्द्रियां कार्य शील होती हैं और समस्त इन्द्रियों में प्राण की प्रधानता है ऐसा उपनिषदों में सुना एवं देखा जाता है । और जिस तरह पञ्चीकृत महाभूतों में, सभी महाभूतों में सभी महाभूतों के होने पर भी 'यदर्धं तस्य नाम तत्' इस आचार्य श्री के निर्णयानुसार पृथिवी की प्रधानता है एवं अन्य गौण हैं तो पृथिवीत्व व्यवहार होता है । और जल की प्रधानता होने पर जलत्व का व्यवहार होता है । उसी तरह समस्त साधन एवं शक्ति आदि का प्रेरक ब्रह्म के होने से उनके वाहन शक्ति सेना आदि में ब्रह्मत्व होने पर भी ब्रह्म की प्रधानता के कारण ब्रह्मत्व का व्यवहार होता है । जैसे कि वाहन सेना आदि के सहित राजा को जाते हुए देख कर लोक कहते

विष्णुत्वेचतुर्भजत्वादिना सह तदनुरूपवाहनसेनादीनाञ्च बोधः । यथा च वाहनसेनादिसहितेऽपि राजनि गच्छतीति तत्र राज्ञः प्राधान्यात् असौ राजा गच्छतीति प्रयोगः । तथा च 'ब्रह्मणोरूपकल्पना' इतिवचनस्य वाहन सेनादिसहितस्य ब्रह्मणः तद्रूपाविष्करणार्थकत्वं सिद्ध्यति । तेषामुपासकानां कार्यार्थं श्रीरामाख्येन ब्रह्मणा स्वनित्यरूपेविष्ण्वादिचतुर्भुजादिकल्पनाकृता । तेषु
हैं 'यह राजा जा रहा है' इस कथन के द्वारा वाहन सेना आदि के सहित पदार्थ में 'राजन्' पदार्थ का ज्ञान होता है । उसी तरह ब्रह्म की प्रधानता होने से ब्रह्म शब्द के द्वारा तत् सम्बन्धित सभी का बोध होता है । और इस तरह की युक्ति के द्वारा ब्रह्म के रूप की कल्पना की गयी-इस श्रुति वचन का उन वाहन शक्ति सेना आदि के सहित का ज्ञान होने के कारण, श्रीरामचन्द्र नाम से प्रसिद्ध ब्रह्म के द्वारा अपने त्रिकाल सत्य रूप में श्रीविष्णु नृसिंह कृष्ण नारायण वामनादि रूपों की कल्पना की गयी । और जब भगवान् श्रीराम विष्णु आदि स्वरूप में प्रतीत होते हैं तब चतुर्भुजत्व शंख चक्र गदादि धारकत्व के साथ-साथ तत् सम्बद्ध वाहन सेना आदि की कल्पना की गयी इस अर्थ का बोध होता है । और जिस प्रकार वाहन सेना आदि के सहित राज के जाने पर भी उस समूह में राजा की प्रधानता के कारण यह राजा जाता है इसप्रकार का ज्ञान होता है एवं व्यवहार होता है । और उसी तरह 'ब्रह्म के रूप की कल्पना की गयी' इस श्रुति वचन का वाहन शक्ति सेना आदि सहित ब्रह्म का उन-उन स्वरूपों के आविष्कार करना रूप अर्थ बोधकता सिद्ध होती है । उन उपासकगण के अभिमत प्रयोजन की सिद्धि के लिये श्रीराम नाम से प्रसिद्ध ब्रह्म के द्वारा अपने नित्य स्वरूप में विष्णु आदि चतुर्भुजादि स्वरूपों की कल्पना की गयी । और उन-उन रूपों में शक्ति प्रदान करने के कारण वाहन शक्ति सेना आदि का उन्हीं विष्णु आदि शब्दों से बोध होता है । क्योंकि उन विष्णु आदि अर्थों में विष्णु आदि वाचक शब्दों की प्रधानता है इसलिये उन्हीं शब्दों से बोध होगा । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की केवल इच्छा से ही श्रीविष्णु आदि स्वरूपों के साथ उन-उन अवतारों के अनुरूप वाहन शक्ति सेना आदि के साथ अपना नित्य स्वरूप प्रकट किये जाते हैं । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को अवतारों का मूलकारण होने के कारण, श्रीरामजी की पृथकता स्वीकार करने पर, अथवा उन अवतारों को स्वतन्त्र रूपसे नित्यत्व स्वीकार करने पर श्रीरामजी में मूलकारणत्व वचन की विशेष रूपसे हानि होगी । क्योंकि मूलकारणत्व का दो तीन

तेषु रूपेषु शक्तिप्रदानत्वात् वाहनशक्तिसेनादीञ्च तेनैवबोधः, तत्र तद्वाचकशब्दस्य प्रधानत्वात् । श्रीरामचन्द्रस्येच्छयैव विष्णवाद्यनुरूपवाहनशक्त्यादिभिः सह स्वनित्यरूपमाविष्क्रियन्ते । अवताराणां मूलकारणाद् भिन्नत्वाङ्गीकारे नित्यत्व स्वीकारे च मूलकारणत्ववचनव्याघातः । मूलकारणत्वस्य द्वित्र्यादिनिष्ठत्वा-सम्भवात् । तस्य तत्तदुपासकानां कार्यकाले तत्तद् रूपधारित्वस्वीकारे तेषां जन्यत्वेन घटादिवदनित्यत्त्वापत्तिः । अस्माद् मणिरूपन्यायेन ब्रह्मणोरूपकल्प नेति प्रत्यक्षश्रुतिवचनेन 'सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः' इतिवचनेन च व्यवस्था । ब्रह्मणोनित्यविग्रहे विग्रहान्तराणां भानं तु बोध्यस्य नित्यत्वमुपपन्नं भवति । मणिर्यथाऽविभागेनेत्यादियुक्त्यारूपकल्पना । अत्र विषये अनादि-विग्रहस्य युगपत् क्रमेण वा तत्तद्रूपबोधदर्शनात् न दोषस्यावकाशः । यथा जनकपुरे श्रीरामचन्द्रस्य बालबृद्धस्त्रीमित्रशत्रूणां स्वस्वाभिमतस्वरूपस्य भासमानत्वम् । तत्तद्रूपोपासकानां स्वनित्यस्मृतविग्रहप्राप्तियोग्यानां मोक्षदशा

आदि में स्थित होने की सम्भावना हो जायेगी, जो उचित नहीं है। अतः उस 'श्रीराम' नामक परब्रह्म का उन-उन उपासकों के अभिमत प्रयोजन सिद्धि रूप कार्य सम्पादन के समय में उन-उन स्वरूपों का धारण कर्तृत्व स्वीकार करने पर उन-उन अवतारों के उत्पन्न होने से घट पटादि जन्य पदार्थों के समान अनित्य होने का दोष उपस्थित हो जायगा। अवतारों में जन्यता मूलक आपत्ति नहीं हो इसलिये मणि रूप न्याय से अर्थात् मणि सन्निहित पुष्पादि स्वरूपों का बोध जैसे मणि के तादात्म्येन होता है उसके समान 'ब्रह्मणोरूपकल्पना' इस प्रत्यक्ष श्रुति के अनुसार 'उस परमात्मा के समस्त विग्रह नित्य हैं एवं शाश्वत हैं' इस वचन के द्वारा भी नित्यत्व की व्यवस्था होती है। परब्रह्म के नित्य विग्रह में नित्य अन्य विग्रहों की अनुभूति तो बोध करने योग्यता के आधार पर नित्यत्व बोध युक्तिसंगत होता है। मणि जिस तरह अन्य वस्तुओं के स्वरूप का तादात्म्येन बोध कराता है उसी तरह रूपों की कल्पना है इस अनेक स्वरूप बोध के विषय में अनादि भगवत् स्वरूप का एक साथ अथवा क्रमशः, तत्तत् स्वरूपों का अनेक स्थान बोध देखा गया है, जैसे कि जनकपुर में श्रीरामचन्द्रजी का बालक बृद्ध स्त्री मित्र शत्रु आदि का अपने अपने अभीष्ट स्वरूपों का प्रतीत होना लोक प्रसिद्ध है। उन-उन भगवद् विग्रहों की उपासना करनेवालों का अपने नित्य स्मरण किये गये नित्य भगवत् स्वरूपों की प्राप्ति के योग्य भक्तजनों को मोक्ष की अवस्था में भी उन्हीं

यामपि तद्विग्रहस्यैव प्राप्तिः । 'यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् । तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ।। इतिवचनेनापि एकस्यैव बहुरूपिणस्तत्तत्कार्यार्थं युगपदनेकरूपेणैकरूपेण च प्राकट्यात्, विलक्षणशक्तिमतोऽपरिच्छिन्नविग्रहस्यानेकस्थाने दृश्यत्वं निरूपितम्भवति । अयमेव श्रुत्यनुकूलः पक्षः ।।१३।।

उपासित स्वरूपों की प्राप्ति होती है । जिन जिन पदार्थों का पुनः पुनः चिन्तन करता हुआ प्राणी अवसान काल में शरीर का त्याग करता है, उस भावना से सुसंस्कृत अन्तःकरण होने से उन-उन वस्तुओं को ही प्राप्त करता है । इस वचन से भी एक का ही अनन्त स्वरूपधारी का भक्तों के तत्तत् प्रयोजनों की सिद्धि के लिये एक साथ या क्रमशः, अनेक रूपमें अथवा एक रूपमें प्रकटता होती है । क्योंकि विलक्षण सामर्थ्य सम्पन्न सीमाओं से अतीत अनन्त विग्रह को धारण कर्ता का अनेक स्थानों पर दृश्यत्व होना प्रतिपादित होता है । और यही वेद के अनुकूल सिद्धान्तपक्ष भी है ।१३।

'ब्रह्मणोरूपकल्पनेति सामान्येन यन्निरूपितम् पूर्वं तदेव विशेषरूपेण दर्शयन्नाह→रूपस्थानमिति-

रूपस्थानां देवतानां पुंस्त्र्यङ्गास्त्रादिप्रकल्पना ।
द्विचत्वारिषडष्टासां दशद्वादशषोडश ।।७।।
अष्टादशामी कथिता हस्ताःशङ्खादिभिर्युता : ।
सहस्रान्तास्तथा तासां वर्णवाहनकल्पना ।।८।।

ब्रह्म के रूपकी कल्पना या ब्रह्म में रूपकी कल्पना यह सामान्य रूपसे जो पूर्व की ऋचा में प्रतिपादन किया जा चुका है, उसी विषय को विशेष रूपसे दिखलाते हुये रूपस्थानाम् इत्यादि ऋचाओं का आरम्भ करते हैं । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नित्य रूप में प्रकट किये गये देवताओं के श्रीविष्णु नारायण नृसिंहादि पुरुष बोधक देवताओं तथा श्रीलक्ष्मी आदि स्त्री बोधक देवताओं के अंगों की कल्पना की गयी है । तथा उनके दो चार छ आठ दश वारह सोलह अठारह से लेकर हजार पर्यन्त हाथ पैर मुख नासिका आदि→अवयवों की कल्पना विद्वानों के द्वारा कही गयी है । तथा उन हाथों में शङ्ख चक्र गदा पद्म धनुष वाण आदि अस्त्र शस्त्र तथा पार्षद आदि की

कल्पना कही गयी है। तथा शुक्ल पीत कृष्ण आदि वर्णों एवं गरुड़ आदि वाहनों की कल्पना कही गयी है ॥७/८॥

रूपस्थानामिति-स्वनित्येस्वरूपे आविष्कृतानि यानि रूपाणि तत्र तत्तद् रूपेण स्थितानां तद्रूवतामितिभावः। अत्र रूपशब्देन स्वनित्यरूपे दर्शिताः तत्तदवतारविग्रहाः उच्यन्ते। तेऽपि अस्फुटस्त्रीत्वपुंस्त्वबोधकलक्षणविशेषाः, तथानभिव्यक्तमत्स्यकूर्मवराहाद्यङ्गविशेषा इतिप्रतीयन्ते। यतोहि पुंस्त्वादि कल्पनापश्चात् श्रूयते। पुंस्त्र्यादिकल्पनेति देवतानामित्यपि भाविनोभूतवन्निर्देशः, तथा च स्वनित्यरूपे पिण्डरूपेण दृश्यमानानां देदीप्यमानानां देवानां पुंस्त्वादि कल्पना उपासकानां कार्यार्थम् ब्रह्मणा कृतेति समन्वयः। तथैव उपासकानां कार्यार्थं वर्णवाहनादिकल्पना ब्रह्मणा कृता। अथवा रामाख्यस्य ब्रह्मणो यद् द्विभु जादिमद् रूपं तस्मिन् रूपे तिष्ठन्तीति रूपस्थाः। सदैव ते श्रीरामरूपे तिष्ठन्ति प्रयो

'रूपस्थानाम्' यह कहने का तात्पर्य यह है कि-परब्रह्म भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने नित्य स्वरूप में जिन रूपों को प्रकट किये हैं उनमें तत्तद् रूपों में विद्यमान उन स्वरूपधारी देवताओं के यह अभिप्राय है। यहां पर रूप शब्द से अपने नित्य रूप में दिखाये गये उन-उन अवतारों के रूपमें देवताओं का शरीर कहा जाता है। उन देवताओं के शरीर भी पहले की अवस्था में अभिव्यक्त नहीं थे अतः पुरुष स्त्री आदि का स्पष्ट रूपसे बोध नहीं होता था। उनके स्त्री पुरुष बोधक लक्षण प्रारम्भिक अवस्था में नहीं थे, इसप्रकार अव्यक्त मत्स्य कूर्म वराहादि अङ्ग विशेष यह अर्थ प्रतीत होता है। क्योंकि श्रुति वचन में पुंस्त्री आदि अङ्गों की कल्पना वाद में सुनी जाती है। पुंस्त्री आदि कल्पना इस कथन से देवताओं का यह भी भविष्यार्थ बोधक शब्द का भूतवत् निर्देश किया गया है। इस तरह अपने नित्य रूपमें अविभक्तांग पिण्ड के समान आकृति में दिखाई देते हुए देदीप्यमान प्रकाश स्वरूप अङ्ग वाले देवताओं की पुरुष स्त्री आदि अङ्गों की उपासकों के अभीष्ट कार्य सिद्धि के लिये ब्रह्म के द्वारा कल्पना की गयी, इसप्रकार पदों का परस्पर अन्वय होता है। उसी तरह उपासक भक्तों के अभीष्ट प्रयोजनों की सफलता के लिये वर्ण तथा वाहन आदि की कल्पना परब्रह्म श्रीरामजी के द्वारा की गयी। अथवा श्रीराम नाम से प्रसिद्ध परब्रह्म का जो नित्य द्विभुजादि स्वरूप है उस रूपमें विद्यमान रहनेवाले, क्योंकि वे सदैव भगवान् के नित्य रूपमें स्थित रहते हैं, और उपासकों के प्रयोजनवश मणिरूप न्याय अर्थात् जैसे शुक्ल

जनवशाद् मणिरूपादिन्यायेनाविर्भवन्ति तेन 'रामः' सर्वरूपी, तत्तत्काले विष्ण्वादिस्वरूपेणब्रह्मादिस्वोपासककार्यार्थमाविर्भवन्ति । तदुक्तम् श्रीमद्रामायणे ब्रह्मणा

'पद्मे दिव्यार्कसंकाशे नाभ्यामुत्पाद्यमानपि ।
प्राजापत्त्यं त्वया कर्ममयि सर्वं निवेशितम् ॥
सोऽहं सन्यस्तभारोहि त्वामुपास्ये जगद्गुरुम् ।
रक्षां विधत्स्वभूतेषु मम तेजस्करो भवान् ॥
ततस्त्वमसि दुर्धषस्तस्माद् भावात् सनातनात् ।
रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥'

वर्ण वाला वैदुर्य मणि के सन्निहित नील पीत रक्तादि पुष्प से तादात्म्य बोध होता है, उसी तरह अनन्त रूप भगवद् रूप में आविर्भूत होते हैं । इस कथन से सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सर्वरूपी हैं, और उन-उन समयों पर श्रीविष्णु आदि के स्वरूप में अपने उपासक भक्तों के प्रयोजन की सम्पन्नता के लिये ब्रह्मा से लेकर साधारण भक्त तक की अभीष्ट सिद्धि के लिये आविर्भूत होते हैं यही विषय श्रीवाल्मीकीय श्रीमद्रामायण में कहा गया है ब्रह्माजी के द्वारा जैसे कि-दिव्य सूर्य के समान प्रकाशमय नाभिकमल में मुझ चतुर्मुख ब्रह्मा को भी उत्पन्न करके आपके द्वारा प्रजापति सम्बन्धित कर्म समस्त सृष्टि रचनात्मक क्रिया मुझ चतुरानन में स्थापित किया गया, वह लोक पितामह ब्रह्मा मैं भार मुक्त होकर सर्वलोक श्रेष्ठ सर्वोपासनीय आपकी उपासना करता हूँ, आप समस्त चराचर प्राणियों की रक्षा विधान करें एवं मेरा प्रभाव सम्बर्धक होवें । आप पूर्व सनातन भाव से अपेक्षाकृत दुर्धर्ष हैं । प्राणियों की रक्षा करते हुए विष्णुत्व को प्राप्त किये इत्यादि वचनानुसार रूपस्थ देवताओं का तेजस्करत्व श्रीरामचन्द्रजी में सिद्ध हुआ । जैसे कोई स्त्री पुरुष लक्षण जिसमें अभिव्यक्त नहीं है केवल पिण्ड रूप है वह वाद में बनाया जाता है । उनमें स्त्री पुरुष लक्षण प्रकाशित नहीं हैं जिनमें उन लक्षणों को परवर्ती काल में प्रकट किये जाते हैं । इन वचनों के द्वारा उन-उन अवतारों का और उन भगवदवतारों के पत्नियों का अङ्गों भेद विशेषों का, तथा उनके अस्त्र शस्त्र भेदों का जिनका अन्य शास्त्रों में विधान किया गया है सभी श्रीरामचन्द्रजी सर्वावतारी के द्वारा प्रकट किये जाते हैं । यहां पर पुरुष शब्द से प्रतिपाद्य पुरुष लक्षण युक्त विष्णु नृसिंह कृष्ण आदि अवतार अभिमत है । क्योंकि उपासकों के प्रयोजन सिद्धि के लिये अवतार सुने गये हैं ।

इतिरूपस्थानां देवतानां तेजस्करत्वम् । यथा कश्चित् पिण्डविशेषः पुंस्त्वेन कल्प्यते अन्यः स्त्रीत्वेन तेषु तत्तद्व्यञ्जकलक्षणानि प्रकटीक्रियन्ते तेन तत्तदवताराणां तत्तत् शक्तीनाञ्चाङ्गविशेषाः तत्तदस्त्रविशेषाः शास्त्रविहिताः सर्वे ते प्रकटीक्रियन्ते । अत्र पुम् शब्देनोपास्यविष्णुनृसिंहकृष्णादिपरः । उपासककार्यार्थमवतारश्रुतेः । स्वाविनाभूतश्रीसीतारूपस्थानां स्त्रीत्वादिकल्पना, तेन श्रीरामभार्यायाः विष्ण्वादिभार्याणां कारणत्वं सिद्ध्यति । 'श्रियः श्रीश्च भवेग्र्याः कीर्तेः कीर्तिः क्षितेः क्षमा' 'वसुधाया हि वसुधां श्रियाः श्रीं भर्तृवत्सलाम्' इति च महर्षिणा स्मरणात् । 'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्र स भगवान्

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने अपने स्वरूप में अभिन्नरूप से स्थित श्रीसीता रूपमें अनभिव्यक्त स्त्रीत्व की श्रीलक्ष्मी आदि की कल्पना की । इस व्याख्यान के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी की भार्या जगन्माता श्रीसीताजी का विष्णु आदि भगवदवतारों के पत्नियों का मूलकारणत्व सिद्ध होता है । कहा भी है श्रीमद्रामायण में लक्ष्मी का लक्ष्मीत्व तथा कीर्ति का कीर्तित्व और पृथिवी का क्षमात्व धर्म श्रीसीताजी का है इस प्रकार महर्षि श्रीवाल्मीकिजी के द्वारा स्मरण किये जाने से श्रीसीताजी में कारणत्व है यह स्पष्ट होता है । 'ॐ जो ये श्रीरामचन्द्रजी हैं वे समस्त षड् विध ऐश्वर्य सम्पन्न हैं । जो मत्स्य कूर्म वराह आदि अवतारों के कारण हैं' इत्यादि श्रुति के आधार पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का मत्स्य कूर्म वराहादि रूपधारण कर्तृत्व कहा गया है । इस सन्दर्भ में वर्णनीय श्रीराम नामक परब्रह्म के द्वारा अपने उपासकों के प्रयोजन सिद्धि के लिये अपने नित्य स्वरूप में विष्णु आदि के रूपमें कल्पना की गयी । और अपनी पत्नी श्रीसीताजी के रूपमें से ही श्रीविष्णु आदि भगवदवतारों के पत्नियों की कल्पना की गयी यह तात्पर्य है । अपनी अर्धांगिनी के अवयवों से उनके पत्नियों को अवयवों के रूपमें ही प्रकट किये गये 'जासु अंशते उपजहिं गुनखानी । अगनित उमा रमा ब्रह्माणी' मानसकार का वर्णन इसी प्रकार का अति प्रसिद्ध है । और उनका अस्त्र शस्त्र एवं उनके पत्नियों के अस्त्र शस्त्र के रूपमें प्रकट हुए । अब ब्रह्म की उन सभी का रूप अङ्ग तथा अस्त्रादि का कल्पना कर्ता होने से प्रधानता है । इसलिये 'ब्रह्मणः' में एक वचन का निर्देश किया गया है । आवरण देवताओं का इस अर्थ में ही संग्रह हो इसलिये मूल वचन में आदि शब्द का प्रयोग किया गया है । सामान्य रूपमें कहे गये अवयवों एवं अस्त्रों को विशेष रूपमें अर्थात् भेद करके प्रतिपादन करते हुए कहते

ये मत्स्यकूर्माद्या' इतिश्रुतेः, 'मत्स्यकूर्मवराहादिरूपधारिणमिति स्मृतेश्च, प्रकृतेन श्रीरामाख्येन ब्रह्मणा स्वोपासकानां कार्यार्थम् स्वनित्ये रूपे विष्णवादिरूपेण कल्पनाकृता स्वपत्नीरूपे च विष्णवादिपत्नीस्वरूपाणां कल्पनाकृता इतिभावः। स्वपत्यङ्गानि तत् पत्नीनामङ्गाकारेण अस्त्राणि च तदस्त्राकारेण कल्पिता इत्यर्थः। ब्रह्मणः तत् कल्पकत्वेन प्राधान्यात् एकवचननिर्देशः । आवरणदेवता संग्रहार्थमत्रादिपदं बोध्यम् । सामान्यरूपेणोक्तानि अङ्गान्यस्त्रणि च विशेषेण निरूपयन्नाह-द्विचत्वारीति । शास्त्रान्तरेषु ख्यातिप्रकाशयति आसां देवतानां द्विचत्वारिषडष्टदशद्वादशषोडशाष्टादशारभ्यः सहस्रान्ताः अमीहस्ताः शङ्खादि भिर्युताः प्रेक्षावद्भिः प्रोक्ताः । अत्र हस्तशब्दः शिर आद्यङ्गान्तराण्युपलक्षयति 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपादित्युक्तेः । सहस्रबाहूरुभुजानाद्भुतमिति

हैं। 'द्विचत्वारि' इत्यादि-अन्य शास्त्रों में प्रसिद्धि को प्रकाशित करते हुए कहते हैं कि-इन देवताओं के दो चार छ आठ दश वारह सोलह अठारह से आरम्भ कर हजार पर्यन्त संख्या में इनके हाथ कल्पित हुए, तथा उन हाथों में होनेवाले शङ्ख चक्र गदा आदि से युक्तत्व तत्त्व ज्ञानी विद्वानों के द्वारा कहे गये हैं। यहां पर हस्त शब्द शिर आदि अवयवों को उपलक्षित करते हैं, अर्थात् हस्त शब्द अन्य अङ्गों का उपलक्षण है। अनन्त शिर वाला अनन्त नेत्र वाला अनन्त चरणों वाला विराट् पुरुष, इस कथन से, तथा हजार बाहु जंघा भुजा आदि से आश्चर्य जनक इत्यादि वचनों का वेदों में निरूपण होने से अन्य अङ्ग प्रतीत होते हैं। इस से दो से आरम्भ कर हजार पर्यन्त अवयवों की सिद्धि होती है। 'शङ्खादिभिः' यह कहने से गदा खड्ग धनुष वाण आदि का उपलक्षण के स्वरूप में बोध होता है। यहां पर तत्तद् विग्रहों के कथन के पश्चात् तत्तद् अस्त्र शस्त्रादि का कथन अन्यथा सिद्धि द्वारा युक्ति संगत नहीं होने पर वे भगवद् विग्रह भी विद्वानों के द्वारा निरूपित किये गये इस अभिप्राय को प्रकाशित करता है। और यहां पर जो पुरुष स्त्री आदि भेदों से अङ्ग प्रत्यङ्ग आदि उन देवताओं के प्रतिपादित किये गये हैं वे अङ्ग प्रत्यङ्ग और शस्त्र अन्य शास्त्रों में विद्वान् ज्ञानियों के द्वारा प्रकाशित किये गये हैं। और उन भगवद् विग्रहों की उपासना करके उनका साक्षात्कार पर्यन्त उनके उपासकों के द्वारा अन्य शास्त्रों को जानना चाहिये। जैसे कि ऐतरेय उपनिषद् में स्वाध्याय और प्रवचन का अत्यन्त आदर के साथ कथन से ध्यान धारण आदि से उस देवता का साक्षात्कार रूप अर्थ प्रकाशित होता है।

सहस्त्रशीर्षाक्षपादबाहूरूप्रभृतीनां श्रुतिषु निरूपणात् द्व्यादिसहस्त्रान्तानामङ्गानां सिद्धिः, शङ्खादिभिरितिगदाखड्गधनुःशरादीनामुपलक्षणत्वेन बोधः । अत्र तत्तद् विग्रहकथनमनन्तराङ्गास्त्रादीनां कथनमन्यथासिद्ध्याऽनुपपद्यमानं तद्विग्रहा अपि विपश्चिद्भिरुक्ता इतिगमयति । येऽत्र पुंस्त्रीदेवानाङ्गादयस्तास्तेसां देवतानामुक्ताः ते विशेषेण शास्त्रान्तरेषु विद्वद्भिः प्रकाशिताः । तानि चोपास्य साक्षाद्दर्शनपर्यन्तं तदुपासकैः शास्त्रान्तराणि ज्ञेयानि । यथा ऐतरेयेस्वाध्यायप्रवचनयोरत्यादरेण ध्यानादिस्ततस्साक्षात्कारो बोध्यते ।

शास्त्रान्तरोक्तस्यानुवादित्वादस्यां श्रुतावप्रामाण्यन्तु नाशङ्कनीयम्, वक्तृ पृच्छकयोः सम्वादेन श्रुतीनां प्रवृत्तिदर्शनात् ।एकोपनिषदिश्रुतस्योपनिषदन्तरे श्रवणात् याज्ञवल्क्यादिवचनत्वेन च पौरुषेयत्वापत्तिः । परस्परानुवादकत्वेनाप्य प्राण्यापत्तिः । प्रमाणान्तराबोध्यस्य सूक्ष्मतत्वस्य बोधनाय संवादावतारः सर्वासांश्रुतीनां समानरूपेण दुर्ज्ञेयस्य ज्ञानाय तथा प्रवृत्तिरवलोकनेननाप्रामाण्य

अन्य शास्त्रों में कहे गये विषयों का यहां पर विवेचन करने से उन कथनों का अनुवाद स्वरूप होने से इस श्रुति वचन में प्रामाणिकता नहीं होगी ऐसी शङ्का तो नहीं करनी चाहिये । उपदेशक एवं प्रश्नकर्ता का सम्वाद रूप के द्वारा श्रुतियों की प्रतिपादन शैली है ऐसी प्रवृत्ति देखे जाने से, एक उपनिषद् में सुना गया विषय का अन्य उपनिषदों में सुने जाने से तथा याज्ञवल्क्य जाबाल आदि ऋषियों का वचन होने से उपनिषदों में पौरुषेयत्व (पुरुष प्रयत्न कृतत्व) का दोष होता है, और एक उपनिषद् के वचन का अन्य उपनिषद् में अनुवादकत्व रूप दोष का भी प्रसङ्ग होता है। इसलिए अप्रामाणिकत्व की आपत्ति होती है । जो प्रत्यक्ष अनुमानादि प्रमाणों से नहीं जानने योग्य विषय हैं, जिसे केवल शुद्ध अन्तःकरण होने पर केवल समाधि या भगवत् कृपा से ही जानने के योग्य विषय हैं ऐसे सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञान कराने के लिये, इस तरह की वेद की प्रवृत्ति देखे जाने से अप्रामाणिकता की शङ्का नहीं करनी चाहिये । जैसे षड्ज आदि स्वरों का शिष्यों के अभ्यास दृढता हेतु पुनः पुनः कथन होता है । उसी तरह अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व का ज्ञान कराने के लिये एक ही विषय को पुनः पुनः कथन किया जाता है, इसलिये पुनरुक्तत्व आदि दोष सम्भव नहीं है । अपितु पुनरूक्ति आदि गुणोत्कर्ष जनक ही है । अथवा 'कथिता' इस पद में वैदिक होने से 'सुपांसुलुक्' सूत्र के द्वारा अथवा 'छन्दसि दृष्टानुविधिः' इस नियम से भविष्य अर्थ में भूतार्थक

माशङ्कनीयम् । षड्जादिस्वर इव दार्ढ्याय पुनरुक्त्यादयो गुणावहा एव । अथवा 'कथिता' इत्यत्र छान्दसत्वाद् भविष्यदर्थे भूतार्थस्य प्रयोगः । तेन तदुपबृंहकैः कथयिष्यते इतिभावः । वेदे निगूढार्थाः संक्षेपेणोच्यन्ते, तस्य विस्तरेण ज्ञानं विधायोपासकैः उपास्य देवतास्वरूपाङ्गपार्षदादीनां पुराणादिभिर्याथातथ्येन विज्ञाय साक्षात्काररपर्यन्तमुपासना विधेया इति उपबृंहणरूपेण पुराणेषु कथयिष्यन्ते इतिभावः, तदुक्त-

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थञ्च पार्वति ?।
वेदे यन्निहितं देवि ? पुराणे तत् प्रतिष्ठितम् ॥
पुराणमन्यथा कृत्वा तिर्यग् योनिमवाप्नुयात् ।
सुशान्तेऽपि सुदान्तेऽपि न गतिं प्राप्नुयात् क्वचित् ॥

अत्रान्यथाशब्दो मिथ्यार्थको न तु अर्थान्तरार्थकः शिष्टैर्विपरीतार्थकत्वेना भासमानानां वचनानामर्थान्तरपरत्वेन समन्वयात् । अथ तृतीयकल्पनामाह-तथा शब्द का प्रयोग किया गया है । इस युक्ति के आधार पर वेदार्थ के उपबृंहण करने इतिहास पुराणकारों के द्वारा कहे जायेंगे यह अभिप्राय है । वेद में अत्यन्त गूढ अर्थ अत्यधिक संक्षेप रूपसे कहे जाते हैं । उन अत्यन्त निगूढ (रहस्य) अर्थों को विस्तार पूर्वक उदाहरण प्रत्युदाहरणादि व्याख्यान के साथ ज्ञान करके उपास्य देवता के स्वरूप अङ्ग अस्त्र पार्षद आदि का इतिहास पुराणादि के माध्यम से वास्तविक रूपमें जानकर, तत्त्व साक्षात्कार पर्यन्त उपासना करनी चाहिये । इसलिये 'कथिता' का अर्थ हुआ विस्तार पूर्वक अर्थ सम्बोधन कारी इतिहास पुराण आदि में कहे जायेंगे यह तात्पर्य है ।

यही विषय कहा गया है-हे पार्वति ? मैं वेदों के अर्थ से अति श्रेष्ठ पुराणों का अर्थ मानता हूँ । हे देवि ? जो अर्थ वेद में स्थापित किया गया है, वही अर्थ पुराण में प्रतिष्ठित किया गया है, जो पुराण में प्रतिष्ठापित अर्थ को विरुद्ध स्वरूप में विवेचन करता है वह निन्दनीय पशुपक्षी योनि को प्राप्त करता है । नियमानुसार पूर्ण शान्त चित्त विवेक पूर्वक सभी इन्द्रियों को स्वाधीन रखने वाला होने पर विरुद्धार्थ विवेचक कभी भी सद् गति को नहीं प्राप्त करता है । यहां 'अन्यथा' कृत्वा में अन्यथा शब्द मिथ्या अर्थ बोधक है अन्य अर्थ बोधक नहीं है । शिष्ट प्रामाणिक तत्त्व वेत्ताओं के द्वारा विपरीत अर्थ बोधक के स्वरूप में व्यवहार किये जाने के कारण अन्यार्थ बोधकत्व रूप दोष नहीं होता है, अतः अन्यथा शब्द से मिथ्या अर्थ बोधकत्व माना

तासामिति तेन प्रकारेण तासां देवतानां वर्णवाहनकल्पनाकृता । एवम् शुक्लादि वर्णकल्पना द्वितीया, गरुडादिवाहनकल्पना तृतीया इतिभावः ॥१४॥

जाता है। इसके पश्चात् तृतीय कल्पना कहते हैं, तथा तासां इत्यादि कथन के द्वारा उस प्रकार से उन देवताओं का वर्ण वाहन आदि की कल्पना की गयी है। इस प्रकार शुक्ल कृष्ण आदि युगानुसार वर्णों की कल्पना की गयी है तथा भगवद् विग्रह भेद से गरुड आदि वाहनों की कल्पना की गयी है। यहां पर वर्ण कल्पना द्वितीय कल्पना है, तथा वाहन कल्पना तृतीय कल्पना है ॥१४॥

अथ चतुर्थपञ्चमकल्पनां प्रकटयन्नाह-

शक्तिसेनाकल्पना च ब्रह्मण्येवहि पञ्चधा ।
कल्पितस्य शरीरस्य तस्य सेनादिकल्पना ॥९॥

इसके पश्चात् ब्रह्म के चतुर्थ पञ्चम रूप कल्पना को प्रकट करते हुए ऋचा कहती है । ब्रह्म में ही पांच प्रकार से पुनः शक्ति एवं सेना की कल्पना की गयी है । तत्त्व ज्ञानी विद्वानों के द्वारा ब्रह्म के कल्पित शरीर की और उसके शक्तिसेना आदि की कल्पना है ।

श्रीराम नामक ब्रह्म में ही पांच प्रकारों से देवताओं के पुरुष स्त्री आदि अङ्गों की दो भुजा से लेकर सहस्त्र पर्यन्त भुजाएं शङ्ख चक्र गदा आदि सहित रूप कल्पना प्रथम हुई । वर्ण आदि की कल्पना दूसरी, गरुड आदि वाहन कल्पना तीसरी, शक्ति कल्पना चौथी, और सेना आदि कल्पना पांचवी इस तरह ब्रह्म में उपासकों के हित के लिये पांच प्रकार से कल्पना हुई । इसप्रकार कल्पित ब्रह्म के देह की उन श्रीरामचन्द्रजी नामक ब्रह्म की सेना आदि कल्पना की गयी यह अभिप्राय है ॥९॥

श्रीरामनामके ब्रह्मणि एव पञ्चभिः प्रकारैः देवतानां पुंस्त्री अङ्गादि द्विभुजादिसहस्त्रान्ता शङ्ख्यादिभिर्युता प्रथमा कल्पना, वर्णादिकल्पना द्वितीया, बाहनादिकल्पना तृतीया, शक्तिकल्पना चतुर्थी सेनादिकल्पना च पञ्चमीति

शास्त्र तत्त्वों के जानकार विद्वानों के द्वारा अथवा ब्रह्म के द्वारा उन देवताओं की शक्ति सेना आदि की कल्पना की गयी है। यहां पर शक्ति शब्द से विमला आदि शक्ति की कल्पना चौथी है। विष्वक्सेन प्रधान है जिस में ऐसी सेना कल्पना पांचमी है। पांचों कल्पना का उपसंहार करते हैं। जिस तरह कोई राजा अपनी पत्नी सेना

पञ्चधाकृता इतिभावः । इत्थं कल्पितस्य ब्रह्मणोदेहस्य तस्य श्रीरामाख्यस्य शक्तिसेनादिकल्पना विहितेतिभावः ।

शास्त्रज्ञैर्ब्रह्मणा वा तासां देवतानां शक्तिसेनादिकल्पनाकृता । अत्र विमलादिशक्तिकल्पना चतुर्थी, विष्वक्सेनप्रधानासेनाकल्पना पञ्चमीकृता । तदुपसंहरति यथा कश्चित् स्त्रीसेनादिसहित अपि राजा गच्छति, तदा तत्र राजा गच्छति इत्येव व्यवहारः। तथा विष्णवादिदेवता, तेषां स्त्रीवाहनशक्तिसेनासहि तेऽपि श्रीरामाख्ये ब्रह्मणि तेषु सत्स्वपि तस्य मुख्यत्वादेकवचननिर्देशः । अत्र रज्जौ सर्पबुद्धिरिव निर्गुणा निराकारा कल्पना नकृता । अवतारिणः अवतारा णाञ्च साकारत्वरूपस्थानामित्युक्तेः । ब्रह्मण्येव हि पञ्चधेत्युपसंहाराच्च, अन्यथा
आदि के सहित जाता है तो भी वहां पर लोक यही व्यवहार करता है कि-यह राजा जा रहा है। उसी तरह श्रीविष्णु आदि देवता, उन देवताओं की पत्नियां वाहन, शक्ति, सेना आदि के सहित भी श्रीराम नामक ब्रह्म में उन सभी भेद प्रभेदों के होने पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की प्रधानता के कारण एक वचन का निर्देश किया गया है। यहां पर जैसे अन्धकारादि दोषवश रज्जु में सर्प की भावना होती है, वस्तुतः सर्पत्व नहीं होता है, उस तरह निर्गुण और निराकार कल्पना नहीं की गयी है। अपितु सगुण साकार कल्पना है। क्योंकि ऋचा में 'रूपस्थानाम्' यह कहा गया है। और ब्रह्म में ही पांच प्रकारों से कल्पना हुई है इस उपसंहार के द्वारा भी सगुण साकारत्व का बोध होता है। यदि सगुण साकार नहीं होता तो कल्पित शरीर की शक्ति सेना आदि की कल्पना इस पूर्ववर्ती वाक्य का कथन की निष्फलता होती है। श्रीकृष्ण नारायण आदि अवतारों से विलक्षणता रूप अर्थ का ज्ञान कराने के लिये दशरथ तनय श्रीरामचन्द्रजी अर्थ को प्रकाशित करने के लिये अलग पाठ किया गया है यह तात्पर्य विद्वानों को समझना चाहिये तथा उस ओर ध्यान देना चाहिये।

इस तरह की स्थिति होने पर भी जो लोग ब्रह्म में सवकुछ कल्पित अर्थात् वास्तविक नहीं है ऐसा मानते हैं। विकार का नाम रूप आदि कथन केवल शाब्दिक व्यवहार मात्र है, तथ्य नहीं, मूलकारण मृत्तिका ही सत्य है विकार सत्य नहीं है। इस श्रुति वचन के अनुसार, ब्रह्म में विकारत्व होने का दोष नहीं हो इस डर से ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि माया ही ब्रह्म को अपना आश्रय बनाकर संसार स्वरूप में परिवर्तित हो जाती है। ब्रह्म में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। इस विवर्तवाद

कल्पितस्य शरीरस्य शक्तिसेनादिकल्पनेति पूर्ववाक्यस्य वैयर्थ्यं स्यात् । कृष्णाद्य वतारविलक्षणतार्थबोधो दाशरथेर्द्योतनाय पृथक्कृतया पाठ इतिसुधीभिरवधेयम् ।

एवम् सत्यपि ये ब्रह्मणि सर्वं कल्पितम् मन्यन्ते, 'वाचारम्भणं विकारोनामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यमिति' ब्रह्मणि विकारत्वापत्तिभियामायैव ब्रह्म आश्रित्य जगदाकारेण विपरिणमते, अत्र वादे अपि द्वैतापत्तिभिया माया-माश्रित्य, स्वयमेव ब्रह्माज्ञानपरम्परया संसरति, अज्ञानोपादानकान्तःकरणस्य संसारहेतुत्वात् । आत्मज्ञानेन तु अज्ञानकार्योपहितस्वाभासध्वंसे विमुच्यते । अत्रापि सिद्धान्ते निर्गुणे निराकारे ब्रह्मणि अविद्यासम्बन्धहेतुकसंसरणस्य, रज्जौ के मत में भी अद्वैतत्व की हानि अथवा द्वैतत्व की आपत्ति नहीं हो इस भय से माया को आश्रय बनाकर स्वयमेव ब्रह्म से सम्बद्ध अज्ञान परम्परा जन्म मरण परम्परा को प्राप्त करता रहता है। अज्ञान (अविद्या) है उपादानकारण जिसका ऐसा अन्तःकरण संसार का कारण माने जाने से द्वैतापत्ति नहीं होती है। आत्मस्वरूप का ज्ञान हो जाने से तो ज्ञान के द्वारा अज्ञान जनित कार्य से आच्छादित स्वस्वरूपाभास का संहार हो जाने के वाद अहं ब्रह्मास्मि के अनुभूति से मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस सिद्धान्त में भी गुणों से रहित एवं आकृति से रहित ब्रह्म स्वरूप में अविद्या के सम्बन्ध के कारण होने वाला जन्म मरण स्वरूप संसार का जैसे रज्जु में सर्प की भावना होती है उस तरह समस्त चराचर प्रपञ्च का आश्रय स्वरूप निर्गुण निराकार ब्रह्म में संसार का आभास मात्र होता है। लेकिन ब्रह्म से अतिरिक्त कोई तत्त्व विशेष तो होता नहीं है। जैसे रज्जु से अतिरिक्त सर्व तत्त्व नहीं होता है अज्ञान के कारण केवल सर्प का आभास होता है । उसीप्रकार सभी अधिष्ठान स्वरूप ब्रह्म में जगत् का आभास मात्र होता है। न कि ब्रह्म से विशेष रूपसे भिन्न किसी तत्त्व विशेष की कोई है। जिसके साथ उस ब्रह्म में अज्ञान का किसी तरह का सम्बन्ध, और सम्बन्ध के कारण उत्पन्न होनेवाला जन्म मरण बन्धन रूप संसार का दोष होगा। इस कारण से विना तत्त्व परिवर्तन के अन्यथा बुद्धिरूप विवर्तवाद को स्वीकार करते हैं। इन विवर्तवादियों के सिद्धान्त में वेद स्मृति शास्त्र इतिहास पुराण आदि ग्रन्थ का कोई भी प्रयोजन नहीं रहता है। वर्ण आश्रम के अनुरूप सदाचार और गुरु शिष्य परम्परा आदि सभी व्यवस्थायें निरर्थक हैं। क्योंकि भूत भविष्य तथा वर्तमान तीनों ही कालों में एकमात्र ब्रह्म के अतिरिक्त कोई भी तत्त्व विशेष नहीं है इस तरह का सिद्धान्त उनके द्वारा स्थापित किया गया है।

सर्प इव सर्वाधिष्ठाने ब्रह्मणि जगद्भावमात्रं नतु ब्रह्मभिन्नं किञ्चिदन्यत् । सर्वाधिष्ठाने ब्रह्मणि जगद्भानमात्रं नतु ब्रह्मव्यतिरिक्तं किञ्चिदस्ति, येन तत्राज्ञानसम्बन्धः तत् कृतसंसारादिदोषोभवेत्, अतो विवर्तवादमङ्गीकरोति । एतेषां सिद्धान्ते श्रुतिस्मृतीतिहासप्रबन्धो निष्प्रयोजनः, वर्णाश्रमाचारगुरुशिष्य परम्परादयश्च निरर्थकाः, कालत्रयेऽपि ब्रह्मातिरिक्तं किंचननास्तीति तैः सिद्धान्तितत्वात् ।

स्वभावतो निर्गुणब्रह्मणि अविद्यासम्बन्धोपादानकान्तःकरणोपहित चिदाभासमूलकसंसरणादेरसम्भवत्वम् । दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैरूप्यात् रज्जुसर्पसिद्धान्तोऽपि व्यर्थः, ब्रह्मव्यतिरिक्तस्याभावस्वीकारात् । आकाशे पुष्प इव,

स्वभाव से ही गुण रहित ब्रह्म में अविद्या (माया) का सम्बन्ध रूप उपादान कारण से युक्त अन्तःकरण से आच्छादित चिदाभास मूलक जन्म मृत्यु परम्परा स्वरूप संसरण आदि का होना सम्भव नहीं है। क्योंकि उदाहरण एवं जिसकी सिद्धि के लिये उदाहरण दिया जाता है वह दृष्टान्त तथा दार्ष्टान्तिक इन दोनों का परस्पर सारूप्य होना आवश्यक है इनके आपस में विरूपता होने से साध्य की सिद्धि नहीं होती है। वह निरूपता यहां पर है। रस्सी में साँप का भ्रान्ति मूलक दृष्टान्त भी व्यर्थ निष्प्रयोजन है ब्रह्म से विशेष रूपसे भिन्न का अभाव इस सिद्धान्त में स्वीकार किये जाने से, जैसे आकाश में आधार को ही असिद्ध होने पर पुष्प की कल्पना की जा रही हो इसप्रकार, अथवा प्रकाश में अन्धकार की कल्पना की जाय, वह असम्भव है, उस तरह निर्गुण निराकार ब्रह्म में अज्ञान का सम्बन्ध युक्ति संगत नहीं है। इसलिये किस प्रकार जीवात्मा की कल्पना सम्भव हो सकेगी। और भी अरुचि दिखाते हैं कि ब्रह्म एवं अज्ञान का-चित् एवं जड स्वरूप होने से दोनों परस्पर सर्वथा विपरीत धर्म वाले हैं। अतः इनका विरुद्ध स्वभाव होने से किसी भी प्रकार से परस्पर सम्बन्ध होना सम्भव नहीं है। इसप्रकार सत्शास्त्र आधार रहित केवल अपनी परम्परा का आग्रह से ग्रस्त होने वाले विद्वानों के हठी स्वभाव युक्त सिद्धान्त की उपेक्षा करके वेद धर्मशास्त्र पुराण इतिहास तथा पूर्वाचार्यों के दिव्य प्रबन्ध ग्रन्थों की सार्थकता प्रसिद्ध करने के लिये ब्रह्म तत्त्व से अतिरिक्त जिनका जन्म जीवन तथा मृत्यु स्वरूप संसरण स्वभाव ऐसे जीवात्माओं की कल्पना करते हैं। प्रकृत विषयक सर्वशास्त्रों से परिपुष्ट विवेचन ब्रह्मसूत्रानन्दभाष्य प्रकाश गीतानन्दभाष्य तत्त्वदीप श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर

प्रकाशेऽन्धकार इव निर्गुणे निराकारे ब्रह्मणि अज्ञानसम्बन्ध एव नोपपद्यते । तत्कथं जीवात्मकल्पना, किंच ब्रह्माज्ञानयोः चिज्जडत्वेनसर्वथा विपरीतस्व भावयोः कथमपि सम्बन्धः सम्भवति । इत्थं स्वपरम्पराग्रहग्रस्तानां सिद्धान्त मनादृत्य श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासप्रबन्धानां सार्थक्याय ब्रह्मातिरिक्तान् संसरण शीलान् जीवान् कल्पयति । तेषां जीवानां निःश्रेयसे श्रुत्याद्याः ब्रह्मणोरूपं प्राप्तुः जीवात्मनोरूपं तत्प्राप्त्युपायं, फलं च प्राप्तेः, प्राप्तिविरोधिनः जीवेश्वरसम्बन्ध श्चेति, तदुक्तम्-

प्राप्यस्य ब्रह्मणोरूपं प्राप्तुश्च प्रत्यागात्मनः ।
प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेस्तथा प्राप्तिविरोधिनः ।।

प्रभा-किरण तत्त्वत्रयसिद्धि तत्त्वदीप चिदात्ममीमांसा प्रभृति अनेक दिव्य प्रबन्धों में कर चुका हूँ अतः विशेषार्थी वहीं देखें । उन संसरण स्वभाव युक्त जीवात्माओं का निःश्रेयस लाभ मोक्ष के लिये वेदशास्त्र पुराणेतिहासादि प्रबन्ध ग्रन्थ यह प्रतिपादित करते हैं कि परब्रह्म का स्वरूप क्या है जो समस्त जीवात्माओं का परम कल्याणकारी एवं शास्त्र विहित उपायों द्वारा प्राप्त करने योग्य है । ब्रह्म को साक्षात्कार करने का अभिलाषी प्राप्त कर्ता जीवात्मा का स्वरूप क्या है । उस परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करने का साधन क्या है । जिस साधनों से ब्रह्म साक्षात्कार हो सके । ब्रह्म साक्षात्कार करने का फल क्या है तथा संसार के कौन कौन पदार्थ ब्रह्म साक्षात्कार होने में प्रतिबन्धक हैं । उन्हें प्राप्ति विरोधी कहा जाता है । तथा जीवात्मा एवं परमात्मा का परस्पर सम्बन्ध क्या है, इन तत्त्वों का निरूपण इन ग्रन्थों में किया गया है-प्राप्त करने योग्य ब्रह्म का स्वरूप, प्राप्तकर्ता जीवात्मा का स्वरूप प्राप्ति का उपाय, प्राप्ति का फल, तथा प्राप्ति का विरोधी इसप्रकार जीवात्मा एवं ईश्वर का परस्पर सम्बन्ध स्वरूप को सम्यक् प्रकार से तात्विक ज्ञान करके परमेश्वर की उपासना करनी चाहिये । परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा अपने उपासकों के अभिमत सिद्धि रूप कार्य के लिये अपना स्वरूप अनेकानेक प्रकार से प्रकटित किया गया है, उपासक के द्वारा अपनी इच्छा अथवा परिस्थिति के अनुसार जिस किसी भगवद् विग्रह रूप ब्रह्म स्वरूप की उपासना पूजा अर्चा आदि करनी चाहिये अपने भक्तों के अभिमत सिद्धि के लिये ही रूप कल्पना किये जाने के कारण ही श्रीरामतापनीय उपनिषद् वचन में वार-वार रूप कल्पना पद का प्रयोग किया जाता है । इस विषय में उदाहरण है वैदुर्य मणि का

इत्थं जीवेश्वरसम्बन्धं सम्यग् विज्ञाय उपासितव्यम् । ब्रह्मणा श्रीरामेण निजोपासकानां कार्यार्थं स्वविग्रहोऽनेकधा आविष्कृतः । यस्मिन् कस्मिन् वा ब्रह्मणोविग्रहे उपासना विधेया । अतएव पौनः पुन्येन कल्पनेत्युच्यते । दृष्टान्तश्चात्र वैदुर्यमणिपुष्पादिसम्बन्धेन बहुरूपबोधः । वस्तुतः श्रीरामाख्यो ब्रह्मस्वय मिन्द्रनीलमणिप्रभः द्विभुजाद्याकृतिः नित्यधनुर्वाणाद्यस्त्रविशिष्ट एव श्रीविष्ण्वा दीन् शक्तिसेनादिसहितान् भासयति । तदुक्तम् पाञ्चरात्रे-

मणिर्यथाऽविभागेन नीलपीतादिभिर्युतः ।
रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात्तथाच्युतः ॥

तत्तद्रूपाद्याविष्करणकालेऽपि स्वनित्याकृत्यादितो न च्यवते यः सोऽच्युतः । अत्राच्युतपदोक्तेः, सनत्कुमारेणापि तथैवोक्तम् । 'मत्स्यकूर्मवराहादि रूपधारिणमव्ययमिति' अत्राव्ययपदोपादानेन स्वनित्यविग्रहेरूपान्तराभासमानत्वं बोधयति । ब्रह्मणोद्वितीयशरीरधारित्वे विकारित्वदोषः । रूपान्तरस्याधि कत्वाज्जन्यत्वप्राप्ति :, तेन चानित्यत्वमिति बहुदोषप्रसङ्गः । परमात्मनः सर्वदेहानां

विभिन्न रंगों के पुष्प आदि का सम्बन्ध होने से अनन्त स्वरूपों का बोध होता है। वास्तविक में तो श्रीरामचन्द्र नामक ब्रह्म स्वयं इन्द्र नील मणि की कान्ति के समान कान्ति सम्पन्न, द्विभुज आदि आकृतिमान् सदैव धनुष वाण आदि अस्त्र भेदों से सम्पन्न ही हैं। श्रीविष्णु नृसिंह वामन वराहादि विग्रहों को शक्ति सेना आदि से सम्पन्न कर आभासित कराते हैं। यही विषय पाञ्चरात्र ग्रन्थ में कहा गया है। जिस तरह मणि नील पीत आदि वस्तुओं से सम्पर्क पाकर अविभाजित रूपसे नील पीतादि स्वरूप को अनुभव कराता है, उसीतरह भगवान् अच्युत अपने उपासकों के चिन्तन भेद से अनन्त रूपों में अनुभव गोचर होते हुए अनन्त रूपको प्राप्त करते हैं। तत्तत् प्रकार के स्वरूपों के प्रकटीकरण के समय में भी अपनी नित्य आकृति से जो कभी भी परिवर्तित नहीं होते हैं, ऐसे जो परम तत्त्व हैं उन्हें अच्युत कहा जाता है। इस उपर्युक्त वाक्य में भगवान् को अच्युत पद से कहा गया है अतः श्रीराम नामक ब्रह्म का सर्वकाल एवं सर्वावस्था में अपरिवर्तनीय स्वरूप सिद्ध होता है। महर्षि सनत्कुमारजी के द्वारा भी ऐसा ही कहा गया है-मत्स्य, कूर्म, वराह आदि अनन्त रूप को धारण करनेवाले अविनाशी को, यहां पर अव्यय पद का प्रयोग किये जाने के कारण सिद्ध होता है कि अपने नित्य स्वरूप में अन्य रूपों का आभास होना प्रकाशित होता है।

नित्यत्वेमुक्तजीवेषु नोपास्याकृतेर्वैषम्यम् । विनिगमनाविरहेणान्यतमस्य न सर्वकारणत्वम् । 'सदेवसोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयमितिश्रुतेर्व्याघातः । चिन्मयस्याद्वितीयस्येत्युक्तेश्च श्रीरामाख्ये ब्रह्मण्येव मूलकारत्वं घटते ॥१५॥

अतोऽन्येषु पक्षेषु बहुदोषदर्शनेन एकस्यैव नित्याकृतेर्ब्रह्मणो बहुरूपेण दृश्यमानत्वमङ्गीकार्यम् । इममेवार्थं स्फुटयन्ति श्रीरामतापनीयमन्त्राः-ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् अद्वैतपरमानन्दात्मेत्यादयः । श्रीमद्रामायणे महर्षिश्री

ब्रह्म का यदि द्वितीय शरीरधारित्व हो तो ब्रह्म में विकारित्व होने का दोष उपस्थित होगा । अन्य रूप का पूर्व रूप से अधिक होने के कारण ब्रह्म में जन्यत्व दोष की प्राप्ति होगी और इससे ब्रह्म में अनित्यत्व दोष का प्रसङ्ग होगा । परमात्मा के सभी शरीरों का नित्य होने पर मुक्त जीवात्माओं में उपास्य देवता के आकृति की विषमता नहीं होगी । यदि सभी शरीरों की नित्यता हो तो एकतर पक्षपाती सिद्धान्त का अभाव होने से किसी एक का सर्वकारणत्व नहीं हो सकता है । हे सौम्य सृष्टि के आरम्भ काल में सत् स्वरूप एक अद्वितीय ही था, इस श्रुति वचन का सर्व नित्यता पक्ष में व्याघात होगा तथा 'चिन्मय, अद्वितीय' इस श्रुति का भी व्याघात होगा । इसलिये श्रीराम नामक ब्रह्म में ही मूलकारणत्व संघटित होता है ॥१५॥

ब्रह्म का विवर्तरूप जगत् को स्वीकार करने वाले, या मायिक जगत् मानने वाले आदि पक्षों में अनन्त प्रकार के दोषों को देखे जाने से इसलिये अन्य पक्षों में दोष देखकर एक की ही जिसकी परम नित्य आकृति है ऐसे परब्रह्म का अनन्त स्वरूप से दृश्यमानता स्वीकार करनी चाहिये । जिसे पूर्व में मणिरूप न्याय से स्पष्ट किया गया है । इसी विषय वस्तु को स्पष्ट रूपसे प्रकाशित करते हैं श्रीरामतापनीय उपनिषद् के मन्त्र समुदाय → ॐ कार से निर्णीत रूपसे जो श्रीरामचन्द्रजी हैं वे समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण होने से भगवान् हैं अद्वैत परमानन्द आत्मा हैं' इत्यादि मन्त्र तथा श्रीमद्रामायण में महर्षि श्रीवाल्मीकिजी भी इसी आशय को कहे हैं क्योंकि पूर्व काल में सभी लोकों को समेट कर...अन्ततः विष्णुत्व स्वरूप को उपलब्ध किये, इत्यादि वचनों के द्वारा कहते हैं । अलौकिक अनन्त गुणगण मण्डित असाधारण लक्षणों से सम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी को कौशल्यादेवी प्रादुर्भूत की । इस वाक्य में महामुनि श्रीवाल्मीकिजी दिव्य शब्द का प्रयोग किये हैं। इसलिये श्रीरामचन्द्रजी की आकृति से एवं अन्य असाधारण धर्मों से अन्य देवताओं के समानता का अभाव स्वरूप अर्थ को दिव्य

वाल्मीकिरपि-संक्षिप्य हि पुरालोकान्...विष्णुत्वमुपजग्मिवानित्यादिना आह । 'कौशल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसंयुतमिति दिव्यशब्दोक्तेः सर्वेशश्रीरामस्याकृत्या लक्षणान्तरैश्च देवतान्तरसादृश्याभावं प्रकाशयति । 'राम' मजनयदिति नामकरणात् प्राक् नामनिर्देशेनानादित्वं सूचयति । पुराणेऽपि-

'विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकाः ।
तथाऽपि रामनामेदं विश्वेषां वीजमक्षयम् ॥
विष्णोर्नाम्नां सहस्राणां तुल्य एष महामनुः ।
विष्णोरेकैकनामैव सर्ववेदाधिकं मतम् ।
तादृङ्नामसहस्रैस्तु रामनामसमं मतम् ॥'

शब्द प्रकाशित करता है। इसी को अन्यत्र निरस्त साम्यातिशय कहा गया है। और उस वाक्य में कहा है श्रीरामजी को पैदा की यहां जन्म होने से पहले ही 'रामचन्द्र' इसनाम का प्रकाशन के कारण इस नाम निर्देश से 'राम' नाम का अनादित्व रूप अर्थ को सूचित करते हैं। पुराणों में भी कहा गया है कि-हे राम ? समस्त विश्व ही स्वरूप है जिसका ऐसे आपका संसार के सभी शब्द वाचक हैं, सभी शब्दों का अर्थ 'राम' होते हुए भी यह 'राम' नाम संसार के सभी पदार्थों का अविनाशी मूलकारण है। विष्णु के हजारों नामों की तुलना में यह एक ही 'राम' नाम स्वरूप महामन्त्र 'राम' नाम वरावर है। भगवान् विष्णु के एक एक नाम समस्त वेदों के समूह से अधिक महत्वपूर्ण है। ऐसा ऋषि मुनियों के द्वारा माना गया है। समस्त वेदों से अधिक माहात्म्य धारण करनेवाले विष्णु नामों के हजार नामों के समान यह एक ही 'राम' नाम है। इत्यादि वचनों के द्वारा श्रुति स्मृति पुराणेतिहासों से निरूपण किया गया है अतः श्रीराम नाम सर्वकारणत्व रूप अर्थ को प्रकाशित करता है। और भी 'रमन्ते योगिनः' इत्यादि मन्त्रों के द्वारा श्रीराम नाम का अनादित्व एवं सभी देवताओं से उत्कृष्टता एवं अधिकता कहकर 'रघुकुलेऽखिलं राति' इत्यादि के द्वारा उस 'राम' नाम का गौणत्व बोध कराया गया है। और महर्षि श्रीवाल्मीकिजी भी भगवान् श्रीरामजी का नामकरण से पहले 'राम' नाम कहकर पुनः महर्षि वशिष्ठ के द्वारा नामकरण के समय में भी वही 'राम' नाम का कथन किये, इस कथन के द्वारा वाद में नामकरण प्रक्रिया द्वारा किया गया 'राम' नाम का गौणत्व बोध कराये। नाम और नाम वाला

इत्यादिभिः श्रीरामनाम्नः सर्वकारणत्वं गमयति। किञ्च 'रमन्ते योगिनः' इत्यादिना श्रीरामनाम्नोऽनादित्वमुत्कृष्टत्वञ्चाभिधाय पुनः 'रघुकुले राती' त्यादिना तस्य गौणत्वमुक्तम्। महर्षिश्रीवाल्मीकिरपि नामकरणात् पूर्वं 'रामनाम' अभिधाय पुनः नामकरणसमयेऽपि तदेवाभिहितवान् तेन तस्य गौणत्वं नामनामिनोरभेदाङ्गीकारात्। चिन्मयस्येत्याद्युपबृंहणं, रूपस्थानामिति। तेन श्रीरामस्याजहत् स्वाकृतेरवतारः। किञ्च निराकारं ब्रह्म उपाधिवशात् पञ्चधा भाति। इतिपञ्चधा कल्पना, कल्पितस्येत्यादिना इति न युक्तम्। रज्जुः सर्परूपेणाभासते तथा यदिश्रुतेरभिमतं स्यात्तदाराघवशरीरस्यैवोपाधिकत्वेन द्वयादिसहस्त्रान्तभुजत्वसिद्धेः, ततः पृथक्त्वेन श्रुतं वाक्यं व्यर्थं स्यात्। तस्मात् पञ्चधाकल्पनातोभिन्नं साकारस्यावतारिणो ब्रह्मणः स्वेनैवरूपेणाविर्भावं प्रकाशयति। 'रमन्ते...परंब्रह्माभिधीयते' इतिपूर्वश्रुत्या यदुक्तं तस्यैव 'चिन्मयस्या

इन दोनों का सम्बन्ध विद्वानों के द्वारा अभेद माना गया है, इसलिये परब्रह्म एवं 'राम' इन दोनों में कोई भेद नहीं है। 'चिन्मयस्याद्वितीयस्य' इत्यादि उसी संक्षिप्त कथन का विस्तार पूर्वक निरूपण है। 'रूपस्थानां' रूप कल्पना के द्वारा इस तरह चिन्मयस्य का उपबृंहण रूपस्थानाम् आदि के द्वारा करने से श्रीरामचन्द्रजी का अपने पूर्व स्वरूप का जिन्होंने परित्याग नहीं किया है ऐसे अपनी नित्य आकृति के साथ अवतार हुआ है यह प्रतीत होता है। और अन्य सिद्धान्त वक्ताओं के द्वारा जो कहे हैं कि-निराकार ब्रह्म उपाधिवश पांच प्रकार से प्रतीत होता है, वस्तुतः एक ही है। यह कथन पांच प्रकार से कल्पना, 'कल्पितस्य' इत्यादि के द्वारा प्रतिपादन है यह कहना उचित नहीं है। जैसे रज्जु (रस्सी) में सर्पत्व नहीं होने पर भी वह रज्जु सर्प जैसा प्रतीत होता है, एवं उससे भय आदि कार्य उत्पन्न होते हैं। इस आभास के समान यदि जगत् का आभास होना वेद वचन का अभिप्राय होता तब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के शरीर का ही औपाधिक होने से दो से लेकर हजार पर्यन्त भुजाओं का होना औपाधिक प्रतीति के स्वरूप में सिद्ध हो जाने से उस वाक्य से भिन्न रूप में प्रतिपादित श्रुति वाक्य का अलग से प्रतिपादन करना निरर्थक हो जायेगा। इसलिये पूर्व में प्रतिवादी द्वारा कथित पांच प्रकार के कल्पना से अलग ही आकर सहित दिव्य विग्रहधारी ब्रह्म का अपने वास्तविक रूपसे ही रघुकुल में महाराज दशरथ के घर आविर्भाव को प्रकाशित करता है। 'रमन्ते योगिनः...परं ब्रह्माभिधीयते' इस पूर्व प्रतिपादित श्रुति के

द्वितीयस्य ब्रह्मणोरूपकल्पना' इत्यनेनैकवाक्यतया श्रीरामाख्यब्रह्मणो मूलकारणत्वं सर्वावतारित्वं च निश्चीयते, तत्सारूप्यावतारत्वोक्तेः पृथग् वाक्यसार्थक्यं जायते । तस्मात् पञ्चधाकल्पनातः पृथक् कल्पितस्येतीदं वाक्यमाद्यविग्रहस्य नित्यत्वमवतारित्वं विज्ञाप्य परब्रह्मणो द्विभुजादिमत्वं बोधयति । इत्थं प्राकृतनयनागोचरं यद् वाहनंतत् परमकृपया गोचरीकृतं नराकारं शरीरं तस्य शक्तिसेनादिकल्पना कृतेत्यन्वयः । कल्पनापदमाविष्कारार्थबोधकम् । अत्र पक्षे तु स्मृतमिदं यत् 'यथा ह्यादिप्रदीपेन सर्वदीपप्रबोधनम् । तथा सर्वावताराणामवतारीरघूत्तमः' इत्यादिवचनं वेदार्थोपबृंहकत्वं विज्ञेयम् ॥१६॥

द्वारा जिस ब्रह्म का निरूपण किया गया है, उसी साकार सर्वकारण ब्रह्म का जो चिन्मय अद्वितीय है उसी की रूप कल्पना शास्त्रों या ब्रह्मा के द्वारा अथवा विद्वानों के द्वारा की गयी है । इस तरह दोनों श्रुतिवचनों की एक वाक्यता करने पर 'रामचन्द्र' नाम से प्रसिद्ध ब्रह्म का मूलकारणत्व एवं सर्वावतारित्व रूप अभिप्राय का निश्चय किया जाता है । और उस अनादि सिद्ध नित्य द्विभुज धनुर्वाण धर के समान स्वरूपता वाला ब्रह्म का अवतारत्व निरूपण के कथन से पृथक् वाक्य प्रतिपादन की सार्थकता होती है । इसलिये पूर्व प्रतिपादित युक्ति के आधार होने से प्रतिवादी द्वारा आभास मूलक पञ्चधा पांच प्रकारों से रूप कल्पना से अलग ही, 'कल्पितस्य' शरीरस्य इत्यादि यह वचन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी नामक ब्रह्म के आदि भूत नित्य विग्रह का परम नित्यत्व एवं अवतारित्व का विशेष रूपसे निरूपण करके पुनः उस 'राम' नामक परब्रह्म का द्विभुजादि सम्पन्न होना आदि अर्थ का प्रकाशन करता है । इसप्रकार जो प्रकृति जनित चर्म चक्षु द्वारा प्रत्यक्ष नहीं है ऐसा जो परब्रह्म तत्व है, वह परब्रह्म ही अपनी अहैतुकी परम कृपा से अप्रत्यक्ष होते हुए भी अपने भक्त के हेतु मानवीय आकृति में दृष्टि गोचर होते हैं । उनके भक्तजन गोचर मानव शरीर है उसकी शक्तिसेना आदि की कल्पना की गयी है, ऐसा समन्वय होता है । यहां पर व्यवहार किया गया कल्पना पद आविर्भाव रूप अर्थ का बोध कराने वाला है । इस पक्ष निरूपण में विद्वानों के द्वारा कहा गया है कि-जिस तरह आदि प्रदीप के द्वारा उसकी ज्योति से अन्य समस्त दीपों का प्रबोधन अर्थात् प्रज्वलन होता है । उसी तरह ब्रह्माण्ड में जितने भी भगवान् के अवतार हैं उन सभी अवतारों के अवतारी रघुकुल नायक हैं । इत्यादि वचन वेदार्थ का ही सम्बर्धक है यह विद्वानों को समझना चाहिये ॥१६॥

ननु स्वरूपोपासनामात्रेणोपासनासिद्ध्यति किन्तु मन्त्रोपासनायां तु बहुरूपोपासना इव बहुमन्त्रानुष्ठानेन तु समेषामुपास्यत्वापत्तिरिति समस्तोपास्य विज्ञानेनोपासनया च कारणवाचककार्यवाचकयोरैक्येन तज्जपेन तद्विज्ञानेन तदुपासनया च सर्वजपविज्ञानोपासनायाश्च सिद्धये एतदर्थं श्रीराममन्त्रस्य सर्ववाचकत्वं निरूपयन् ब्रह्मादीनां वाचकोऽयमितिमन्त्रं श्रुतिरभिधत्ते ।

ब्रह्मादीनां वाचकोऽयं मन्त्रोऽन्वर्थादिसंज्ञकः ।
जप्तव्यो मन्त्रिणा नैनं विना देवः प्रसीदति ॥१०॥

यह षडक्षर ब्रह्म तारक श्रीराम मन्त्र ब्रह्म आदि समस्त देवताओं का स्वरूप प्रतिपादक है। मन्त्र के अर्थानुसार यह मन्त्र सभी वेदों के अर्थ प्रतिपादक है यह कहा गया है। मन्त्र धारक के द्वारा यह मन्त्र आवश्यक रूपसे जपा जाना चाहिये, इसका हर प्रकार से जप करना चाहिये। इस तारक श्रीराम महामन्त्र का जप किये विना भगवान् श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न नहीं होते हैं ॥१०॥

(अयं षडक्षरः तारकश्रीराममन्त्रः ब्रह्मादीनां देवानां वाचकः मन्त्रानुसारेण सर्वदेवार्थबोधकः उक्तः। मन्त्रधारकेणायं मन्त्रः जप्तव्यः अस्य सर्वथा जपः विधेयः। अस्य तारकश्रीराममन्त्रस्य जपेन विनादेवः श्रीरामो न प्रसीदति)

सर्वान् अर्थान् वाच्यान् अनुगता आदिः सनातनभूता सर्वार्थानुगतत्वेऽपि सर्ववाच्यवाचकत्वेन तन्नामान्तरकारणत्वोपपत्त्या सर्वश्रेष्ठरामेति संज्ञा यस्मिन् स अन्वर्थादिसंज्ञकः अत्र 'शेषाद् विभाषा' इतिबहुव्रीहौ कः। अथवा अनुगताः सर्वे ब्रह्मादयो अर्थाः यस्यां सा अन्वर्था चासौ आदिः संज्ञा च यस्मिन् मन्त्रे स अन्वर्थादिसंज्ञकः, सर्वशब्दवाच्यवाचकत्वश्रुतेः, सर्ववीजत्वस्मृतेश्च । अशेष

यदि प्रश्न करते हैं कि स्वरूप की उपासना मात्र से ही उपासना सफल होती है। लेकिन मन्त्रों की उपासना में तो जैसे बहुत रूपों की उपासना से किसी की उपासना सफल नहीं होती है इसीप्रकार बहुत मन्त्रों के अनुष्ठान से तो सभी देवताओं की उपासनीयता का दोष होगा। तदर्थ सभी उपास्य देवताओं का विशिष्ट ज्ञान करने से और उपासना के द्वारा कारण वाचक तथा कार्य वाचक शब्दों की एकरूपता निरूपण के द्वारा उस एक मात्र उपास्य देव का विज्ञान तथा जप के द्वारा एवं उसकी उपासना से सभी का जप सभी का विशिष्ट ज्ञान एवं सभी की उपासना सफल होती

शब्दकारणत्वबोधात्, मृत् शब्दस्य घटादीनां वाचकत्वमिव, समस्तवेद देवतन्मन्त्रलयोत्पतिस्थानत्वेन रेफस्य विवरणेन 'राम' नाम्नः सहस्त्रनामतुल्यत्वेन अनन्तभगवन्मन्त्राधिक्येन च सर्वमन्त्रकारणत्वोपपत्तेः । श्रीरामाख्यस्य ब्रह्मणः सर्वकारणभूतत्वश्रुतेश्चायंमन्त्रसर्वश्रेष्ठस्तेन सर्वैरुपास्योज्ञेयश्चेति । श्रीराम नाम्नोऽकारणकत्वेनानादित्वं, मन्त्रान्तराप्रकाश्यत्वेन तत् प्रकाशकत्वं सर्वका रणत्वञ्च, 'स्वभूर्ज्योतिर्म' इत्यादिश्रुत्या, 'रेफारूढामूर्तयस्युरित्यादिस्मृत्या च श्रीरामनाम्नो सर्वेषां शब्दानामर्थानां चोत्पतिलयस्थानत्वं ब्रह्मरूपत्वञ्च विलोक्यश्रुतिराह-ब्रह्मात्मकाः सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम् । तदुक्तम् पुलहसंहितायाम्-

रकाराज्जायते ब्रह्मा रकाराज्जायते हरिः ।
रकाराज्जायते शम्भुः रकारात् सर्वशक्तयः ॥
आदावन्ते च मध्ये च रकारेषु व्यवस्थितम् ।
विश्वं चराचरं सर्वमवकाशेन नित्यशः ॥

है, इस प्रयोजन से श्रीराम षडक्षर मन्त्र का सर्व देव सर्व मन्त्र वाचकत्व का निरूपण करते हुए 'ब्रह्मादीनां वाचकोऽयं' इस मन्त्र का श्रीरामतापनीय श्रुति निरूपण करती है।

सभी प्रतिपाद्य अर्थों को सनातनभूत सभी अर्थों का अनुगामी नहीं होने पर भी सभी के वाच्यार्थ का वाचक होने से उन अन्य देवताओं के नामों का कारण होने की युक्ति के आधार पर सर्वश्रेष्ठ 'राम' यह संज्ञा है जिसमें वह अन्वर्थादि संज्ञक कहा जाता है । यहां पर 'शेषाद् विभाषा' इस सूत्र से बहुव्रीहि समासार्थ में कप् प्रत्यय हुआ है । अथवा अनुगत है ऐसी ब्रह्म आदि अर्थ समूह जिस में वह अन्वर्था कही जाती है वह अन्वर्था संज्ञा प्रथम नाम है जिस मन्त्र में वह अन्वर्थादि संज्ञा वाला मन्त्र है । संसार के लौकिक वैदिक सभी शब्दों का कारणत्व का बोध होने से जैसे-मिट्टी शब्द समस्त घट कुडवा आदि का कारण एवं बोधक होता है उसी तरह समस्त वेद देव एवं मन्त्रों के उत्पत्ति एवं लय स्थान होना यह रेफ का विवरण देखे जाने से श्रीराम नाम का विष्णु के हजार नाम की समानता प्रतिपादन के द्वारा अनन्त भगवान् के मन्त्रों के अपेक्षा अधिकता निरूपण से श्रीराम मन्त्र की सर्व मन्त्र सर्वदेवादि कारणता युक्ति संगत होती है । श्रीराम नामक ब्रह्म का सभी का कारण स्वरूप होना श्रुतियों द्वारा निरूपित होने से यह सिद्ध होता है कि यह श्रीराम मन्त्र सभी मन्त्रों से

यथैव वटवीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः ।
तथैव सर्ववेदा हि रकारेषु व्यवस्थिताः ॥
यथाकरण्डे रत्नानि गुप्तान्यज्ञैर्न दृश्यते ।
तद्वन्मन्त्राश्च वेदाश्च रकारेषु व्यवस्थिताः ॥ तथापुराणे-
मुख्यत्वाद्विश्ववीजत्वात् तारकत्वान्महेश्वर ।
त्वदंशैः स्वीकृतं राम चास्माभिर्नाम ते त्रिभिः ॥

श्रेष्ठतम है। और इससे ज्ञात होता है कि सभी के द्वारा उपासना करने योग्य एवं जानने योग्य है।

श्रीराम नाम का कोई भी कारण से युक्त नहीं होने से अनादित्व ज्ञात होता है। और किसी अन्य देवता के मन्त्र द्वारा प्रकाश्य नहीं होने के कारण से भी अन्य देवताओं के मन्त्रों का प्रकाशकत्व और सभी मन्त्रों और देवों का कारणत्व ज्ञात होता है। 'स्वभूर्ज्योतिर्मय' इत्यादि श्रुतियां 'रेफारूढामूर्तयः स्युः' इत्यादि स्मृति वचनों से श्रीराम नाम का सभी अर्थों का उत्पत्ति एवं लय का स्थान होना और परब्रह्म स्वरूपता को देखकर श्रुति भी कहती है। ब्रह्म स्वरूपता सत् चित् आनन्द नाम वाला श्रीरामजी की उपासना करनी चाहिये। यही विषय पुलह संहिता में प्रतिपादन किया गया है। रेफ से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। रेफ से प्राणियों के सभी दुःखों का हरण करनेवाले श्री हरि उत्पन्न होते हैं। और रेफ से भगवान् शङ्कर उत्पन्न होते हैं। और रेफ से ही सभी शक्तियां उत्पन्न होती हैं। आदि अन्त और मध्य में सभी रकार में ही सभी व्यवस्थित हैं। और नित्यशः समस्त जडचेतनात्मक जगत् विस्तार के साथ रकार में ही प्रतिष्ठित है। जिस प्राकृत दृष्टिगोचर विशाल वटवृक्ष सूक्ष्म वट बीज में प्रतिष्ठित हैं। उसी प्रकार समस्त वेद रकार में व्यवस्थित हैं। जिस प्रकार मञ्जूषा के अन्दर स्थापित रत्नादिक अज्ञानी व्यक्तियों के द्वारा सुरक्षित या क्षिपा हुआ होने से नहीं देखा जा सकता है, उसी के समान सभी मन्त्र एवं सभी वेद रेफ के अन्दर प्रतिष्ठित होने पर भी साधारण बुद्धि वाले अज्ञानियों के द्वारा नहीं जाने जाते हैं पर सभी रकार में व्यवस्थित हैं। इसी प्रकार पुराण में भी कहा गया है श्रीराम मन्त्र की सभी मन्त्रों में प्रधान होने के कारण और सभी मन्त्रों का मूलकारण होने के कारण, तथा सभी देवादि का उद्धारक होने से हे महेश्वर आप सभी के अंश से एवं हम सभी के अंश से तीनों शक्तियों के रूपमें स्वीकृत किया गया है। प्राचीन काल में भृगु वंशोद्भव परशुराम के रूप

भार्गवोऽयं पुराभूत्वा स्वीचक्रे नाम ते विधिः ।
विष्णुर्दाशरथिर्भूत्वा स्वीकरोत्यधुना विभो ॥
संकर्षणस्तथा चाहं स्वीकरिष्यामि शाश्वतम् ।
एकमेवत्रिधा यातं सृष्टिस्थित्यन्तहेतवे ॥
पुराणान्तरेष्वपि 'विश्वरूपस्य ते रामेत्यादिनोक्तम् ।

षडक्षरस्य सर्वार्थानुगतत्वं स्फुटयतिब्रह्मादीनां वाचकोऽयमिति, अनयोः परस्परं कारणकार्यभावोऽपि बोध्यः । अत्र परब्रह्मपरं ब्रह्मशब्दो नतु चतुर्मुख परः । तच्छ्रेष्ठस्य संग्रहायोग्यत्वात् रामवाचकत्वं न स्यात् । 'इतिरामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते' इत्युक्तेः । आदि पदेन द्विचतुर्भुजादिकृष्णनारायणनृसिंहादीनां में होकर विधाता के रूपमें आप ने श्रीराम नाम को स्वीकार किया । हे विभो व्यापक श्रीरामजी वर्तमान समय में आप दशरथ पुत्र रूपमें अभिव्यक्त होकर इस श्रीराम नाम को स्वीकार कर रहे हैं। और भावी समय में उसी प्रकार संकर्षण बलराम के स्वरूप में शिवांश के रूपमें मैं श्रीराम नाम स्वीकार करुँगा । इसप्रकार एक ही श्रीराम तत्त्व ब्रह्मा विष्णु और शिव तत्त्वों के स्वरूप में तीन प्रकार से हो गये । और अन्य पुराणों में भी 'विश्वरूपस्य ते राम' इत्यादि के द्वारा श्रीरामजी को सर्वावतारी कहा गया है। छ अक्षर हैं जिस में ऐसे तारक मन्त्र का सभी अर्थों से अनुगत होना स्पष्ट रूपसे प्रकाशित करता है 'ब्रह्मादीनां वाचकोऽयं' इत्यादि वचन के द्वारा श्रीराम एवं परब्रह्म का परस्पर कारण कार्य भाव सम्बन्ध है यह भी समझना चाहिये । यहां पर ब्रह्म शब्द परब्रह्म अर्थ का बोधक हैं चतुर्मुख ब्रह्मा अर्थ का बोधक नहीं है । ऐसा परब्रह्म अर्थ बोधकत्व नहीं स्वीकार करें एवं ब्रह्मा अर्थ स्वीकार करें तो ब्रह्मा से श्रेष्ठ श्रीराम अर्थ की संग्रह योग्यता ब्रह्मा में नहीं है अतः श्रीराम नाम वाचकत्व नहीं हो सकेगा । 'इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते' इस तरह वह परब्रह्म 'राम' पद से कहे जाते इस श्रुति वचन से परब्रह्मार्थ बोधकत्व है । यहां पर आदि पद प्रयोग के द्वारा दो चार आदि भुजाओं वाले श्रीकृष्ण नारायण नृसिंह आदि भगवत् स्वरूपों का भी संग्राहकत्व है । क्योंकि लोक व्यवहार में आने वाले एवं वैदिक सभी विष्णु के हजारों नामों से अधिक श्रीराम नाम को कहे जाने से, सभी वेदों का एवं सभी मन्त्रों का हजारों नाम के महत्व से अधिक श्रीराम नाम का महत्व कहे जाने से इन सभी के पाठ से जो पुण्य फल अर्जित होता है, उस से अधिक फल षडक्षर ब्रह्म तारक श्रीराम मन्त्र के

भगवत् स्वरूपाणां संग्रहः । लौकिकवैदिकनामसहस्त्राधिकत्वोक्तेः । सर्वेषां वेदानां मन्त्राणाञ्च पाठेन यत् फलं तत्फलं षडक्षरपाठाद् भवतीत्युक्तेश्च । तदुक्तम्-

जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्रांश्च पार्वति ।
तस्मात् कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ॥

तस्मात् सर्वमन्त्रजपफलप्रदस्यास्य सर्वमन्त्राधिक्योक्त्या सर्वकारणत्वेन सर्ववाच्यवाचकत्वोपपत्तेः षडक्षरस्यैवोपासनया सर्वेऽवताराब्रह्मादयश्चोपासिताः भवेयुः । अतएव मन्त्रराज उपासितव्य इति उत्तरतापनीये वक्ष्यते । श्रीरामस्य सच्चिदानन्दरूपत्वात् सच्चिदानन्दरूपाणां सर्वेषां भगवत्स्वरूपाणामपि वाचकत्वं विज्ञाप्य ब्रह्मादीनाम् इत्युक्तम् छन्दोभंगभयेन ब्रह्मादीनामपि इतिनोक्तम् ।

अत्र मन्त्रराजस्योत्कर्षतां विज्ञाप्य जपं विधत्ते इति जप्तव्यः । तेन मन्त्रिणा दीक्षाविधिना सद्गुरोः सकासाद् मन्त्रं गृहीत्वा जपः विधेयः । जपस्यावश्यकर्त्तव्यत्वेन दृढतां बोधयन् 'विना' इत्याह, एनंमन्त्रराजं विना जपं द्योतनात्मादेवो देवादिसमाराध्यः श्रीरामचन्द्रः न प्रसीदति स्वात्मानं न दर्शयतीतिभावः ।

जप से होता है ऐसा कहे जाने से सिद्ध है । यही विषय वस्तु कहा गया है कि- सभी वेदों के जप करने से तथा सभी मन्त्रों के जप करने से जो पुण्य फल अर्जित होता है हे पार्वति उन सभी के अपेक्षा करोड गुणा अधिक पुण्य फल श्रीराम नाम का उच्चारण करने मात्र से होता है ।

इसलिये सभी देवताओं के मन्त्रों का जप फल को प्रदान करने की क्षमता वाला इस मन्त्र में सभी मन्त्रों से अधिकता कहे जाने से और सभी मन्त्रों एवं देवताओं का कारण होने से और समस्त वाच्यार्थों के वाचकत्व की युक्ति के आधार पर ब्रह्म तारक षडक्षर श्रीराम मन्त्र की ही उपासना के द्वारा समस्त भगवदवतार एवं और ब्रह्म आदि उपासित पूजित हो जायेंगे । इसीलिये कहा गया है कि मन्त्रराज की उपासना करनी चाहिये । यह विषय श्रीरामोत्तरतापनीय उपनिषद् में आगे निरूपण किया जायगा। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के सच्चिदानन्द स्वरूप होने के कारण समस्त भगवत् स्वरूपों का भी सच्चिदानन्द वाचकत्व का प्रतिपादन कर के ब्रह्म आदि का वाचक है यह कहा गया है । 'ब्रह्मादीनां' इस मन्त्र में 'ब्रह्मादीनामपि' इस तरह 'अपि' शब्द का प्रयोग करना अपेक्षित था, लेकिन छन्दोभंग नहीं हो इस भय से अपि शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है ।

अथवा सर्वेषां जीवानां स्व स्व प्रारब्धकर्माण्यनुसृत्यैव सुखदुःखादि भवति । ततः किं मन्त्रजपेन फलमिति जिज्ञासायामुच्यते । कृष्यादिलौकिकानि कर्माणि वैदिकानि च यज्ञाद्यनुष्ठानकर्माणि प्रारब्धमतिक्रम्य फलदानि यथा भवन्ति, तथा पुरुषकारस्यावश्यकतादृढयन्नाहप्रारब्धमतिक्रम्य मन्त्रजपरूप पुरुषार्थस्य श्रीरामप्रसन्नता फलम् । मन्त्रजपेनाहं वः प्रसीदामीति सार्थक्य बोधनमस्य गम्यते ॥१७॥

इस ऋचा में मन्त्रराज षडक्षर तारक मन्त्र की उत्कृष्टता का विशेष रूपसे निरूपण करके जप करते हैं इस से जप करना चाहिये यह विधान किया इस कथन द्वारा यह प्रमाणित होता है कि श्रीराम मन्त्र को धारण करने वाले महाशय के द्वारा सम्प्रदाय परम्परा में जो दीक्षा प्रदान करने की परम्परा है उस विधान के अनुसार सद् गुरु के पास से श्रीराम महामन्त्र को विधान से उपलब्ध करके पुनः श्रीराम महामन्त्र राज का जप नियमानुसार करना चाहिये । श्रीराम महामन्त्र का जप अत्यावश्यक कर्तव्य है इस अभिप्राय की दृढता को अभिव्यक्त करते हुए ऋचा में 'विना' शब्द का व्यवहार किया गया है । इस षडक्षर ब्रह्म तारक श्रीराम महामन्त्रराज को विना जप किये अत्यन्त प्रकाशमय जिनका स्वरूप है ऐसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न नहीं होते हैं । अर्थात् उपासक को अपने स्वरूप का दर्शन नहीं कराते हैं अतः अवश्य जप करना चाहिये यह भाव है ।

अथवा यह कहें कि संसार के सभी जीव आत्माओं को अपने अपने पूर्व जन्मों में अर्जित प्रारब्ध कर्मों का अनुसरण करके ही सुख दुःख आदि होते हैं । तब भगवान् श्रीरामजी के मन्त्र का जप करने से क्या फल होगा । कर्म के अनुसार ही फल मिलने वाला है । इस स्वरूप की जानने की इच्छा होने पर कहते हैं→जैसे खेती वाडी आदि लौकिक कर्म कलाप और वेद प्रतिपाद्य यज्ञादि अनुष्ठान कर्म कलाप प्रारब्ध कर्मों का अतिक्रमण करके भी व्यक्ति के कर्तव्यानुसार फल प्रदान करते हैं । उसी तरह व्यक्ति के पुरुषार्थ से विशेष फल लाभ होता है इस अभिप्राय को मजवूत करते हुए श्रुति वचन कहता है । प्रारब्ध कर्म फल का भी उलङ्घन करके श्रीराम मन्त्र जप स्वरूप पुरुषार्थ का भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की प्रसन्नता फल है 'मेरे मन्त्र का जप करने वाले पर मैं प्रसन्न होता हूँ' इस रूपमें सार्थक बोधन इस कथन का प्रयोजन है यह प्रतीत होता है ॥१७॥

अथ विहितस्य मन्त्रजपस्य अर्थानुसंधानपूर्वकमेव फलदत्वादर्थमुपदिशति-

क्रियाकर्मेज्यकर्तृणामर्थं मन्त्रोवदत्ययम् ।

मननात् त्राणनान्मन्त्रः सर्ववाच्यस्य वाचकः ॥११॥

इसके वाद क्रिया कर्म उपास्य देवता और उपासना कर्ता रूप अर्थों का निरूपण करता हुआ समस्त प्रतिपाद्य विषयों के अर्थ को यह मन्त्र प्रतिपादन करता है। इसके पश्चात् मनन करने के कारण तथा उपासक का संरक्षण के कारण यह मन्त्र कहा जाता है। एवं सर्व शब्द के अर्थ का वाचक होता है ॥११॥

अनन्तरम् क्रिया कर्मोपास्य कर्तृणां प्रतिपाद्यविषयं मन्त्रः प्रतिपादयति । मन्त्रः मननात् त्राणनात् च सर्ववाच्यस्य वाचको भवतीत्यर्थः ॥११॥

मम शरीरी 'श्रीराम' इतिमनोव्यापाररूपाभावना क्रिया उच्यते, अनेन स्वोपास्य प्राप्तेरूपाय उक्तः । स्वप्राप्यस्य भगवतः कैङ्कर्यलक्षणं चतुर्थीविभक्त्यन्तेन बोध्यस्यानुशीलनं कर्म । ईज्यः पूजनीयः, उक्तकियाश्रयः कर्ता, ईज्यत्वप्रतियोगीभूतस्तदाराधकः, भगवदाराधकत्वेन तच्छेषभूतोजीवात्मा मकारवाच्यः । एतेषामभिधेयम् मन्त्रः कथयति । अस्यार्थस्य मननात् यत् त्राणनं

इसके पश्चात् कहते हैं कि शास्त्र द्वारा विहित मन्त्र जप का अर्थानुशीलन पूर्वक अधिक फल प्रदत्व होने से श्रीराम मन्त्र का अर्थोपदेश इस ऋचा के द्वारा करते हैं- मेरे इस भौतिक शरीर का स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं इस तरह के मानसिक व्यापार को क्रिया कहते हैं। इस मानसिक भावना के द्वारा अपने उपासनीय की प्राप्ति का उपाय सूचित किया गया। अपने जीवनगत सर्वविध प्रयास द्वारा प्राप्त करने योग्य भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का कैङ्कर्य स्वरूप 'रामाय' पद में चतुर्थी विभक्ति की योजना के द्वारा जानने योग्य अभिप्राय का पुनः पुनः अनुशीलन कर्म कहा जाता है। ईज्य का अर्थ पूजन करने योग्य यह अर्थ है। व्यापार का आश्रय को कर्ता कहा जाता है। जिसका अभाव कहा जाता है, उसे प्रतियोगी कहते हैं। पूजनीयता का प्रतियोगी बना हुआ उन उपासनीय श्रीरामचन्द्रजी की आराधना करने वाला, भगवान् का अर्चक के स्वरूप में भगवान् शेष अंशस्वरूप जीवात्मा मकार शब्द से प्रतिपादनीय है। इन सभी तत्त्वों के अर्थ को मन्त्र निरूपण करता है। इस अभिप्राय का मनन (अनुशीलन)

संरक्षणं यस्माद् भवति स मन्त्र उच्यते । स्वात्मतत्वबोधस्योपायभूतश्रीराम एव तस्यैवानुकम्पया भवसागरादुद्धारो भवितेत्यनुशीलनमेव मननम् । तेनैवोपायान्तरत्यागपुरस्सरं श्रीरामे एव दृढा स्थितिः जायते । कर्मणः प्रयोजनस्य च मननात् अर्थकामदेवतान्तरोपासनादिषु प्रवृत्तेः निरासपूर्वकमेकमात्रम् भगवतः श्रीरामस्य कैङ्कर्यं पुरुषार्थत्वभावनोत्पद्यते । ईज्यपदार्थस्य मननात् स्वात्मनि भगवत् शेषबुद्धिदार्ढ्यं भवति, देवतान्तरे च शेषत्वभावनानिरासः । कर्तृपदार्थस्य मननात् आत्मनि स्वातन्त्र्यभावनाहानिपुरस्सरं सार्वदिकभगवदर्चनाबुद्धिरुत्पद्यते । एतेन क्रियाकर्मेज्यकर्तृणां श्रीराम एवोपायः, तत् कैङ्कर्यमेव

करने के कारण तथा इसप्रकार परमेश्वर के विषय में चिन्तन करनेवाले का संरक्षण के कारण जो परिपालन की भावना जिससे होती है वह मन्त्र कहा जाता है । अपनी आत्मा का तात्विक स्वरूप के ज्ञान का उपाय बने हुए सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। उन्हीं की अहैतुकी परमानुकम्पा से इस संसार रूपीसागर से उद्धार होगा इस तरह सतत अनुचिन्तन ही मनन कहा जाता है । इस तरह का सतत चिन्तन के द्वारा ही अन्य सांसारिक उपायों का परित्याग पूर्वक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में उपासनीयता की दृढतर भावना की स्थिति उत्पन्न होती है । हम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सेवा के लिये ही हैं । उनकी सेवा से ही संसार सागर से उद्धार होगा इस तरह कर्म एवं प्रयोजन का मनन करने से सांसारिक धन धान्य, भौतिक सुख की अभिलाषा, एवं अन्य देवता की उपासना आदि में प्रवृत्ति का निराकरण पूर्वक एक मात्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सेवा में पुरुषार्थ की भावना पैदा होती है, अर्थात् क्रिया कर्म तथा ईज्य आदि का परिशीलन करने से सांसारिक भावों से एवं अन्य देवताओं से वैराग्य पूर्वक भगवान् श्रीरामजी में सुस्थित पूज्यत्व की भावना होती है। इस संसार में श्रीराम सेवा ही सर्वोत्तम पुरुषार्थ है अन्य कार्य हेय है । ईज्य पदार्थ का अनुशीलन करने से स्वयं उपासक में यह भावना पैदा होती है कि मैं भगवान् का शेषभूत जीव हूँ भगवान् श्रीरामजी मेरे शेषी हैं ऐसी बुद्धिगत दृढता होती है । और अन्य देवताओं में उनका मैं शेष हूं ऐसी भावना का खण्डन हो जाता है । कर्ता पदार्थ का मनन करने से अपनी आत्मा में स्वतन्त्रता की भावना का परित्याग पूर्वक सभी समय में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की पूजा करने के बुद्धि उत्पन्न होती है । पूर्व निरूपित क्रिया कर्म एवं ईज्य कर्ता का श्रीरामचन्द्रजी ही एक मात्र उपाय हैं । उनका निरन्तर अर्चन करना ही

मम कर्तव्यम्, अहं तस्य शेषः स च मम शेषी, अहं तदाराधकः, स च ममाराध्य एवमादिचिन्तनेन अनन्योपायताभावनया सर्वथा भगवच्छरणागतं ज्ञानिनं मन्त्रः सर्वथा परिपालयति । सविधिगुरुपदेशान्तरं मन्त्रार्थानुचिन्तकमुपासकं संसार सागरतो मन्त्रः सर्वदा सर्वथा च रक्षणं करोतीतिभावः ।

यद्यपि मन्त्रार्थानुचिन्तनमन्तरापि भगन्नामोच्चारणमात्रेणाजामिलादेः संरक्षणं श्रूयते, तेन त्राणनादित्येव वक्तव्यमित्युच्यते । तथापि मन्त्रानुच्चार कस्यापि त्राणनं न स्यादिति मननादित्युच्यते । उपलक्षणमिदं मन्त्रस्य मननात् त्राणनाद्वेत्यर्थः । अन्यथा-

रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मरणे यस्तु संस्मरेत् ।
नरो न लिप्यते पापैः पद्मपत्तमिवाम्भसा ॥

मेरे जीवन का परम कर्तव्य है। मैं भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का शेष हूँ। और भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मेरे शेषी हैं। मैं उन शेषी भगवान् श्रीरामजी का आराधक हूँ। और वे मेरे सर्वथा सर्वदा आराधनीय हैं। इस प्रकार का सतत चिन्तन के द्वारा भगवान् के शिवाय मेरा इस संसार में दूसरा कोई उपाय नहीं इसप्रकार की भावना के द्वारा सभी प्रकार से भगवत् शरणागत ज्ञानी पुरुष का मन्त्र सभी प्रकार से परिपालन करता है। अपने गुरु के उपदेश के पश्चात् मन्त्रार्थ का अनुशीलन करनेवाले उपासक को संसाररूपीसमुद्र से मन्त्र सभी तरह से सभी प्रकार से सदैव संरक्षण करता है ।

यद्यपि मन्त्र के अर्थ का अनुशीलन नहीं करने पर भी भगवान् के नाम का उच्चारण करने मात्र से ही अजामिल आदि का मन्त्र ने परिरक्षण किया ऐसा कथाओं में सुना जाता है । इसलिये ऋचा में केवल 'त्राणनात्' इतना ही कहना चाहिये 'मननात्' कहने का कोई प्रयोजन नहीं है। केवल 'त्राणनात्' इतना ही कहना चाहिये यदि ऐसा कहें तो-इस विषय में कहा जाता है कि जो मन्त्र का उच्चारण नहीं करता है और मनन करता है तो उसका त्राणन (संरक्षण) नहीं हो सकता है। मननात् त्राणनात् यह उपलक्षण है इसिलिये मन्त्र का मनन करने से अथवा त्राणन-संरक्षण करने से यह अभिप्राय हैं। यदि ऐसा नहीं हो तो जो व्यक्ति मृत्यु के समय में 'राम' यह दो अक्षर वाला मन्त्र का सम्यक् स्मरण करता है वह कमल का पत्ता जिस तरह पानी से लिप्त नहीं होता है उसी तरह पापों से लिप्त नहीं होता है और जो व्यक्ति प्राण निकलने के समय में एक वार भी श्रीरामजी के नाम का स्मरण करता है वह सूर्य

प्राणप्रयाणसमये यस्तु नाम सकृत् स्मरेत् ।
सभित्वा मण्डलं भानोः परम्पदमवाप्नुयात् ॥
द्विजो वा राक्षसोवापि पापी वा धार्मिकोऽपि वा ।
रामरामेति यो वक्ति समुक्तोनात्र संशयः ।

इत्युक्तेर्व्याकोपस्यात् । वीजविवरणयोरैक्यस्मृतेः नाममन्त्रयोर्भेदो न शङ्कनीयः । विधेयवस्तुस्तूयते इतिन्यायेन विधिनिषेधाश्रुतेश्चार्थवादो न शङ्कनीयः । मन्त्रार्थानुसन्धानेन देहात्मबुद्धित्यागपुरस्सरं भगवच्छेषत्वज्ञानेन तत्पारतन्त्र्यनिर्णयात् मच्छेषीरक्षणमवश्यं करिष्यतीति तदितरोपायत्यागेन देहसम्बन्धिषु
मण्डल का भेदन करके परमपद को प्राप्त करेगा, ब्राह्मण हो अथवा राक्षस पापी हो अथवा धार्मिक जो भी 'राम राम' इस शब्द का उच्चारण करता है वह मुक्त ही है इस विषय में कोई सन्देह नहीं, इत्यादि वचन का उपलक्षण नहीं मानने पर विरोध होने लगेगा। मन्त्र का वीज और विवरण दोनों को एक माना गया है इसिलिये नाम और मन्त्रों में किसी प्रकार का भेद की शंका नहीं करना चाहिये । मन्त्र के अर्थ का अनुशीलन करने से शरीर में आत्मत्व बुद्धि का परित्याग पूर्वक अपने आप में भगवान् श्रीरामजी का शेषत्व ज्ञान होने से स्वयं में भगवत् परतन्त्रता का निर्णय के कारण मेरे शेषी श्रीरामजी हैं वे मेरी रक्षा अवश्य करेंगे इस तरह की भावना होने से श्रीरामजी से इतर का त्याग होने के कारण शरीर से सम्बन्ध रखने वाले पुत्र-पत्नी भाई आदि सम्बन्धियों पर बन्धुत्व भावना का अभाव उत्पन्न होता है और परमात्मा के ऊपर बिना किसी हेतु के बन्धुत्व भावना का उदय होता है अपने जीवन के समस्त कार्य कलापों को भगवान् की सेवा भावना से सम्पादन करता है इसीलिए इस भौतिक शरीर के अन्त होने के वाद भगवान् का नित्य कैङ्कर्य स्वरूप सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है। मन्त्रार्थ का मनन के द्वारा आत्मीयत्व आदि बुद्धि का त्याग होने से परम वैराग्य का प्रादुर्भाव के द्वारा मन्त्र का निरन्तर अनुशीलन करने पर भगवान् में दिनानुदिन अभिरूचि उत्पन्न होती है । जो मन्त्रार्थ का अनुशीलन नहीं करता है ऐसे व्यक्ति का तो देह गेह आदि में आसक्ति होने से विषय भोग के प्रति चञ्चलता होती है और उससे मुक्ति होने में सन्देह होता है ।

अब अन्य मन्त्रों के अपेक्षा ब्रह्मतारक षडक्षर 'श्रीराम' मन्त्र का उत्कर्ष बताते हुए ऋचा में कहते हैं कि ब्रह्माण्ड के समस्त प्रतिपाद्य अर्थ का यह षडक्षर श्रीराम

बन्धुत्वभावना विरहो जायते, परमात्मनि च निरूपाधिकबन्धुत्वबुद्धिरुदेति । निखिलानि कार्याणि च भगवत् सेवाभावनया सम्पादयति तेन देहावसानोत्तरं नित्यकैङ्कर्यरूपीमुक्तिमवाप्नोति । मन्त्रार्थस्य मननेन आत्मत्वादिबुद्धिहानेः परमवैराग्योदयेन मन्त्रानुस्मरणादिनानुदिनमभिरुचिर्जायते । इतरस्य तु देहाद्यास क्त्या विषयचापल्यं तेन देहावसानसमये न मन्त्रस्मृतिर्भवति तेन मुक्तौ सन्देहः ।

अथ मन्त्रान्तरेभ्यः षडक्षरश्रीराममन्त्रस्योत्कर्षं निरूपयन्नाह 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इति । राजपुत्रवाक्य इव शब्दतोब्रह्मादिवाचीसन्नप्यर्थतः चिन्मयेऽस्मि न्नित्यादिप्रतिपाद्यार्थबोधकत्वेन परब्रह्मणः तादात्म्येन चायं मन्त्रः सर्वश्रेष्ठः । 'सर्ववाच्यस्यवाचकः' इतिश्रुत्या 'विश्वेशब्दा हि वाचका' इतिस्मृत्या च विश्ववीजत्वस्मृतेरक्षयत्वस्मृतेश्च श्रीरामस्य चिच्छरीरित्वेन सर्वावतारित्वेन च सर्वरूपत्वमुपपद्यते सर्वमन्त्रजपफलप्रदत्वोक्तेः । सर्वकारणभूतप्रणवकारण-तोक्तेश्चाशेषभगवन्नाम्नां कारणत्वं सिद्ध्यति ।

मन्त्र वाचक हैं। जिस तरह राजकुमार एवं उनके समान अन्य व्यक्ति तथा सेना आदि के चलने पर यह राजपुत्र जाता है प्रयोग होता है उसी नियम के अनुसार 'राम' शब्द सामान्य रूपसे ब्रह्मवाची होने पर भी अर्थवशात् 'चिन्मयेस्मिन्' इत्यादि अर्थ का बोधक होने से परब्रह्म रूप अर्थ के साथ तादात्म्य सम्बन्ध के द्वारा यह श्रीराम मन्त्र अन्य सभी मन्त्रों से श्रेष्ठ है इस तात्पर्य का प्रकाशन के लिए 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इस श्रुति वचन के द्वारा और 'विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकाः' इस स्मृति के द्वारा, और श्रीरामजी में विश्व वीजत्व स्मृति से तथा श्रीरामचन्द्रजी का चित्शरीरी होने के कारण और सर्वावतारी होने से सर्वरूपत्व कथन युक्ति युक्त होता है मन्त्र में सभी मन्त्रों के जप करने का फल प्रदान करने की क्षमता प्रतिपादन कथन से समस्त भगवान् के नामों का कारणत्व श्रीरामजी में सिद्ध होता है क्योंकि सभी देवताओं की कारणता ॐकार में कही गयी है एवं ॐकार का कारणत्व श्रीरामजी में कहा गया है इसीलिए सर्व भगवत् कारणत्व सर्वेश्वर श्रीरामजी में सिद्ध है ।

'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इस वाक्य में 'सर्ववाची अस्य वाचकः' इस प्रकार का विच्छेद है अर्थात् समस्त अर्थों का प्रतिपादन करने वाला जो शब्द वह इसका वाचक है राजपुरुष वाक्य के समान ही शब्दतः यह 'राम' शब्द ब्रह्म वाची होने पर भी जिसप्रकार कारणभूत मृत्तिका शब्द घट आदि सभी मृत्तिका निर्मित पदार्थों का वाचक

'सर्ववाच्यस्यवाचकः' इतिसर्ववाची अस्य वाचक इति विच्छेदः। राजपुरुष वाक्यवत् शब्दतोऽयं श्रीरामशब्दो ब्रह्मवाचीसन्नपि, यथामृत्शब्दः सर्वस्य मृन्मयस्य वाचकः तथाऽयं मन्त्रः सर्वश्रेष्ठ इतिभावः। श्रीरामस्य चित् शरीरित्वेन सर्वेषां श्रीरामनामकार्यत्वेन कार्यस्य कारणानुगामितया सर्वशब्द वाच्यस्य श्रीरामस्य वाचकः। सर्वेषां भगवत् स्वरूपाणां चिदचिदन्तर्यामित्वेन ऐक्येऽपि 'सर्ववाच्यस्यवाचकः' इतिविशेषोक्तेः श्रीरामस्य तन्मन्त्रस्य च सर्वश्रेष्ठत्वम् ॥१८॥

होता है तथा समस्त विकारों के अपेक्षा कारण होने से श्रेष्ठ कहा जाता है उसीप्रकार यह श्रीराम शब्द सभी देवताओं का कारण ॐकार का कारण होने से सर्वश्रेष्ठ है यह अभिप्राय 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' का है। भगवान् श्रीरामजी का चित्शरीरी होने के कारण संसार के समस्त कार्यों का कारण श्रीराम नाम का कार्य होने से कार्यों का कारणानुगामी होने से अर्थात् समस्त मृद्भाण्डों को टूट जाने पर भी सत्य रूप में मृत्तिका ही अव शेष रहती है अर्थात् कार्य का नाश होने पर भी कार्य का कारण के रूपमें अपने अस्तित्व स्वरूप में रहने से कारणानुगामी होता है इसीलिए सर्वशब्द प्रतिपाद्य श्रीरामजी का वाचक यह मन्त्र है। समस्त भगवत् स्वरूपों का चित् एवं अचित् का अन्तर्यामी के रूपमें नियामक होने से सभी में एकरूपता होने पर भी यह षडक्षर श्रीराम मन्त्र सर्ववाच्य का वाचक है ऐसी विशेषता कहे जाने से भगवान् श्रीरामजी एवं उनके षडक्षर मन्त्र की सर्वश्रेष्ठता है यह सिद्ध होता है ॥१८॥

एवमेकेन मन्त्रेण सामान्यतः मन्त्रार्थं निरूप्य पूजनीयदेवशरीररूपत्वं यन्त्रस्य सूचयन् बाह्यपूजोपयोगीयन्त्रं श्रीरामशरीरत्वेन अवश्यमेवपूजयेत् इतिप्रतिपादयन्नाह-सोभयस्येति।

सोभयस्यास्यदेवस्यविग्रहो यन्त्रकल्पना।
विनायन्त्रेण चेत्पूजादेवता न प्रसीदतीति ॥१२॥

आगे निरूपित किया जाने वाले यन्त्र एवं भगवान् श्रीरामजी का शरीर दोनों ही समान स्वरूप का है भगवान् श्रीरामजी का विग्रह एवं ब्रह्म आदि समस्त देवताओं का विग्रह यन्त्र ही है। अतः यन्त्र की कल्पना की जाती है। यदि विना यन्त्र के सर्वेश्वर श्रीरामजी की पूजा की जाती है तो भगवान् श्रीरामजी प्रसन्न नहीं होते हैं। इसीलिये यन्त्र के सहित देवता की पूजा होनी चाहिये। अतएव यन्त्र कल्पना की जाती है ॥१२॥

कल्प्यमानं यन्त्रं प्रतिपाद्यस्य देवस्य सर्वेश्वरश्रीरामस्य विग्रहः देवतादीनां च विग्रहः इतिब्रह्मादिसहितस्य श्रीरामस्य विग्रहः । अतएव यन्त्रकल्पना रचना क्रियते यदि यन्त्रेण विनापूजा क्रियते तदा देवता न प्रसीदति तस्मात् यन्त्रोऽवश्यमेव कल्पनीयः इतिभावः ।

देवस्य सर्वेश्वरश्रीरामचन्द्रस्य विग्रहः शरीरमेव यन्त्रकल्पना, किदृशस्य विग्रहस्येति जिज्ञासायामाह-सोभयस्येति । उभयेन सहितः सोभयः अर्थात् वाच्यभूतेन ब्रह्मादिना मन्त्रराजेन च सहितस्य श्रीरामस्य एव पूजा अस्तु यन्त्रेण किं प्रयोजनमिति जिज्ञासायामुच्यते विना यन्त्रेण इति । यदि यन्त्रेण विना भगवद् विग्रहस्य पूजा विधीयते तदा देवता स्वरूपं न दर्शयति । अत्र 'प्रसीदति' इत्यत्र सम् उपसर्गस्य प्रधानाभावात् देवदेवतयोः प्रयोगाच्च सर्वदेवताशरीराणां यन्त्ररूपत्वं यन्त्रः एव देवता शरीरं अतः यन्त्रपूजनमन्तरा देवताशरीरपूजा न सम्भवति तस्मात् देवता न प्रसीदति इतिसूच्यते । शास्त्रेषु तत्-तत् देवता मन्त्रपुरश्चरणे तेषां यन्त्रसहितस्यैव पूजाविधानदर्शनात् यन्त्रसहितस्य देवतापूजन विधानं ज्ञायते । अत्र 'इति' शब्दप्रयोगः प्रथमोपनिषत् समाप्तिसूचकः ॥१९॥

ॐ इतिप्रथमोपनिषत् ॥१॥ ॐ

इत्यानन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य
श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यप्रणीत श्रीरामताप-
नीयोपनिषदीय प्रथमोपनिषदः

卐 श्रीरामानन्दभाष्यम् 卐

ॐ श्रीरामः शरणं मम ॐ

इसप्रकार एक मन्त्र के द्वारा सामान्य रूपसे मन्त्रार्थ का प्रतिपादन करके पूजनीय देवता का यन्त्र शरीर स्वरूप है इसप्रकार यन्त्र का स्वरूप सूचित करते हुए बाह्य पूजोपयोगि यन्त्र को भगवान् श्रीरामजी का शरीर के स्वरूप में अवश्य ही पूजा करनी चाहिये । इस अभिप्राय का प्रतिपादन करते हुए सोभयस्य इत्यादि ऋचा का निरूपण करते हैं ।

भगवान् श्रीरामजी का शरीर ही यन्त्र है इसीलिये यन्त्र की कल्पना-रचना की जाती है । किसप्रकार के शरीर की ऐसी जिज्ञासा होने पर ऋचा में कहते हैं 'सोभयस्य' इति । उभय के सहित सोभय कहा जाता है । अर्थात् प्रतिपाद्य भूत ब्रह्म आदि के सहित

मन्त्रराज से विशिष्ट यह अर्थ है। यहां आयुध आदि के सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की ही पूजा हो यन्त्र से क्या प्रयोजन है ऐसी जिज्ञासा में कहा जाता है 'विना यन्त्रेण' इति। यन्त्र के विना यदि भगवद् विग्रह का पूजा विधान करते हैं तव देवता प्रसन्न नहीं होते हैं। भगवान् अपना स्वरूप नहीं दिखाते हैं। यहां पर 'प्रसीदति' इस प्रयोग में सम् उपसर्ग नहीं दिया गया है इसलिये भगवान् श्रीरामजी एवं अन्य देवता रूप अर्थ बोध कराने के लिये देव एवं देवता शब्दों का प्रयोग से सभी देवताओं के शरीर की यन्त्र रूपता है यह आशय प्रकाशित होता है। इसलिये यन्त्र पूजा के विना देवता की पूजा सम्भव नहीं है, इसलिये देवता प्रसन्न नहीं होते हैं यह सूचना दी जाती है। शास्त्रों में उन-उन देवताओं के मन्त्र के पुरश्चरण में उन देवताओं का यन्त्र के सहित मन्त्र का विधान ज्ञात होता है। यहां इति शब्द का प्रयोग प्रथमोपनिषत् समाप्ति सूचक है ॥१९॥

卐 प्रथमोपनिषत् पूर्ण हुआ 卐

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत ❦ उद्योत

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐
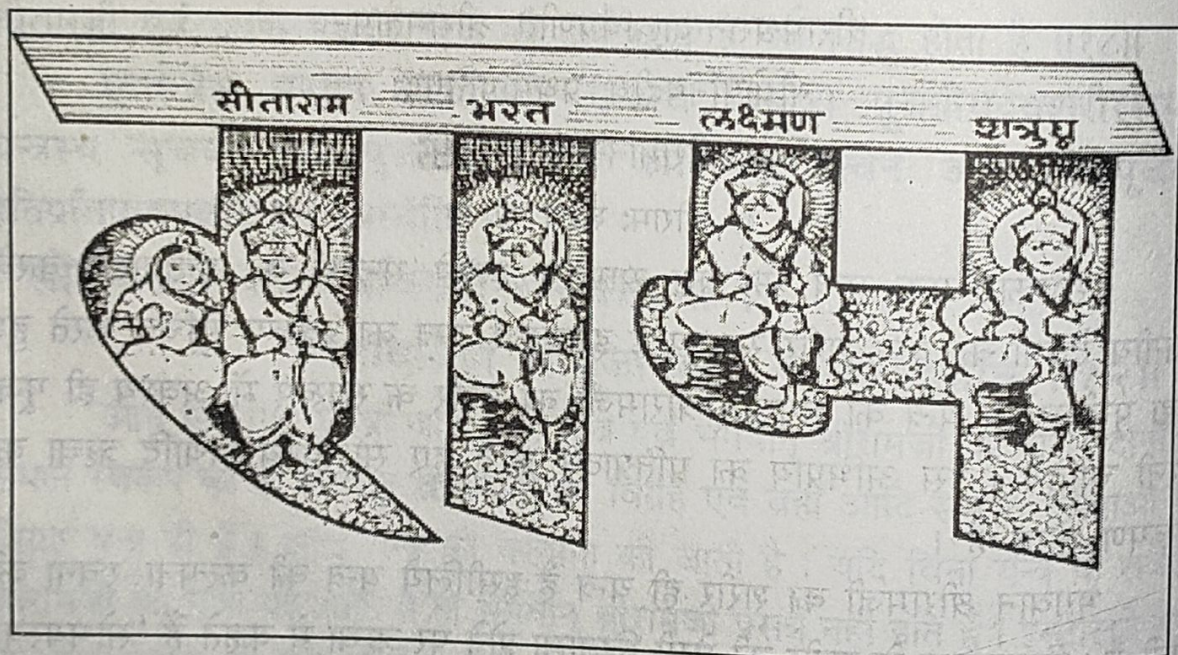
卐 श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

अथ द्वितीयोपनिषत्

द्वितीयोपनिषदारभ्यचतुर्थोपनिषत् समाप्त्यन्तं मन्त्रार्थयन्त्रयोर्विवेचनं वक्ष्यते । तस्मात् प्रथमोपनिषदि संक्षेपेण मन्त्रार्थयन्त्रयोनिर्देशः । अतो मन्त्रार्थे यन्त्रनिर्देशस्य नासङ्गतिः । श्रीराममन्त्रार्थयन्त्रयोः स्फुटं सर्वकारणत्वं प्रकाशयितुं श्रीरामाभिन्नस्य वह्निवीजस्यार्थं कथयन् वीजस्य स्वतः सिद्धत्वेन कारणत्वं प्रणवस्य च वीजकार्यत्वमिति स्वभूर्ज्योतिर्मयोऽनन्तेत्याद्यारभते-

स्वभूर्ज्योतिर्मयोऽनन्तरूपी स्वेनैव भासते ।
जीवत्वेनेदमों यस्य सृष्टिस्थितिलयस्य च ॥
कारणत्वेन चिच्छक्त्या रजःसत्वतमोगुणैः ॥१॥

स्वतः सिद्ध सभी कारण स्वरूप प्रकाशमय अनगिनत द्विभुजादि सहस्र भुजान्त स्वरूप धारियों का रूपी अपने ही प्रकाशमय स्वरूप से प्रतिभासित होते हैं । इन परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी का स्वरूप विकासक के रूपमें ॐकार यह वह्नि वीज का जो कार्य स्वरूप है उसका रजः सत्व और तमो गुणों से विशिष्ट चित् शक्ति के द्वारा संसार की सृष्टि पालन एवं संहार का कारण स्वरूप में अवस्थित हैं ॥१॥

स्वतः सिद्धः सर्वकारणः प्रकाशमयोऽगणितद्विभुजादिसहस्त्रभुजान्तरूपी स्वेनैव प्रकाशमयेन स्वरूपेण भासते । अस्य परमात्मनः श्रीरामस्य स्फोटकत्वेन ॐ इतिवह्निवीजहेतुस्वरूपस्य रजःसत्वतमोगुणैः विशिष्ट्या चिच्छक्त्या सृष्टिस्थितिलयानां कारणत्वेन अवस्थितिरस्ति ।

卐 श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

द्वितीय उपनिषद्

द्वितीय उपनिषद् से आरम्भ कर चतुर्थ उपनिषद् समाप्ति पर्यन्त श्रीराम मन्त्र का अर्थ तथा यन्त्र के स्वरूप का विवेचन किया जायगा । इसीलिये प्रथम उपनिषद् में संक्षिप्त रूपसे मन्त्र का अर्थ एवं यन्त्र का महत्व कहा गया है । इसलिये मन्त्रार्थ के अन्तर्गत यन्त्र का विवेचन का असङ्गत है यह वात नहीं है । विवेचनीय-विषय का पूर्व सङ्केत मात्र है इसलिये सुसङ्गत समझें । श्रीराम मन्त्र का अर्थ एवं यन्त्र का

स्वभूः स्वतः सिद्धोऽकारणकः, इतिभावः । तेन श्रीरामतन्मन्त्रयोरन्य कार्यनिरासात् बहूनां मूलकारणत्वाभावाच्च सर्वकारणत्वसिद्धिः । ज्योतिर्मयः प्रकाशमयः तेन स्वभिन्नप्रकाशत्वं ज्ञायते । अनन्तरूपी अगणितद्विभुजादिमद् रूपं वर्तते यस्य तच्छीलः विभिन्नदेशस्थानां भक्तानां युगपत् स्वविग्रहेणा विर्भावात् । 'विश्वव्यापी राघवोयस्तदानी' मिति विश्वव्यापित्वश्रुतेः । नीलपी तादिपुष्पसन्निधानेन वैदुर्यमणेरनेकरूपमिवायमपि विलक्षणशक्तिमानुपासकानां भावनानुसारेणानन्तरूपी, 'चिन्मयस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणोरूपकल्पनेतिश्रुतेः । 'यो वै मत्स्यकूर्मवराहाद्यवतारा' इत्यादिमन्त्रेभ्यः, मां त्वं पूर्वमजीजनः' 'विष्णुत्वमुप जग्मिवान्' 'एकश्रृङ्गवराहस्त्वमित्यादि' स्मृतेभ्यः । 'रेफारूढामूर्तयस्युः । ओमिति यद्भूतं यच्च भवद् भव्यं च तत् सर्वमोंकार एवेति । रकाराज्जायते ब्रह्मेत्यादि पुलहसंहितावचनेभ्यश्च बुध्यते ।

सुस्पष्ट रूपसे सर्व जगत् कारणता का प्रकाशन करने के लिये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से अभिन्न वह्नि वीज का अर्थ कहते हुए वीज का स्वतः सिद्ध होने के कारण ॐकार का कारण तथा सर्वजगत् एवं सर्व मन्त्र का कार्यत्व है, इस अभिप्राय को स्वभूर्ज्योतिर्मयोऽनन्त इत्यादि ऋचा का प्रारम्भ कर कहते हैं ।

स्वभूः से स्वतः सिद्ध जिसका कोई कारण नहीं है यह अभिप्राय है । इससे भगवान् श्रीरामजी एवं श्रीराम मन्त्र का कोई अन्य कारण नहीं होने से अन्य का कार्यत्व का खण्डन करने से और बहुतों का मूलकारणत्व होना सम्भव नहीं होने से इन दोनों की सर्वकारणता सिद्ध होती है । ज्योतिर्मय का अर्थ है प्रकाशमय प्रकाशमयत्व बोधन से ज्ञात होता है कि श्रीरामजी एवं श्रीराम मन्त्र से भिन्न इनका प्रकाशक नहीं है ये स्वतः प्रकाश रूप हैं । नाम नामी का अभेद के कारण दोनों एक हैं । अनन्त रूपी कहने का अर्थ है कि अनगिनत द्विभुज से प्रारम्भ कर सहस्त्र भुजान्त भगवान् श्रीरामजी के स्वरूप हैं । विभिन्न देशों में उपस्थित रहने वाले अपने भक्तों की भावना के अनुसार एक समय में अपने स्वरूप से प्रकट होने के कारण समस्त विश्व में व्यापनशील जो रघुकुल नायक भगवान् श्रीरामजी उस समय में इत्यादि विश्व व्यापित्व श्रुति वचनानुसार, नीला पीला लाल हरा आदि पुष्पों की सन्निकटता से जैसे वैदुर्यमणि का अनन्त रूप प्रतीत होता है । उसी तरह ये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भी अचिन्तनीय विलक्षण शक्ति से परिपूर्ण हैं, जो अपने उपासक भक्तों की भावना के अनुरूप तत्तद्

नन्वनन्तरूपधारिणामपि सौभर्यादीनां कारणान्तरं श्रूयते, ज्योतिर्मयस्यापि भास्करस्य भास्करान्तरं कारणं श्रूयते, एवं ज्योतिर्मयस्यापि प्रकाशान्तरं कारणमस्त्वित्याशंकां निवारयितुमाह-स्वेनैव भासते इति । न तस्य प्रकाशकान्तर मस्ति बहूनां स्वप्रकाशकत्वासिद्धेः । श्रीरामे सर्वप्रकाशकत्वमर्थतः सिद्धम् । तदुक्तम्-

नारायणादिनामानि कीर्तितानि बहून्यपि ।
आत्मा हि तेषां सर्वेषां रामनामप्रकाशकः ॥

भावनानुसार अनन्त रूपी हैं । इसमें 'चिन्मयस्याद्वितीयस्य' 'ब्रह्मणोरूपकल्पना' श्रुति वचन प्रमाण है । जो मत्स्य कूर्म वराह आदि अगणित अवतार हैं वे श्रीरामचन्द्रजी के ही है इन मन्त्रों के द्वारा, 'मुझे आपने पूर्व सृष्टि में पुनः पुनः उत्पन्न किया, विष्णुत्व स्वरूप, को प्राप्त किया, एक शृङ्गवाला वराह आप हो' इत्यादि स्मृति वचनों से, रेफ पर आरूढ तीन मूर्ति एवं उत्पत्ति स्थिति संहार शक्तियां हैं । ॐ यह जो भूत है जो वर्तमान और जो भविष्य है सबकुछ ॐकार ही है । तथा रकार से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। इत्यादि पुलह संहिता वचन से भी भगवान् श्रीरामजी का सर्वरूपीत्व सर्वकारणत्व आदि समझा जाता है ।

यदि अनन्त रूपी श्रीरामजी को कहते हैं तो भी उसका कोई कारण होना चाहिये । जैसे सौभरी आदि का अनन्त शरीर था किन्तु उसका कोई कारण था । ऐसा शास्त्रों में सुना जाता है, उसी तरह श्रीरामजी का भी होना चाहिये । दूसरा ज्योतिर्मय सूर्य का अन्य सूर्य कारण सुना जाता है । अतः ज्योतिर्मय का भी प्रकाशान्तर कारण होना चाहिये, इस सन्देह का निवारण करने के लिये कहते हैं, 'स्वेनैव भासते' अर्थात् अपने ही दिव्य तेज से प्रकाशित होते हैं । उसका प्रकाशान्तर कारण नहीं है । बहुतों का स्वतः प्रकाशत्व की सिद्धि नहीं होने से और भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में सर्व प्रकाशकत्व अर्थ वशात् सिद्ध है यही अन्यत्र कहा गया है । श्रीनारायण विष्णु कृष्ण नृसिंह आदि नाम बहुत कहे गये हैं फिर भी सभी भगवद् विग्रहान्तरों की आत्मा श्रीराम नाम ही है । श्रीराम नाम ही सभी देवताओं के नाम का प्रकाशक है ।

इसप्रकार सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी एवं श्रीराम मन्त्र का स्वतः सिद्धत्व एवं स्वतः प्रकाशकत्व का निरूपण करके श्रीरामचन्द्रजी से भिन्न सभी को श्रीरामजी का कार्यत्व एवं प्रकाश्यत्व कहते हुए मन्त्र में 'जीवत्वेन इदम् ओंम् यस्य' इत्यादि मन्त्र के द्वारा

इत्थं स्वतः सिद्धत्वं स्वप्रकाशत्वञ्चोक्त्वा तद्भिन्नस्य सर्वस्य तत्कार्यत्वं तत्प्रकाश्यत्वञ्च कथयन्नाह जीवत्वेनेदमों यस्य । ॐ कारप्रणवमिदं कृत्स्नं जगद्भासते, इति । सर्ववेदसर्वमन्त्रप्रकाशकत्वबोधनायाह जीवत्वेनेदमों यस्येति । यस्य परमात्मनः श्रीरामचन्द्रस्य स्फोटकत्वेन सर्ववेदसर्वमन्त्रात्मकं ॐ काराक्षरं भासते वह्निवीजमेव वर्णविश्लेषादिकारणान्तरमोंकाररूपत्वेन भासते, तद्भिन्न ॐकारो नास्तीति भावः । 'रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवोमोक्षदायकः' इतिस्मृतेश्च । तद्द्वारकं सृष्ट्यादिकं प्रतिपादयन्नाह-रजः सत्वतमोगुणैरिति-रजःसत्वतमो गुणैर्विशिष्टयाचित् शक्त्या सृष्टिस्थितिलयकारणत्वेन सर्वेश्वरश्रीरामोवतिष्ठते, अत्र क्रियामध्याहृत्य भासते इति सम्बन्धः । रेफारूढामूर्तयः स्युरिति चराचरात्मकस्य जगतः कारणादिभूतानां ब्रह्मविष्णुमहेशानां रेफाश्रितत्वात्, आदावन्ते च मध्ये च ॐकार से उत्पन्न होने वाला यह समग्र जगत् प्रतिभासित होता है । श्रीरामचन्द्रजी का समस्त वेद समस्त मन्त्र का प्रकाशकत्व बोध कराने के लिये श्रुति वचन कहता है कि-जीवत्वेन इदमोंयस्य...। जिस परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी का स्फोटकत्व के स्वरूप में समस्त वेद समस्त मन्त्र स्वस्वरूप ॐकार स्वरूप अक्षर प्रतिभासित होता है ।

वह्नि वीज ही (रां का रेफ ही) वर्ण विश्लेष आदि अन्य कारणों को प्राप्त कर ॐस्वरूप में प्रतीत होता है 'रां' बीज से ॐकार का उत्पत्ति क्रम कइएक प्रकार से श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर टीका तथान्य प्रबन्धों में किया हूँ अतः वहीं देखें । रेफ से अतिरिक्त ॐकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी एवं श्रीरामजी से अतिरिक्त कोई विशेष तत्त्व नहीं है । क्योंकि कार्यकारण का अभेद सम्बन्ध होता है । कहा भी गया है कि-श्रीराम नाम से उत्पन्न होनेवाला प्रणव स्वरूप ॐकार मोक्ष प्रदान करनेवाला है । श्रीराम नामोत्पन्न ॐकार के द्वारा ही सृष्टि आदि की प्रक्रिया निर्वाहित होती है इस विषय का निरूपण करते हुए कहते हैं 'रजः सत्व तमोगुणैः' इत्यादि । रजो गुण सत्व गुण और तमो गुण से विशिष्ट चित् शक्ति के द्वारा संसार की उत्पत्ति परिपालन और संहार का कारण स्वरूप के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सभी में स्थित रहते हैं । इस वाक्य में क्रिया का अध्याहार करके भासते इस पद के साथ सम्बन्ध करते हैं । 'रेफारूढामूर्तयः स्युः' इत्यादि वचन के द्वारा जडचेतनात्मक इस समस्त संसार का कारण पालक एवं संहारक बने हुए ब्रह्मा विष्णु एवं महेश्वर स्वरूप कारणता के द्वारा इन सभी का रेफाश्रितत्व कहा गया है । इसलिये कहा है कि आदि अन्त एवं मध्य

रकारे सुव्यवस्थितम् । रकाराज्जायते ब्रह्मेत्यादिस्मरणाच्च रेफात्मके षडक्षरे श्रीराममन्त्रे सृष्टिस्थितिलयहेतुत्वं विज्ञेयम् ॥१॥

में यह सबकुछ रेफ में ही व्यवस्थित है। रेफ से उत्पत्ति स्थिति संहार होता है। रेफ से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। इत्यादि स्मृति वचन के द्वारा रेफात्मक षडक्षर ब्रह्म तारक श्रीराम मन्त्र में समग्र जगत् की रचना परिपालन एवं संहार की कारणता निहित है यह अभिप्राय समझना चाहिये ॥१॥

ननु अस्य विचित्रस्य संसारस्य सृष्टिस्थितिसंहारकर्त्वान्येकस्य विग्रहवतो सम्भवतु नाम यथा कुलालादेः घटशरावादीनामनेकेषां स्त्रष्टृत्वं, यथा च राज्ञोविधिव्यवस्थया विविधप्रजानां पालकत्वं किन्तु तेषां सावयवत्वेनाल्प परिमाणत्वम् । तेषां हेतुः सम्भवति । किन्त्वस्य जगतस्तु विविधत्वेन बहुत्वेन बहुपरिमाणत्वम् । तेन नाधारत्वं सम्भवतीत्याशङ्कानिवारणाय अघटित घटनापटीयसिपरमेश्वरे श्रीरामचन्द्रे न किमप्यसम्भाव्यमिति निरूपणाय तत् सृष्ट्यन्तर्गतसूक्ष्मतरपरिमाणवतोऽपि महत्तमपरिमाणकार्यजनकत्वं स्फुटयन्नाह- यथैव वटवीजस्थ इति ।

यथैव वटवीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः ।
तथैव रामवीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ॥२॥
रेफारूढामूर्तयः स्युः शक्तयस्तिस्त्र एव चेति ॥३॥

जिसप्रकार अनन्त फल शाखा प्रशाखा पत्र आदि से समन्वित अति विशाल वट वृक्ष अपने सूक्ष्म वीज में स्थित होता है। उसीप्रकार जडचेतनात्मक यह समग्र संसार श्रीराम वीज में स्थित होता है। ब्रह्मा विष्णु और शिव की मूर्तियां और विमला आदि तीन शक्तियां रेफारूढ है, जैसे वृक्षारूढ प्राणी वृक्ष पर आश्रित होते हैं उसीप्रकार ये मूर्तियां और शक्तियां रेफ पर आधारित हैं ॥२-३॥

(येन प्रकारेण बहुफलशाखापत्रादिमान् अतिविशालोवटवृक्षः स्वसूक्ष्मवीजस्थो भवति, तथैव जडचेतनात्मकमिदं जगत् परेशश्रीरामवीजस्थितम्भवति, ब्रह्मविष्णु महेशाद्या मूर्तयः विमलाद्याः शक्तयश्च रेफारूढाः सन्ति । यथा वृक्षारूढा वृक्षाधारेण तिष्ठन्ति तथैवेमाः तिष्ठन्तीति भावः)

यथा प्राकृतोमहाद्रुमः बहुफलशाखादियुतो वटवृक्षे वीजस्थोभवति, तथैवचराचरं जगत् सर्वेश्वरश्रीरामवीजस्थं श्रीरामरूपं वीजं श्रीरामाभिन्नं वा वीजं तच्च 'रां' इति तत् जगदाधारं जगदुपादानमिति फलितार्थः । यथा कश्मिश्चित् क्षेत्रे वपति सिञ्चति कृन्तति चायमिति स्वामी अयमित्यपरेण निश्चीयते, तथैव जगत् सृष्ट्यादिव्यापारैरयं शेषीति निश्चीयते शेषभूतं चास्य परमात्मनो चराचरं जगदिति फलितोऽर्थः ।

ननु नान्यस्यायं शेष इतिनिषेधो न श्रूयते । ब्रह्मादीनाञ्च जगत्कारणत्वादिकं श्रूयते । तेन तेषामपि शेषिकोटिप्रविष्टत्वात्-इत्याशङ्कायां प्रणवस्य वह्निवीजकार्यदार्ढ्यायोच्यते-तस्य हवा प्रणवस्य या पूर्वामात्रापृथिव्यकारः सऋग्भिः ऋग्वेदोब्रह्मावसवो गायत्रीर्गार्हस्थ्यः सा साम्नः प्रथमः पादोभवतीत्या

यदि यह प्रश्न करते हैं कि इस विचित्र संसार की सृष्टि पालन और संहार करने वाले होने से अनेक शरीर धारी देव भले ही हों जैसे कुम्भकार आदि का घट शराव आदि अनेक वस्तुओं का कर्तृत्व होता है, और जिस तरह राजा के कानून और न्याय व्यवस्था के द्वारा अमीर गरीब बालक बृद्ध स्त्री पुरुष आदि अनेक तरह के प्रजाओं का पालकत्व होता है, किन्तु उन सभी का अवयव युक्त होने के कारण अल्प परिणामत्व है । उन सभी का अन्य कारण हो सकता है । लेकिन इस संसार का तो अनेकानेक प्रकार का होने के कारण तथा बहुत होने से महत् परिमाणत्व है । महत् परिमाण होने के कारण आधार तव नहीं हो सकता है इस सन्देह का निराकरण करने के लिये, जो कार्य कभी सम्भव नहीं हुआ ऐसे कार्यों की घटना करने में अत्यन्त दक्ष परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजी में कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जिसकी सम्भावना नहीं की जा सकती । अर्थात् भगवान् श्रीरामजी में सवकुछ सम्भवित है, इस वस्तु का निरूपण करने के लिये, भगवान् श्रीरामजी की सृष्टि के अन्तर्गत अत्यन्त सूक्ष्म परिमाण वाला का भी अत्यन्त महत् परिमाण वाला उत्पन्न करने की क्षमता है । इस अभिप्राय को सुस्पष्ट करते हुए कहते हैं-यथैव वटवीजस्थ इत्यादि-जिस तरह अत्यन्त सूक्ष्म वडगद के वीज के अन्तः स्थित प्रकृति जनित अति विशाल वट वृक्ष होता है, उसी प्रकार श्रीराम मन्त्र के वीज में स्थित यह दृश्य जडचेतनात्मक जगत है क्योंकि रेफ में ही आरूढ तीनों मूर्ति तथा तीनों शक्तियां है ।

जिसप्रकार प्रकृति द्वारा उत्पादित विशाल वृक्ष अनन्त फल शाखा प्रशाखा आदि

दिभिः प्रणवस्य सर्ववेदत्वं सर्वदेवत्वं सर्वलोकत्वादिकं नृसिंहतापनी यादिषूपनिषत्सु प्रणवार्थोनिरूपितः। प्रणवार्थप्रधानभूतानां ब्रह्मविष्णुमहेशादीनां श्रीरामबीजरेफाश्रिताकारवाच्यत्वोक्तेस्तेषां रेफवाच्यश्रीरामाश्रितत्वं बुध्यते। तेषाञ्च परमात्मन उत्पत्तिश्रवणात् तदादेशपालकत्वाच्च श्रीरामशेषत्वं श्रीमतोरामस्य च तच्छेषित्वं रेफारूढत्वात्। तदुक्तम् रेफो रवर्णः तमारूढा तदुपश्लिष्टा यथा वृक्षारूढा वानरा वृक्षाश्रिताः भवन्ति, तथैव मूर्तयो ब्रह्मविष्णुरुद्राः तिस्त्रः मात्राः अकारद्वयं मकारश्चेति तैः समुदिताः 'रां' वीजं स्युरिति ज्ञेयम्। तेषां शेषित्वनिषेधायैव 'रेफारूढा' इत्युक्तम्। यद्यपि श्रीरामवीजस्थकथनेनैव सिद्धौ रेफारूढेति विशेषोक्तिः वीजस्वरूपबोध नार्थेतिगम्यते वीजावयवाकारादिवाच्यानां ब्रह्मादीनां जगद् रचनादिकमवलम्ब्य तेषां बहुत्वात् शेषित्वासिद्ध्या रेफवाच्यस्यैवैकस्य ब्रह्मादीनामाश्रयत्वं बोध्यते। तेन निरूपाधिकशेषित्वज्ञापनं सुतरां सिद्ध्यति।

से युक्त वटवृक्ष अपने सूक्ष्म वीज में प्रतिष्ठित होता है, उसीप्रकार जडचेतनात्मक यह संसार 'राम' रूप बीज में अथवा 'राम' से अभिन्न वीज में स्थित होता है, वह 'रां' इस स्वरूप समस्त जगत का आधार समस्त जगत का निमित्त तथा उपादान कारणरूप में है यह फलितार्थ है। जिसप्रकार कोई किसी खेत में बोते हैं, सींचते हैं तथा फसल काटते हैं यह देखकर निर्णय होता है कि इस खेत का स्वामी यह व्यक्ति है ऐसा देखकर निर्णय किया जाता है, उसी तरह ही संसार के रचना आदि क्रियाओं के द्वारा यह निश्चय किया जाता है कि ये भगवान् श्रीरामजी ही शेषी हैं और इन परमात्मा का शेषभूत यह चराचर जगत है।

यदि प्रश्न करें कि यह संसार किसी दूसरे का शेष नहीं है ऐसा निषेध भी नहीं सुना जाता है तथा ब्रह्मा आदि का जगत् कारणत्व आदि भी सुना जाता है। इससे कारण होने से ब्रह्मा आदि का भी शेषी कक्षा में प्रविष्ट होने से उन्हें भी शेषी मानना चाहिये इस सन्देह के होने पर प्रणव का वह्नि वीज का कार्यत्व निश्चय के लिए कहते हैं, उस प्रणव का जो पूर्व मात्रा है वह पृथ्वी का बोधक अकार है वह ऋचाओं से ऋग्वेद ब्रह्मा समस्त वसु गायत्री, गार्हस्थ्य है वह साम के प्रथम पाद होता है, इत्यादि वचनों के द्वारा प्रणव का सर्ववेदत्व सर्वदेवत्व और सर्वलोकत्व स्वरूप नृसिंह तापनीय आदि उपनिषदों में प्रणव का अर्थ बताया गया है। प्रणव के अर्थ में मुख्य

यद्यपि 'रेफारूढामूर्तयः स्युः शक्तयः तिस्र एव च' इत्यत्र वीजरूपबोध नार्थकत्वमिति नोचितम् त्रिशक्तिपदस्य मूर्तिपदस्य च निरर्थकत्वं स्यात् । तथा च 'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्याविति तत् शब्देन बोधितः पूर्वपरामृष्टः सम्पूर्ण एव मन्त्रः श्रीरामार्थबोधकः न तु केवलं रेफः । तेन तदारूढपदेन विरोधः । वीजस्थमकारविवरणस्य जीववाचित्वबोधकोत्तरश्रुतिविरोधश्चात्र दृश्यते । मन्त्रार्थप्रकरणे वीजप्रत्यक्षरवाच्यानां स्वरूपज्ञानस्य शेषशेषित्वज्ञानस्यापेक्षितत्वात् । तवापि पक्षेकृत्स्नस्य नाम्नः परमात्मपरत्वबोधकवाक्यविरोध इति न ।
रूपसे स्थित रेफ (रां) में आश्रित अकार का वाच्यत्व कहा गया है इसलिये ब्रह्मा विष्णु और शङ्कर का रेफ वाच्य श्रीरामजी का आश्रित होना समझा जाता है। और ब्रह्मा विष्णु तथा शिव का परमात्मा से उत्पत्ति शास्त्रों में सुने जाने से और परब्रह्म सर्वेश्वर की आज्ञा का परिपालक होने से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का शेषत्व प्रतीत होता है और श्रीमान् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का सभी का शेषित्व ज्ञात होता है क्योंकि ये सभी रेफ पर आरूढ अर्थात् आश्रित हैं। वही कहा गया है रेफ अर्थात् र वर्ण उस पर आरूढ अर्थात् रेफ से आश्लिष्ट हैं। जिस तरह वृक्ष पर आरूढ बन्दर वृक्ष पर आश्रित रहता है उसीप्रकार मूर्तियां ब्रह्मा विष्णु और महेश ये तीन मात्रायें है दो अकार और मकार इन सभी से सम्मिलित 'रां' बीज है यह समझना चाहिये। उन ब्रह्मा विष्णु एवं महेश का शेषित्व निषेध के लिये ही रेफारूढ है यह कहा गया है। यद्यपि 'राम' बीज में स्थित इतना कहने से ही श्रीरामचन्द्रजी का शेषित्व एवं इन सभी का शेषत्व सिद्ध हो जाता तथाऽपि रेफारूढ यह भेद करके कहा गया है। यह सव वीज स्वरूप का बोध कराने के लिये है यह प्रतीत होता है।

बीज का अवयव अकार आदि का प्रतिपाद्य अर्थ ब्रह्मा आदि का संसार की रचना आदि का अबलम्बन करके उन सभी का बहुत्व होने से शेषित्व की सिद्धि नहीं होने से रेफ का प्रतिपाद्य एक मात्र श्रीरामचन्द्रजी का ब्रह्मा आदि का आश्रय दातृत्व समझा जाता है। इन वातों से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का विना किसी उपाधि के शेषित्व बोधन अच्छी तरह से सिद्ध होता है।

यद्यपि रेफ पर आरूढ तीन देवतायें एवं तीन शक्तियां इस वचन में बीज रूप बोधन के लिये हैं यह कथन समुचित नहीं है। तीन शक्ति पद का एवं मूर्ति पद का निरर्थकत्व होने लग जायगा। और इस प्रकार 'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ' इस वाक्य

'अकाराक्षरसम्भूतो सौमित्रिविश्वभावनः' । 'ओमित्येतदक्षरं सर्वमिति रामतापनीये, ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' इतिगीतायाम् । एवमादिषु प्रणवाव यवाकारादीनामनेकार्थश्रवण इव श्रीरामनामावयवानामप्यनेकार्थवाचकत्व श्रवणात् । सर्वरूपिणोब्रह्मणः सर्वशब्दवाच्यत्वेऽपि मुख्यभूतस्य तस्य 'सर्व वाच्यस्य वाचक' इत्यत्र सर्वशब्दकारणश्रीरामनाम्नः मुख्यवाच्यत्वश्रवणात् । सर्वाक्षरकारणश्रीरामनामाक्षराणां सर्वार्थवाचकत्वेऽपि मुख्यशक्त्या सच्चिदा-
में तत् शब्द के द्वारा ज्ञात कराया गया पूर्व में परामर्श किया गया सम्पूर्ण ही मन्त्र श्रीराम रूप अर्थ का बोधक है न कि केवल रेफ श्रीराम अर्थ का बोधक है। इस कथन से रेफारूढ इस पद के साथ विरोध होता है। बीज में स्थित मकार विवरण में जीव वाचक आगामी श्रुति वचन के साथ विरोध होते भी यहां पर देखा जाता है। मन्त्र का अर्थ प्रतिपादन प्रसङ्ग में बीज के प्रत्येक अक्षर का प्रतिपाद्य अर्थों का स्वरूप ज्ञान का ज्ञान शेष शेषित्व भाव का ज्ञान अपेक्षित होने से रेफ मात्र का 'श्रीराम' अर्थ ज्ञात होता है। और आपके भी पक्ष में समग्र नाम का परमात्म बोधन परत्व बोधक वाक्य के साथ विरोध होता है ऐसा नहीं है।

अकार अक्षर से उत्पन्न सुमित्रा तनय विश्व भावन लक्ष्मणजी हैं। ॐकार यह अक्षर ही सवकुछ है यह विषय श्रीरामतापनीय उपनिषद् में और ओम् यह एक अक्षर ही ब्रह्म है यह भगवद् गीता में कहा गया है। उपनिषद् गीता आदि ग्रन्थों में प्रणव के अवयव अकार आदि का भी अनेक अर्थ प्रतिपादकत्व जैसे सुना जाता है उसीप्रकार 'राम' मन्त्र के अवयवों का भी अनेक अर्थों का वाचकत्व सुने जाने के कारण प्रत्येक अक्षर के अर्थ होने में वाचकत्व सुने जाने से कोई दोष नहीं है, संसार के समस्त जडचेतन के रूपी ब्रह्म का सभी शब्दों से प्रतिपाद्य होने पर भी उन सभी में प्रधान नाम श्रीरामचन्द्रजी का सर्व वाच्य का वाचक है इस कथन में सभी के कारण श्रीराम नाम का मुख्य वाचकत्व सुने जाने से अर्थात् सभी 'राम' नाम से प्रतिपाद्य हैं यह सुने जाने से सभी अक्षरों के कारण श्रीराम नाम के अक्षरों का सभी अर्थों का वाचकत्व होने पर भी प्रधान शक्ति से सच्चिदानन्दानन्द अर्थ वाला सम्पूर्ण परब्रह्म का वाचकत्व सिद्ध होता है यही कहा गया है। जहां पर 'राम' नाम का अवयव बना हुआ अकार मकार सत् एवं आनन्द अर्थ का वाचक है और रकार चित् अर्थ का वाचक है। वहां पर तीनों ही 'राम' नाम के अक्षरों का सच्चिदानन्दार्थ ब्रह्म परक

नन्दसम्पूर्णपरब्रह्मवाचकत्वम् सिद्ध्यति । तदुक्तम्-यत्र नामावयवभूता कारमकारौ सदानन्दवाचकौ रकारश्चिद् वाचकः, तत्र त्रयाणामपि श्रीरामनामा क्षराणां सच्चिदानन्दब्रह्मपरत्वात् कृत्स्नस्य नाम्नो ब्रह्मपरत्वमुपास्यत्वं ज्ञेयत्वञ्च श्रूयते । 'रमन्ते योगिनः' 'ब्रह्मात्मकसच्चिदानन्दाख्या' इत्युपासितव्यम् । तदेवोपास्यं ज्ञेयं च । सच्चिदानन्दार्थकत्वेनोपास्यत्वं, शेषशेषिसम्बन्धबोधकत्वेन ज्ञेयत्वम्, इत्थं रेफस्य ब्रह्मपरत्वमकारादीनां ब्रह्मादिपराणां सृष्ट्यादीनां च आश्रयत्वसम्बन्धेन शेषत्वं ज्ञापयन्ति रेफारूढावर्णाः । तदित्थं श्रीरामपदस्य द्विविधार्थवाचकत्वमर्थान्तराणां च वाचकत्वं श्रूयते । रघुकुलेऽखिलं रातीत्याद्या सूपनिषत्सु बह्वर्थवाचकत्वं महारामायणादौ च श्रूयते । अतः श्रीरामः शेषी ब्रह्मादयश्च शेषाः । अतोमूर्तयो ब्रह्माद्याः शक्तयश्च रेफाधेयभूताः सन्ति । तन्न्यूनत्वे सति तज्जन्यत्वात् ।

होने से समग्र श्रीराम नामक ब्रह्मपरत्व एवं उपासनीयत्व तथा ज्ञेयत्व शास्त्रों में सुना जाता है। 'रमन्ते योगिनो यस्मिन्' 'ब्रह्मात्मकसच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम्' वही उपास्य एवं जानने योग्य है। सत् चित् और आनन्दार्थक होने से उपासना करने योग्य है। और शेष शेषी स्वरूप सम्बन्ध का बोधक होने से जानने योग्य है। इसप्रकार श्रीराम मन्त्र के रेफ का ब्रह्म परत्व तथा अकार आदि अक्षरों का ब्रह्मा विष्णु आदि बोधन परत्व का और सृष्टि पालन आदि का आश्रयत्व सम्बन्ध से शेषत्व का ज्ञान कराते हैं श्रीराम मन्त्र के रेफ पर आरूढ अक्षर। तो इस तरह 'राम' पद का दो तरह से अर्थ का वाचकत्व तथा अन्यान्य अर्थों का वाचकत्व उपनिषद् आदि ग्रन्थों में सुना जाता है। 'रघुकुलेऽखिलं राति' इत्यादि उपनिषद् वचनों में बहुत अर्थों का वाचकत्व सुना जाता है। और महारामायण आदि इतिहास पुराण ग्रन्थों में भी बहुत अर्थों का वाचकत्व सुना जाता है। इसलिये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी शेषी हैं, तथा ब्रह्मा विष्णु आदि समस्त जडचेतनात्मक संसार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के शेष स्वरूप में विद्यमान हैं। इसलिए प्रकृत ऋचा में 'मूर्तयः' यह कहने से ब्रह्मा आदि देवता एवं विमला आदि शक्तियां यह अर्थ सभी रेफ अक्षर के आधेय स्वरूप हैं। क्योंकि ये सभी ब्रह्मा से आरम्भ कर समस्त जडचेतनात्मक संसार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से न्यून होते हुए श्रीरामचन्द्रजी से जन्य हैं इसलिये शेष हैं।

रकार से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, रकार से श्रीहरि अर्थात् विष्णु उत्पन्न होते हैं।

रकाराज्जायते ब्रह्मा रकाराज्जायते हरिः ।
रकाराज्जायते शम्भुः रकारात् सर्वशक्तयः ॥ इत्युक्तेः ।

रेफात् ब्रह्माद्युत्पत्तिः सम्पूर्णस्य जगत उत्पत्तिं लक्षयति । 'मितेरपीतेवेति माण्डूक्यवचनेनाकारोकारयोर्मकारेलयश्रुतेः ।

किञ्चात्ररेफः श्रीरामब्रह्मपरः, तमारूढा अकारादयो ब्रह्मादिविष्ण्वादि वाचकाः तेन षडक्षरस्य तत्तद्वाचकत्वोपपत्तिः । 'इतिरामपदेनासौ परब्रह्मा भिधीयते, ब्रह्मादीनां वाचकोऽयमित्यादयः श्रुतयः संगच्छन्ते । वाच्याब्रह्मादयो रेफवाच्यस्य श्रीरामस्याश्रितत्वेन तच्छेषभूता इत्युपपन्नम् । अत्रेति शब्दोद्विती योपनिषत् समाप्त्यर्थः ॥२-३॥

और रकार से भगवान् शङ्कर उत्पन्न हैं और रकार से विमला आदि सभी शक्तियां उत्पन्न होती हैं, इत्यादि कहे जाने से सभी रेफ वाच्य श्रीरामचन्द्रजी के शेष हैं । रेफ से ब्रह्मा आदि देवताओं की उत्पत्ति और समस्त संसार की उत्पत्ति को इङ्गित करता है । 'मिते रपीते वा' इस माण्डूक्योपनिषद् के वचनानुसार यहां पर अर्थात् श्रीराम मन्त्राक्षर में अकार उकार का मकार में विलय सुने जाने से सर्वाश्रयत्व सर्वोपास्यत्व आदि विदित होता है ।

और भी इस श्रीराम मन्त्राक्षर में अवयवभूत अक्षरों में से रेफ अक्षर भगवान् श्रीरामचन्द्रार्थ बोधन परक है । इस रेफ अक्षर पर आरूढ अकार आदि अक्षर ब्रह्मा विष्णु आदि अर्थों का वाचक है । इससे सिद्ध होता है कि-छ अक्षरों वाला ब्रह्म तारक श्रीराम मन्त्र का परब्रह्म से लेकर उन जडचेतनात्मक जगत् सहित ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओं का वाचकत्व तर्कसंगत होता है । 'इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते' इसलिये 'राम' पद से परब्रह्म अर्थ कहा जाता है और ब्रह्मा आदि का यह वाचक इत्यादि श्रुति वचन युक्ति संगत होता है । समस्त प्रतिपाद्य भूत अर्थ कलाप ब्रह्मा आदि रेफ शब्द से प्रतिपाद्य भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का आश्रित होने के कारण सभी श्रीरामचन्द्रजी के शेष स्वरूप हैं । यह अभिप्राय युक्ति संगत सिद्ध होता है । इस मन्त्र में इति शब्द श्रीरामतापनीय के द्वितीय उपनिषत् के पूर्णता अर्थ सूचक है ॥२-३॥

प्रथमोपनिषदुक्तस्य श्रीराममन्त्रजपस्य, मन्त्रार्थज्ञानमन्तरावीर्यहीनत्वात्, त्रिपदस्य श्रीराममन्त्रस्य द्वितीयोनिषदि 'रां' बीजं व्याख्यातम् । मन्त्रतत्त्वविद्भिः मन्त्रस्यास्य त्रिविध अन्वयः प्रदर्शितः । प्रथमान्वये जीवस्वरूपम् । द्वितीये

उपायस्वरूपम्, तृतीयेचोपेयस्वरूपं शोधितम् । प्रथमान्वयेन जीवस्य श्रीराम शेषत्वस्वरूपं ज्ञायते । तत्रोपायस्वरूपज्ञानाय तृतीयोपनिषत् प्रारभ्यते । तत्र वाच्यवाचकयोः श्रीरामरेफयोस्तादात्म्यसम्बन्धः । स च सर्वकारणस्य रेफस्य तादात्म्यसम्बन्धेन श्रीरामस्य वाचकत्वम् कथं सम्भवतीतिबोधनाय श्रीसीताराम योरभेदस्तेन च चतुर्दशभुवनानामुत्पत्त्यादिकमित्याह सीतारामाविति-

सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ, जातान्याभ्यां भुवनानि द्विसप्त ।
स्थितानि च प्रहृतान्येव तेषु ततो रामो मानवो मायया धात् ॥१॥

इस श्रीराम मन्त्र के वीज भाग 'रां' इस भाग में तादात्म्य भाव से स्थित श्रीसीताराम तत्त्व मुमुक्षुजनों के द्वारा पूजनीय एवं जानने योग्य है। इन श्रीसीतारामजी के द्वारा सात नीचे और सात ऊपर कुल चौदह भुवन उत्पन्न हुए हैं, इन के द्वारा संरक्षित है तथा इनके द्वारा संहार किया जाता है। इसके वाद भगवान् श्रीरामचन्द्रजी इन भुवनों में समाविष्ट हो गये, अपने आप को व्यापक रूपसे चराचर में प्रविष्ट कर दिये। अन्तर्यामी के स्वरूप में सर्वत्र विद्यमान हैं। अपनी प्रभा से अव्याहत प्रवेश वाले श्रीरामचन्द्रजी स्वभाव से ही दो भुजाओं एवं कुण्डल आदि धारण करनेवाले मानव रूप में स्वयं को स्थापित किये ॥१॥

(अस्मिन् श्रीरामबीजे तादात्म्यापन्नौ श्रीसीतारामौ पूजनीयौ ज्ञेयौ च। आभ्यां श्रीसीतारामाभ्यां चतुर्दशभुवनानि उत्पन्नानि पालितानि संहृतानि च, ततः श्रीरामः स्वात्मानं तत्र प्रावेश यत्। अन्तर्यामितया स्थितः प्रभया अकुण्ठितप्रवेशः स्वभावतः द्विभुजः कुण्डली श्रीरामः स्वात्मानं स्थापयामास ॥१॥)

अत्र श्रीराममन्त्रवीजे तन्मयौ रेफतादात्म्यापन्नौ श्रीसीतारामौ पूज्यौ-ज्ञेयौ, धातूनामनेकार्थत्वादत्र पूजधातुर्ज्ञानार्थः । अस्यार्चनायाग्रेवक्ष्यमाणत्वात् । तत् शब्दस्य बुद्धिस्थपदार्थपरामर्शकतया 'रेफारूढामूर्तयः' इत्यर्थः । तत्र रेफे ब्रह्म विष्णुरुद्ररूपा अकारद्वयं मकारश्चेति त्रयोवर्णाः तैः समुदितं वीजमिति केचित्

प्रथम उपनिषद् में कहा गया ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम मन्त्र का विना अर्थ समझे मन्त्र जप की शक्ति हीनता होने से मन्त्रार्थ ज्ञान परम आवश्यक है। इसलिये तीन पदो वाला श्रीराम मन्त्र के 'रां' इस वीज मन्त्र की द्वितीय उपनिषद् में व्याख्या की गयी है। मन्त्रार्थ के रहस्य तत्त्व विज्ञानी विद्वानों के द्वारा प्रासङ्गिक इस श्रीराम

कथयन्ति । अत्रोच्यते रेफवर्जितस्याकारादीनां बीजत्वमुतरेफसहितस्य । आधेय वीजात्मकौ सीतारामावित्युक्ते रेफस्य वाच्यो वक्तव्यः । रेफवाच्यं निर्गुणं ब्रह्म वर्तते चेत् 'स्वभूः ज्योतिर्मयः' इति 'स्वेनैवभासते' इति अन्यस्य निषेधात् । 'इतिरामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते' इतिपरब्रह्मत्वोक्तेः । सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति समानार्थकत्वाच्च । 'ज्ञः कालकालो सगुणोनिर्गुणश्च' 'एष आत्मा अपहतपाप्मा वीजरो विमृत्युः विशोकोविजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः' इति अपाप्मात्वादिना हेयगुणान्निषिध्य, सत्यकामत्वादिभिः दिव्यगुणान् प्रतिष्ठापयति । तेनैकस्यैव निर्गुणत्वं सगुणत्वञ्चोक्तम्भवति "तादृशदिव्यगुणानाञ्च 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकीज्ञानबलक्रिया च' इत्यादौ स्वाभाविकत्वा भिधानात्प्राकृतहेयगुणरहितत्वेन निर्गुणत्वं दिव्यगुणवत्वेन च सगुणत्वमित्युभय थैकस्यैव ब्रह्मणोनिर्देशः" इत्यानन्दभाष्यकारोक्तेः । परास्यशक्तिर्विविधैवश्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाचेतिश्रुत्याज्ञानादयस्तस्य परब्रह्मणः स्वाभाविका गुणा उच्यन्ते ।

मन्त्र का तीनप्रकार से अन्वय प्रदर्शित किया गया है। इन अन्वयों में से प्रथम अन्वय में जीव स्वरूप का निरूपण किया गया है। द्वितीय अन्वय में जीवों को सांसारिक जन्म मृत्यु बन्धन परम्परा से मुक्त होने के लिये उपाय स्वरूप का विवेचन किया गया है। तथा तृतीय अन्वय में उपेय स्वरूप का शोधन किया गया है। प्रथम अन्वय के माध्यम से जीवात्माओं का भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का शेषत्व स्वरूप समझा जाता है। अर्थात् ब्रह्मा विष्णु आदि से आरम्भ कर समस्त चराचर जगत् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का शेष स्वरूप है एवं भगवान् श्रीरामजी शेषी हैं यह अभिप्राय विशेष रूपसे समझा जाता है। इस स्थिति में उपाय स्वरूप का ज्ञान कराने के लिये तृतीय उपनिषद् का प्रारम्भ किया जाता है। श्रीराम मन्त्र के बीज 'रां' इस में रेफ अ अ एवं म ये अक्षर है, वीजाक्षर विद्या के अनुसार रेफ अंश का प्रतिपाद्य अर्थ श्रीरामजी हैं। श्रीरामजी एवं श्रीसीताजी दोनों अभिन्न स्वरूप हैं। श्रीराम अर्थ का वाचक रेफ है। वाच्य और वाचक में परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध है। जैसे शब्द शक्तियों के द्वारा शब्द और अर्थ को व्यावहारिक रूपसे भेद दिखाई देने पर भी परमार्थ में दोनों अभिन्न ही हैं। और यह वाच्य वाचकभाव चतुरानन ब्रह्मा से आरम्भ कर समस्त चराचर के कारण स्वरूप रेफ का तादात्म्य सम्बन्ध के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का वाचकत्व युक्त किस तरह होता है, इस विषय का बोध कराने के लिये

द्वितीयपक्षे आधारधेयभूतानां रेफाकारादीनां परब्रह्मचतुराननादीनां वाचकानां केवलश्रीसीतारामवाचकतोक्तौ रेफः परब्रह्मपरः प्रथमोऽकारः ब्रह्म रूपः द्वितीयो विष्णुरूपः मकारो रुद्ररूप इतिशेषकोटिप्रविष्टानां शेषिवाचकत्वा सम्भवात् । स्ववचनविरोधाच्च ।

'विश्वरूपस्य ते राम विश्वे शब्दा हि वाचकाः' इति । अत्रापि बोधस्तु न सम्भवति, तत्र शरीरवाचकानां शरीरिणिपर्यवसान इव चराचरवाचकानां परम्परया श्रीरामेपर्यवसानं स्वीक्रियते । राजपुरुषवाक्यवत् शब्दतः पुरुषप्रधानमप्यर्थतः राज्ञ एव प्राधान्यं बोधयति । तथा 'रेफारूढाः' इत्यत्र शब्दतः ब्रह्मादि प्रधानमप्यर्थतः परब्रह्म एवेति न वक्तव्यम् । तत्रार्थतः परब्रह्मत्वं सूचयन्नपि वाचकत्वेन ब्रह्मादिपरत्वादभिमतार्थबोधहानिरेव राजपुरुषमानयेत्युक्तौ नहि कश्चित् पुरुषं राजानमानयति । तेन भृत्यस्यैव वाचकत्वं बुध्यते ।

निरूपण करते हैं कि श्रीसीतारामजी में वस्तुतः अभेद है। और श्रीसीतारामजी से ही चौदहों भुवनों की उत्पत्ति हुई है। उन्हीं से पालनादि होता है इस वस्तु का प्रतिपादन करने के लिये मन्त्र का आरम्भ करते हैं 'सीतारामौ' इत्यादि से।

इस श्रीराम मन्त्र के वीज भाग में स्थित रेफ के साथ तादात्म्य भाव में स्थित अभेद स्वरूप में स्थित 'सीताराम' को जानना चाहिये। यद्यपि पूज धातु का अर्थ अर्चना होता है। किन्तु धातुओं का अनेक अर्थ होता है इस नियम के अनुसार पूज का अर्थ यहां पर ज्ञान समझना चाहिये, क्योंकि रेफ की अर्चना के लिये आगे कहा जाने वाला है, और तत् शब्द जो तन्मय का अवयव है, उसकी बुद्धि में स्थित पदार्थ में शक्ति होने से 'रेफारूढामूर्तयः' आदि के द्वारा पूर्व में रेफ का निरूपण किया गया है, इसलिये रेफ के साथ तादात्म्य भाव प्राप्त यह अर्थ है। उस रेफ में ब्रह्मा विष्णु और रुद्र के स्वरूप में दो अकार एवं मकार है जिनके सम्मिलन से 'रां' यह स्वरूप बनता है। अतः रेफ में दो अकार एवं मकार आरूढ ये तीन वर्ण हैं, उनसे मिला जुला मन्त्र वीज है। इसप्रकार कुछ लोग विवेचन करते हैं। इस विषय में कहा जाता है कि-रेफ से रहित अकार उकार और मकार का वीजत्व है। अथवा रेफ के सहित अकारादि का वीजत्व है। यह दो तरह का प्रश्न उठता है। यदि कहें कि रेफ में आधेय स्वरूपतया अकारादि रूपमें स्थित श्रीसीतारामजी ज्ञेय हैं तो रेफ का स्वतन्त्र रूपसे 'सीताराम' से भिन्न अर्थ कहा जाना चाहिये। जो उसका वाच्यार्थ हो। यदि

इत्थं चतुराननादिवाचकत्वमेव सिद्ध्यति ,नतु परब्रह्मवाचकत्वम् । 'रेफारूढामूर्तयः' उपासनीया इतिबोधेऽपि रेफ उपासनीय इति न बुध्यते । तत्पुरुषसमासे परपदस्य प्राधान्यात् । तेन रेफारूढामूर्तयोवीजं स्युरित्यध्याहारो निरर्थकः । तथा च रेफस्य परब्रह्मवाचकत्वेनाकारादीनाञ्च चतुर्मुखादिवाचकत्वेन 'सीतारामौ तन्मयावित्यादीनां संगतिः । पूज्यत्वेन ज्ञेयत्वं रेफमयत्वेनैव ज्ञेयत्वं रेफस्यैव सर्वजगदाश्रयत्वं, रेफादेव ब्रह्मादीनां उत्पत्तिवर्णनाच्च । रकारे एव वेदादारभ्य सर्वस्य चराचरस्य स्थितिस्मरणाच्च । सर्वस्यमन्त्रस्य श्रीरामवाचकत्वेतु तच्छेषभूतानां वाचकत्वं न स्यात् । मन्त्रान्तर्गतस्य 'नमः' पदस्य जीववाचकत्वेन विवरणदर्शनात् । अकारादीनां ब्रह्मादिवाचकत्वम्, तेषामाश्रयत्वेन रेफस्य विवरणात् । तेन बीजविवरणयोः समानार्थकत्वम् । ब्रह्मादीनाञ्च श्रीराम

कहें कि रेफ का वाच्य निर्गुण ब्रह्म है, तो यह कहना समुचित नहीं । क्योंकि 'स्वभूः ज्योतिर्मयः' इत्यादि के द्वारा जो स्वतः प्रकाश है । वहां अन्य के प्रकाश का निषेध किये जाने से, इसप्रकार 'राम' पद से परब्रह्म कहे जाते हैं । इस से 'राम' में परब्रह्मत्व कहे जाने से सगुण ब्रह्मत्व 'राम' में है । और इनका सत्य ज्ञान एवं आनन्द स्वरूप वाला ब्रह्म है इसे श्रुति वचन के समानार्थक होने से भी सगुणत्व है । ज्ञान स्वरूप काल का काल जो सगुण एवं निर्गुण है, यह आत्मा है, जो सर्वथा पाप विहीन है। जिसका रेफ वीज है, जो शोक विहीन एवं अमर है । जो विशिष्ट प्रकार से जानने योग्य है, जो प्यास से रहित है । जिनकी कामना सत्य है एवं सङ्कल्प सत्य है इत्यादि कथन के द्वारा उपनिषद् में अपाप्मा अपिवासः आदि के द्वारा निन्दनीय गुणों का निषेध करके सत्य कामत्व आदि के द्वारा दिव्य गुणों की प्रतिष्ठापना परब्रह्म में की गयी है। इन प्रमाणों से एक ही परब्रह्म में निर्गुणत्व एवं सगुणत्व दोनों ही निरूपित होता है इसका ब्रह्मसूत्रानन्दभाष्य १/१/३ में विशेष विवेचन है अतः इसे वहीं मेरी प्रकाश टीका में देखें । इस परमात्मा की विविध प्रकार की पराशक्ति सुनी जाती है और स्वाभाविक रूपसे ज्ञान बल एवं क्रिया है । इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा उस परब्रह्म का ज्ञान आदि स्वाभाविक गुण कहे जाते हैं ।

द्वितीय पक्ष में आधार आधेय बने हुए रेफ एवं अकार आदि का जो रेफ द्वारा परब्रह्म एवं अकार आदि के द्वारा चतुर्मुख ब्रह्मा आदि के वाचक वर्णो का, केवल 'सीताराम' का ही वाचक है, ऐसा कहे जाने पर, रेफवर्ण परब्रह्म अर्थ बोधन परक

शेषत्वम् । शेषभूतानां कैङ्कर्यलक्षणः सम्बन्धः सिद्ध्यति । अत्र मन्त्रे रेफे अकारः आकारः मकारश्च पृथक् पृथक् पदानि तेषु छान्दसत्वाद् विभक्तिलोपः । रेफारूढा इतिरेफाधारकथनाद् । रेफस्याकारादीनाञ्चाधाराधेयभावसम्बन्धः । रेफस्य वाचकत्वम् श्रीसीतारामयोः वाच्यत्वम् तयोः तादात्म्यसम्बन्धः । रेफस्यैव सर्वकारणत्वम् । श्रीसीतारामयोः जगत्कारणत्वं निरूपयन्नाह-जातान्याभ्यां भुवनानि द्विसप्त इति । अधस्तनानि भुवनानि सप्त उपरितनानि च सप्त, सङ्कलनेन चतुर्दश, अत्र आभ्यामित्यस्य विभक्तिविपरिणामाननयोः इति, अनयोचतुर्दश है । प्रथम अकार चतुर्मुख ब्रह्मा का वाचक है, द्वितीय अकार विष्णु वाचक है एवं मकार रुद्र स्वरूप वाचक है । इसप्रकार जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी शेष कोटि में प्रविष्ट हैं । उनका शेषित्व वाचक होना सर्वथा असम्भव होने से द्वितीय पक्ष में अपने कथन का विरोध होने से सङ्गत नहीं होता है ।

समस्त संसार ही जिनका स्वरूप है ऐसे हे श्रीराम ? आपका संसार के सभी शब्द वाचक हैं । इस तरह का यहां पर भी बोध होना सम्भव नहीं है । वहां पर शरीर वाचक शब्दों जिस तरह शरीरी में पूर्णता होती है उसी तरह चराचर वाचक शब्दों का परम्परा सम्बन्ध से श्रीरामचन्द्रजी में पूर्णता स्वीकार की जाती है । जिस तरह 'राजपुरुषः गच्छति' इस वाक्य में शब्द की दृष्टि से पुरुष प्रधान है तथाऽपि अर्थ की दृष्टि से राजा अर्थ की प्रधानता का बोध कराता है, उसीप्रकार 'रेफारूढा' इस वाक्य में भी शब्दतः चतुरानन ब्रह्मा आदि अर्थ की प्रधानता है यह भी नहीं कहना चाहिये । क्योंकि उस वाक्य में अर्थ की दृष्टि से परब्रह्मत्व को सूचित करते हुए भी वाचकता के द्वारा चतुराननादि ब्रह्मा अर्थ बोधन परत्व होने से अभीष्ट अर्थ बोध की हानी तो होती ही है । यदि कोई व्यक्ति कहता कि राजपुरुष को लाओ तो ऐसा कहने पर कोई भी व्यक्ति पुरुष राजा को नहीं लाता है । अपितु उस वाक्य को सुनने पर राजकीय भृत्य (सेवक) का ही आनयन होता है । इसलिये राजपुरुष शब्द से भृत्य अर्थ की ही वाचकता है यह समझा जाता है ।

इसप्रकार रेफारूढा से चतुरानन ब्रह्मा आदि का वाचकत्व ही सिद्ध होता है । नकि परब्रह्म वाचकत्व सिद्ध होता है । रेफारूढ मूर्तियों की उपासना करनी चाहिये यह अर्थ समझे जाने पर भी-रेफ उपासनीय है यह अर्थ नहीं समझा जाता है । क्योंकि तत् पुरुष समास में परपद की प्रधानता होने से पूर्व पदार्थ की अमुख्यता ही ज्ञात होती है । इसलिये

भुवनानिस्थितानि, अथवा आभ्यां पालितानि, आभ्याञ्च प्रहृतानि विनाशितानि। तेषु 'रामः अनन्तमात्मानमधात् प्रावेशयत्। तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदितिश्रुतेः। सर्वान्तर्यामितया सर्वनियन्तृतया च आकाशाधारेरचितेषु घटेषु यथा आकाशस्य पूर्वमेवप्रवेशः, तथा सर्वाधारे श्रीरामेरचितेषु चतुर्दशभुवनेषु श्रीरामस्य पूर्वमेव प्रवेशः। अन्तः प्रविष्टः शास्ताजनानामिति नियमनमन्तः प्रविष्टस्यैव। तेन श्रीरामस्य चराचरान्तर्यामित्वं निरूपितम्।

रेफ पर आरूढ मूर्तियां वीज हैं इसप्रकार का अध्याहार करना निरर्थक है। और इसप्रकार रेफ का परब्रह्म वाचकत्व होने के कारण और अकार आदि का चतुरानन ब्रह्मा आदि का वाचक होने से 'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ' इत्यादि की संगति होती है। यहां पर पूज्यत्वेन ज्ञेयत्व और रेफमय होने से ही ज्ञेयत्व बोध होता है। रेफ का ही समस्त जगत् का आश्रयत्व है। रेफ से ही ब्रह्म आदि की उत्पत्ति का निरूपण किये जाने से समस्त जगत् का आश्रयत्व है। रकार में ही वेद से आरम्भ कर समस्त चराचर जगत् की स्थिति स्मृतियों में बताया गया है। सम्पूर्ण मन्त्र की यदि श्रीरामचन्द्र वाचकता होगी तो श्रीरामचन्द्रजी के शेष बने हुए ब्रह्मा आदि का वाचकत्व नहीं हो सकेगा। मन्त्र के अन्त भाग में वर्तमान नमः पद का जीव अर्थ वाचक होने का विवरण देखे जाने से अकार आदि का चतुर्मुख ब्रह्मा आदि का वाचकत्व है। और उन ब्रह्मा आदि का आश्रय के रूपमें रेफ का विवरण देखे जाने से यह सिद्ध होता है। वीज और विवरण का समान अर्थ वाचकत्व होना चाहिये। और ब्रह्मा आदि का श्रीरामचन्द्रजी का शेषत्व है। और श्रीरामचन्द्रजी के शेष रूपमें वर्तमान ब्रह्मा आदि समस्त जगत् का श्रीरामजी के साथ कैङ्कर्य स्वरूप सम्बन्ध सिद्ध होता है।

इस षडक्षर श्रीराम मन्त्र में रेफ में अकार आकार और मकार अलग अलग पद हैं। इन पदों में विद्यमान विभक्तियों का वैदिक होने के कारण लोप हो गया है। रेफारूढा कहने से रेफ जिनका आधार है यह कथन से, रेफ और अकार आदि का आधाराधेय भाव सम्बन्ध है। रेफ का वाचकत्व है एवं श्रीसीतारामजी का वाच्यत्व है, रेफ और 'सीताराम' का तादात्म्य ससम्बन्ध है। रेफ का ही समस्त चराचर जगत् का कारणत्व है। इसप्रकार 'सीताराम' का सर्व जगत् कारणत्व निरूपण करते हुए कहा है कि इनसे चौदह भुवन उत्पन्न हुए हैं। इन चौदह भुवनों में नीचे भाग में होनेवाले अतल वितल सुतल रसातल आदि सात लोग तथा ऊपर होनेवाले भूः भुवः स्वः आदि सात लोक दो सातों को जोड़ने

घटान्तः प्रविष्टदीप इव जडान्तः प्रविष्टस्य श्रीरामस्य जगत्प्रकाशकत्वं कथमित्याशङ्कानिराशायाहमानव इति-मा प्रभा तया नवः नूतनः अव्याहतप्रकाश शक्तिमानित्यर्थः । अथवा अमाययास्वभावतः मानवः मनुष्याकृतिः । द्विभुजः कुण्डली इत्याद्यग्रेवक्ष्यमाणत्वात् । इत्थं मन्त्रे श्रीरामचन्द्रस्य जगत् सृष्टिस्थिति संहारकर्तृत्वेन स्वामित्वमन्तःप्रवेशेन च सर्वासुक्रियासु प्रवर्तकत्वम् । तेन श्रीरामस्य जगत् प्राणत्वं जगच्छरीरित्वं जगदाधारत्वञ्च निरूपितं भवति ॥१॥

पर चौदह भुवन होते हैं। इस ऋचा में कथित आभ्याम् का विभक्ति विपरिणाम के द्वारा अनयोः इस रूपमें परिवर्तन हो जाता है । इसप्रकार इन 'सीताराम' में चौदहों भुवन विद्यमान हैं। अथवा इन 'सीताराम' के द्वारा चौदहों भुवन उपसंहृत होते हैं। अर्थात् इन्हीं के द्वारा विनष्ट किये जाते हैं। इन चौदह भुवनों में सर्वेश्वर श्रीरामजी अगणित स्वरूपों में स्वयं को स्थापित किये। अर्थात् प्रविष्ट किये, उसकी रचना करके स्वयं उनमें प्रवेश कर गये । इस श्रुति वचन के अनुसार सभी का अन्तर्यामी के स्वरूप में और सभी का नियामक के रूपमें जैसे आकाश के आधार पर बनाये गये घट में आकाश का पहले से ही प्रवेश होता है, उसी प्रकार सभी के आधार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में विरचित किये गये चौदह भुवनों में श्रीरामचन्द्रजी का पूर्व में ही प्रवेश है। अन्दर में प्रविष्ट होकर प्राणियों का शासन करने वाला। इस श्रुति वचनानुसार अन्तः प्रविष्ट का ही नियमन कर्तृत्व होता है। इन वचनों के आधार पर श्रीरामचन्द्रजी का चराचर का अन्तर्यामित्व प्रतिपादित होता है ।

जैसे घडा के अन्दर प्रविष्ट दीपक बाह्य जगत् का प्रकाशक नहीं होता है। उसी प्रकार जडके अन्दर प्रविष्ट श्रीरामचन्द्रजी का संसार का प्रकाशकत्व किस तरह सम्भव होगा ऐसा सन्देह होने पर सन्देह का निवारण करने के लिये कहते हैं 'मानवः' मा का अर्थ प्रभा है उसप्रभा से नित नवीन अर्थात् अव्याहत प्रकाश शक्तिमान् अथवा विना किसी छल कपट के मनुष्याकृतिमान् दो भुजाओं वाले कुण्डल आदि आभूषणों को धारण करने वाले इत्यादि आगे कहा जाने वाला है । इसप्रकार मन्त्र में श्रीरामचन्द्रजी का संसार की सृष्टि स्थिति और संहार आदि का कर्ता होने से स्वामित्व निरूपित होता है, एवं अन्तः प्रवेश से समस्त चराचर प्राणियों के सभी क्रियाओं में प्रवर्तकत्व प्रतिपादित होता है। इससे श्रीरामचन्द्रजी का समस्त संसार का प्राणत्व एवं जगत् शरीरित्व होने से सर्वेश्वर श्रीरामजी जगदाधारत्व प्रतिपादित होते हैं ॥१॥

इत्थं वीजार्थनिरूपणेन जडचेतनात्मकस्य संसारस्य श्रीरामशेषत्वं प्रतिपाद्य द्वितीयान्वये बोध्यस्योपायनिरूपणार्थं जगत् प्राणायेत्यादिना नमसोऽर्थमाह–

जगत् प्राणायात्मने तस्मै नमः ।

स्यान्नमस्त्वैक्यं प्रवदेत् प्राक् गुणेनेति ॥२॥

स्वरक्षणोपायः स्वरक्षणप्रवृत्तिश्च 'मः' जीवात्मनो न स्यात् किन्तु जगत्प्राणस्य श्रीरामचन्द्रस्यैव, जगत्प्राणायेत्येतावन्मात्रोक्तौ वाय्वादावतिव्याप्तिः स्यात् तद्वारणायाह आत्मने इति, आत्मशब्दस्य चेतनबोधकत्वात् । अत्र षष्ठ्यर्थेचतुर्थी, जगत्प्राणस्यात्मनः श्रीरामस्यैव, द्वितीयो नमः शब्दः काकाक्षि गोलकन्यायेन वीजेन तद्विवरणेन चान्वेति, द्वितीय नमः पदं जीवपरमात्मनोरैक्यं प्रवदेत्, यथा वस्त्रादीनां गुणाः शुक्लादयः गुणगुणिनोरैक्यं गमयति तथैवानयोः । अत्र उपायस्वरूपज्ञानं चतुर्विधम् सम्बन्धज्ञानं, सम्बन्धयाथात्म्यज्ञानं सम्बन्धस्वरूपज्ञानं सम्बन्धस्वरूपयाथात्म्यज्ञानमिति भेदात् । श्रीरामस्य निरुपाधिकशेषित्वज्ञानं स्वस्य निरूपाधिकशेषत्वज्ञानं सम्बन्धज्ञानम् । श्रीरामस्य निरुपाधिकशरीरित्वं स्वस्य च शरीरत्वं इतिसम्यग् ज्ञात्वा स्थिति सम्बन्धयाथात्म्यज्ञानं, श्रीरामस्य धर्मित्वं स्वस्य च धर्मत्वं सम्यग् ज्ञात्वा स्थितिः, सम्बन्धस्वरूपज्ञानं, श्रीरामस्य स्वस्य च निरुपाधिकत्वेन धर्मिधर्मयोरैक्यज्ञानं सम्बन्धस्वरूपयाथात्म्यज्ञानम् । ऐक्यज्ञानञ्च विशेष्यविशेषणेसत्यपि स्वस्य स्वातन्त्र्येण प्रकाशनं यथा न भवतीति प्राग् गुणेनेति, जगत् प्रवेशित्वेन गुणेन जगदन्तः प्रविष्टस्य श्रीरामस्य नियामकतया शेषित्वं नियाम्यत्वाज्जगतः शेषत्वं गोगोत्ववद् धर्मिधर्मयोरभेदः । तेनैक्यं सिद्धम् । अत्र सखण्डाखण्डभेदेन नमः पदं द्विविधं, अखण्डं नमः पदं तन्त्रेणोक्तम् तत्रवीजोत्तरमास्थाय जीवोपायवाची, सखण्डञ्च मकारः जीववाची नकारो निषेधवाची, द्वितीयो जीववाची । नमः पदेन साधनान्तरत्यागः तथा 'द्रौपदीसहिताः सर्वे नमश्चक्रुः जनार्दनमित्युक्तेः शरणागतिः । गच्छध्वमेनं शरणं शरण्यमिति मार्कण्डेयवचनात् पाञ्चरात्रोक्तेश्च नमः शब्दस्य शरणपदस्थाने प्रयोगः । जीवात्मन उद्धाराय श्रीरामस्य शरणागति रेवोपाय इत्यर्थतोबोधः । इतिशब्द उपनिषत्प्रकरणसमाप्त्यर्थः ॥२॥

इसप्रकार वीजार्थ प्रतिपादन द्वारा जडचेतनात्मक संसार का सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का शेषत्व प्रतिपादन करके द्वितीय अन्वय के द्वारा ज्ञान कराने योग्य उपाय अर्थ का प्रतिपादन करने के लिये जगत्प्राणाय इत्यादि ऋचा के द्वारा नमः पद का अर्थ प्रतिपादन करते हुए कहते हैं-

सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का शेषस्वरूप जीव अपने संरक्षण का उपाय और अपने संरक्षण की प्रवृत्ति 'म' अर्थात् जीवात्मा का नहीं होगा। किन्तु समस्त संसार के प्राण स्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का ही है, क्योंकि सभी का नियामक एवं प्रवर्तक श्रीरामजी ही हैं। यहां यदि केवल 'जगत्प्राणाय' ही कहेंगे तो वायु आदि में अति व्याप्ति होगी, अतः उसे रोकने के लिये 'आत्मने' कहते हैं आत्मन् शब्द का चेतन अर्थबोधक होने के कारण। इन पदों में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग षष्ठी विभक्ति के अर्थ में किया गया है। तो इसका यह अभिप्राय प्रकट होता है कि-समस्त चराचर जगत् का प्राण स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी का ही यह है अन्य का नहीं है। दूसरा 'नमः' पद जिस तरह कौआ के आंख में एक ही पुतली होती है लेकिन दोनों दिशाओं में जुडती है उसी नियम के अनुसार 'नमः' पद वीज के साथ एवं विवरण के साथ दोनों से समन्वित होता है द्वितीय 'नमः' पद जीवात्मा एवं परमात्मा की एकता अर्थात् अभेद अर्थ को कहता है। जिसप्रकार वस्त्र आदि द्रव्यत्व से पृथक् होते हैं किन्तु शुक्ल आदि गुण वस्त्रादि से अभिन्न स्वरूप में स्थित होते हैं। जैसे गुण और गुणी की एकरूपता को कहते हैं। उसीप्रकार इन जीव और ब्रह्म की एकता स्वरूप अभेद है। प्रस्तुत ऋचा द्वारा कराया जानेवाला उपायज्ञान चार तरह से होता है। जीवात्मा एवं परमात्मा का सम्बन्ध ज्ञान, सम्बन्ध याथात्म्य का ज्ञान, सम्बन्ध के स्वरूप का ज्ञान एवं सम्बन्ध के स्वरूप का याथात्म्य ज्ञान, इन चार भेदों से उपाय ज्ञान होता है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का विना किसी उपाधि के शेषित्व का ज्ञान, और उपासक भक्त का विना किसी उपाधि का शेषत्व ज्ञान होना यह शेष शेषित्व भाव ज्ञान सम्बन्ध ज्ञान है। श्रीरामचन्द्रजी का निरूपाधिक शरीरी होने का ज्ञान का होना एवं उपासक का विना किसी उपाधि के शरीरत्व का ज्ञान होना इन तत्त्वों का वास्तविक ज्ञान करके स्थित का बोध होना सम्बन्ध का याथात्म्य ज्ञान है। श्रीरामचन्द्रजी का निरुपाधिक धर्मित्व ज्ञान एवं उपासक का रूपाधिक धर्मत्व का ज्ञान होना इन सवको सम्यक् तया

जानना स्थिति का सम्बन्ध स्वरूप ज्ञान है। श्रीरामजी का एवं स्वयं का निरुपाधिक रूपसे धर्मी एवं धर्म की एकता का ज्ञान होना सम्बन्ध स्वरूप याथात्म्य ज्ञान कहा जाता है। और एक रूपता का ज्ञान विशेष्य विशेषण भाव होने पर भी उपासक के स्वयं का स्वतन्त्र रूपसे प्रकाशन जिसप्रकार नहीं होता है इसलिये ऋचा में कहा गया है 'प्राग् गुणेन' यह पद। अर्थात् संसार प्रवेश शीलता एवं रूप गुण के द्वारा अखिल जगत् के अन्दर प्रवेश प्राप्त किये हुए श्रीरामचन्द्रजी का नियामक भाव होने के कारण शेषित्व है। तथा समस्त चराचर जगत् को श्रीरामजी द्वारा नियमन करने योग्य होने से समस्त जगत् का शेषत्व है। जिसप्रकार गो एवं गोत्व का परस्पर धर्मिधर्म भाव सम्बन्ध है इसलिये अभेद स्वरूप सम्बन्ध है उसीप्रकार श्रीरामजी एवं जगत् का धर्मिधर्म सम्बन्ध होने से एकरूपता है। इससे दोनों की एकता सिद्ध होती है।

इस ऋचा में सखण्ड एवं अखण्ड इन दोनों भेदों से 'नमः' पद दो प्रकार का है। अखण्ड नमः पद तन्त्र द्वारा कहा गया है। एक शब्द का अनेक अर्थ परक व्यवहार को तन्त्र कहा जाता है। अतः अखण्ड नमः पद का यहां पर दो अर्थों में व्यवहार किया गया है। उसमें वीज मन्त्र के पश्चात् नमः पद को मानकर नमः पद का जीवात्मा के उपाय वाची नमः पद है। द्वितीय नमः पद जीव वाची है इसप्रकार एक रूप में दिखता हुआ नमः पद का दो अर्थ हुआ। नमः पद के द्वारा प्रतीत होता है कि-श्रीरामचन्द्रजी को छोड़कर संसार के समस्त साधनों का परित्याग ऐसा अर्थ बोध होता है। इसप्रकार 'द्रौपदी के सहित सभी युधिष्ठिर भीम आदि जनार्दन श्रीकृष्णजी को प्रणाम किये' यह कहे जाने से प्रतीत होता है कि-तथा 'इन शरणागत वत्सल इनकी शरणागति को प्राप्त करो, इस महर्षि मार्कण्डेय के वचन से नमः शब्द का अर्थ 'शरण' पद के स्थान पर प्रयोग किया जाना समझा जाता है। जीवात्मा का संसार सागर अर्थात् जन्म मरण परम्परा से उद्धार करने के लिये सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की शरणागति ही एकमात्र उपाय है। यह अर्थवशात् अभिप्राय ज्ञान होता है। इति इस उपनिषद् के प्रकरण समाप्ति सूचन हेतु व्यवहार किया गया है ॥२॥

विना यन्त्रेण पूजाचेत् देवता न प्रसीतीति पूर्वमुक्तम् तत्र यन्त्र स्वरूपं किमिति जिज्ञासायां चतुर्थोपनिषत् प्रारभ्यते, तत्रोपेयस्वरूपं चतुर्थ्यर्थमाह जीववाचीति-

जीववाचिनमो नाम चात्मारामेति गीयते ।
तादात्मिका ग्या चतुर्थीतया चायेति कथ्यते ॥१॥

अत्र नमः पदे 'न' इति प्रतिषेधार्थकमव्ययं मेति प्रथमान्तः जीववाची आत्मा तथा मकारेण पञ्चविंशः प्रकीर्तितः इतिस्मृतेः । वेदस्य परोक्षवादत्वादिय मुक्तिः । जीववाची नमः शब्दः स्यात् आत्मा रामेति गीयते' इतिवक्तव्ये, 'नमो' इतिकथनं कश्चनाचार्यवानधिकारी एव जानात्विवितिभावः । वेदस्य परोक्ष-वचनप्रियत्वात् । तथैव रामेति प्रातिपदिकेनात्मापरमात्मा च कथ्यते । किन्त्वत्र नमोमकारस्य जीववाचित्वात् परमात्मपरत्वमेव । स्वतः प्रमाणत्वाद् वेदस्य यथा दृष्टव्याख्यानेनात्र तादात्म्ये चतुर्थी, तेन तस्मै रामाय ज्रीवः तादात्म्यं बोधयति । तदुक्तम्-

षडक्षरोवह्निपूर्वस्तारकस्त्वभिधीयते । महापातकिनां पापदहने दहनोपमः ॥

नमः शब्दस्य सादनान्तरसन्त्यागोप्यर्थः स्मर्यते यथा-

'साधनान्तरसन्त्यागो नमः शब्दो हि संशति ।
अनेन शरणापत्तिः परमैकान्तिनां मतेति ॥

विना यन्त्र के द्वारा यदि पूजा की जाती है तो देवता प्रसन्न नहीं होते हैं यह पूर्व में कहा जा चुका है । उस पूजा में यन्त्र का स्वरूप क्या होगा ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं । इसलिये ही चतुर्थ उपनिषत् प्रारम्भ करते हैं । उसमें उपेय का स्वरूप चतुर्थी विभक्ति का अर्थ जीव वाची है-

जीव वाचक नमो यह पद है उसकी तात्विक आत्मा श्रीरामजी हैं यह कहा जाता है, उस स्वरूप को बताने वाली जो चतुर्थी विभक्ति है उसके द्वारा 'रामाय' में 'आय' यह कहते हैं ।

इसमन्त्र में 'नमः' पद में न यह प्रतिषेध अर्थ बोधक अव्यय है । 'म' यह प्रथमान्त पद है । जो जीव अर्थ का वाचक है । इसप्रकार मकार के द्वारा पचीसवां तत्त्व आत्मा कहा गया है । वेद का परोक्षवाद प्रियत्व के कारण यह कथन है । जीव वाचक 'नमः' शब्द होता है । आत्मा 'राम' यह कहे जाते हैं । यह कहा जाना चाहिये था । पुनः 'नमः' यह कथन, कोई सद् गुरु के शरणागत आचार्य सम्पन्न अधिकारी ही समझ पाये इस भावना से कहा है । क्योंकि वेद का परोक्ष वस्तु तत्त्व कथन प्रिय

जीववाचिनमोनामेति नमः शब्दस्य जीववाचकत्वमपि । अन्येनापि प्रकारेण श्रीराममहामन्त्रार्थोवर्ण्यते यथा-परीक्ष्यलोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्....प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्यामित्यादिश्रुत्या अव्यक्तादि स्थावरान्तान् लोकान् धर्माधर्मजनितान् ज्ञात्वा ब्रह्मज्ञानाभिलाषी निर्विण्णः गुरोः शरणापन्नो भवति यतो हि सर्वे सांसारिकाः पदार्थाः कर्मकृता अनित्याश्चेति अक्षरस्य पुरुषस्य विज्ञानार्थं शमदमादिसम्पन्नं गुरुमभिगच्छेत् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठ मित्यादि-रिक्तहस्तस्तुनोपेयाद् राजानं देवतां गुरुमिति वचनात् समित् पाणिः स परमविरक्ताय ब्रह्मविद्यां तत्त्वतः प्रोवाच । ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्य हृदिस्थिताः ।

अथमर्त्योऽमृतोभवति अत्रब्रह्म समश्नुते ॥

है । उसीप्रकार 'राम' इस प्रातिपदिक के द्वारा परमात्मा कहा जाता है । किन्तु यहां पर 'नमः' के मकार का जीव वाचक होने के कारण परमात्मपरत्व ही है । वेद के स्वतः प्रमाण होने के कारण जैसा देखा गया है वैसा व्याख्यान करने से यहां पर तादात्म्य अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है । इससे उस 'राम' के लिये जीव तादात्म्य का बोध कराता है ऐसा कहा गया है ।

वह्नि वीज का 'र्' अक्षर पूर्व में है जिसके ऐसा छ अक्षरों वाला मन्त्र तारक होने के कारण तारक कहा जाता है । जिसप्रकार आग सभी वस्तुओं को जला देता है उसीप्रकार महापापियों के भी समस्त पापों को वह्निरूप यह 'र' वीज जला देता है ।

'नमः' शब्द का अन्य साधनों का परित्याग भी अर्थ है, ऐसा स्मृति कहती है । अन्य साधनों का सम्यक् प्रकार से परित्याग करना 'नमः' शब्द कहता है । जीव वाचक 'नमः' यह प्रातिपदिक है इस प्रमाण से 'नमः' शब्द का जीव वाचकत्व भी है । दूसरे प्रकार से भी मन्त्र का अर्थ वर्णन किया जाता है जैसे कि-कर्म सञ्चित लोकों को सभी तरह से विचार कर तत्त्व ज्ञानाभिलाषी ब्राह्मण परमवैराग्य को प्राप्त किया....उस अधिकारी को ब्रह्मविद्या नाम से ख्यात ज्ञानोपदेश दिया । अव्यक्त से आरम्भ कर स्थावर पर्यन्त संसार को धर्म अधर्म से उत्पन्न जानकर, ब्रह्मज्ञान का अभिलाषी परम विरक्त होकर गुरु का शरणागत होता है । क्योंकि सांसारिक समस्त पदार्थ कर्म जनित है एवं नश्वर है अविनाशी पुरुष का तात्विक ज्ञान के लिये शम

वेदोऽवेदज्ञस्य वेदज्ञानाभावं बोधयति, ब्रह्मज्ञानमन्तरा च सायुज्यमुक्तिर्न भवति। ब्रह्मापरोक्षज्ञानमन्तरा संशयनिवृत्तिरपि न जायते।

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ इति ॥

वेदेन ब्रह्मणः स्वरूपं विज्ञाय ब्रह्मनिष्ठोपदेशेन ब्रह्मणः साक्षात्कारो भवति। ततो मन्त्रार्थविज्ञानतत्परस्य श्रीरामाख्यब्रह्मसाक्षात्कारो जायते, अतो मन्त्रार्थविचारतत्परेण भाव्यम्। वेदानां कारणमोंकारः। ॐकारविज्ञानेन सर्ववेदार्थविज्ञानम्। कारणविज्ञानेन कार्यविज्ञानात् तस्यापि प्रणवस्य कारणम् तारकं षडक्षरश्रीराममन्त्रम्। तथाह्यत्रोपनिषदि 'किं तारकं किं तरति' इति प्रश्ने याज्ञवल्क्य आह-तारकं दीर्घानलं विन्दुपूर्वकं पुनः दीर्घानलं माय नमः'' इतितारकस्य स्वरूपमभिधाय, 'ब्रह्मात्मकांसच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम्' इत्युपासनीयत्वमुक्तम्।

दम आदि से परिपूर्ण गुरु को जानकर श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के पास जाना चाहिये 'श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ' इत्यादि कहा है। राजा और गुरु के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिये इस वचन से समिधा हाथ में लेकर जाना कहा है। उस तत्त्वज्ञ गुरु ने परम विरक्त शिष्य को ब्रह्मविद्या का उपदेश किया।

ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म के समान होता है। जब ब्रह्म जिज्ञासु की मनः स्थित अन्य समस्त इच्छाये नष्ट हो जाती हैं इसके पश्चात् मनुष्य अमर हो जाता है। इसके वाद ब्रह्म साक्षात्कार जनित आनन्दानुभव करता है। वेद कहते हैं कि जो वेदज्ञ नही है उसे ज्ञान नहीं होता है। ब्रह्म ज्ञान होने के पश्चात् मुक्ति होती है उसके अभाव में नहीं होती है। जब तक ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होता है तब तक सन्देह का निवारण नहीं होता है।

उस परावर परब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने के पश्चात् ज्ञाता के हृदय की गांठ टूट जाती है सभी प्रकार के सन्देह नष्ट हो जाते हैं, तथा जन्म जन्मान्तर से सञ्चित समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं। यह विषय वेद के द्वारा ब्रह्म का स्वरूप जानकर ब्रह्मनिष्ठ के उपदेश से ब्रह्म का साक्षात्कार से होता है। तत्पश्चात् मन्त्रार्थ विज्ञानी को 'राम' नामक परब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। अतः मन्त्रार्थ का विचार करने में तत्पर हो जाना चाहिये। वेदों का ॐकार कारण है। ॐकार के विज्ञान से सभी वेदों का

ननु जडानामक्षराणां कथं सच्चिदानन्दात्मकत्वम् ? नेमे जडा, अपितु सच्चिदानन्दात्मकाः। एतत् षडक्षरम् प्रणवस्वरूपम्, ननु षडक्षराणां कथं त्रिवर्णात्मकमिति जिज्ञासायामाह-त्रिवर्णात्मकस्य षडक्षरकार्यत्वम्। अकारः प्रथमाक्षरः, उकारो द्वितीयाक्षरः, मकारस्तृतीयाक्षरः अर्धमात्राचतुर्थाक्षरः विन्दुः पञ्चमाक्षरः, नादः षष्ठाक्षरः तारकत्वात् तारकः। इत्थं मन्त्रार्थज्ञानवतः सर्ववेद वित्त्वं निष्पद्यते। नावेदविन्मनुतेबृहन्तमितिश्रुतेः। रां वीजस्य चराचरत्वोक्तेश्च, सकलचराचरसहितसर्ववेदमन्त्रादीनां रकारबीजे स्थितिनिरूपणात् तारकमन्त्राद्य क्षरस्य सर्वलोकवेदेश्वराद्यश्रयत्वात् रकार ज्ञानेन ब्रह्मज्ञानित्वसिद्धेः न श्रुति-विरोधः।

अभिप्राय विज्ञान हो जाता है। क्योंकि कारण विज्ञान से कार्य विज्ञात होने से ॐकार विज्ञान से सर्ववेदार्थ विज्ञात होता है। और उस प्रणव का कारण षडक्षर तारक श्रीराम महामन्त्र है। क्योंकि उसीप्रकार इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् में-क्या तारक है और क्या तारता है' ऐसी जिज्ञासा होने पर महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्यजी कहते हैं-तारक दीर्घानल है ऐसे दीर्घानल जिसके विन्दु पूर्व में है ऐसे 'म' के लिये प्रणाम है। इसतरह तारक का स्वरूप कहकर ब्रह्म स्वरूप सच्चिदानन्द जिनका नाम है इसकी उपासना करनी चाहिये। ऐसा कहकर तारक की उपायनीयता को कहा।

अब प्रश्न उठता है कि जड (चेतना हीन) अक्षरों की सच्चिदानन्द स्वरूपता कैसे होती है ? ये अक्षर जड नहीं हैं अपितु सत् चित् आनन्द स्वरूप हैं। ये षडक्षर प्रणव स्वरूप हैं। ये छ अक्षर कैसे तीन वर्ण रूप होते हैं ? तो कहते हैं-यह त्रिवर्णात्मक ॐ षडक्षर का कार्य है 'रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवोमोक्षदायकः' श्रीराम नाम से उत्पन्न ॐकार मोक्ष देनेवाला है ऐसा श्रीमद्रामायण में लिखा है। अकार प्रथम अक्षर उकार द्वितीय अक्षर, मकार तीसरा अक्षर आधी मात्रा चतुर्थाक्षर विन्दु पञ्चम अक्षर और नाद छठा अक्षर है। यह उद्धारक होने से तारक कहा जाता है। इस तरह मन्त्रार्थ ज्ञान सम्पन्न की सर्ववेदज्ञता सिद्ध होती है। जो वेदवित् नहीं है वह सर्व महान् ब्रह्म को नहीं जानता है यह श्रुतिवचन प्रमाण है।

और 'रां' वीज की चराचरमयता कहे जाने से समस्त चराचर के सहित सभी वेद सभी मन्त्र आदि का रकार बीज में स्थिति बताये जाने के कारण तारक मन्त्र के आदि अक्षर 'र्' में स्थित समस्त लोक वेद देवता आदि को आधारत्व होने से 'र'

तथा च 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, तद्विष्णोः परमंपदमित्यादिश्रुतेः, वेदैश्च सर्वैरहमेववेद्य इत्यादिस्मृतेश्च ब्रह्मणः सर्ववेदवेद्यत्वमुक्तं भवति। सच्चिदानन्दात्मकं ब्रह्मणः स्वरूपं, तत् प्राप्त्युपायं च तद्विरोधिस्वरूपं वेद स सर्वार्थवित्त्वेनोच्यते। तारकाद्यक्षरस्य परंब्रह्मस्वरूपं यो वेद स सर्वार्थवित् सर्ववेदार्थविज्ञानित्वात् ब्रह्मज्ञानीति सिद्ध्यति ॥१॥

तारकमन्त्रस्य प्रथमाक्षरे रेफे आरूढस्य प्रथमाक्षरस्य अकारस्य ब्रह्मवाचकत्वम्, द्वितीयस्याकारस्य विष्णुवाचकत्वम् 'अनन्तोऽग्न्यासनेन्दुर्नाशामेकाक्षरोवतु' इतिविष्णुवाचकत्वस्मृतेः, मकारः शिववाचकः, 'मः शिवः चन्द्रमाः

कार के ज्ञान से ब्रह्म ज्ञानित्व सिद्ध होता है। इसलिये श्रुति वचन का विरोध नहीं है "यावद्वैदार्थगर्भम्" आदि श्लोक से आनन्दभाष्यकारजी ने श्रीराम वीज को सभी वेदों से गर्भित यानी सभी वेदसमुदाय 'रां' इस वीज में अन्तर्हित हैं ऐसा विस्तार पूर्वक निरूपण किया है विशेषार्थी वहीं मेरी टीका में देखें और इसप्रकार 'सभी वेद जिसके पद को कहते हैं' वह विष्णु का परम पद है इत्यादि श्रुतिवचनों से प्रमाणित है। और सभी वेदों से मैं ही जानने योग्य हूँ इत्यादि स्मृति से ब्रह्म का सर्ववेद ज्ञेयत्व प्रतिपादित होता है कि सत् चित् तथा आनन्दमयता ब्रह्म का स्वरूप है। और उस ब्रह्म के प्राप्ति का उपाय, तथा ब्रह्मस्वरूप के साक्षात्कार का प्रतिबन्धक स्वरूप को जो जानता है वह समस्त अर्थ तत्त्व का ज्ञाता होने के रूपमें कहा जाता है। तारक मन्त्र के आद्यक्षर रूप को जो जानता है वह सर्वार्थ ज्ञानी है क्योंकि सर्ववेदार्थ ज्ञानी होने से ब्रह्मज्ञानी है यह सिद्ध होता है ॥१॥

तारक मन्त्र के प्रथम अक्षर रेफ पर आरूढ प्रथम अक्षर अकार ब्रह्म वाचक है, द्वितीय अकार विष्णु वाचक है रेफ अग्नि का वाचक है अतः ऐसे विष्णु स्वरूप आकार एक अक्षर नासिका की रक्षा करें। इसप्रकार अकार का विष्णु वाचकत्व कहा गया है। मकार शिव अर्थ का वाचक है, म का अर्थ शिव चन्द्रमा और ब्रह्मा अर्थ होता है ऐसा कोश है। इससे ब्रह्मा आदि का वाचक रेफ है यह सिद्ध होता है। क्योंकि मन्त्रों के अर्थ शब्दानुसारी है इसलिये जप करना चाहिये। और समस्त वाच्य अर्थों के वाचक होने से भी जप करना चाहिये। इस मन्त्र में क्रिया है-मेरी आत्मा श्रीराम है, मेरे शरीरी श्रीरामजी हैं, वे ही ऐह लौकिक पारलौकिक फलों के दाता होने से मेरे अनन्य लाभकारी एवं संरक्षण कारी हैं। और वे ही उद्धार के उपाय स्वरूप

वेधाः' इतिकोशः । तेन ब्रह्मादीनां वाचकोऽयमितिसिद्धम् । मन्त्राक्षराणा मन्वर्थकत्वात् जप्तव्यत्वं सर्ववाच्यवाचकत्वञ्च । तत्र क्रिया ममात्मा 'रामः' मच्छरीरी स एव ऐहलौकिकपारलौकिकफलदत्वात् मम योगक्षेमकारी, स एव चोपायभूतः, नान्य इतिबुद्धिव्यापारः । कर्म इज्यपदसान्निध्यात् तत् कैङ्कर्यस्वरूपं कर्म, तज्जपेन च स सर्वेश्वरश्रीरामः पूजनीयः । 'स्तवैरर्चेन्नरः सदा' इतिस्मृतेः । तदाराधकत्वात्तच्छेषभूतः । श्रीरामस्य जगद् व्यापारकत्वात् जीवस्यान्तर्ब हिर्भूतत्वम् । जीवस्य स्थितिप्रवृत्यादीनां श्रीरामाधीनतया श्रीरामशेषत्वमेव जीवस्वरूपम्, 'प्रकृतिं विद्धि मे परां जीवभूता' मितिगीतोक्तेः भगवच्छेषत्वम् ।

जीवात्मपरमात्मनोः सम्बन्धः शेषशेषिभावः, स च चतुर्विधः, सम्बन्ध ज्ञानम्, सम्बन्धयाथात्म्यज्ञानम्, सम्बन्धस्वरूपज्ञानम्, सम्बन्धस्वरूप याथात्म्यज्ञानम्, चेति । श्रीरामस्य निरुपाधिकशेषित्वज्ञानम् स्वस्य च निरुपाधिकशेषत्वज्ञानम् सम्बन्धज्ञानम् । तत् सम्यक् ज्ञात्वास्थितिः सम्बन्धयाथात्म्यज्ञानम् । श्रीसीतापतेः श्रीरामस्य निरुपाधिकशरीरित्त्वं स्वस्य च

हैं दूसरा नहीं इसप्रकार की बुद्धि की क्रिया है। कर्म एवं इज्य पद के सान्निध्य से उन श्रीरामजी की सेवा स्वरूप कर्म है। और 'राम' नाम के या मन्त्र के जप के द्वारा श्रीरामजी ही पूजनीय हैं। जैसे कि स्मृति में कहा है उनके स्तुति वचनों से मानव सदैव उनकी पूजा करे। श्रीरामजी का आराधक होने से श्रीरामजी का जीव शेषभूत है। श्रीरामजी का सर्वलोक व्यापक होने से और जीव मात्र के अन्दर एवं बाहर सर्वत्र ओत प्रोत होने से, तथा जीव की स्थिति प्रवृत्ति आदि का श्रीरामजी के अधीन होने से श्रीरामजी का शेषत्व है। यही जीव का स्वरूप है। 'मेरी पराप्रकृति समझो वह जीव भूत है' इत्यादि गीता के वचनानुसार जीव के अन्दर बाहर श्रीरामजी व्यापक रूपसे हैं।

जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध शेष शेषीभाव है। जीव शेष है एवं परमात्मा शेषी हैं। वह सम्बन्ध चार प्रकार का है। सम्बन्ध ज्ञान सम्बन्ध का याथात्म्य ज्ञान, सम्बन्ध स्वरूप ज्ञान, एवं सम्बन्ध स्वरूप याथात्म्य ज्ञान ये चार सम्बन्ध ज्ञान हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का विना किसी उपाधि के शेषित्व ज्ञान और अपना निरुपाधिक शेषत्व ज्ञान सम्बन्ध ज्ञान है। और इस शेष शेषीभाव को जानकर तदनुसार अपनी स्थिति रखना सम्बन्ध याथात्म्य ज्ञान है । श्रीसीतानाथ श्रीरामचन्द्रजी का

निरुपाधिकशरीरत्वज्ञानम्, सम्बन्धस्वरूपज्ञानम् । श्रीरामस्य निरुपाधिकधर्मित्वं स्वस्य च निरुपाधिकधर्मत्वज्ञानं सम्बन्धस्वरूपयाथात्म्यज्ञानम् । धर्मधर्मिणोः ऐक्यं ज्ञातमेव । एवम्भूतस्य मन्त्रस्य मननात् मननपूर्वकं जपात् जपकर्तुः त्राणनं संसाराद् रक्षणं परिपालनं करोति तस्मान् मन्त्र उच्यते । यथा शरीरवाचकाः शब्दाः शरीरिणि पर्यवस्यन्ति तद्वाचकाः भवन्ति । अन्यथा शरीरं त्यक्त्वापित्रादि लोकगतानां जीवानां पिण्डोदकप्रदानानुपपत्तेः । अयं मन्त्रः ब्रह्मणः समत्वात् ब्रह्म, गर्भजन्मजरामरणसंसारभयादितारकत्वात् तारकमुच्यते, अन्वर्थोऽयं मन्त्रः इतिसंज्ञां प्रकाश्य, सर्वेषां भगवन्मन्त्राणां संसारनिवृत्तिपूर्वकम् मोक्षप्रदानसामर्थ्य साम्येऽपि श्रीराममहामन्त्रस्य झटिति संसारतारणशक्तेः आधिक्यात् श्रेष्ठत्व-

निरुपाधिक शरीरित्व एवं स्वयं का निरुपाधिक शरीरत्व का ज्ञान सम्बन्ध स्वरूप का ज्ञान है। श्रीरामजी का निरुपाधिक धर्मित्व एवं स्वयं का निरुपाधिक धर्मत्व ज्ञान सम्बन्ध स्वरूप याथात्म्य ज्ञान है। धर्म एवं धर्मी की एकात्मता का ज्ञान सर्व विदित ही है। इसप्रकार के मन्त्र का मनन करने के कारण अर्थात् मनन पूर्वक जप के कारण जप करनेवाला साधक का त्राणन अर्थात् संसार से संरक्षण अर्थात् परिपालन करता है इसलिये मन्त्र कहा जाता है। जैसे शरीर वाचक शब्द शरीरी में सुस्थिर होता है। अर्थात् शरीर वाचक शब्द शरीरी वाचक होते हैं। अन्यथा शरीर छोडकर पितृ आदि लोकों को गये हुए जीवों को पिण्ड एवं जल प्रदान करना असंगत हो जायगा। उसी तरह यह मन्त्र ब्रह्म के समान होने से ब्रह्म कहा जाता है। गर्भ जन्म बुढापा मृत्यु संसार आदि भयों से उद्धारक होने से यह तारक कहा जाता है। यह मन्त्र अर्थानुगत है इसलिये इसके नाम का प्रकाशन कर, सभी भगवान् के उन मन्त्रों का संसारादि विचार पूर्वक मोक्ष प्रदान करने के सामर्थ्य की समानता होने पर भी श्रीराममन्त्र के अति शीघ्र संसार से तारण की शक्ति के अधिकता होने से श्रेष्ठता कही गयी है। अतः इससे सिद्ध होता है कि श्रीराम महामन्त्र ही उपासनीय एवं जानने योग्य है। 'हे सौम्य जैसे एक ही कारणभूत मृत्तिका पिण्ड के विज्ञान से समस्त मृत्तिका कार्य घट शराव आदि का ज्ञान हो जाता है' इस कारण विज्ञान श्रुति के द्वारा षडक्षर ब्रह्मतारक के विज्ञान से सभी मन्त्रों का अर्थ विज्ञात हो जाता है यह अभिप्राय है। इसीलिये यही श्रीराम महामन्त्र उपासना योग्य है, मन्त्र में क्रिया पद इसलिये है कि श्रीराम महामन्त्र को छोडकर दूसरा कोई उपाय नहीं है। कर्म पद अनन्य भोग्यत्व को कहता है। इज्य

मुक्तम् । एतेनास्यैवोपास्यत्वं ज्ञेयत्वञ्च । 'यथा सौम्य एकेन मृत्पिण्डेन विज्ञातेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं भवति' इतिकारणविज्ञानश्रुत्या षडक्षरब्रह्मतारकश्रीराममन्त्र विज्ञानेन सर्वमन्त्राणामर्थविज्ञानम्भवतीतिभावः । अतएव एतदेवोपास्यम् । मन्त्रे क्रियापदमनन्योपायत्वम् । कर्मपदमनन्यभोग्यत्वम्, इज्यपदमनन्यशेषत्वम् वदति । तेन जपकर्तुः आकारत्रयसम्पन्नत्वं ज्ञापितं भवति । अत्रेज्यपदेन सर्वजीव स्वामित्वशेषित्वस्वरूपं श्रीरामस्य बोध्यम् ।

श्रीरामभिन्नेशेषित्वबुद्धिः उपायबुद्धिः फलबुद्धिश्च विरोधिन्यः । अर्थ पञ्चकविज्ञादेवमन्त्रः ग्राह्यः । पञ्चविधाः तदुक्तम्

प्राप्यस्य ब्रह्मणोरूपं, प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः ।
प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेः तथा प्राप्तिविरोधिनः ॥

अयमेव सर्ववेदेतिहासादिसारार्थः । तदैव ब्रह्मणि नितरां तिष्ठति ब्रह्म निष्ठः । वह्निबीजतद्वाच्यश्रीरामयोः सृष्ट्यादिकारणत्वात् जगद् श्रीरामयोः शेषशेषिभावः । स च स्वयं प्रकाशरूपः । ॐकाराक्षरं शक्त्यारजःसत्वतमोगुणैः

पद अनन्य शेषत्व अर्थ को प्रकाशित करता है । इसलिये जप कर्ता का आकारत्रय १-अनन्य शरणत्व २-अनन्य भोग्यत्व एवं ३-अनन्य शेषत्व से सम्पन्नत्व बोध कराया जाता है । यहां पर इज्य पद के द्वारा सभी जीवों का स्वामीत्व एवं शेषित्व स्वरूप श्रीरामजी का समझना चाहिये ।

भगवान् श्रीरामजी से भिन्न देव में स्व शेषित्व बुद्धि तथा स्व के हेतु सायुज्य मुक्ति की उपाय बुद्धि और फल दातृत्व बुद्धि स्व विरोधी है । जो अर्थ पञ्चक के विज्ञानी है उन्हीं आचार्य से श्रीराम महामन्त्र की दीक्षा लेनी चाहिये । वे पांच प्रकार के कहे गये हैं-

प्राप्त करने योग्य परब्रह्म का स्वरूप, और प्राप्त करनेवाला जीवात्मा का स्वरूप, तथा परब्रह्म के प्राप्ति का उपाय, परब्रह्म के प्राप्ति का फल तथा परब्रह्म प्राप्ति के विरोधियों को जानता है वह अर्थ पञ्चक ज्ञाता कहलाता है । यही सभी वेदों एवं इतिहासादि का सारभूत अर्थ है । तब ही ब्रह्म में अतिशय स्थित रहता है इसलिये ब्रह्मनिष्ठ कहा जाता है । वह्नि बीज 'र्' एवं उसका अर्थ तथा 'राम' इनका सृष्टि आदि का कारणत्व होने से संसार एवं 'राम' का शेष शेषीभाव सम्बन्ध है । और वह स्वयं प्रकाश स्वरूप है, ॐकार अक्षर चित् शक्ति स्वरूप श्रीसीतादेवीजी के नाम से प्रसिद्ध

जगत् सृष्टिस्थितिलयकारणम् । चिद् रूपया श्रीसीताख्यया शक्त्या रजः सत्व तमोगुणैः सृष्टिस्थितिलयकारणत्वेन तिष्ठति, तेन श्रीसीताद्वारा श्रीरामस्य जगत्कारणत्वं श्रीरामतापनीये प्रतिपाद्यते । तदुक्तम्-

श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी ।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ॥
सा सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृति संज्ञिका ॥

प्रणवत्वात् प्रकृतिः । नतु जडा अतो वटवीजवत् सर्वलयस्थानत्वं श्रीरामे निर्वाधम् ॥२॥

ब्रह्मविष्णुमहेश्वराणां जगत् सृष्टिस्थितिसंहारकर्तृत्वात् तेषां स्वामित्वं तेन च शेषरूपस्य जगच्छ्रीरामयोर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराणां सामान्यरूपेण शेषित्वं मा भूदितिरेफारूढत्वमुक्तम्, ततस्तेषां ब्रह्मादीनामपि रेफाश्रितत्वात् श्रीराम शेषत्वमेव न तुशेषित्वम् 'रकाराज्जायते ब्रह्मेत्यादिस्मृतेश्च । इत्थञ्च श्रीरामस्यानन्यशेषित्वंनिर्वाधम् । इत्थं वटवीजश्रुत्याजगतः ब्रह्मादीनाञ्च रेफवाच्य शक्ति के द्वारा रजो गुण सत्व गुण एवं तमो गुण से संसार की उत्पत्ति स्थिति एवं संहार कारण रूपमें स्थित है' इससे श्रीसीताजी द्वारा श्रीरामजी का जगत् कारणत्व श्रीरामतापनीय उपनिषद् में प्रतिपादन किया जाता है । यही कहा भी है-

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के सान्निध्य के कारण समस्त जगत् को आनन्द प्रदान करनेवाली सभी शरीर धारियों के उत्पत्ति पालन एवं संहार कारिणी जो शक्ति है उसे 'सीता' समझना चाहिये उसी का नाम मूल प्रकृति है । प्रणव रूपता से वह प्रकृति है किन्तु जड नहीं । इससे वटवीज न्याय से श्रीरामजी में सभी का लय स्थानत्व बाधा रहित सिद्ध है ॥२॥

ब्रह्मा विष्णु और शिव का संसार की सृष्टि स्थिति और संहार का कर्तृत्व होने से स्वामित्व सिद्ध होता है इससे शेष स्वरूप जगत् एवं श्रीरामजी का भी ब्रह्म विष्णु और महेश्वर का सामान्य रूपसे शेषित्व सिद्ध न हो जाय इसलिये 'रेफारूढामूर्तयः स्युः' यह कहा गया है । इससे सभी ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर आदि को रेफाश्रितत्व होने से श्रीरामजी का शेषत्व ही उन तीन देवों में है यह नियत है । 'रेफ से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं' इत्यादि स्मृति में भी यही कहा है । इसप्रकार श्रीरामजी का अनन्य शेषित्व सिद्ध होता है । इसप्रकार 'यथैव वटवीजस्थ' इस श्रुति से संसार का एवं

श्रीरामानन्यशेषत्वं श्रीरामाख्यपरब्रह्मब्रह्मविष्णुमहेश्वरमयस्य वह्निवीजस्य चराचरजगत् कारणत्वं रेफश्रीरामयोस्तादात्म्येन श्रीरामस्य शेषित्वं ज्ञायते। अतएव श्रीसीतारामयोः पूज्यत्वं ज्ञेयत्वञ्च 'राम एव परंब्रह्म राम एव परंतपः। राम एव परं तत्त्वं श्रीरामोब्रह्मतारकम्' 'रामः भुवनेषु प्राविशत्। तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' इत्यादिश्रुतेः। 'रामः' मानवः-मा-प्रभा तया, नवः-नवावयवः, जगत्प्राणायात्मने तस्मै नमः, इत्यस्यायमर्थः, यथा प्राणं विना शरीरस्य स्थितिः न भवतिः, तथैव जगत्प्राणं श्रीरामं विना जगत्स्वरूपस्थितिः न भवतीतिभावः। अतएव सर्वजीवशरीरिणः श्रीरामस्य सर्वयोगक्षेमकारित्वं सिद्ध्यति। अत्रा लब्धस्य स्वस्य प्रापणं योगः स्वप्राप्तस्य संसारगमनाद् रक्षणं क्षेमः। शेषशेषिणोः

ब्रह्मा आदि का रेफ शब्द वाच्य श्रीरामजी का अनन्य शेषत्व और श्रीराम नामक परब्रह्म का ब्रह्मा विष्णु महेश्वरमयत्व होने से वह्नि का चराचर जगत् का कारणत्व सिद्ध होता है। इसीलिये श्रीसीतारामजी का सर्वलोक पूज्यत्व एवं ज्ञेयत्व नियत है भगवान् श्रीरामजी समस्त भुवनों में व्यापक रूपसे प्रविष्ट हुए। संसार की रचना करके स्वयं उसमें प्रविष्ट हुए श्रीरामजी ही परब्रह्म एवं परतत्त्व आदि हैं इत्यादि श्रुति से। 'राम' मानव हैं इसका अर्थ है कि मा-अर्थात् प्रभा उससे नूतन अवयवों वाला, संसार प्राण एवं आत्मा स्वरूप उस 'राम' के लिये प्रणाम। इसका यह अभिप्राय है कि-जिस तरह प्राण के विना शरीर की स्थिति नहीं होती है। उसी तरह संसार के प्राण स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी के विना संसार के स्वरूप की स्थिति नहीं हो सकती है। अत एव समस्त चराचर जीव शरीर का शरीरी श्रीरामचन्द्रजी का सभी का योगक्षेमकारीत्व प्रतीत होता है यह सिद्ध होता है। यहां पर अप्राप्त अविदित भगवान् के स्वरूप का विशेष रूपसे ज्ञात कराना योग है। भगवदनुकम्पा से भगवत् साक्षात्कार किये हुए जीव का पुनः संसार अर्थात् जन्म मरण परम्परा में पडने से रक्षा करना क्षेम कहा जाता है। शेष और शेषी जीवात्मा और परमात्मा का तादात्म्य स्वरूप सम्बन्ध है। कुछ भेद की सहनशीलता होते हुए भेद की सहिष्णुता का अभाव होना तादात्म्य सम्बन्ध कहा जाता है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के तादात्म्य का अनुभव करते हुए और अनन्य भाव से चिन्तन करते हुए ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम महामन्त्र का जप करे। यही विषय सुन्दरी तन्त्र में श्रीजानकीजी के द्वारा अपने पिता के प्रति कहा गया है।

मैं 'राम' हूँ मैं श्री 'राम' से भिन्न नहीं हूँ। मैं 'ब्रह्म' हूँ ब्रह्म से भिन्न शोक

जीवपरमात्मनोः तादात्म्यलक्षणः सम्बन्धः । किञ्चिद् भेदसहिष्णुत्वे सति भेदासाहिष्णुत्वं तादात्म्यम् । श्रीरामतादात्म्यमनुभवन् ध्यायंश्च मन्त्रं जपेत् । तदुक्तं सुन्दरीतन्त्रे जानक्या स्वजनकं प्रति-

अहं रामो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं नशोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् ॥ तथा-

'यथा रामस्तथाऽहं च भेदः कश्चिन्नचावयोः ।
सर्वेश्वरी यथा चाहं रामः सर्वेश्वरस्तथा ।
षड्गुणो भगवान् रामः षड्गुणाहं स्वभावतः'

इत्यादिकं श्रीवशिष्ठसंहितायाञ्च यथा स्वकरेण निजकेशसंस्कारे-कृतेऽन्योन्यमुपकारबोधो न भवति, तथैवावयवभूतेनात्मना अवयविनः श्रीरामस्य क्रियमाणे कैङ्कर्ये कृतेनोपकारभानं भवति । अयमेव रामोऽहम्, ब्रह्मैवाहम्, सर्वं भाजन जीव नहीं हूँ । मैं सत् चित् आनन्द स्वरूप हूँ । तथा नित्यमुक्त स्वभाव वाला परब्रह्म ही हूँ । जैसे श्रीरामजी हैं वैसी ही मैं हूँ इन दोनों में कोई भेद नहीं है । जैसे श्रीरामजी सर्वेश्वर हैं वैसे ही मैं भी स्वभावत सर्वेश्वरी हूँ जैसे श्रीरामजी षड्गुण ऐश्वर्य से युक्त हैं वैसे ही मैं भी स्वभावत षड्गुण ऐश्वर्य से युक्त हूँ' ऐसा श्रीवशिष्ठ संहिता में कहा है अतः दोनों तत्त्व एकन्हैं । जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने हाथों के द्वारा अपने केशों का संस्कार करता है, तो हाथ ने केश का उपकार किया ऐसी अनुभूति नहीं होती है, उसीप्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का कैङ्कर्य किये जाने पर, अवयव स्वरूप जीव के द्वारा अवयवी स्वरूप श्रीरामजी की सेवा से उपकार का बोध नहीं होता है । यही भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के साथ तादात्म्य भाव का अनुशीलन है । और जिस प्रकार महासागर के जल में पडा हुआ रुई के कण के अन्दर वाहर सर्वत्र जल अनुस्यूत होता है अतः जलके ही रूप में बोध होता है । उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा अन्दर वाहर सर्वत्र व्याप्त होने से जीव की श्रीरामरूप से ही प्रतीति होती है । यही है मैं साक्षात् श्रीराम स्वरूप हूँ, मैं ब्रह्म स्वरूप ही हूँ, ब्रह्म स्वरूप से अतिरिक्त नहीं हूँ । सबकुछ दृश्य जगत् ब्रह्म स्वरूप ही है । यह आत्मा ब्रह्मात्मक है । इत्यादि जीव ब्रह्मैक्य विषयक श्रुति वचनों का यही तात्पर्य है । ब्रह्म तत्त्व का विज्ञानी उपासक अपने आत्मा के स्वरूप में ही परमात्मा की उपासना करे, यही उपास्य की उपासना का विधान है । अन्य प्रकार से उपासना नहीं करे । यही कहते हैं नमः शब्द जीव

ह्येतद् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, इत्यादिश्रुतीनामाशयः । ब्रह्मविदुपासकः स्वात्मतयैवोपास्यमुपासीत नान्यथा । तदाह-नमः शब्दः जीववाचकः, रामशब्द आत्मार्थबोधकः ततः आय इति तादात्म्यबोधकः सम्बन्ध इति निर्गलितार्थः ॥३॥
वाचक है 'राम' शब्द आत्मा वाचक है उसके वाद आय जोडते हैं वह तादात्म्य सम्बन्ध बोधक है यह सारभूत अर्थ है ॥३॥

ननु जीवः श्रीरामाधीनस्वरूपस्थित्यादिभिरपृथक् सिद्धः । तादात्म्यानुभवेन 'रामोऽहं' मितिचिन्तयेदितिश्रीराममन्त्रस्यार्थ इतिचेत् तदा श्रीरामतन्मन्त्रयोर्वाच्य वाचकप्रसिद्धिहानिः स्यादत आह-

मन्त्रोऽयं वाचको रामो वाच्यः स्याद्योग एतयोः ।
फलदश्चैव सर्वेषां साधकानां न संशयः ॥२॥

यथा गामानयेत्युक्ते सामान्यस्यैव गवादेर्वाच्यत्वम् । नतु कपिलत्वादि विशिष्टस्य, तथैव अयं मन्त्रः वाचकः श्रीरामस्तु वाच्यः, सामान्यविशेष योरविनाभावात् । एवं जीवपरमात्मनोः शेषशेषिभावात् जगत् शेषी इत्यर्थबोध कोऽपि मन्त्रः श्रीरामस्यैव वाचकः । ननु मन्त्रोजप्यः अर्थानुसन्धानेन किम्, अथ वा अर्थोऽनुसन्धेयः किं जपेन इत्यत आह-जपतदर्थानुसन्धानयोः योगः समेषां साधकानां मोक्षफलदः इत्यर्थः । सर्वेषां साधकानां मोक्षफलदत्वं दृढं कुर्वन्नाह न संशयः इति । तेन वाच्यार्थानुशीलनपूर्वकं वाचकानुष्ठानं साधकानां फलप्रदं भवति । अतोऽन्यवाच्यं वाचकं वा मत्वा येऽनुष्ठानं कुर्वन्ति तेषां मोक्षशून्यत्वं जायते । स्वरूपविशेषानुसन्धानपूर्वकं नाम्नः शक्तिविशेषः विशिष्टफलसाधको भवति । तथा लोकेऽपिशक्तिमत्पदार्थविशेषनामोच्चारणाद् भूतप्रेतप्रभृतयः पलायन्ते, न तु शक्तिहीननामोच्चारणात् । मन्त्रार्थानुसन्धानपूर्वकजपादेव, ब्रह्मविद् ब्रह्मैवभवति, योयद्रूपं स्मरति स तद्रूपोभवति ।

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥

इत्यादिश्रुतिस्मृतिवचनानां विरोधसमाधानम्भवति । स्मृतीतिहास पुराणादिवचनेभ्यो वेदार्थरहस्यबोधात्, तेषु च बहुशः जीवानामीश्वरनियम्यत्वेन श्रवणात् शेषत्वबोधः, तदेकत्वावबोधस्तु स्वरूपस्थितिप्रवृत्यादीनामीश्वरनि

यम्यतया तदपृथक्त्वसिद्धिः । विवर्तवादस्वीकारेतु मायाप्रेरकस्येश्वरस्यासेव्यत्व प्रसंगः प्रबन्धगुरुशिष्यादिपरम्परावैकल्यञ्च । तस्मात् स्वरूपानुसन्धानपूर्वकं नामिनोमन्त्रस्मरणं समुचितं सकलेष्टफलप्रदञ्च ॥२॥

प्रश्न उठता है कि जीव का भगवान् श्रीरामजी के अधीन होने के कारण अपने स्वरूप स्थिति प्रवृत्ति आदि से श्रीरामजी से अभिन्न सिद्ध है। श्रीरामजी के साथ जीव तादात्म्यानुभव के द्वारा मैं श्रीराम स्वरूप हूँ यह चिन्तन करे यह यदि ब्रह्मतारक श्रीराम मन्त्र का अर्थ है तो भगवान् श्रीरामजी और उनका मन्त्र इनमें वाच्य वाचक भाव प्रसिद्धि की हानि होगी अत एव मन्त्रारम्भ करते हैं-

यह मन्त्र वाचक है भगवान् श्रीरामजी वाच्य हैं इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध है। और सभी साधकों को मन्त्रार्थानुसन्धान पूर्वक जप करने से सायुज्य मोक्ष स्वरूप विशिष्ट फल प्रदान करनेवाला यह मन्त्र है, इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं। जैसे गाय लाओ इस वाक्य का उच्चारण करने पर सामान्य (जाति वाचक) ही गो आदि अर्थ वाच्य होता है। न कि कपिलत्व श्रृङ्गित्व आदि विशिष्ट अर्थ का वाचक है। उसीप्रकार यह मन्त्र वाचक है, और श्रीराम अर्थ तो इस मन्त्र का वाच्यार्थ है। समान्य और विशेष का अविनाभाव सम्बन्ध है। अर्थात् विशेष सामान्य के विना नहीं रहता है। और सामान्य विशेष के विना नहीं रहता है। इसी तरह जीव और परमात्मा का शेष शेषीभाव सम्बन्ध होने के कारण से समस्त चराचर जगत् का अर्थ वशात् बोधक भी यह मन्त्र श्रीरामजी का ही वाचक है। अब प्रश्न उठता है कि मन्त्र जप करने योग्य है, फिर अर्थानुसन्धान से क्या प्रयोजन ?। अथवा मन्त्रार्थ अनुशीलन करने योग्य है, उसके जप करने से क्या फल ऐसी आशङ्का होने पर कहते, मन्त्र का जप और उसके अनुशीलन का परस्पर सम्बन्ध समस्त मन्त्र के साधकों (उपासकों) को सायुज्य मोक्ष फलप्रदान करनेवाला यह मन्त्र है यह भाव है। सभी साधकों को मोक्ष प्रदायकता को दृढ करते हुए, उपनिषद् कहती है इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि वाच्यार्थ का अनुशीलन करते हुए वाचक श्रीराममन्त्र का जपानुष्ठान साधकों को मोक्ष फल प्रदायक होता है। अत एव अन्य वाचक मन्त्र अथवा अन्य वाच्य अर्थ को समझकर जो अनुष्ठान करते हैं, उनको मोक्ष फल प्राप्ति की शून्यता होती है। स्वरूप विशेष का अनुशीलन पूर्वक श्रीराम नाम में विशेष शक्ति है, और विशिष्ट फल का साधक तारक मन्त्र होता है। इस तरह लोक व्यवहार में भी शक्तिमान्

पदार्थ विशेष का नामोच्चारण करने से भूतप्रेत पिसाच आदि भाग जाते हैं, ऐसा देखा जाता है। न कि शक्तिहीन नाम के उच्चारण से भागते हैं। अतः मन्त्र के अर्थ का अनुशीलन पूर्वक जप से ही, ब्रह्म तत्त्व का विज्ञानी ब्रह्म स्वरूप होता है जो जिस स्वरूप का स्मरण करता है वह उसी स्वरूप को प्राप्त करलेता है। गीता में भी कहा है-जिन जिन भावों को साधक स्मरण करता हुआ अपने अन्त काल में इस शरीर को छोडता है, वह उन-उन भावों को ही प्राप्त करता है। हे अर्जुन वह साधक उन भावों के संस्कार से संस्कृत होने के कारण संस्कार वश उन रूपों को प्राप्त करता है। इत्यादि श्रुति स्मृति वचनों के विरोधों का समाधान भी होता है। स्मृति इतिहास और पुराण आदि के वचनों से वेदों के अर्थ का गूढरहस्य का बोध होने के कारण, और स्मृतिपुराणेतिहासादि में बहुत वार जीवों का ईश्वर के द्वारा नियन्त्रित करने योग्य के रूपमें सुने जाने से शेषत्व का बोध होता है। शेष एवं शेषी के तादात्म्य रूप एकत्व का बोध तो स्वरूप स्थिति प्रवृत्ति आदि का ईश्वर के द्वारा नियमन्त करने योग्य होने से ईश्वर एवं जीव में अपृथक्त्व की सिद्धि होती है। विवर्तवाद स्वीकार करने पर तो माया का प्रेरक ईश्वर का असेव्यत्व प्रसंग होगा। तथा अनेक दिव्य प्रबन्ध गुरु शिष्य परम्परा आदि की निष्फलता भी हो जायेगी। इसलिये मन्त्रार्थ स्वरूप का अनुसन्धान पूर्वक नामी के मन्त्र का स्मरण करना समुचित है यही समस्त अभिमत फल प्रदायक है ॥२॥

परब्रह्मणः प्राप्तये तत्स्वरूपस्यानुसन्धानमावश्यकम्-इतिवक्ष्यमाणं विषयं हृदिनिधाय केवलध्यानादिना स्वरूपसाक्षात्कारो भवतीति पक्षस्य निराशाय वाचकोपासनया एव वाच्यः साक्षात्कृतोभवति तदवश्यमुपासनीयमित्याह-

यथा नामीवाचकेन नाम्ना योभिमुखोभवेत्।
तथा वीजात्मकोमन्त्रोमन्त्रिणोऽभिमुखो भवेत् ॥३॥

जिसका नाम होता है वह नामी कहा जाता है जिस प्रकार नामी वाचक नाम का उच्चारण करने से अनभिमुख या विमुख नामी सम्मुख हो जाता है उसी प्रकार वह्नि वीज है आत्मा जिसकी ऐसा यह वीजात्मक ब्रह्म तारक श्रीराम महामन्त्र है जिस मन्त्र का उच्चारण करने से मन्त्र वाच्य परब्रह्म सम्मुख हो जाते हैं अर्थात् मन्त्र का जप करने से परब्रह्म स्वरूप भगवान् श्रीरामजी अपने दृष्टि गोचर हो जाते हैं ।३।

यस्य नाम भवति स नामी उच्यते । यथा देवदत्तादिः । तत्र देवदत्तादिनाम्ना समुच्चारितेन स अभिमुखोभवति विमुखोऽपि सम्मुखोभवति । तथैव वीजात्मकः अयं तारकमन्त्रः वह्निवीजरूपः षडक्षरः श्रीराममहामन्त्रः संकीर्त्यमानः मन्त्रिणः मन्त्रप्रतिपाद्यस्य श्रीरामस्य बोधकोऽस्ति । तेन तदुच्चारणेन श्रीराममन्त्रः श्रीरामं सम्मुखं करोति । अतः अयं श्रीराममन्त्रः सर्वेश्वरश्रीरामसाक्षात्कारहेतुरस्ति ।

पूर्वज्ञातोऽज्ञातस्वरूपो वा नामी नामोच्चारणेन सम्मुखोभवति तथैव ईश्वरोऽपि स्वनामोच्चारणमात्रेण साक्षात्कृतोभवति । स्वरूपस्मरणात् नामोच्चारणस्याधिकं महत्वमस्ति । अतएवोक्तं 'राम? त्वत्तोऽधिकं नामेति । यतोहि शरीरी विनासेतुनिर्माणेनैव नामजपेनापारं भवसागरं तरतीतिभावः ॥३॥

परब्रह्म की प्राप्ति के लिये परब्रह्म के स्वरूप का अनुशीलन करना आवश्यक है इसलिये आगे कहा जाने वाला विषय को मनमें रखकर केवल ध्यान आदि के द्वारा ही स्वरूप साक्षात्कार होता है इस पक्ष का खण्डन करने के लिये । भगवत् स्वरूप वाचक मन्त्र की उपासना से ही मन्त्र वाच्य अर्थ का अर्थात् परब्रह्म का साक्षात्कार होता है । अतः परब्रह्म वाचक मन्त्र की उपासना अवश्य करनी चाहिये यह विचार कर मन्त्र का अवतरण करते हैं-

जिसका नाम होता है वह नामी कहा जाता है जैसे देवदत्त आदि । वहां पर देवदत्त आदि नाम समुच्चारित करने से वह देवदत्त सम्मुख हो जाता है विमुख होने पर भी सम्मुख होता है उसी प्रकार वीजात्मक यह तारक श्रीराम मन्त्र अग्नि वीज रूप यह षडक्षर श्रीराम मन्त्र सम्यक् उच्चारण करने पर मन्त्र प्रतिपाद्य श्रीरामजी का बोधक होता है । अतः मन्त्र के उच्चारण से मन्त्र श्रीरामजी को सम्मुख कर देता है। इसलिये यह श्रीराम मन्त्र भगवत् साक्षात्कार का कारण है ।

पहले से जाना गया स्वरूप अथवा अज्ञात स्वरूप वाला भी नामी नामोच्चारण से अभिमुख होता है उसीतरह परमेश्वर श्रीरामजी भी नामोच्चारण मात्र से साक्षात् दृष्टिगोचर होते हैं । स्वरूप का स्मरण करने के अपेक्षा नामोच्चारण का अधिक महत्व है इसलिये कहा गया है कि 'हे राम आपसे बढकर अधिक महत्त्वशाली आपका नाम है । क्योंकि प्राणी विना सेतु निर्माण के ही आपका नाम जपने से अपार भवसागर को पारकर जाता है ॥३॥

अथ वक्ष्यमाणपूजांगतया वीजादिन्यासमाह-

वीजशक्तीन्यसेद्दक्षवामयोस्तनयोरपि ।
कीलोमध्येविनाभाव्यः स्ववाञ्छाविनियोगवान् ॥४॥

वीजम् प्रथमाक्षरं शक्तिः अन्त्याक्षरं क्रमशः दक्षिणवामयोः स्तनयोः न्यसेत् । कीलः वीजशक्तिभ्यां पार्थक्येन चिन्तनीयः मध्यगतमक्षरत्रयं द्वयोर्मध्ये न्यसेत् । वीजशक्तिमध्येसंश्लिष्टतया वा उपासनीयः । स्वाभिलाषासिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः कर्तव्यः ॥४॥

भगवदुपासना का अंग होने के कारण वीज आदि के अंगन्यासादि प्रकार कहते हैं वीज और शक्ति को वाम एवं दक्षिण स्तनों पर न्यास करे । श्लिष्ट अक्षर को मध्य में कीलक के मध्य में न्यास करे, अपनी अभिमत सिद्धि के लिये मन्त्र का विनियोग करे ।

वीज का अर्थ है प्रथम अक्षर, शक्ति का अर्थ है अन्तिम अक्षर इन दोनों को दाहिना एवं वायां स्तनों पर न्यास करे । कील का वीज एवं शक्ति से पृथकता पूर्वक चिन्तन करना चाहिये । अर्थात् मध्य के तीन अक्षर कील है उसे वीज और शक्ति के मध्य में न्यास करे । वीज और शक्ति के मध्य में कील अक्षर को संश्लिष्ट होने से सभी की एक साथ उपासना करनी चाहिये अपनी अभिलाषा की सिद्धि के लिये । जप में विनियोग करना चाहिये यह आवश्यक है ॥४॥

वीजशक्तिकीलन्यासाः सर्वेषु मन्त्रेषु सामान्याः इत्यत आह-

सर्वेषामेव मन्त्राणामेषः साधारणः क्रमः ।
अत्र रामोऽनन्तरूपस्तेजसा वह्निना समः ॥५॥

अत्र मन्त्रे रेफाश्रयत्वेन प्रणवहेतुत्वं शक्तित्रयं सहितमूर्तित्रयाश्रितत्वेन वह्नि वीजस्य प्रणवहेतुत्वं चराचरकारणत्वञ्च, सकलप्राणिमोक्षादिप्रदायकत्वञ्च । उपायोपेयफलविरोध्यादिबोधकत्वं मन्त्रार्थः ज्ञायते । अतोऽवगम्यते सर्वेषामेव मन्त्राणामेकार्थपरत्वम् । षडक्षरतारकश्रीराममन्त्रस्य तु सर्वकारणत्वं द्योत्यते । कारणस्वरूपविज्ञानेन कार्यस्वरूपविज्ञानात् । तेन षडक्षरज्ञानान्तरं सर्वमन्त्र विज्ञानंभवति । एषः क्रमः सर्वेषामेवमन्त्राणां सामान्यक्रमः । ऋते ज्ञानान्नमुक्ति रितिश्रुतिवचनात् स्वरूपादिज्ञानरहितस्य मुक्तिनिषेधात् । षडक्षरश्रीराम महामन्त्रद्वारैव सर्वेषां मुक्तिरिति निश्चीयते । 'ज्ञानमार्गञ्च नामतः' इतिश्रुत्या

श्रीरामनाम्नो ज्ञानहेतुत्वम् । अन्येषां भगवन्मन्त्राणां स्वरूपादिज्ञानाजनकत्वेन न मोक्षप्रदातृत्वम् । अत्र सर्वेश्वरश्रीरामोऽनन्तरूपः परिच्छेदरहितम् । द्विभुजादिसहस्त्रभुजान्तंरूपं यस्य तथोक्तः । तदुक्तम्-'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना । 'सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः' 'सर्वेषामवताराणामावामेवावतारिणौ' इत्याद्यागमोक्त्या च सर्वेश्वरश्रीरामस्य सर्वावतारित्वं सिद्धम् । तेजसा तेजस्वरूपेणैकगुणेन वह्नितुल्यः । तदुक्तम् 'अहं वैश्वानरोभूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः । पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमोभूत्वा रसात्मकः । इत्यादिस्मृतेः सर्वशरीराणां शरीरीविशिष्टस्वभावः । जगत्पालनार्थमग्निसोमनिष्ठभोक्तृभोग्यत्व गुणद्वयप्रधानः श्रीरामः अनन्तः वह्निसदृश इतिभावः ॥५॥

वीज शक्ति कीलकादि न्यास सभी मन्त्रों में समान ही होता है अतः कहते हैं- सभी देवताओं के मन्त्रों का वीजादिन्यास समान क्रम से होता है। इस मन्त्र में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अनन्त रूप धारी हैं जो अमित प्रभाव से अग्नि तुल्य हैं। इस ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम मन्त्र में रेफ के प्रणव एवं ब्रह्मा आदि का आश्रय होने से प्रणव का कारणत्व है, तीन शक्ति के सहित तीन मूर्तियों को रेफाश्रित होने से वह्नि वीज का प्रणव हेतुत्व एवं चराचर जगत् कारणत्व ज्ञात होता है। उपाय उपेय फल और विरोधी आदि का बोधकत्व मन्त्र का अर्थ ज्ञात होता है। इसीलिये समझा जाता है सभी मन्त्रों का ही एक प्रयोजन परत्व है। लेकिन षडक्षर तारक मन्त्र का तो सर्वमन्त्र लोकादि कारण प्रकाशित होता है। कारण स्वरूप का विशिष्ट ज्ञान हो जाने से समस्त कार्य स्वरूप का विशिष्ट ज्ञान हो जाता है। इस कारण से षडक्षर तारक मन्त्र ज्ञान के वाद सभी मन्त्रों का विज्ञान हो जाता है। यह क्रम सभी मन्त्रों के विज्ञान में सर्व साधारण क्रम है। 'विज्ञान के विना मुक्ति नहीं होती है' इस श्रुति वचन से उपास्य देवता के स्वरूपादि ज्ञान से रहित उपासक के मुक्ति का निषेध होने से षडक्षर तारक मन्त्र के द्वारा ही सभी की मुक्ति होती है यह निश्चय किया जाता है। 'ज्ञान मार्ग को नाम जप से प्राप्त करे इस श्रुति से भगवान् श्रीरामजी के नाम का ज्ञान हेतुत्व सिद्ध है। अन्य भगवान् के मन्त्रों का स्वरूपादि ज्ञान जनक नहीं होने से मोक्ष प्रदायकत्व नहीं है। इस मन्त्र में भगवान् श्रीराम अनन्त स्वरूपधारी नामरूपादि गणना सीमा से अतीत दो भुजाधारी से लेकर सहस्त्र भुजा तक जिनका रूप है ऐसे, ऐसा कहा है, उपासकों के कार्य के लिये ब्रह्म की रूपकल्पना की गयी है, इस श्रुति वचन एवं सभी अवतारों

के अवतारी रघुकुलमणि श्रीरामजी हैं और 'सभी अवतारों के अवतारी हम दोनों अर्थात् श्रीसीतारामजी हैं' इन आगम वचनों से सर्वेश्वर श्रीरामजी का सर्वावतारित्व सिद्ध होता है। विलक्षण तेज स्वरूप एक गुण से भगवान् अग्नि तुल्य हैं। यही गीता में भी कहा है-मैं वैश्वानर (अग्नि) बनकर प्राणी मात्र के देह में आश्रित हूँ। चन्द्रमा बनकर समस्त ओषधियों को पुष्ट करता हूँ' इत्यादि वचनों से। सभी प्रकार के शरीरों का शरीरी विशिष्ट स्वभाव युक्त भगवान् श्रीरामजी हैं यह नियत है जगत् का पालन करने के लिये अग्नि चन्द्र निष्ठ भोक्तृत्व भोग्यत्व-ये दो गुण प्रधान हैं जिन में ऐसे श्रीरामचन्द्रजी अनन्त अग्नियों के समान हैं ॥५॥

अथ श्रीरामस्य सोमात्मकत्वंबोधयन् श्रुतिराह-

सत्वनुष्णगुविश्वश्चेदग्निसोमात्मकं जगत्।
उत्पन्नं सीतया भाति, चन्द्रश्चन्द्रिकया यथा ॥६॥

वे श्रीरामचन्द्रजी तो अनुष्णाशीत गुणात्मक चन्द्र हैं यह गतिशील संसार अग्निसोमात्मक है। अनन्त चन्द्र तुल्य आह्लादकारी हैं जिनसे परस्पर विपरीत गुणात्मक जगत् उत्पन्न हुआ वे जिस तरह चन्द्रमा चन्द्रिका से नित्य युक्त है उसी तरह श्रीरामजी श्रीसीताजी के साथ सुशोभित होते हैं ॥६॥

वह्निरूपः स अनुष्णगु अनुष्णाशीतः गावः किरणाः यस्य चन्द्रविभूतिकत्वात् चन्द्रतुल्यः अनेकचन्द्रतुल्य इतिभावः, जगत्कारणस्य विलक्षणशक्तिमत ईश्वरस्य विपरीतगुणवदग्निसोमात्मकत्वेऽपि न हानिः। विश्वरूपः परेशश्रीरामो यदि अग्निसोमात्मकस्तदा तदुत्पन्नं जगदपि तद्रूपं भवितुमर्हिति। यथा चन्द्रः चन्द्रिकया शोभते तथा श्रीसीतया श्रीरामः शोभते ॥६॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का सोमात्मकत्व प्रकाशित करती हुई श्रुति कहती है-

वह वह्नि रूप श्रीराम अनुष्णाशीत किरण जिसका है, ऐसे चन्द्र विभूति वाला होने से चन्द्र तुल्य हैं। अर्थात् अनेक चन्द्रों के तुल्य हैं। संसार के कारण विलक्षण शक्तिमान् ईश्वर का विपरीत गुण वाला अग्निसोमात्मक होने पर भी कोई दोष नहीं है। विश्वरूप श्रीरामजी यदि अग्निसोमात्मक हैं तो उससे उत्पन्न संसार भी अग्नि एवं सोम के समान ही शीत एवं ऊष्ण हो सकता है। जैसे चन्द्र चन्द्रिका से शोभित होता है, उसी तरह सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी अभिन्न स्वरूप से श्रीसीताजी के साथ शोभा प्राप्त करते हैं ॥६॥

प्रकृत्या सहितः श्यामः पीतवासा जटाधरः ।

द्विभुजः कुण्डलीरत्नमालीधीरोधनुर्धरः ॥७॥

श्यामः इन्द्रनीलमणिकान्तिः पीताम्बरधरः केशवान् जटाशब्दस्य केशोपलक्षकत्वात् बाहुद्वययुक्तः 'बाहूराजन्यः कृतः' इतिश्रुतेः धनुर्धरः, आयुध स्यातिप्रियत्वेन नित्यसहचारित्वम्, कुण्डली कुण्डलाभूषणसम्पन्नः, रत्नमाली, बहुमूल्यरत्नमालाधरः धीरः विकारकारणसत्यपि क्षोभरहितः श्रीरामोराजते ॥७॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी इन्द्र नीलमणि के समान नील कान्ति युक्त, पीतवर्ण कौशेयधारी सुन्दर श्यामल केश सम्पन्न, यहां पर जटा शब्द केश का उपलक्षक है, क्योंकि रत्नमाली कुण्डली आदि राज धर्मोपलक्षक है। दो भुजाओं वाले, क्योंकि वेद में बाहु शब्द में द्विवचन निर्दिष्ट है पुरुषसूक्त वेद वाक्य का यथार्थ विवेचन पुरुषसूक्त प्रकाश में किया हूँ अतः विशेषार्थी वहीं देखें। धनुष नामक आयुध को भगवान् का अतिशय प्रिय होने के कारण नित्य सहचारित्व है। कुण्डल नामक कर्णाभूषण धारी बहुमूल्य रत्नों की माला पहने हुए, विकार के विविध कारणों के होने पर भी किसी प्रकार के क्षोभ से रहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विराजते हैं ॥७॥

प्रसन्न वदनोजेता धृत्यष्टकविभूषितः ।

प्रकृत्या परमैश्वर्याजगद्योन्यांकितांकभृत् ॥८॥

सदा प्रसन्नाननः सर्वविजयी धृष्टिप्रभृतिभिः अष्टाभिः मन्त्रिभिः समलङ्कृतः, प्रकृतिसहित्योक्तं विशेषेणाह-ब्रह्मादीनामपि नियमनकर्त्र्या चिद् रूपया स्वाभिन्नस्वरूपया प्रकृत्या श्रीसीतादेव्या निखिलजगत्कारणस्वरूपया अङ्कितः चिह्नितः वामाङ्कस्तं बिभर्ति स श्रीसीतासंश्लिष्टः श्रीरामः शोभते ॥८॥

सर्वदा प्रसन्नमुख कमलवाले सभी चराचर जगद् विजयी धृष्टि आदि आठ नित्य अमात्यो से सम्यक् अलङ् कृत, यद्यपि पहले प्रकृति सहित श्रीराम कह चुके हैं पुनः विशेष रूपसे कहते हैं-चित् स्वरूप प्रकृति अभिन्न रूपसे नित्य सहचारिणी श्रीसीतादेवीजी जो समस्त जगत् के कारण स्वरूपा हैं उनसे चिह्नित अङ्कित जिनका वाम अङ्ग है ऐसे श्रीसीतादेवीजी से संश्लिष्ट भगवान् श्रीरामजी शोभित हैं ॥८॥

हेमाऽऽभया द्विभुजया सर्वालङ्कारया चिता ।

श्लिष्टकमलधारिण्या पुष्टः कोशलजात्मजः ॥९॥

पुनः परेशश्रीरामस्य विशेषतां प्रकाशयति-कोशलजा श्रीकौशल्या तस्या आत्मजः तनयः हेम्नः आभा इव आभा यस्या तया द्विभुजधारिण्या सर्वाभरणभूषितया चिद्रूपया जनकात्मजया कमलमालाधारिण्या श्रीसीतया श्लिष्टः श्रीसीताश्लिष्टजानन्दपरिपूर्णः श्रीरामः शोभते ।

अत्रोपनिषदि प्रकृतिजगद्योनिचिताप्रभृतिविशेषणैः श्रीसीतायाः जगत् कारणत्वम् परमैश्वर्यपूर्णत्वेन ब्रह्मादिनियामकत्वम् । श्रीसीतारामयोः परंप्रेम विह्वलत्वेन सर्वजनानन्दप्रदत्वञ्च विज्ञायते । लीलाविभूतिस्थस्य श्रीरामस्य परविभूतिनायकत्वज्ञापनाय कोशलजात्मज इत्युक्तम् ॥९॥

पुनः भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की विशेषता को श्रुति प्रकाशित करती है→कोशल नरेश तनया श्रीकौशल्याजी के आत्मज श्रीरामचन्द्रजी सुवर्ण सदृश कान्तिशालिनी द्विभुज धारिणी सभी तरह के आभरणों से समलङ्कृत चित्स्वरूपिणी जनक तनया श्रीसीताजी जो कमल मालालंकृत हैं ऐसी श्रीसीतादेवीजी के संश्लेष जनित आनन्द से परिपूर्ण होकर सुशोभित हैं ।

इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् में प्रकृति जगद्योनि चित् आदि विशेषणों से वर्णित श्रीसीताजी का जगत् कारणत्व एवं ऐश्वर्य से पूर्ण होने से ब्रह्मा आदि का नियामकत्व कहा है । श्रीसीतारामजी के अभिन्न स्वरूप के वर्णन से सर्वानन्द प्रदत्व बताया गया है । लीला विभूति में स्थित श्रीरामजी का परम विभूति नायकत्व बोध कराने के लिये कोशलजात्मज शब्द से कथन है प्रकृत मन्त्र में "कमलधारिणी" विशेषण सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के हेतु प्रयुक्त है । इसी विशेषण के कारण कतिपय साम्प्रदायिक साहित्यों में "कमलादेवी" लिखने की परिपाटि देखी जाती है एवं तदनुरूप ही अनेक साधकों को ज्ञान भी है तथा कमलादेवी का स्थान या उनकी छवी का अन्वेषण भी करते हैं पर वह कमलादेवी नाम की कोई अन्य देवी नहीं है इस वेदमन्त्र में लिखित 'कमलधारिणी' से ही कमलादेवी कहने की प्रथा वर्षों से चली आ रही है अतः साधकों को "देवी श्रीः" ऐसा सुधारकर शुद्ध पाठ तैयार करलेना चाहिये । श्रीवैष्णवों की देवी वेद एवं श्रीमद्रामायण विहीत सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ही हैं अन्य नहीं ॥९॥

श्रीरामस्य वामाङ्के श्रीसीतयाश्लिष्टत्वमभिधाय, दक्षिणे श्रीलक्ष्मणेनालङ्कृतत्वमभिधत्ते-

दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुः पाणिना पुनः ।
हेमाभेनानुजेनैव तदा कोणत्रयं भवेत् ॥१०॥

अथ अपरे दक्षिणे भागे अनुजेन भ्रात्रा धनुर्धरेण श्रीलक्ष्मणेन पुनः सम्बद्धः । तदा श्रीसीतारामलक्ष्मणाः त्रयः प्रतिपादिताः, तेषामाश्रयत्वेन त्रिकोणंभवेत् । त्रिकोणस्य परस्पराकारतया श्रीरामदेहभूतयन्त्राकारस्य जगद्हेतुत्वमुक्तम् । श्रीलक्ष्मणस्य च सर्वरक्षाभारसहत्वमुक्तम् ॥१०॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का वाम अङ्ग में श्रीसीताजी आश्लिष्ट होना कहकर इस मन्त्र में दक्षिण भाग में श्रीलक्ष्मणजी से अलंकृत होना कहते हैं→इसके वाद श्रीरामजी के दक्षिण भाग में श्रीरामजी के पश्चात् अवतार ग्रहण करनेवाले हाथ में धनुष वाण को धारण किया हुआ स्वर्णिम कान्ति परिपूर्ण श्रीलक्ष्मणजी से श्रीरामजी सम्बद्ध सुशोभित होते हैं । श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी से श्रीरामजी को सम्बद्ध होने पर इन श्रीसीताजी श्रीरामजी और श्रीलक्ष्मणजी का आश्रय होने के पश्चात् त्रिकोण बन जायगा । त्रिकोण रेखा में एक एक रेखा के परस्पर आश्रित होने से एक दूसरे का आकार बनता है जो श्रीरामजी का देहभूत यन्त्र के आकार का जगद् हेतुत्व कहा गया है । और श्रीलक्ष्मणजी को सर्वरक्षा भारसहत्व कहा गया है ॥१०॥

श्रीलक्ष्मणस्यापि पूजाङ्गभूतो मन्त्रो वर्तते, तदाह-

तथैव तस्य मन्त्रश्च यश्चाणुश्च स्वङेन्तया ।
एवं त्रिकोणरूपं स्यात् तं देवा ये समाययुः ॥११॥

यथैव श्रीरामस्य मन्त्रस्तथैव श्रीलक्ष्मणस्यापि मन्त्रस्तमुद्धरन्नाह श्रीलक्ष्मणसम्बन्धी अणुः यो मन्त्रः स स्वङेन्ततया वोद्धव्यः, स्वशब्देन बीजनाम्नीज्ञेये, चकारः नमोऽन्तसमुच्चयार्थः, तेन 'लँ लक्ष्मणाय नमः' इत्याशयः । 'सीतारामौ तन्मयावत्र इतिश्रीराममन्त्रस्यैव श्रीसीतामन्त्रज्ञापनात् न पृथक् श्रीसीतामन्त्रः इतिकेचित् । किन्तु मन्त्रेऽस्मिन् प्रथमचकारः नमोऽन्तसमुच्चयार्थः द्वितीयचकारः श्रीजानकीमन्त्रसमुच्चयायातः 'श्रीं सीतायै स्वाहा' इतिनिष्पन्नः । यथाऽगस्त्यसंहितायाम्-श्रीवीजादयोपि सीतायै स्वाहान्तोऽयं षडक्षरः । एवं श्रीराम

मन्त्राद्यधिष्ठितं त्रिकोणमुपसंहरति । इत्थं श्रीजानकीलक्ष्मणोपेतं देवं श्रीरामचन्द्रं रावणपीडिता देवा इन्द्रादयः शरणं समाजग्मुः ॥११॥

श्रीलक्ष्मणजी का भी पूजा का अङ्गभूतमन्त्र है इस आशय को प्रकाशित करते हैं कि श्रीलक्ष्मणजी के मन्त्र का भी उद्धार करते हैं-श्रीलक्ष्मणजी सम्बन्धी जो मन्त्र है वह लक्ष्मण के अन्त में ङे विभक्ति चतुर्थी एक वचन जोडकर समझना चाहिये, यहां पर स्व शब्द से मन्त्र का वीज लं एवं नाम लक्ष्मण में चतुर्थी विभक्ति जोडकर समझें । च शब्द का प्रयोग अन्त में नमः शब्द जोडने पर पूर्ण मन्त्र होता है । इससे 'लं लक्ष्मणाय नमः' यह मन्त्र का स्वरूप है, यह अभिप्राय है, 'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ' इस कथन के द्वारा श्रीराम मन्त्र के अन्तर्गत ही श्रीसीता मन्त्र है अतः श्रीराम मन्त्र से अलग श्रीसीता मन्त्र नहीं वताई गई है यह कुछ साधकों का मत है । किन्तु इस मन्त्र में प्रथम चकार श्रीलक्ष्मण मन्त्र में नमः बोधक है एवं द्वितीय चकार श्रीसीता मन्त्र बोधक है जैसे 'श्रीं सीतायै स्वाहा' यह छ अक्षरों वाला मन्त्र है । इस प्रकार श्रीराम मन्त्र आदि में अधिष्ठित त्रिकोण का उपसंहार करते हैं । यही अगस्त्य संहिता में कहा है-'श्रीं' इस आदि वीज के सहित 'सीतायै स्वाहा' यह षडक्षर मन्त्र है । इसप्रकार श्रीजानकीजी एवं श्रीलक्ष्मणजी के सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के रावण से पीडित इन्द्रादि देवगण शरणागत हुए ॥११॥

स्तुत्या प्रभुः श्रीरामः प्रसीदतीतिनिरूपयन्नाह-

स्तुतिं चक्रुश्च जगतः पतिं कल्पतरौस्थितम् ।
कामरूपाय रामाय नमो मायामयाय च ॥१२॥

कल्पतरोः अधः रत्नसिंहासने स्थितं सर्वलोकस्वामिनं सर्वेश्वरश्रीरामं तुष्टुवुः । हे स्वामिन् ? कामदेव इव सुन्दरदिव्यदेहधारिणे, अथवा स्वेच्छया द्विभुजादिसहस्त्रभुजान्तरूपधारिणे कामेन-स्वेच्छयारूपाणि यस्य स कामरूपः तस्मै इति व्युत्पत्तेः । मायामयाय ज्ञानमयाय, अथवा त्रिगुणात्मिकायामायाया आमयायरोधकाय योगिनां रमणस्थानाय ते नमः ॥१२॥

स्तुति के द्वारा ही प्रभु श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होते हैं यह प्रतिपादन करते हुए कहते हैं-कल्पवृक्ष के छाया में बहुमूल्य रत्नसिंहासन पर विराजमान समस्त चराचर लोक के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी की देव वर्ग स्तुति किये । हे स्वामी ? कामदेव के

समान अत्यन्त सुन्दर दिव्य देह को धारण करने वाले अथवा अपनी इच्छानुसार दो भुजाओं वाला से लेकर सहस्त्रभुज पर्यन्त स्वरूप को धारण करनेवाले। कामेन-अपनी इच्छा से ही अनन्त रूप जिनके हो जाते हैं उसे काम रूप कहते हैं। इस व्युत्पत्ति से स्वेच्छानुसार अनन्त रूपधारी मायामय ज्ञानमय अथवा त्रिगुणात्मिका माया के आमय प्रतिरोधक तथा योगियों के रमण स्थान सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम है। ऐसी स्तुति सभी वर्गों के साधकों ने किये ॥१२॥

नमो वेदादिरूपाय ओंकाराय नमोनमः ।
रमाधराय रामाय श्रीरामायात्ममूर्तये ॥१३॥

वेदानादिः मूलम् तस्य वह्निवीजं तदेव स्वरूपं यस्यात एव ॐ काराय प्रणवस्वरूपाय, वह्निवीजवाच्यत्वेन तत्कार्यभूतप्रणवस्य वाच्याय 'यस्य निःश्वसितं वेदाः' इतिवेदाविर्भावकारणाय रमां श्रीसीतां प्रीत्याधिक्यात् स्ववामाङ्केधरति तस्मै श्रीरामाय सर्वाभिरामाय, श्रियं रमयति 'रामोरमयतां वरः' इति श्रीमद्रामायणोक्तेः स्तस्मै अथवा-श्रियाभिन्नः श्रीरामस्तस्मै 'अनन्याराघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा' 'अनन्या च मया सीता भास्करेण प्रभा यथा' इत्यादि रूपेण श्रीमद्रामायणोक्तत्वात् श्रीरामाय नमः ॥१३॥

वेद अनादि है, उस वेद का मूल आधार श्रीराम महामन्त्र का वीज 'रां' है, वही स्वरूप है जिसका यही यहां कहते हैं इसीलिये ॐकार स्वरूप प्रणव स्वरूप के लिये वह्नि वीज का वाच्यत्व होने से ॐकार ''रां' वीज का कार्य है उस ॐकार के लिये कहा भी है जिस परमात्मा का निःश्वास सभी वेद हैं अर्थात् वेद के आविर्भाव के कारण, रमा श्रीसीताजी को प्रेम की अधिकता के कारण अपने वाम अङ्क में वाणी स्वरूपा होने से धारण करते हैं उस श्रीरामजी के लिये अर्थात् सभी के लिये सभी तरह से रमणीय हैं जो श्री को आनन्दित करते हैं, अथवा जो श्रीसीताजी से अभिन्न स्वरूप श्रीरामजी हैं उन श्रीरामजी के लिये प्रणाम है ॥१३॥

जानकीदेहभूषाय रक्षोघ्नाय शुभाङ्गिने ।
भद्राय रघुवीराय दशास्यान्तकरूपिणे ॥१४॥

जानक्याः श्रीसीतायाः देहः दिव्यशरीर एव भूषाशरीरालंकारो यस्य श्रीजानकीदेहभूषाभूषणरूपो वा तस्मै राक्षसगणहन्त्रे शोभनाङ्गाय मङ्गलरूपाय

रघुवंशिनाम् मध्ये वीराय दशास्यो रावणः तस्य अन्तको यमः तस्य रूपं यस्य तस्मै, इत्थं परेशश्रीरामस्य स्वाश्रितजनरञ्जनकत्वं तद्विरोधिनां च विरोधित्वं सूचितं भवति ॥१४॥

जनकतनया श्रीसीताजी का दिव्य देह ही शरीर का अलङ्कार है जिनका, अथवा श्रीजानकीजी के देह में जो आभूषण स्वरूप हैं ऐसे श्रीरामचन्द्रजी के लिये राक्षस गण का विनाश करनेवाले सुन्दर है शरीर का अवयव जिनका परम मङ्गल स्वरूप रघुवंशियों के मध्य में श्रेष्ठतम वीर पुरुष दशमुख रावण का वध करने के लिये यमराज स्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम-स्तुति हो, इस मन्त्र से श्रीरामजी का अपने आश्रिजन मन रंजकत्व एवं अशरणजन विरोधित्व प्रकाशित होता है ॥१४॥

रामभद्र?महेष्वास? रघुवीर?नृपोत्तम ? ।
भो दशास्यान्तकास्माकं रक्ष देहि श्रियञ्च ते ॥१५॥
त्वमीश्वर्यादापयाथ सम्प्रत्याश्वरिमारणम् ।
कुर्विवितिस्तुत्वा देवाद्यास्तेन सार्धं सुखं स्थिताः ॥१६॥

भद्राणि कल्याणानि यस्मात् तादृशः हे राम ? महद् दिव्यं इष्वासं शार्ङ्गधनुः यस्य स रघुवंशिमध्येश्रेष्ठवीरनृपेषु उत्तमः तत् सम्बोधने हे दशमुखस्य रावणस्य अन्तक? अस्मान् रक्ष अत्र कर्मणिषष्ठी, रावणोपद्रवात् त्राहि ॥१५॥

ते रक्षाश्रियौ ददाति या ईश्वरी तया श्रीसीतादेव्या श्रीरामापेक्षया अधिकं दयाशीलत्वं 'पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा । कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति' 'भवेयं शरणं हि वः' इत्यादिश्रीमद्रामायणोक्त्या श्रीसीतायां व्यञ्जितम् सम्प्रति रावणोपद्रवकालेऽधुना आशु रावणनामकमरिं जहि । इतिस्तुतिं कृत्वा देवाद्याः साक्षात् कृतेन श्रीरामेण सार्धं सुखपूर्वकं यथा स्यात् तथा स्थिताः ।

अत्र देवैः ऋषिभिश्च कालभेदेन श्रीरामस्य स्तुतिकृता इत्यवगम्यते । देवस्तुतौ कल्पतरोरधः स्थितः श्रीरामोविषयः, तथा च स्तुतिं चक्रुः इतिभूतकाल निर्देशः, तेन वनसावात् पूर्वकालीनत्वसंकेतः, तत्र कुण्डलीरत्नमालीत्याद्युक्तेः ऋषिस्तुतौ वनस्थः श्रीरामोविषयः, तत्र स्तुवन्तीति वर्तमाननिर्देशः, इत्थं रावणवधार्थं देवादिभिः प्रार्थितः श्रीरामः विहारभूमिस्थोऽपि विष्णवादिभिरवध्यं

तं ज्ञात्वा परमकारुणिकोदेवादीनामभिमतसिद्धये, रावणस्य नित्यसुखप्राप्तये च वधघटनार्थं कैकेयीदशरथवरयाञ्चादिमिषेण वनं गतवान् तत्र रावणवधार्थं पुनः ऋषयस्तुवन्तीति निर्गलितार्थः ॥१६॥

भद्र अर्थात् विविध प्रकार के कल्याण जिनसे होता है ऐसे हे श्रीराम ? जिनका विशाल दिव्य धनुष है रघुवंशी राजाओं के मध्य श्रेष्ठ वीर ? हे दशमुख रावण के अन्तक हे श्रीरामजी ? सभी की आप रावण जनित कष्टों से रक्षा करें । अस्माकम् पद में कर्म अर्थ में षष्ठी विभक्ति है । अतः रावण के उपद्रव से रक्षा करें ऐसा अर्थ सम्पन्न होता है ॥१५॥

ते यह स्त्री लिङ्ग का द्विवचन है, रक्षा एवं लक्ष्मी को देनेवाली ईश्वरी श्रीसीतादेवीजी के द्वारा यहां पर श्रीरामजी की अपेक्षा अधिक करुणाशीलता श्रीसीतादेवीजी में अभिमत है क्योंकि श्रीमद्रामायण में 'पाप करनेवाले हों या शुभ करनेवाले हों या वध के योग्य हों उन सभी पर परेश श्रीरामजी को दया करनी चाहिये' 'यदि आप सव मेरे शरण आई हैं तो सवकी रक्षा करुंगी' इसप्रकार पीडा पहुँचाने वाले सभी को अभय प्रदान की । इस समय राक्षसराज रावण नामक शत्रु को आप मार डालें, इसप्रकार स्तुति करके देवता आदि स्तुतिवश दृष्टिगोचर हुये श्रीरामचन्द्रजी के साथ निवास किये ।

इस उपनिषद् में देवताओं एवं ऋषियों के द्वारा कालभेद निर्देश के कारण भिन्न भिन्न समय में स्तुति की गयी यह प्रतीत होता है । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की जब देवताओं के द्वारा स्तुति की गयी है, उस समय कल्पवृक्ष के तल में स्थित भगवान् श्रीरामजी का स्तुति विषय है । तथा क्रिया पद में परोक्षभूत कालका निर्देश कर 'स्तुतिं चक्रुः' कहा है । इससे वनवास काल से पूर्वकालीनत्व स्तुति की सूचना होती है । क्योंकि वहां पर कुण्डली रत्नमाली आदि विशेषण दिया गया है । ऋषियों की स्तुति में वनवास में स्थित भगवान् श्रीरामजी की स्तुति के विषय हैं । वहां पर 'स्तुवन्ति' यह वर्तमान काल की क्रिया का निर्देश किया गया है । इसप्रकार दशमुख रावण का वध करने के लिये देवताओं आदि के द्वारा प्रार्थित होने पर श्रीरामजी बिहार भूमि में स्थित होने पर भी श्रीविष्णु आदि देवताओं के द्वारा नहीं मारा जा सकने वाला उस रावण को जानकर परम कारुणिक भगवान् श्रीरामजी देवताओं की अभीष्ट सिद्धि के लिये, और रावण को नित्य सुख की प्राप्ति हेतु रावण वध की योजना बनाने के

लिये कैकेयी माता का राजा दशरथजी से वरदान मांगना आदि वहाने से वनवास में गये। वन में पुनः भगवान् से ऋषिगण रावण वध के लिये प्रार्थना करते हैं। यह प्रार्थनाओं का अभिप्राय है ॥१६॥

स्तुवन्त्येवं हि ऋषयः तदा रावण आसुरः ।
रामपत्नीं वनस्थां यः स्वनिवृत्यर्थमाददे ॥१७॥

पूर्वोक्तप्रकारेण ऋषिवर्गाणां प्रार्थनासम्पादनेऽपि गाढापराधाभावात् शिवभक्तस्य रावणस्य वधानौचित्यमिति, स्वकर्मानुसारेणान्तर्यामिप्रेरितोराव णोघोरमपराधं कृतवान् परिणामस्वरूपतः छायास्वरूपां श्रीसातां जहार ऋषीणां स्तुतिकाले एव आसुरस्वभावोरावणः वने स्थितां श्रीरामपत्नीं श्रीसीतां यः स्वसंसारनिवृत्तिहेतोः स्वमरणोत्तरकाले श्रीरामप्राप्तिजनितानन्दोपलब्धये श्रीरामा भिन्नरूपामपि छायावैगुण्यमात्रां श्रीसीतामाजहार "अपिचास्या विशालाक्ष्या न किञ्चिदुपक्षये । विरूपमपि चाङ्गेषु सुसूक्ष्ममपि लक्षणम् ॥ छायावैगुण्यमात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम् । अदुःखार्हामिमां देवीं वैहायसमुपस्थिताम्" इतिश्रीमद्रा-मायणोक्तेः ॥१७॥

रावण के वध हेतु पूर्वोक्त रूपसे ऋषि एवं देव वर्ग के स्तुति करने पर भी कठोर अपराध के विना भगवान् शङ्कर के भक्त रावण का वध किया जाना उचित नहीं है। इसलिये अपने कर्म के अनुसार अन्तर्यामी श्रीरामजी के द्वारा प्रेरित होकर रावण भयङ्कर अपराध के परिणाम स्वरूप रावण छाया स्वरूपा श्रीसीताजी का हरण किया। यानी उन ऋषिगण के स्तुति काल में ही आसुर स्वभाव वाला वह राक्षस रावण वन में निवास करती हुई भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की धर्मपत्नी श्रीसीताजी को अपनी जन्म मरण परम्परा स्वरूप संसार की निवृत्ति के लिये अर्थात् अपनी मृत्यु के परवर्ती समय में श्रीरामजी की प्राप्ति (साक्षात्कार) जनित आनन्द की उपलब्धि के लिये 'छाया वैगुण्यमात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम्' इस श्रीमद्रामायण के वचनानुसार श्रीरामजी से अभिन्न स्वरूपा होने पर भी मात्र छाया स्वरूपा श्रीसीताजी का आहरण किया ॥१७॥

अथ श्रीरामशब्दस्य रा इत्यादाय वनस्थामित्यस्य वनशब्देन रावणस्य निर्वचनं कुर्वन्नाह ।

स रावण इतिख्यातो यद्वा रावाच्च रावणः ।
तद् व्याजेनेक्षितुं सीतां रामोलक्ष्मण एव च ॥१८॥
विचेरतुस्तदाभूमौ देवीं सन्दृश्य चासुरम् ।
हत्वा कवन्धं शवरीं गत्वा तस्याज्ञयातया ॥१९॥
पूजिता वीरपुत्रेण भक्तेन च कपीश्वरम् ।
आहूय संशतां सर्वमाद्यन्तं रामलक्ष्मणौ ॥२०॥

रुशब्दे रावाद् रावणः, रावयतिरोदयति इति रावणः । तेन दुराचरणात् रावणः प्रसिद्धोऽभूत् । श्रीसीताहरणोत्तरसमये श्रीसीतान्वेषणव्याजेन श्रीराम लक्ष्मणौ श्रीसीतामवलोकयितुं वने विचेरतुः श्रीसीतान्वेषणमिषेणैव कवन्ध नामकमसुरं भूमौ दृष्ट्वा तञ्च कवन्धं हत्वा, अभिमुखमागत्यविज्ञापितवत्या तत्रोपगम्य शवर्यापूजितः तस्या निर्देशेन अथवा तया पूजितौ, ईरयति इति ईरः वायुः तस्य पुत्रेण श्रीहनुमता द्वारेण कपीश्वरं सुग्रीवमाहूय सर्ववृत्तमाद्यन्तं शंसता मुक्तवन्तौ । श्रीरामलक्ष्मणौ वायुपुत्रेण सुग्रीवमाहूय सर्ववृत्तान्तं कथयामासतुः ॥१८/१९/२०॥

रु का शब्द करना अर्थ होता है। लोक को क्रन्दन कराने वाला रावण हुआ। जो रुलाता है उसे रावण कहते हैं। इसलिये दुराचरण करने से रावण प्रसिद्ध हुआ। श्रीसीताजी के हरण के पश्चाद् वर्ती समय में श्रीसीताजी का अन्वेषण करने के वहाने भगवान् श्रीरामचन्द्रजी एवं श्रीलक्ष्मणजी श्रीसीताजी को देखने के लिये वन में विचरण किये। और श्रीसीताजी को ढूढने के वहाने ही कवन्ध नामक असुर को भूमि पर देखे वधार्थी उस कवन्ध को मारे दिव्य शरीर उसके अपने सामने उपस्थित होकर निवेदन करने पर शवरी के आश्रम में जाकर शवरी के द्वारा पूजित हुए। उसके निर्देश से अथवा उसके द्वारा पूजित होने के वाद। ईर का अर्थ है प्रेरणा, जो प्रेरित करता है, वह ईर अर्थात् वायु उनका पुत्र श्रीहनुमानजी के द्वारा कपीश्वर सुग्रीव को बुलाकर आदि से लेकर अन्त तक समस्त समाचार कहे। श्रीरामजी और श्रीलक्ष्मणजी श्रीहनुमानजी के द्वारा सुग्रीव को बुलाकर उसको सम्पूर्ण समाचार सुनाये ॥१८/१९/२०॥

स तु रामे शङ्कितः सन् प्रत्ययार्थं च दुन्दुभेः ।
विग्रहं दर्शयामास यो रामस्तमचिक्षिपत् ॥२१॥

स तु श्रीसुग्रीवो बालिवधस्वरूपं महत् कार्यं सम्पादयितुमयं श्रीरामः सक्षमो नवेति परेशश्रीरामविषये सन्दिग्धः सन्नभूत् । ततः श्रीरामः श्रीसुग्रीवस्य सन्देहनिवारणार्थं विश्वासजननार्थं च, दुन्दुभिनामकस्य दैत्यस्य शरीरं अवालोकयामास, बालिं विहाय अन्यस्यावध्यस्य दुन्दुभिदैत्यस्य शरीरदर्शनेन श्रीरामस्य बालिवधसामर्थ्यं ज्ञातं भवतीति । अस्थिपर्वत इव दुन्दुभेः शरीरं दृश्यतेस्म । तं दर्शयामास । यः परेशश्रीरामः सुग्रीवेण जिज्ञासितः, सन् श्रीरामो दुन्दुभेः शरीरमनायासेनाङ्गुल्यग्रभागेन शतयोजनमचिक्षिपत् ॥२१॥

श्रीसुग्रीवजी ने यह विचार किया कि बालि वधरूपी महान् कार्य को सम्पादन करने में सक्षम होंगे कि नहीं इसतरह परेश श्रीरामजी के सामर्थ्य के विषय में सन्देह ग्रस्त हो गये । तत्पश्चात् श्रीरामजी को श्रीहनुमानजी ने सन्देह निवारण करने के लिये और श्रीसुग्रीवजी के विश्वास को उत्पन्न करने के लिये दुन्दुभि नामक दैत्य का शरीर दिखलाये । बालि को छोडकर किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा नहीं वध करने योग्य दुन्दुभि नामक दैत्य का शरीर को देख लेने के वाद श्रीरामजी का बालि वध करने का सामर्थ्य को श्रीहनुमानजी के द्वारा ज्ञात करलिया जायगा । मानो हड्डियों का पहाड हो ऐसा दुन्दुभि का शरीर दिखाई देता था, उसे श्रीहनुमानजी ने श्रीरामजी को दिखाया । जो सुग्रीव के द्वारा जिज्ञासा का विषय बनाया गया था उस दुन्दुभि के शरीर को अनायास ही अंगुली के आगे के भाग से बहुत दूर फेंक दिया, यानी श्रीरामजी ने दश योजन पर्यन्त अस्थि पर्वत को फेंक दिया ॥२१॥

सप्ततालान् विभिद्याशुमोदते राघवस्तदा ।
तेन हृष्टः कपीन्द्रोऽसौ सरामस्तस्य पत्तनम् ॥२२॥

आशु शीघ्रं सप्ततालवृक्षान् विपरीतदिक्षुस्थितान् एकेन बाणेन विशेषेणभिन्नान् विधाय तस्मिन् समये श्रीरामः प्रसन्नतामनुभवतिस्म । अद्भुतेन कर्मणाऽनेन चकितः कपीन्द्रः असौ सुग्रीवः परेशश्रीरामेण सहितः बालिनोनगरं प्रसन्नः सन् जगाम ॥२२॥

दुन्दुभि नामक दैत्य के अस्थिकाय फेंकने के वाद अपना शौर्य परिचय के लिये

सात ताल वृक्षों जो परस्पर विपरीत दिशाओं में स्थित थे उन्हें एक ही बाण से विशेष रूपमें काटकर उस समय भगवान् श्रीरामजी प्रसन्नता का अनुभव किये, और आश्चर्य कारक इस कार्य से चकित वानरेन्द्र सुग्रीवजी के साथ श्रीरामजी बालि के नगर किष्किन्धा में प्रसन्नता पूर्वक गये ॥२२॥

जगामागर्जदनुजो बालिनो वेगतो गृहात् ।
बाली तदा निर्जगाम, तं बालिनमथाहवे ।
निहत्य राघवो राज्ये सुग्रीवं स्थापयेत्ततः ॥२३॥

अनुजः सुग्रीवः बालिनः गृहं गतवान् अगर्जत्-गर्जनां च कृतवान्, तदा सुग्रीवगर्जनसमकाले गृहात् वेगेन बाली निर्गतवान्, अथ तं बालिनं आहवे युद्धे श्रीरामः सुग्रीववैरीभूतं मारयित्वा तस्य कनीयासं भ्रातरं सुग्रीवं राज्ये अस्थापयत् ॥२३॥

बालि का छोटा भाई सुग्रीव बालि के नगर किष्किन्धा जाकर गर्जना किया। उस सुग्रीव के गर्जन काल में ही बालि अपने घर से वेग के साथ निकल पडा। इसके वाद संग्राम में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने बालि को मारकर उसके छोटे भाई सुग्रीव को राज्य सिंहासन पर वैठाये ॥२३॥

हरीनाहूय सुग्रीवस्त्वाह चाशाविदोऽधुना ।
आदाय मैथिलीमद्य ददताश्वाशु गच्छत ॥२४॥

अथ राजा सुग्रीवः वानरान्नाकार्य तान्नाह हे दिशां ज्ञातारो वानराः यूयमधुना अस्मिन्नेव समये वेगातिशयेनशीघ्रं मैथिलीमानीय राघवस्य कृते ददत, अतो यूयं यथाशीघ्रं गच्छत ॥२४॥

इसके पश्चात् किष्किन्धा के राजा सुग्रीवजी ने वानरों को बुलाकर उन वानरों को कहा कि तुम लोग इसी समय में अतिशय वेग पूर्वक श्रीमैथिलीजी को पता लगाकर आओ एवं उन्हें श्रीरामचन्द्रजी को दे दें। हे दिशाओं के जानकार आप लोग यथा शीघ्र पता लगाने के लिये जायें ॥२४॥

ततस्ततार हनुमान् अब्धिं लङ्कां समाययौ ।
सीतां दृष्ट्वाऽसुरान् हत्वा पुरं दग्ध्वा तथा स्वयम् ॥२५॥

आगत्य रामेण सह न्यवेदयत तत्त्वतः ॥२६॥

तत्पश्चात् महावीरः श्रीहनुमान् समुद्रं लङ्घितवान् पुनः लङ्कां च समाययौ, लङ्कायां श्रीसीतां साक्षात्कृत्य, अनेकान्नक्षयकुमारप्रभृतिराक्षसांश्च हत्वा, लङ्कापुरीं भष्मसात् कृत्वा स्वयमक्षतः श्रीहनुमान् श्रीरामसान्निध्यमागत्य याथातथ्येन निखिलं समाचारं श्रीरामचन्द्राय आवेदयत् ॥२५/२६॥

तत्पश्चात् महान् वीर श्रीहनुमानजी श्रीसीताजी का पता लगाने के लिये समुद्र को लाङ्घ गये, पुनः रावण पालित लङ्का नगर में प्रवेश किये। लङ्का नगरीस्थ अशोक वन में श्रीसीताजी से मिलने के वाद अक्षय कुमार आदि बहुत से राक्षसों को मारकर, लङ्का नगरी को जला डाला। तत्पश्चात् स्वयं अक्षत श्रीहनुमानजी श्रीरामचन्द्रजी के पास आकर, जैसा लङ्का में देखा था उसे वास्तविक रूपसे समस्त वृतान्त श्रीरामचन्द्रजी को निवेदित किया ॥२५/२६॥

तदा रामः क्रोधरूपी तानाहूयाथ वानरान्।
तैः सार्धमादायास्त्रांश्च पुरींलङ्कां समाययौ ॥२७॥

श्रीहनुमता श्रीसीतासमाचारनिवेदनानन्तरम् भगवान् श्रीरामचन्द्रः रावणदुर्विनयजनिताविष्कृतं क्रोधरूपं यस्य स तान् वानरान् आहूय तैः वानरैः सह अस्त्रान् आदाय तां लङ्काभिधानां नगरीम् समाययौ ॥२७॥

श्रीहनुमानजी के द्वारा श्रीसीताजी के विषय में श्रीरामजी को समाचार निवेदन करने के पश्चात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी रावण के दुर्विनय पूर्ण आचरण से उत्पन्न प्रकट किया गया है क्रोधरूप जिनका ऐसे वे उन सभी वानरों को बुलाकर उन वानरों के साथ अस्त्र शस्त्रों को लेकर उस लङ्का नाम से प्रसिद्ध नगरी में उपस्थित हो गये ॥२७॥

तां दृष्ट्वा तदधीशेन सार्धं युद्धमकारयत्।
घटश्रोत्रसहस्त्राक्षजिद्भ्यां युक्तं तमाहवे ॥२८॥
हत्वा विभीषणं तत्र स्थाप्याथजनकात्मजाम्।
आदायाङ्कस्थितां कृत्वा स्वपुरं तैर्जगाम सः ॥२९॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रः तां लङ्कानगरीं दृष्ट्वा लङ्काधिपतिना रावणेन सह

संग्राममकरोत् । अत्र कृधातोः स्वार्थेणिच् । कुम्भकर्णमेघनादाभ्यां सह रावणं संग्रामे हत्वा, तस्यां लङ्कायां रावणस्य कनीयांसं भ्रातरम् विभीषणमधिपति रूपेण संस्थाप्य अनन्तरं जनकतनयां श्रीसीतां स्वक्रोडस्थितां विधाय स्वमयोध्या नगरं जगाम । अत्र श्रीसीताया अङ्कस्थापनेन श्रीरामस्य परमहार्दभावं विज्ञायते । तैः इतिकथनेन श्रीहनुमद्विभीषणसुग्रीवादयोऽपि श्रीरामेण सार्धमयोध्यां जग्मुः इतिध्वन्यते ॥२८/२९॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी लङ्का नामक नगरी को देख कर लङ्कापुरी के अधिपति रावण के साथ संग्राम किये । यहां पर कृ धातु से स्वार्थ में णिच् प्रत्यय किया गया है । वहां पर युद्ध में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कुम्भकर्ण और मेघनाद के साथ रावण को युद्ध में मारकर उस लङ्का नगरी में रावण के छोटा भाई विभीषण को लङ्काधिपति पद पर स्थापित करके इसके पश्चात् जनकतनया श्रीसीताजी को अपनी अंक में वैठा कर अपनी अयोध्या नगरी में आ गये । यहां पर श्रीसीताजी को अङ्क स्थित करके कहा है, इससे प्रतीत होता है कि श्रीरामजी में परम हार्दभाव था । यहां तैः कहा है इससे श्रीहनुमानजी श्रीविभीषणजी श्रीसुग्रीवजी आदि भी श्रीरामजी के साथ अयोध्या गये ॥२८/२९॥

ततः सिंहासनस्थः सन् द्विभुजो रघुनन्दनः ।
धनुर्धरः प्रसन्नात्मा सर्वाभरणभूषितः ॥३०॥

भगवतः श्रीरामस्य अयोध्यागमनानन्तरं राज्याभिषेकोऽभूत्, ततः राज्याभिषेकानन्तरं द्विभुजः श्रीरामचन्द्रः धनुर्धरः द्वयोः भुजयोः मुद्राधारणत्वं वक्ष्यमाणमस्त्यतस्तस्य धनुषः नित्यसंयोगित्वद्योतनायोल्लेखकृतः प्रसन्नमानसः सर्वालङ्कारालंकृतः आसीत् ॥३०॥

भगवान् श्रीरामजी के अयोध्या आ जाने के पश्चात् उनका राज्याभिषेक हुआ, तत्पश्चात् राज्य सिंहासन पर स्थित रहकर अपने स्वाभाविक दो भुजाओं को धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी धनुष को धारण किये हुए यद्यपि दोनों भुजाओं में मुद्रा धारण करना कहा जाने वाला है, तथाऽपि श्रीरामजी का धनुष के साथ नित्य संयोगित्व अर्थ को प्रकाशित करने के लिये यहां धनुष बाण का उल्लेख किया गया है प्रसन्न चित्त सभी प्रकार के अलंकारों से अलंकृत होकर विराजित हुए ॥३०॥

मुद्रां ज्ञानमयीं यामे वामे तेजः प्रकाशनम् ।
धृत्वा व्याख्याननिरतश्चिन्मयः परमेश्वरः ॥३१॥

पुनः श्रीरामं वर्णयति, श्रीरामो यामे-दक्षिणे हस्ते ज्ञानमयीं ज्ञानपूर्णां मुद्रां धृत्वा, वामे सव्ये च तेजः प्रकाशनं तेजसः द्योतिकां मुद्रां धृत्वा 'कनिष्ठा द्यङ्गुलित्रयं प्रसार्य हृदयाभिमुखतर्जन्यङ्गुष्ठसंयोगो ज्ञानमुद्रा' 'वामजानुमण्डलं वामभुजया बलेनापीड्य' तेजः प्रकाशनं भवति । यथा च व्याख्याननिरतः इत्यनेन शास्त्रोपदेशकत्वं प्रकाश्यते, अग्रे श्रीहनुमन्तं श्रोतारमिति वक्ष्यमाणत्वात् । शासनार्ह एव शिष्य उच्यते, तेन श्रीहनुमतः श्रीरामशिष्यत्वं द्योत्यते । अतएव श्रीहनुमतिश्रोतृत्वमुच्यते । श्रीराममालामन्त्रे श्रीरामस्य सकलमन्त्रागमाचार्यत्वेन स्मरणात् । इत्थं तस्य श्रीसम्प्रदायप्रवर्तकत्वमभिव्यज्यते तथैवोक्तं 'इममेव मनुं पूर्वं साकेतपतिर्मामवोचत् । अहं हनुमते मम प्रियाय प्रियतराय स वेद वेदिने ब्रह्मणे स विशिष्टाय स पराशराय स व्यासाय स शुकाय इत्येषोपनिषद् इत्येषा ब्रह्मविद्या' तेन श्रीहनुमदनुयायिनां तस्यानन्यभक्त इव श्रीरामानन्यभक्तानां श्रीरामसम्प्रदायस्थत्वेन श्रीरामगोत्रत्वं ज्ञेयम् । चिन्मय इति श्रीराम-शरीरस्यापि चिद् रूपत्वं ज्ञायते, अन्यथा जीवस्यापि चिद्रूपत्वात्, चिन्मयत्व प्रतिपादनमनर्थकं स्यात् । 'चिन्मयः परमेश्वरः' इतिकथनेन सर्वेश्वरश्रीरामस्य ब्रह्मादीनामपि नियामकत्वं प्रकाशितं भवति ॥३१॥

उपनिषद् पुनः श्रीरामचन्द्रजी का वर्णन करती है-भगवान् श्रीरामचन्द्रजी याम अर्थात् दक्षिण भुजा में ज्ञान से परिपूर्ण ज्ञान मुद्रा को धारण करके और वाम भुजा में दिव्य तेज को प्रकाशित करने वाली प्रभाव का द्योतक मुद्रा को धारण करके कनिष्ठिका आदि तीन अङ्गुलियों को फैलाकर हृदय के अभिमुख तर्जनी एवं अंगुष्ठ को संयुक्त करके जो हाथ की मुद्रा होती है उसे ज्ञान मुद्रा कहते हैं। वाम जानु मण्डल पर भुजा के द्वारा बल पूर्वक दवाकर, तेजः प्रकाशन मुद्रा होती है । और जैसे 'व्याख्यान निरतः' इस कथन के द्वारा शास्त्र तत्त्वों का उपदेशकत्व प्रकाशित होता है। आगे सुनने वाले श्रीहनुमानजी को यह कहा जाने वाला होने से शासन करने योग्य जो होता है उसे शिष्य कहते हैं। इससे श्रीहनुमानजी का श्रीराम शिष्यत्व प्रकाशित होता है। इसीलिये श्रीहनुमानजी में श्रोतृत्व प्रकाशित होता है। श्रीराम माला मन्त्र

में श्रीरामचन्द्रजी का समस्त मन्त्रों के आगमाचार्यत्व के स्वरूप में स्मरण किये जाने से श्रीरामजी सम्प्रदाय प्रवर्तक के स्वरूप में अभिव्यक्त होते हैं श्रीमैथिलीमहोपनिषद् में श्रीजानकीजी ने महर्षियों से कहा है कि-इसी ब्रह्मतारक श्रीराम महामन्त्र का उपदेश श्रीसाकेतपतिजी ने साकेत में मुझे दिया मैंने मेरे प्रियतम शिष्य श्रीहनुमानजी को दिया उन्होंने श्रीब्रह्माजी को श्रीब्रह्माजी ने श्रीवशिष्ठजी श्रीवशिष्ठजी ने श्रीपराशरजी को श्रीपराशरजी ने श्रीव्यासजी को श्रीव्यासजी ने श्रीशुकदेवजी को...इसप्रकार परम्परा का वर्णन है। इसलिये श्रीहनुमानजी के अनुयायियों का जैसे श्रीहनुमानजी का अनन्य भक्त होना प्रकाशित होता है उसी तरह श्रीरामचन्द्रजी के अनन्य भक्तों का श्रीरामचन्द्रजी के सम्प्रदाय (परम्परा) में स्थित होने से श्रीरामजी का गोत्र परम्परा होती है यह समझा जाना चाहिये। यहां पर 'चिन्मय' कहा है इससे श्रीरामजी के शरीर का भी चिन्मयत्व होना प्रतीत होता है। अन्यथा जीव का भी चित् स्वरूप होने से श्रीरामजी का चिन्मयत्व प्रतिपादन निरर्थक हो जायगा। क्योंकि चिन्मय परमेश्वर श्रीरामजी को कहा है इससे ब्रह्मा आदि का भी शासकत्व या नियामकत्व श्रीरामचन्द्रजी में प्रकाशित होता है ॥३१॥

तदत्र श्रीरामस्य चरित्रोपक्रमेऽनन्तरूपस्तेजसा वह्निना समः रत्नमाली धनुर्धरत्वादयो जगत्कारणत्वद्योतनत्वमुक्त्वा द्विभुजत्वधनुर्धरत्वादिकं स्वाभाविकमिति स्पष्टीकृतम्। अयं धर्मो न केवलं दाशरथेरेव, अन्यथाऽनन्तरूपादिकस्य वैयर्थ्यं, 'बाहूराजन्यः कृतः' इतिश्रुतेश्च विरोधः स्यात्। तापनीयोपबृंहणभूते श्रीवाल्मीकीयेऽपि-

भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्वकां तनुम्।
विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः ॥१॥

तथा च-शरा नानाविधाश्चैव धनुरायतमुत्तमम्।
पञ्चायुधाश्च ते सर्वे ययुः पुरुषविग्रहाः ॥२॥

इत्यादिवचोभिर्द्विभुजस्य श्रीसाकेतारोहणोक्तेः शंखादिपञ्चायुधानां मूर्तिमतामेव गमनोक्तेश्च, तापनीयोक्तस्य चतुर्भुजत्वलिङ्गस्यान्यथासिद्धत्वम् 'गदाब्दशङ्खादिधरं भवारिं यो ध्यायेदिति वचनस्य गदाद्युपलक्षितं यो ध्यायेदिति बोधात्, सहनीतत्वाच्च तत् समीपेऽन्तर्धानतयास्थितानां प्रकटीभूयान्तर्धानत्वं गम्यते ॥३१॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र की भूमिका में अनन्त रूप, प्रभाव से अग्नि के समान...बहुमूल्य रत्नों की माला धारण किये धनुष धरत्व आदि गुण समुदाय समस्त लोक कारणत्व प्रकाशित करने के लिये कहकर द्विभुजत्व धनुर्धरत्व आदि स्वाभाविक धर्म है यह विषय सुस्पष्ट किया गया। यह द्विभुजत्व आदि धर्म केवल दशरथ तनय श्रीरामजी का ही होता तो अनन्त रूपत्व आदि प्रतिपादन निरर्थक हो जाता ? और 'बाहू राजन्यः कृतः' में द्विवचन निर्देश का भी विरोध होता। श्रीरामताप नीय उपनिषद् का विस्तार रूप श्रीवाल्मीकीय श्रीमद्रामायण में भी कहा है-देवताओं के समान जिनकी कान्ति है ऐसे भाइयों के साथ आप अपने मुख्य दिव्य शरीर में प्रवेश करें। यह प्रार्थना करने पर विष्णु सम्बन्धी तेज के समान अपने भाइयों के साथ अपने दिव्य शरीर सहित दिव्यधाम श्रीसाकेत में प्रवेश कर गये। इसीप्रकार और भी-विभिन्न प्रकार के शक्तिशाली वाण समुदाय, तथा श्रेष्ठ एवं विशाल उत्तम धनुष एवं पांच प्रकार के आयुध ये सभी दिव्य पुरुष के स्वरूप को धारण किये हुए सभी श्रीरामचन्द्रजी के साथ गये ॥१-२॥ इत्यादि वचनों से दो भुजाओं को धारण करनेवाले श्रीरामजी का स्वर्गारोहण कहे जाने से शङ्ख चक्र गदा पद्मादि पांच प्रकार के आयुधों का जो साकार रूप धारण किये हुए थे उनका गमन कहे जाने से, श्रीरामतापनीय में कहा गया चतुर्भुजत्व लिङ्ग का श्रुति के अपेक्षा दुर्बल होने से अन्यथा सिद्ध ज्ञात होता है। 'गदा कमल शङ्ख आदि को धारण करने वाले संसार (जन्म मृत्यु परम्परा) का शत्रु को जो ध्यान करे इस वचन का गदा आदि से उपलक्षित भगवान् के स्वरूप का जो ध्यान, यह बोध होने से एवं मूर्त स्वरूप में साथ ले जाये जाने से भगवान् के पास में अन्तर्हित स्वरूप में वर्तमान आयुधों का प्रकट होकर पुनः अन्तर्धान होना प्रतीत होता है ॥३१॥

अथ च यन्त्रोद्धारमाह-

उदग् दक्षिणयोः स्वस्य शत्रुघ्नभरतौधृतः ॥३२॥

हनूमन्तं च श्रोतारमग्रतः स्यात् त्रिकोणकम् ।

भरताधस्तु सुग्रीवं शत्रुघ्नाधोविभीषणम् ॥३३॥

पुनः श्रीरामं विशेषयन्नाह भगवान् श्रीरामचन्द्र आत्मन उत्तरदक्षिणयोः भागयोः श्रीशत्रुघ्नभरतौ धृतवान् । तथा च स्वस्य अग्रतः श्रोतारमुपदेश वचनाकर्मयितारं श्रीहनुमन्तं पवनतनयं धृतवान् । श्रीरामस्याग्रभागे श्रीहनूमतः

स्थितिवर्णनात् तस्य स्थितिः पूर्वभागे इतिसूचयति, पूजकस्य पवनात्मजस्य श्रीरामसन्मुखस्थितिः समुचिता । पूज्यपूजकयोर्मध्ये पूर्वं स्यादितिस्मृतेः । पश्चिमे श्रीलक्ष्मणस्य स्थितिस्तेन तस्य श्रीहनुमत् सन्मुखत्वं, ततः त्रिकोणस्थितिः, श्रीभरताधस्तात् तु सुग्रीवं निरूपयति, शत्रुघ्नाधस्तात् विभीषणमिति त्रिकोण द्वयेन षट्कोणावयवभूतमन्यत् त्रिकोणमिति यन्त्रस्वरूपमवगमयति ॥३२/३३॥

इसके वाद पुनः यन्त्रोद्धार कहते हैं-पुनः भगवान् श्रीरामजी का विशेष रूपसे वर्णन करते हुए श्रुति कहती है-भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने उत्तर तथा दक्षिण भागों में क्रमशः श्रीशत्रुघ्न एवं श्रीभरतजी को धारण किये । और उसीप्रकार अपने अग्र भाग में उपदेश वचन को सुनने वाले शिष्य श्रीहनुमानजी को स्थापित किये । भगवान् श्रीरामजी के अग्र भाग में श्रीहनुमान् की स्थिति का वर्णन करने से श्रीहनुमानजी की स्थिति भगवान् के आगे पूर्व दिशा में है इस विषय को सूचित करता है । भगवान् की पूजा करनेवाले पवनतनय श्रीहनुमानजी की भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के सम्मुख स्थित होना समुचित है । पूज्य एवं पूजक के मध्य में पूजक की पूर्व दिशा में स्थिति हो यह स्मृति वचन से भी प्रमाणित है । पश्चिम में श्रीलक्ष्मणजी की स्थिति है । इस कथन से श्रीलक्ष्मणजी का श्रीहनुमानजी के सम्मुख स्थिति होना ज्ञात होता है । इससे त्रिकोण की स्थिति ज्ञात होता है । श्रीभरतजी से निचला भाग में सुग्रीव की स्थिति बतायी गयी है । एवं श्रीशत्रुघ्न के भिन्न भाग में विभीषण की स्थिति प्रतिपादित की गयी है । इसतरह दो त्रिकोणों से यन्त्र की षट्कोण स्थिति है, षट्कोण का अङ्ग बना हुआ त्रिकोण यह दूसरा त्रिकोण है इसप्रकार यन्त्र के स्वरूप का बोध कराता है ॥३२/३३॥

पश्चिमे लक्ष्मणं धृत्वा धृतच्छत्रञ्च चामरम् ।
तदधस्तौ तालवृन्तकरौ त्र्यस्त्रं पुनर्भवेत् ॥३४॥

बीजस्य पश्चिमदिग्भागे द्वितीयत्रिकोणस्येत्यर्थः श्रीलक्ष्मणं धृतवान् यः धृतच्छत्रः आसीत् । तत्र सचामरं छत्रं च धृतवान् इत्यर्थः । तदधस्तात् सुग्रीवविभीषणौ तु व्यजनहस्तावास्तामत्र तयोरधः इत्यनेन श्रीभरतशत्रुघ्नयोर धस्तात् व्यजनहस्तौ धृतवान् इत्यर्थः । त्र्यस्त्रं त्रिकोणम् एतेन द्वितीयत्रिकोणस्योप संहारोऽभवदिति प्रकाशितम् भवति ॥३४॥

बीज मन्त्र की पश्चिम दिशा में अर्थात् द्वितीय त्रिकोण के पश्चिम भाग में श्रीलक्ष्मणजी को स्थापित किये। जो श्रीलक्ष्मणजी छत्र को धारण किये हुए थे। वहां पर यह चामर और छत्र को धारण किया यह अभिप्राय है। उसके निम्न भाग में सुग्रीव तथा विभीषण तो तालवृन्त (पंखा) हाथ में धारण किये हुए स्थापित करे। ये दोनों हाथों में व्यजन धारण किये थे। यहां पर इन दोनों के निम्न भाग में इस कथन से श्रीभरत और श्रीशत्रुघ्न के निम्न भाग में क्रमशः व्यजन धारण किये हुए सुग्रीव और विभीषण हैं त्र्यस्त्र शब्द का अर्थ त्रिकोण है, इससे द्वितीय त्रिकोण का उपसंहार सम्पन्न हुआ यह अभिप्राय प्रकाशित होता है ॥३४॥

एवं षट्कोणमादौ स्वदीर्घाङ्गैरेष संयुतः।
द्वितीयं वासुदेवाद्यैराग्नेयादिषु संयुतः ॥३५॥

श्रीरामयन्त्रे पूर्वं षट्कोणं विलिख्य, तन्मध्ये श्रीरामस्वरूपं 'रां' इति वह्निवीजं लिखेत्। बीजस्य दक्षिणभागे प्रथमत्रिकोणदक्षिणकोणबहिर्भागे, भरतबीजं लिखेत्, बीजस्योत्तरकोणवहिर्भागे शत्रुघ्नबीजं लिखेत्, बीजस्य पूर्वकोणबहिर्भागे हनुमद् बीजं लिखेत्, द्वितीयत्रिकोणदक्षिणकोणे भरत कोणाधस्तात् सुग्रीववीजं लिखेत्, तस्यैवोत्तरदिग् भागस्थे कोणे शत्रुघ्नबीज स्याधस्तात् विभीषणवीजं लिखेत्, त्रिकोणस्य पश्चिमदिग् भागस्थे कोणे वहिः लक्ष्मणवीजं लिखेत्, इत्थं सबीजं षट्कोणं कुर्यात्।

अथ पूजनीयस्य श्रीरामस्य पौर्वापर्यक्रमेणाङ्गाद्यावरणानि निरूपयन्नाह– आदौ प्रथमत्रिकोणस्यान्तर्गतं स्वदीर्घाङ्गैः प्रथमावरणे श्रीहनुमदादीनां चतुर्थावरणे पूज्यत्व कथनात् प्रथमकर्णिकस्थः श्रीरामः षट्सु कोणेषु आ ई ऊ ऐ औ अः इति षड्भिः दीर्घैः योजिताः रां रीं रूं रैं रौं रः इतिभवन्ति तैः युक्तानि हृदयादीनि षडङ्गानि पूजनीयानि। तथा चाङ्गपूजास्थानानि आग्नेय नैर्ऋत्यवायव्येशानकोणेषु हृदयाय नमः शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट् कवचाय हुम् इति। पूर्वतः नेत्राय वौषट् पश्चिमे अस्त्राय फडिति, अथ च द्वितीयावरणे वर्तुलाकारां रेखां कृत्वा क्रियमाणाष्टदलमूले आग्नेयीमारभ्य कोणेषु आत्मने नमः, अन्तरात्मने नमः, परमात्मने नमः, ज्ञानात्मने नमः इति। प्राचीमारभ्य दिक्षु निवृत्यै नमः, प्रतिष्ठायै नमः, विद्यायै नमः, शान्त्यै नमः, इति द्वितीयं ज्ञेयम्।

अगस्त्यसंहितायां तथोक्तत्वात् । वासुदेवादीनां यदत्र द्वितीयत्वं निरूपितम्, तत्रावरणापेक्षया द्वितीयत्वात् । अथवा अष्टदलमध्योक्तावरणस्य द्वितीयत्वम्, ततः अष्टदलस्य पत्रेषु आग्नेयादिषु, वासुदेवाय नमः, संकर्षणाय नमः, प्रद्युम्नाय नमः, अनिरुद्धाय नमः, श्रियै नमः, सरस्वत्यै नमः, प्रीत्यै नमः, इत्यै नमः । इतितृतीयावरणे वासुदेवाद्यैः संयुतः श्रीरामः । इत्थमाग्नेयादिषु दिक्षु पूज्यः ॥३५॥

श्रीराम यन्त्र में पहले षट्कोण लिखकर, उस षट्कोण के मध्य भाग में श्रीराम स्वरूप 'रां' इस वह्नि वीज को लिखे । बीज के दाहिना भाग में प्रथम त्रिकोण के दक्षिण दिशा में कोण के बाहरी भाग में भरत बीज को लिखे । बीज के उत्तर भाग में स्थित कोण के बाह्य भाग में शत्रुघ्न बीज को लिखे । वीज के पूर्व दिशा में स्थित कोण के वाहरी भाग में हनुमद् वीज को लिखे । उसी हनुमद् वीज के अर्थात् द्वितीय त्रिकोण के दक्षिण कोण में भरत वीज के निम्न भाग में सुग्रीव वीज को लिखे । उसी के उत्तर दिशा में स्थित कोण में शत्रुघ्न वीज के नीचे विभीषण वीज को लिखे, त्रिकोण के पश्चिम भाग में लक्ष्मण वीज को लिखे । इसप्रकार वीज सहित षट्कोण बनावें ।

इसके पश्चात् पूजनीय भगवान् श्रीरामजी के पूर्वापर के क्रम से अङ्ग आदि आवरणों को प्रतिपादन करते हुए कहते हैं→ सर्व प्रथम अपने दीर्घ स्वरावयवों से प्रथम आवरण में श्रीहनुमानजी आदि का चतुर्थावरण में पूज्यत्व कहे जाने से प्रथम कर्णिका में स्थित 'राम' के छ कोणों में 'आ ई ऊ ऐ औ अः' इन छ दीर्घ स्वरों से योजित कर 'रां रीं रूं रैं रौं रः' ये स्वरूप होते हैं, उनसे युक्त हृदय आदि छ अङ्गों को पूजित करना चाहिये । जैसे कि अङ्गों को पूजा के स्थान हैं आग्नेय नैर्ऋत्य वायव्य और ईशान कोणों में हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट् कवचाय हुम्, पूर्व में नेत्राय वौषट् एवं पश्चिम में अस्त्राय फट् । और इसके वाद द्वितीय आवरण में गोलाकार रेखा बनाकर, बनाये जाते हुए अष्टदल के मूल में अग्निकोण से आरम्भ कर कोणों में, आत्मने नमः, अन्तरात्मने नमः, परमात्मने नमः, ज्ञानात्मने नमः, यों पूजा करें । पूर्व दिशा से आरम्भ कर चारों दिशाओं में निवृत्यै नमः प्रतिष्ठायै नमः, विद्यायै नमः, शान्त्यै नमः, यह द्वितीय वरण पूजा समझनी चाहिये । क्योंकि अगस्त्य संहिता में ऐसा ही कहा गया है । वासुदेव आदि को जो इस श्रीरामतापनीय उपनिषद्

में द्वितीयत्व बताया गया है। उनमें आवरणों की अपेक्षा आत्मा आदि का अन्य स्थानों पर द्वितीय कहे जाने के कारण द्वितीयत्व कहा गया है। और षट्कोण की अपेक्षा द्वितीयत्व होने से भी कहा है। अथवा अष्टदल के मध्य में उक्त आवरण का द्वितीयत्व है। तत्पश्चात् अष्टदल के पत्रों में आग्नेय आदि कोणों में वासुदेवाय नमः, संकर्षणाय नमः, प्रद्युम्नाय नमः, अनिरुद्धाय नमः, श्रियै नमः, सरस्वत्यै नमः, प्रीत्यै नमः, इत्यै नमः, इसप्रकार तृतीय आवरण में वासुदेव आदि से संयुक्त श्रीराम यह तात्पर्य है। इसप्रकार आग्नेय आदि कोणों में एवं दिशाओं में पूजा करनी चाहिये ॥३५॥

अथ चतुर्थावरणमाह-

तृतीयं वायुसूनुञ्च सुग्रीवं भरतं तथा।
विभीषणं लक्ष्मणञ्च अङ्गदं चारिमर्दनम् ॥३६॥

तस्यैवाष्टदलस्य पत्रान्तर्भागेषु पूर्वां दिशमारभ्य पवनतनयं सुग्रीवं भरतं विभीषणं लक्ष्मणमङ्गदं शत्रुघ्नं जामबन्तमिति चतुर्थावरणं रचयेत्। तैः सहितः श्रीरामस्तत्रपूज्यः। अत्रापि पवनतनयादीनां तृतीयत्वमष्टदलोक्ततृतीयत्वा-पेक्षयाबोध्यम्।

सुन्दरीतन्त्रे प्रथमाष्टदलमूले आत्मादीनां दलमध्ये वासुदेवादीनामन्ते च पवनतनयादीनामावरणानां पूजनं निरूपितम् ॥३६॥

इसके पश्चात् चतुर्थावरण पूजन प्रकार कहते हैं। उसी पूर्व वर्णित अष्टदल के पत्रों के मध्य भागों में पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः श्रीहनुमानजी श्रीसुग्रीवजी श्रीभरतजी श्रीविभीषणजी श्रीलक्ष्मणजी श्रीअङ्गदजी श्रीशत्रुघ्नजी और श्रीजाम्बवानजी इनसे चतुर्थावरण की रचना कर, उनके सहित श्रीरामजी पूजनीय हैं।

यहां पर भी श्रीहनुमानजी आदि का जो तृतीयत्व है, वह अष्टदल में वर्णित तृतीयत्व की अपेक्षा से है यह समझना चाहिये।

सुन्दरी तन्त्र में प्रथम अष्टदल के मूल में आत्मा आदि का, दल मध्य में वासुदेव आदि का एवं दल के अन्त भाग में श्रीहनुमानजी आदि का आवरण पूजन बताया गया है ॥३६॥

पञ्चमावरणमाह-

जामवन्तञ्च तैर्युक्तस्ततो धृष्टिर्जयन्तकः।

विजयश्च सुराष्ट्रश्च राष्ट्रवर्धन एव च ॥३७॥
अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रस्त्वेभिरावृतः ।
ततः सहस्त्रदृग् वह्निधर्मरक्षोवरुणानिलाः ॥३८॥
इन्द्वीशधात्रनन्ताश्च दशभिस्त्वेभिरावृतः ।
वहिस्तदायुधैः पूज्यो नीलादिभिरलङ्कृतः ॥३९॥

जाम्बन्तः चतुर्थावरण उक्तत्वात् ततो धृष्टिरिति पञ्चमावरणमाह-प्रथमाष्टदलानन्तरं गोलाकारां रेखां विधाय तद्बहिपुनरष्टदलं विधाय तस्याष्टदलपत्रेषु प्राचीमारभ्य धृष्ट्यादीन् संस्थाप्य तैः सहितः श्रीरामः पञ्चमावरणे पूज्यः । ततः षष्ठावरणे इन्द्रादीन् संस्थाप्य पूर्वेशानयोर्मध्ये धातारं नैऋत्यपश्चिमयोर्मध्येऽनन्तं शेषञ्च विन्यस्य ऐभिर्दशभिरावृतः श्रीरामः षष्ठावरणे पूज्यः, षष्ठावरणाद् बहिः सप्तमावरणे तेषामायुधैः वज्रशक्तिदण्डखड्गपाशध्वजगदाशूलपद्मचक्रैः दशायुधैः सहितः श्रीरामः पूज्यः । ततः षोडशदले नीलनलसुषेणमैन्दद्विविदसरभचन्दनगवाक्षकिरीटकुण्डलश्रीवत्सकौस्तुभशङ्खचक्रगदापद्मैरलङ्कृतः श्रीरामः अष्टमावरणे पूज्यः इतिभावः ॥३७/३८/३९॥

जाम्बवान् को चतुर्थावरण में कहे जाने के कारण 'ततो धृष्टिः' इत्यादि द्वारा पञ्चम आवरण की पूजा कहते हैं। प्रथम अष्टदल के पश्चात् वर्तुलाकार की रेखा बनाकर उसके अष्टदल के पत्रों में पूर्व दिशा से आरम्भ कर धृष्टि जय विजय सुराष्ट्र राष्ट्र वर्धन अकोप धर्मपाल एवं सुमन्त्र से आवृत श्रीरामजी की पञ्चम आवरण में पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् छठा आवरण कहते हैं उस आवरण में इन्द्र आदि की सम्यक् प्रकार से स्थापना करके पूर्व और ईशान के मध्य में धाता को, नैऋत्य एवं पश्चिम के मध्य में अनन्त एवं शेष की संस्थापित करके, इन्द्र वह्नि आदि दशदिक् पालों के सहित इन सभी से आवृत श्रीरामजी की पूजा करनी चाहिये। इसप्रकार षष्ठावरण पूजा विधान निरूपित हुआ। षष्ठ आवरण से आयुधों से आवृत अर्थात् वज्र शक्ति दण्ड खड्ग पाश ध्वज गदा शूल पद्म चक्र इन दश आयुधों के सहित श्रीरामजी की पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् षोडशदल में नील नल सुषेण मैन्द द्विवद सरभ चन्दन गवाक्ष किरीट कुण्डल श्रीवत्स कौस्तुभ शङ्ख चक्र गदा तथा पद्म से अलङ्कृत श्रीरामजी की अष्टमावरण में पूजा करनी चाहिये ॥३७/३८/३९॥

वशिष्ठवामदेवादिमुनिभिः समुपासितः ॥४०॥

ततो नवमावरणे श्रीवशिष्ठवामदेवजाबालिगौतमभरद्वाजविश्वामित्र वाल्मीकिनारदसनकसनन्दनसनातनसनत्कुमाराभिधैर्मुनिभिर्विधिवदुपासितः श्रीरामः सम्पूजनीयः । तत्र नवमावरणे द्वादशदलं विधाय तैः सह पूजयेत् । ननु षोडशदलानन्तरं द्वादशदलं क्रमविरुद्धमिति शङ्कनीयम् ? वक्ष्यमाण-यन्त्रोद्धारानुरोधेन ध्रुवादिदशमावरणस्याभिमतत्वात् श्रीयन्त्रादौ चतुर्दशदलानन्तरमष्टदलदृष्टत्वाच्च । तत्र धुव्रादयः अष्टौवसवः, वीरभद्रादयः एकादशरुद्राः । वरुणादयः द्वादशादित्या संस्थापनीयाः तैः सहितः श्रीरामः पूजनीयः । इत्थं क्रमेण दशावरणानां पूजां विधाय

अभीष्टसिध्दिं मे देहि शरणागतवत्सल ? ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ॥

एवमेव द्वितीयादयः । क्रमेण प्रत्यावरणपूजां तत्फलञ्च श्रीरामाय समर्प्य, अंगुष्ठतर्जनीभ्यां पुष्पमादाय यन्त्रराजमध्ये चतुरः प्राणप्रतिष्ठामन्त्रान् दशवारं त्रिवारं वा पठित्वा सावरणस्य श्रीरामस्य (१) इह प्राणा तिष्ठन्तु (२) इह जीवः (३) इह वाङ्मनः चक्षुः श्रोत्रं घ्राणः प्राणाः इहागत्य सुखंचिरं तिष्ठन्तु स्वाहा, इत्थं सावरणस्य श्रीरामस्य प्राणप्रतिष्ठां विधाय पुनः यन्त्रराजं पूजयेत् । तन्मन्त्रा यथा-ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः श्रीरामस्य इह प्राणः स्थितः । अनेनैव मन्त्रेण श्रीरामस्य जीवसर्वेन्द्रियाणि, वाङ् मनः चक्षुश्रोत्रघ्राणप्राणा-इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा इति यन्त्रोद्धारं कुर्यात् ॥४०॥

अष्टम आवरण के पश्चात् श्रीवशिष्ठ वामदेव जाबालि गौतम भरद्वाज विश्वामित्र वाल्मीकि नारद सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार नामक मुनियों के साथ विधान पूर्वक उपासित श्रीराम विधिवत् पूजनीय हैं। इस नवम आवरण में द्वादशदल कमल की रचना कर उन मुनियों के साथ श्रीरामजी की पूजा करें।

यहां प्रश्न उठता है कि पहले षोडश दल कमल फिर द्वादशदल कमल की रचना करना यह क्रम के विपरीत है। ऐसा सन्देह नहीं किया जाना चाहिये। क्योंकि आगे कहा जाने वाला यन्त्रोद्धार के अनुरोध से ध्रुव आदि दश आवरणों का विधान शास्त्र के अभिमत है एवं श्रीयन्त्र आदि में चतुर्दश दल कमल के पश्चात् अष्टदल कमल का विधान देखा गया है। अतः दशमावरण में ध्रुवाय नमः इत्यादि मन्त्र से ध्रुव धर

सोम आप (अद्भ्यः) अनिल अनल प्रत्यय प्रभाष ये दश वसु, वीरभद्राय नमः इत्यादि मन्त्र से वीरभद्र, शम्भु गिरीश, अजैकपाद (अजैकपदे) अहिर्बुघ्न पिनाकी भुवनेश कपाली, दिक्प्रति स्थाणू भर्ग ये एकादश रुद्र वरुण सूर्य वेदांग भानु इन्द्र, रवि गभस्ति यम हिरण्यरेतस् दिवाकर मित्र विष्णु ये द्वादश आदित्य के सहित श्रीराम दशमावरण में पूजनीय हैं इनकी चतुर्थ्यन्त 'नमः' शब्दान्त मन्त्र से आवरणों की धूप दीप नैवेद्यादि के सहित पूजन करने के पश्चात् प्रार्थना करें कि-हे शरणागत वत्सल भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मुझे अभिमत फल की सिद्धि प्रदान करें, मैं भक्तिभाव पूर्वक आपको प्रथमावरण की अर्चना समर्पित करता हूँ। इसी प्रकार इसी मन्त्र से द्वितीयावरण से लेकर दशम आवरण पर्यन्त की अर्चना का समर्पण करके, सभी आवरणार्चन में भगवान् श्रीरामजी को फल समर्पण करने के पश्चात् अंगुष्ठा एवं तर्जनी अङ्गुली के सहयोग से पुष्प लेकर यन्त्रराज के मध्य में चारों प्राणप्रतिष्ठा करके, प्राणप्रतिष्ठा मन्त्रों को प्रत्येक को दशवार अथवा तीनवार पढे। इसमें आवरण सहित श्रीरामजी का यहां पर प्राणप्रतिष्ठा हो-यहां जीव। यहां वाणी मन आंख कान नाक प्राण प्रतिष्ठित हो यहां पर आकर सुख पूर्वक चिरकाल तक स्थित हो इसप्रकार आवरण सहित श्रीरामजी की प्रतिष्ठा करके पुनः यन्त्र राज की पूजा करे। जैसे कि यन्त्रराज पूजन के मन्त्र हैं→ ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं हंसः इस मन्त्र से श्रीरामजी के प्राण यहां पर स्थित हो, इसीतरह पूर्व में निरूपित ॐ आं ह्रीं आदि मन्त्र से ही श्रीरामजी का जीव श्रीरामजी की समस्त इन्द्रियां वाणी मन आंख कान नाक प्राण यहां आकर चिरकाल तक सुख पूर्वक रहें। यहां पर प्रत्येक प्रतिष्ठा में पूर्व वर्णित अक्षर वीज मन्त्र से अलग अलग पढकर प्रतिष्ठा करें। प्रत्येक प्रतिष्ठा में दश वार या तीव वार मन्त्र को पढना चाहिये यही यन्त्रोद्धार का क्रम तन्त्रों में बताया गया है ॥४०॥

एवमुद्देशतः प्रोक्तं निर्देशस्तस्य चाधुना ॥४१॥

पूर्वोक्तविधिना संक्षेपरूपेण यन्त्रस्वरूपनिरूपणं कृतम्। सम्प्रतिपूजितस्य यन्त्रस्य कण्ठेधारणविधिः प्रतिपाद्यते, पूजनप्रकारस्तु पूर्वमेव निर्दिष्टमिति ॥४१॥

केवल नामोच्चारण करके वस्तु का कथन उद्देश कहा जाता है। जो पूर्वोक्त विधि के द्वारा संक्षिप्त रूपसे यन्त्र का स्वरूप एवं पूजन विधि कही गयी है। वर्तमान उस पूजित यन्त्रराज का कण्ठ में किस प्रकार धारण करना चाहिये यह विधि आगे बतायी जा रही है। यन्त्रराज पूजन प्रकार तो पहले ही सविस्तार बताया गया है ॥४१॥

त्रिरेखापुटमालिख्यमध्येतारद्वयं लिखेत् ।
तन्मध्ये वीजमालिख्य तदधः साध्यमालिखेत् ॥४२॥
द्वितीयान्तं च तस्योर्ध्वं षष्ठ्यन्तं साधकं तथा ।
कुरुद्वयं तत् पार्शे लिखेद् बीजान्तरे रमाम् ॥४३॥
तत्सर्वं प्रणवाभ्याञ्च वेष्टयेत् शुद्धबुद्धिमान् ॥

पूर्वोक्तरीत्या षट्कोणां रेखामालिख्यमध्येकर्णिकायां तारद्वयं लिखेत् तस्य मध्ये प्रणवद्वयं मध्ये रां वीजमालिख्य, तस्य मध्ये साधनीयमर्थं द्वितीया विभक्त्यन्तं लिखेत् । तस्य बीजस्य उपरिभागे षष्ठीविभक्त्यन्तत्रं तं साधकं लिखेत् । वीजस्य पार्श्वयोः कुरुद्वयं लिखेत् । वीजस्य मध्यभागे श्रीवीजं लि- खेत्। साध्यसाधकादिसहितं परस्परसन्मुखाभ्यां प्रणवाभ्यां शुद्धबुद्धिमान् उपासकः वेष्टयेत् ॥४२/४३॥

पूर्वोक्त प्रकार से छ कोणों वाली रेखा को लिखकर उसके मध्य भाग कर्णिका में तारक द्वयं लिखेत् । अर्थात् तारक मन्त्र को दो वार लिखे । उसके मध्य भाग में दो वार प्रणव अर्थात् ॐकार दो वार लिखे । दोनों प्रणवों के मध्य भाग में 'रां' वीज को लिखकर उसके मध्य भाग में सिद्ध करने योग्य प्रयोजन को लिखे, वह साधनीय प्रयोजन द्वितीया विभक्त्यन्त लिखा जाना चाहिये । उस वीज मन्त्र के ऊपरी भाग में षष्ठी विभक्त्यन्त उस साधक का नाम लिखे । वीज के दोनों पार्श्व भाग में दो कुरु पद लिखना चाहिये । वीज के मध्य भाग में श्री वीज को लिखना चाहिये । साधन करने योग्य एवं साधन करनेवाला आदि के सहित परस्पर सम्मुख प्रणवों के द्वारा शुद्ध बुद्धि सम्पन्न उपासक उन सभी को परिवेष्टित कर देवे ॥४२/४३॥

दीर्घभाजिषडस्त्रेषु लिखेद्बीजं हृदादिभिः ॥४४॥

हृदयशिरः शिखाकवचनेत्रास्त्रैः षड्भिरङ्गैः सहितं बीजं लिखेत् । तत्र कीदृशं बीजमिति जिज्ञासायामुक्तम् दीर्घमाजि । आकारादिभिः षड्भिदीर्घवर्णै र्युक्तमितिभावः । आग्नेयनैरृत्यवायव्येशानकोणेषु हृदयादीनि लिखेत् । पूर्वतः नेत्रम् पृष्ठतश्चास्त्रं लिखेत् ॥४४॥

हृदय शिर शिखा कवच नेत्र और अस्त्र इन छ अङ्गों के सहित बीज को लिखना चाहिये । वहां पर किस तरह का बीज लिखना चाहिये ऐसी जिज्ञासा में कहते हैं-

दीर्घ युक्त आकार आदि छ दीर्घ वर्णों से युक्त वीज लिखना चाहिये । आग्नेय नैऋत्य वायव्य और ईशान कोणों में हृदय आदि चार वीज लिखें, एवं पूर्व दिशा में नेत्र एवं पृष्ठ भाग में अस्त्र वीज को लिखना चाहिये ॥४४॥

कोणपार्श्वे रमामाये तदग्रेऽनङ्गमालिखेत् ।
क्रोधं कोणाग्रान्तरेषु लिखेन् मन्त्र्यभितोगिरम् ॥४५॥

षण्णामपि कोणानां पार्श्वयोः वामभागे 'ह्रीं' इतिमाया बीजं दक्षिणे च 'श्रीं' इति रमाबीजं लिखित्वा ततः कोणानामग्रभागेषु 'क्लीं' इतिकामबीजं लिखेत् । क्रोधं कवचबीजं 'हुम्' इतिकोणाग्रामध्येषु लिखित्वा, कोणानां समन्तात् 'ऐम्' इतिवाग् बीजं लिखेत् । अत्र केचनसाम्प्रदायिकाः 'रां' बीजस्य दक्षिणवामयोः द्वे नेत्रे लिखन्ति, ऊ इति द्वौ कर्णौ ऋ लृ प्रभृतिमात्रिकाक्षराणां नासिकाकपोलादिरूपेणलेखनं कुर्वन्ति । परन्तु 'रां' वीजस्य सर्वावयवपरिपूर्णत्वात् श्रीरामरूपेण स्थितत्वाच्चानावश्यकमित्यस्योपनिषदः हार्दम् ॥४५॥

छ कोणों के दोनों बगल (भाग) में-वाम भाग में 'ह्रीं' यह माया बीज को लिखें। एवं दक्षिण भाग में 'श्रीं' यह रमा वीज को लिखें । इन्हें लिखकर सभी कोणों के अग्र भाग में 'क्लीं' यह काम वीज को लिखना चाहिये । क्रोध अर्थात् कवच वीज 'हुम्' इस मन्त्र को कोण के अग्र भाग के मध्य में लिख कर कोणों के सभी ओर 'ऐम्' इस वाग् वीज को लिखना चाहिये । इस यन्त्र के विषय में कुछ साम्प्रदायिक जन 'रां' इस वीज के दाहिना और वायां भाग में दो नेत्र लिखते हैं उसमें 'उ ऊ' इस मात्रिक अक्षरों को लिखते हैं । कर्ण आदि अवयवों के लिये ऋ ॠ लृ लॄ आदि मात्रिक अक्षरों को लिखते हैं-जो नासिका कपोल आदि स्वरूप में लिखे जाते हैं । लेकिन 'रां' वीज को सभी अवयवों से परिपूर्ण स्वरूप में होने के कारण इन मात्रिक अक्षरों का लिखा जाना आवश्यक नहीं है । यही इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् का हार्द अभिप्राय है ॥४५॥

वृत्तत्रयं साष्टपत्रं सरोजे विलिखेत् स्वरान् ।
केशरे चाष्टपत्रे च वर्गाष्टकमथालिखेत् ॥४६॥

षट्कोणस्य यन्त्रस्योपरिवर्तुलाकारं रेखात्रयमष्टदलसहितं कमलं लिखित्वा, तत्राष्टदलकमले केशर इव षोडशस्वरान् लिखेत् प्रतिदलं द्वौ द्वौ स्वरौ

लेखनीयौ । ततश्च पूर्वादि दिक् क्रमेण अष्टानांपत्राणां मध्ये क च ट त प य श ल वर्गाणामष्टकं स्वरयोरुपरिभागे एकैकं वर्गं लिखेदिति भावः ॥४६॥

षट्कोण यन्त्र के ऊपर चारों तरफ गोलाकार तीन रेखायें अष्टदल सहित कमल लिखकर उन आठों पत्रों में केशर के समान सोलह स्वरों को पूर्वादि क्रम से लिखना चाहिये । प्रत्येक पत्र में दो दो स्वर के हिसाव से सोलह स्वरों को लिखना चाहिये । तत्पश्चात् पूर्वादि क्रम से आठों पत्रों के मध्य में क च ट त प य श ल इन आठ वर्गों को लिखना चाहिये । स्वर के ऊपरी भाग में एक एक वर्ग लिखने का तात्पर्य है ॥४६॥

तेषु माला मनोवर्णान् विलिखेदूर्मिसंख्याया ।
अन्ते पञ्चाक्षरानेवं पुनरष्टदलं लिखेत् ॥४७॥

तेषु अष्टदलपत्रेषु मालामन्त्रस्य सप्तचत्वारिशदक्षरान् प्रतिपत्रमूर्मिसंख्यया लिखेत् । अवसानेऽन्तिमे पत्रेऽवशिष्टान् पञ्चाक्षरान् लिखेदित्यर्थ । पूर्वलिखिताष्टदलस्योपरि पुनः गोलाकारां रेखां विधाय पुनः अष्टदलं लिखेत् ॥४७॥

उन अष्टदल के पत्रों में माला मन्त्र के सैंतालिस अक्षरों को प्रति पत्र उर्मि संख्या के अनुसार लिखें । अन्त में अन्तिम पत्र में अवशिष्ट पांच अक्षरों को लिखें । पूर्व में लिखा गया अष्टदल के ऊपर गोलाकार रेखा पुनः लिखकर उसके ऊपर पुनः अष्टदल बनावें ॥४७॥

तेषु नारायणाष्टार्णं लिखेत् तत् केसरे रमाम् ।
तद्बहिर्द्वादशदलं विलिखेद् द्वादशाक्षरम् ॥४८॥

तेष्वष्टदलेषु श्रीनारायणमन्त्रस्याष्टवर्णान् क्रमशः लिखेत् । तेष्वेव पत्रेषु प्रतिपत्रं केशरस्थानेषु श्रीबीजं लिखेत् । तच्च केशरवदेव लिखेत् । द्वितीयाष्टदलाद् बहिः पुनः वृत्ताकारां रेखां विधाय तत्र द्वादशदलं कुर्यात् । तत्र पूर्वादिशमारभ्य द्वादशाक्षरमन्त्रस्याक्षराणां प्रतिदलं लेखनं विधेयम् ॥४८॥

उन अष्टदल के पत्रों में श्रीनारायण मन्त्र जो अष्टाक्षर मन्त्र है उसके प्रत्येक अक्षर को प्रतिदल में लिखें । उन्हीं प्रत्येक दलों के केशर के ही समान 'श्रीं' इस रमा वीज को लिखें । वह केशर के ही समान लिखा जाय । द्वितीय अष्टदल के बाहर पुनः गोलाकार रेखा लिखकर उसमें बारह दलों का निर्माण करे । और उसमें पूर्व

आदि दिशाओं के क्रम से द्वादशाक्षर मन्त्र के प्रत्येक अक्षर को प्रतिदल में लेखन किया जाना चाहिये ॥४८॥

तथोंनमो भगवते वासुदेवाय इत्ययम् ।
आदिक्षान्तान् केशरेषु वृत्ताकारेण संलिखेत् ॥४९॥

तत्र द्वादशदलेषु प्रतिदलम् 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इतिमन्त्रस्य एकैकमक्षरं लिखेत् तस्य केशरेषु अकाराद्यारभ्य क्षकारपर्यन्तम् एकपञ्चाशद् वर्णान् लिखेत् । तत्रापि पूर्वाद्यारभ्य चतुर्षु दलेषु चतुः चतुः संख्ययाषोडश स्वरान् लिखेत्, तदनुपञ्चदलेषु पञ्चपञ्चक्रमेण कादिमान्तं वर्णान् लिखेत् दशमेदले यरलवेति चतुर्वर्णान् एकादशेशषसहेति द्वादशे च 'लं क्षं' इतिवर्णद्वयं ततोवृत्ताकारे 'रां' इतिलिखेत् ॥४९॥

उस पूर्व वर्णित द्वादश दल में प्रत्येक दल में ॐ नमो भगवते वासुदेवाय इस मन्त्र के वारह अक्षरों को लिखें । तत्पश्चात् उन दलों के केशरों में अकार से लेकर क्ष पर्यन्त इकावन अक्षरों को लिखें । उन वर्णों के लेखन की भी यह व्यवस्था है कि पूर्वादि दिशा के क्रम से प्रथम चार दलों में चार स्वरों को लिखने के क्रम से सोलह स्वरों को लिखें । तत्पश्चात् पांच दलों में क से लेकर म पर्यन्त प्रतिदल पांच पांच वर्ण क्रमशः लिखे । दशम दल में य र ल व इन चार वर्णों को लिखे, ग्यारहवें दल में श ष स ह एवं बारहवें दल में लं क्षं इन दो वर्णों को लिखे । अन्त में गोलाकार में रां इस वीज को लिखे ॥४९॥

तद् बहिः षोडशदलं लिखेत् तत् केशरे ह्रियम् ।
वर्मास्त्रनतिसंयुक्तं दलेषु द्वादशाक्षरम् ॥५०॥

द्वादशदलाद् बहिः मण्डलं विधाय तदुपरि षोडशदलं लिखेत् तस्य केशरस्थाने ह्रीं वीजं लिखेत् । दलेषु च षोडशाक्षरान् लिखेत् । ते च वर्णाः वासुदेवमन्त्रस्य द्वादशवर्म हुं अस्त्रं फट् नतिः नमः, हुं फट् नमः इतियोगेन षोड शाक्षरान् लिखेदितिभावः ॥५०॥

द्वादश दलकमल के बाहर गोलाकार रेखा लिखकर उसके ऊपर षोडशदल कमल लिखे । उन दलों के केशर स्थान में ह्रीं मन्त्र को लिखे, और सोलह पत्रों में सोलह अक्षरों को लिखे, उनका विवरण इसप्रकार है कि-ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

इस मन्त्र का वारह अक्षर, वर्म हुं अस्त्र फट् नति नमः अर्थात् हुं फट् नमः इनको संकलन करने से सोलह अक्षर होते हैं उन को लिखे ॥५०॥

तत् सन्धिष्वीरजादीनां मन्त्रान् मन्त्री समालिखेत् ।
ह्रं सृं भृं बृं लृं शृं जृं चालिखेत् सम्यक् ततो बहिः ॥५१॥

षोडशदलानां सन्धिभागेषु उपरिकरिष्यमाणवृत्तस्याधः श्रीहनुमदादीनां मन्त्राणां बीजं लिखेत् । श्रीहनुमत् सुग्रीवभरतविभीषणलक्ष्मणशत्रुघ्नजाम्बवता मङ्गदधृष्टिजयन्तविजयसुराष्ट्रराष्ट्रवर्धनाकोपधर्मपालसुमन्त्राणां पार्षदानां बीजान् लिखेत् । तत्र विन्दुशिरस्कानां नामाद्यक्षराणां बीजत्वं ज्ञेयम् । यथा 'हं हनुमते नमः' इति । श्रीहनुमदादिषोडशबीजाद् बहिः ह्रं सृं भृं बृं लृं शृं जृं च सम्यक् लिखेत् ॥५१॥

षोडशदल कमल के सन्धि भागों में अर्थात् वाद में ऊपर की जानेवाली वृत्ताकार रेखा के नीचे श्रीहनुमान् आदि मन्त्रों के बीजाक्षर को लिखे । श्रीहनुमान् सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, जाम्बवान् अङ्गद धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल सुमन्त्र इन पार्षदों के बीजों को लिखे । बीज मन्त्र के विषय में व्यवस्था है कि नाम के आदि अक्षर के ऊपर अनुस्वार लगाने पर वीजत्व होता है जैसे-'हं हनुमते नमः' श्रीहनुमान् आदि सोलह बीजों के बाहर ह्रं सृं भृं बृं लृं शृं जृं इन बीजों को सम्यक् प्रकार से लिखें ॥५१॥

द्वा त्रिंशारं महापद्मं नादविन्दुसमायुतम् ।
विलिखेन्मन्त्रराजार्णांस्तेषु पत्रेषु यत्नतः ॥५२॥

ततः वृत्ताकारां रेखां विधाय स्पष्टतया नादविन्दुसहितं द्वात्रिंशत् दलं महापद्मं लिखेत् । तत्र द्वात्रिंशद्दलेषु ।

'रामभद्र?महेष्वास? रघुवीर?नृपोत्तम? ।
भो दशास्यान्तकास्माकं रक्ष देहि श्रियं च ते'

इतिमन्त्रराजस्य वर्णान् पूर्वादिक्रमतः दलस्य मध्येलिखेत् केसरभागे च नादविन्दुः लिखेत् । तत्र अर्थचन्द्राकारः नादः तस्योपरि विन्दुः एव नादविन्दुः । स च प्रणवावयवबोधकः । 'अर्धमात्रात्मको रामः ब्रह्मानन्दैकविग्रहः' इत्युक्तत्वात् ॥५२॥

तत्पश्चात् वृत्ताकार रेखा लिखकर उसके ऊपर स्पष्ट रूपसे नाद विन्दु सहित द्वा त्रिंशत् (३२) दल कमल लिखे। उस वत्तीस पत्रों वाला कमल के अन्दर 'रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम। भो दशास्यान्तकास्माकं रक्ष देहि श्रियं च ते' इस मन्त्रराज के वत्तीस वर्णों को पूर्व आदि दिशा के क्रम से दलके मध्य भाग में लिखे। यहां नाद विन्दु से अभिप्राय है कि अर्धचन्द्राकार रेखा को नाद कहते हैं एवं उसके ऊपर लिखा जानेवाला विन्दु विन्दु कहलाता है जिसे लोकभाषा में चन्द्रविन्दु कहते हैं। अर्धमात्रा स्वरूप ब्रह्मानन्द ही एक मात्र जिनकी आकृति है ऐसे भगवान् श्रीरामजी हैं अर्थात् मन्त्रराज के प्रत्येक वर्णों के ऊपर चन्द्रविन्दु लिखा जाना चाहिये ॥५२॥

ध्यायेदष्टवसूनेकादशरुद्रांश्च तत्र वै।
द्वादशेनांश्च धातारं वषट्कारं ततो बहिः ॥५३॥

वृत्ताकारेण लिखितेषु द्वात्रिंशत् दलेषु श्रीरामस्य अनुष्टुभस्य मन्त्रस्य द्वात्रिंशत् वर्णान् विलिख्य तत्र पत्रेषु ध्रुवादीन् अष्टवसून्, वीरभद्रादीन् एकादश रुद्रान्, वरुणादीन् द्वादशदिवाकरान् धातारं च ध्यायेत्। अर्थात् एतेषां देवानां ध्यानपूर्वकम् पत्रेषु वर्णान् लिखित्वा ततो बहिः पत्रकोणोपरि वषट्कारं लिखित्वा पूजयेत् इतिभावः। ध्रुवादयश्च यथा-

ध्रुवोधरस्तथा सोम आपोवायुस्तथाऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः॥

वीरभद्रशम्भुगिरीशाजैकपादाऽहिर्बुध्न्यपिनाक्यपराजितभुवनाधीशकपालिदिक्पतिस्थाणवः, इति एकादशरुद्राः।

वरुणः सूर्यवेदाङ्गौ भानुरिन्द्रोरविस्तथा।
गभस्तिश्च यमः स्वर्णरेताचैव दिवाकरः॥
मित्रोविष्णुरिति प्रोक्ता द्वादशामी दिवाकराः ॥५३॥

गोलाकार में लिखे गये वत्तीस पत्रों वाला कमल के प्रत्येक दल में 'रामभद्रमहेष्वास' इत्यादि अनुष्टुभ मन्त्रराज के वत्तीस अक्षरों को लिखकर उन पत्रों में ध्रुव आदि आठ वसु, वीरभद्र आदि एकादश रुद्र, तथा वरुण आदि द्वादश दिवाकर एवं धाता का पूर्व आदि क्रम से प्रत्येक पत्रों में ध्यानपूर्वक लिखकर पूजन करना चाहिये। तथा उसके ऊपर गोलाकार रेखा करके प्रत्येक पत्र के कोण के ऊपर

वषट्कार लिखकर पूजन करें । यहां ध्रुव आदि का विवरण इसप्रकार है→

ध्रुव, धर, सोम, आप, वायु, अनल, प्रत्यूष और प्रभास ये आठ वसु हैं । वीरभद्र, शम्भु, गिरीशः अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, भुवनाधीश, कपाली, दिक् पति और स्थाणु ये एकादश रुद्र हैं । वरुण, सूर्य, वेदाङ्ग, भानु, इन्द्र, रवि, गभस्ति, यम, स्वर्णरिता, दिवाकर, मित्र एवं विष्णु ये द्वादश दिवाकर हैं । तथा इनके साथ धाता को जोडने पर कुल (३२) वत्तीस वसु आदि होते हैं ॥५३॥

भूगृहं वज्रशूलाढ्यं रेखात्रयसमन्वितम् ।
द्वारोपेतं च राश्यादिभूषितं फणिसंयुतम् ॥५४॥

तस्माद् बहिः चतुरस्तं भूगृहं कुर्यात् । भूगृहस्य चतुर्णां कोणानामुपरि शूलस्य तदुपरिवज्रस्य चाकृतिं लिखेत् । सत्वरजः तमः स्वरूपाः तिस्त्रः रेखाः ताभियुक्तं प्रागादिचतुर्भिद्वारैः सहितं मेषादिभिः द्वादशसंख्याकैः राशिभिः समलङ्कृतमष्टाभिः कुलनागैर्युक्तं भूगृहं कुर्यादिति भावः । तत्र राश्युल्लेखे अयं क्रमः→पूर्वद्वारोपरिमेषपूर्वाग्निकोणान्तरालेवृषमग्निकोणदक्षिणान्तरालेमिथुनं दक्षिणद्वारोपरिकर्कमेवम् क्रमेण द्वादशराशयोलेखनीयाः । ईशानपूर्वयोरन्तराले मीनं लिखेत् । अष्टकुलनागाः-शेषवासुकितक्षकशंखश्वेतमहापद्मकम्बलाश्वत-रेलापत्रकर्कोटकाभिधानाः । तेषामप्युल्लेखो विधेयः ॥५४॥

उसके बाहर चतुरस्त्र भूगृह का उल्लेख करे । भू गृह के चारों कोणों के ऊपर शूल एवं वज्र के आकृति का लेखन करे । सत्व रजस् एवं तमस् गुण स्वरूप तीन रेखाये बनावें । उन तीनों रेखाओं के सहित पूर्व आदि चारों द्वारों से युक्त यन्त्र में मेष आदि वारह राशियों को लिखना चाहिये । उन राशियों से सुशोभित एवं आठ कुल नागों से युक्त भूगृह बनावें । उसमें राशियों का उल्लेख करने में यह क्रम है कि पूर्व द्वार के ऊपर मेष लिखे, पूर्व और अग्नि कोण के मध्य वृष, अग्निकोण एवं दक्षिण द्वार के मध्य मिथुन इसी क्रम से वारह राशियों का उल्लेख करें, दक्षिण द्वार पर कर्क एवं ईशान पूर्व द्वार के अन्तराल में मिथुन लिखे । आठ कुल नाग निम्न लिखित है→शेष, वासुकि तक्षक शङ्ख श्वेत महापद्म, कम्बालाश्वतर, इलापत्र कर्कोटक, इनका भी उल्लेख किया जाना चाहिये ॥५४॥

एवं मण्डलमालिख्य तस्य दिक्षु विदिक्षु च ।

नारसिंहं वाराहं च लिखेन् मन्त्रद्वयं तथा ॥५५॥

इत्थं मण्डलं लिखित्वा तस्य पूर्वादिचतुर्षु दिक्षु आग्नेयादिविदिक्षुकोणेषु क्रमेण नारसिंहं वाराहं च बीजं लिखेत् । पूर्वादिषु नारसिंहं, कोणेषु च वाराहं मन्त्रं लिखेत् ॥५५॥

इसप्रकार मण्डल लिखकर उस के पूर्व दक्षिण आदि दिशाओं में तथा अग्नि आदि कोणों में क्रमशः नरसिंह का एवं वराह भगवान् का मन्त्र लिखे । पूर्व आदि दिशाओं में नरसिंह का एवं अग्नि आदि कोणों में वराह का मन्त्र लिखे ॥५५॥

कूटरेफानुग्रहेन्दुनादशक्त्यादिसंयुतः ।

यो नृसिंहः समाख्यातो ग्रहमारणकर्मणि ॥५६॥

कूटः क्षकार-रेफः, अनुग्रह औकार नादः विन्दु नादः प्रणवस्य षष्ठ अवयवः शक्तिः सप्तमः एवम्भूतः 'क्ष्रौं' इतिसनृसिंहप्रसिद्धः स नृसिंहः ग्रहाणां भूतप्रेतादीनाञ्च मारणकर्मणि प्रशस्तः ॥५६॥

कूट का अर्थ क्षकार रेफ अनुग्रह से औ विन्दु नाद प्रणव का छठा अंश शक्ति से सातवां अंश इत्यादि स्वरूप वाला क्ष्रौं ऐसा नृसिंह भगवान् प्रसिद्ध हैं। जो ग्रहों एवं भूतप्रेत आदि के संहार क्रिया में लोक प्रसिद्ध हैं ॥५६॥

अन्त्याधीशवियद् विन्दुनादैर्वीजं च सौकरम् ।

हुंकारं चात्र रामस्य मालामन्त्रोऽधुनेरितः ॥५७॥

अन्त्याधीशः शिवः तत् सम्बन्धी उकारः तेजसहितः वियत् हकारः विन्दुना नादेन च युक्तः वराहमन्त्रस्य वीजम् 'हुँ' इतिसमाख्यातम् । तदेव स्फुटयन्नाह हुंकारमिति । एवम् शास्त्रे भगवतः श्रीरामस्य मालामन्त्रः कथितः ॥५७॥

अन्त्याधीश का अर्थ शिव है, तत् सम्बन्धी वीज उकार हुआ । उस उकार के सहित वियत् अर्थात् हकार वह नाद एवं विन्दु के सहित अर्थात् 'हुँ' यह वराह भगवान् का वीज मन्त्र है । उसी को सुस्पष्ट करते हुए उपनिषद् कहती है हुँकार । इसप्रकार शास्त्र में भगवान् श्रीरामजी का माला मन्त्र कहा गया है ॥५७॥

तारोंनतिश्च निद्रायाः स्मृतिभेदश्च कामिका ।

रुद्रेण संयुता वह्निर्मेधामरविभूषिता ॥५८॥

दीर्घाक्रूरयुताह्लादिन्यथो दीर्घासमानदा ।
क्षुधा क्रोधिन्येयथामोघाविश्वमप्यथमेधया ॥५९॥
युक्ता दीर्घा ज्वालिनी च ससूक्ष्मामृत्युरूपिणी ।
स प्रतिष्ठाह्लादिनी त्वक् क्ष्वेलः प्रीतिश्च सामरा ॥६०॥
ज्योतिस्तीक्ष्णाग्निसंयुक्ता श्वेतानुश्वारसंयुता ।
कामिका पञ्चमो लान्तस्तां तां तो धान्त इत्यथ ॥६१॥
ससानन्तो दीर्घयुतो वायुः सूक्ष्मायुतोविषः ।
कामिका कामिकां रुद्रयुक्ताथोथस्थिर स ए ॥६२॥
तापिनी दीर्घयुक्ता भूरनिलोऽनन्तगोनलः ।
नारायणात्मकः कालः प्राणोऽम्भोविद्यया युतः ॥६३॥
पीतारतिस्तथा लान्तो योन्या युक्तस्ततो नतिः ।
सप्तचत्वारिंशब्दर्णो गुणान्तः सगुणस्त्वयम् ॥
राज्याभिषिक्तस्य तस्य रामस्योक्तक्रमाल्लिखेत् ॥६४॥

'ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्न विशदाय मधुरप्रसन्नवदनायामित तेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः' इतिसप्तचत्वारिंशदक्षरात्मकः श्रीरामस्य सगुणोमालामन्त्रः । स च राज्याभिषिक्तस्य न तु वनवासिनः । तस्योद्धारं सप्तभि र्मन्त्रैरुक्तवान् ।

तद्यथा-तारः ओकारः नतिः-नमः, निद्राकला मकारः स्मृतिकलासम्बद्धः गक्कारः, मेदः सम्बन्धीवकारः कामिकलया-तकारः स च रुद्रेणैकादशस्वरेण एकारेण युक्तः । वह्निः रेफमेधाकलासम्बद्धः धकारः स च ईश्वरसम्बन्ध्युकारेण संयुतः । दीर्घकलया मकारः सचाक्रूरयुतः अनुस्वारसहितः ह्लादिनीकलया दकारः दीर्घकलया नकारः स च मामदाकलया आकारेण युतः, क्षुधासम्बद्धो यकारः क्रोधिनी सम्बद्धः रकारः अमोघासम्बन्धी क्षकारः विश्वात्मा वासुदेवः तत् सम्बन्धी ओकारः मेधासम्बन्धी घकारेण संयुक्तः नकारः ज्वालिनी सम्बन्धी वकारः स च सूक्ष्मदेवतया इकारेण संयुतः, मृत्युरूपानामकलासम्बन्धी शकारः

ह्लादिभीतः दकारः सप्रतिष्ठाया आकारेण युक्तः त्वग्धातुसम्बद्धः धकारः क्ष्वेलनेन मकारः प्रीतिकलया धकारः, सचामरेश्वरेण उकारेण संयुतः ज्योतिः रेफः तीक्ष्णाकला पकारः सचाग्निनारेफेण संयुतः श्वेतकला सम्बन्धी तकारतस्य पञ्चमो नकारः लान्तो वकारः तस्यान्तः यः यस्यान्तः दः तेन तान्तान्तेन दकारः धान्तो नकारः सानन्तः आकारेण सहितः वायुः यकारः स च दीर्घाकारेण युतः विषोमकारः स च सूक्ष्मदेवतया इकारेण युक्तः, कामिका तकारः पुनः कामिका तकारः स च रुद्रेण एकादशस्वरेण एकारेण युक्तः स्थिरकला सम्बद्धः जकारः स इति ए र्डात द्वयोः संयोगेन सेतापिनीकलयावकारः भूः लकारः स च दीर्घाकारेण युतः अनिलयकारः अनन्त आकारः तदङ्गः अनलः रेफ नारायणात्मकः काल आकारः तत् मकारः प्राणः यकारः, अम्भः जलं वकारः स च विद्याया इकारेण युक्तः, पीतकलया ष् कारः रतिकलया णकारः तेन संश्लिष्टः लान्तो वकारः स च योन्या एकारेण संयुक्तः ततो नति नमः शब्दः, इत्थं सप्तचत्वारिशदक्षरात्मकस्य मालामन्त्रस्योद्धारः भवति ॥५८/६४॥

'ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्न विशदाय मधुरप्रसन्न वदनायामित तेज से बलाय रामाय विष्णवे नमः' यह (४७) सैंतालिस अक्षरात्मक स्वरूप वाला श्रीरामचन्द्रजी का माला मन्त्र है। और वह मन्त्र प्राप्त राज्याभिषेक श्रीरामजी का मन्त्र है। नकि वनवासी श्रीरामचन्द्रजी का इस माला मन्त्र का उद्धार श्रीरामतापनीय उपनिषद् में सात मन्त्रों में निरूपण किया गया है वह इसप्रकार से है-

तारः से ॐकार नति से नमः निद्रा कला सम्बन्धी मकार स्मृति कला से गकार मेद सम्बन्धी वकार कामिकला से तकार और वह रुद्र अर्थात् ग्यारहवां स्वर एकार से युक्त, वह्नि से (२) रेफ मेधाकला सम्बन्धी घकार और वह ईश्वर (शिव) सम्बन्धी उकार से युक्त अर्थात् घु दीर्घकला से नकार और वह अक्रूर अर्थात् अनुस्वार के सहित ह्लादिनीकला से दकार दीर्घकलाकं अर्थ नकार और वह मानदाकला आकार से युक्त, क्षुधा सम्बन्धी यकार क्रोधिनीकला सम्बन्धी (२) रेफ अमोघा सम्बन्धी क्षकार विश्वात्मा वासुदेव तत् सम्बन्धी ओकार से युक्त अर्थात् क्षो, मेधा सम्बन्धी घकार वह नकार से संयुक्त ज्वालिनीकला सम्बन्धी वकार और वह सूक्ष्म देवता अर्थात् इकार से संयुक्त मृत्यु स्वरूपा नामकला सम्बन्धी शकार ह्लादिनीकला से दकार वह प्रतिष्ठा अर्थात् आकार के सहित, त्वग् धातु से सम्बद्ध यकार, क्ष्वेलनविष तत् सम्बन्धी मकार

प्रीतिकला से धकार और वह ईश्वर (शिव) उकार से युक्त, ज्योति अग्नि तत् सम्बन्धी रेफ (२) तीक्ष्णकला पकार और वह अग्नि अर्थात् रेफ से संयुक्त श्वेतकला सम्बद्ध सकार, और वह अनुस्वार से युक्त कामिका कला सम्बन्धी तकार और उसका पांचवां अक्षर नकार ल अक्षर का अन्त वकार त का अन्त थ एवं य थ का अन्त द अर्थात् तान्तान्तः का अर्थ दकार ध का अन्त अक्षर नकार अनन्त के सहित अर्थात् आकार के सहित नकार, वायु से यकार और वह दीर्घ अकार से युक्त यहां पर दो अकार को सन्धि करने पर आकार हुआ है, उसे मन्त्राक्षर गणना करते समय दो अक्षर गिने जायेंगे। अन्यथा सैंतालिस अक्षर पूर्ण नहीं होगा। विष से मकार और वह मकार सूक्ष्म देवता अर्थात् इकार से युक्त होकर मि-कामिकला तकार और पुनः कामिका तकार अर्थात् एक अमित का तकार दूसरा तेजसे का तकार और वह द्वितीय तकार रुद्र अर्थात् ग्यारहवां स्वर एकार से युक्त, स्थिरकला सम्बन्धी जकार स और ए को संयोग करने से बनता है से, तापिनी कला से वकार मु का अर्थ लकार और वह दीर्घ आकार से युक्त, अनिल का अर्थ यकार अनन्त से आकार और वह अनल रेफ नारायणात्मक काल आकार इसके पश्चात् मकार प्राण (वायु) यकार अम्भ से जल का वीज वकार और वह विद्या से अर्थात् इकार से युक्त, पीतकला का अर्थ षकार रतिकला का अर्थ णकार और उससे सटा हुआ ल अक्षर का अन्त वकार और वह वकार योनि अर्थात् एकार से युक्त इसके पश्चात् नति अर्थात् नमः शब्द है। इसप्रकार सैंतालिस अक्षरों वाला भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के माला मन्त्र का उद्धार सुस्पष्ट होता है ॥५८/६४॥

इदं सर्वात्मकं यन्त्रं प्रागुक्तं ऋषिसेवितम्।
सेवकानां मोक्षकरं आयुरारोग्यवर्धनम् ॥६५॥
अपुत्राणां पुत्रदं च बहुना किमनेन वै।
प्राप्नुवन्ति क्षणात् सम्यक् अत्र धर्मादिकानपि ॥६६॥

इदं पूर्वोक्तं यन्त्रं सर्वदेवमुन्याद्यात्मकमस्ति, ननु देवतान्तरपूजनादि दमनन्यत्ववाधकं तत् कथं सेवकानां मोक्षकरं स्यादित्युच्यते ?। अङ्गबुध्या तेषां पूजा विधानेन नानन्यत्वहानिः। यन्त्रस्य श्रीरामशरीरत्वश्रुत्या आवरणदेवतानां तदङ्गत्वं सिद्धम्। तेषामावरणदेवतानां श्रीरामसेवकत्वेन पूजनाच्च न दोषः।

अस्य श्रीवशिष्ठादिभिः सेवनात् सदाचारत्वम् । न केवलं देहान्तेमोक्षप्रदमपि तु जीवनदशायामाधिव्याधिविनाशकत्वेन सुखदम् । अतः उक्तमायुरारोग्यवर्धनम पुत्राणां पुत्रदञ्चेति । अस्य यन्त्रस्य सम्यगनुष्ठानेन सकलपुरुषार्थसिद्धिरितिभावः ॥६५-६६॥

यह पूर्व में बताया गया श्रीराम यन्त्र समस्त देवता एवं मुनियों के उपासना-साधनात्मक है । यहां प्रश्न उठता है कि सर्वदेव मुन्यात्मक यदि यन्त्र है तो अनन्यत्व की हानि होती है, मोक्ष तो अनन्य भक्ति से ही प्राप्त होता है । तो मोक्ष प्रद यह यन्त्र नहीं हो सकेगा । इसका समाधान है कि अंग की भावना से उन-उन देवताओं एवं मुनियों का पूजा विधान करने से अनन्यत्व में किसी तरह की हानि नहीं होती है । इस यन्त्र को श्रुति भगवान् श्रीरामजी का शरीर कहती है और आवरण देवताओं का श्रीरामजी के अवयव होने की सिद्धि होती है । उन आवरण देवताओं का श्रीरामचन्द्रजी के सेवक रूपमें पूजन करने से अनन्यत्व हानि का कोई दोष नहीं है । यह यन्त्र इस यन्त्र का वशिष्ठादि ऋषि मुनियों के द्वारा सेवित होने से सदाचारत्व प्रमाणित होता है। यह यन्त्र इस शरीर का अवसान होने के पश्चात् केवल मोक्षदायक ही नहीं है अपितु जीवन दशा में भी समस्त आधि व्याधियों का विनाशक होने के कारण सुख दायक है । इसलिये कहा है आयुष्य एवं आरोग्य का बढाने वाला है एवं पुत्र हीन को पुत्र प्रदान करनेवाला है । इस यन्त्र का विधान पूर्वक पूजन करने से सर्वविध धर्म अर्थ काम एवं मोक्ष स्वरूप पुरुषार्थों की सिद्धि होती है यह तात्पर्य है ॥६५-६६॥

इदं रहस्यं परममीश्वरेणापि दुर्गमम् ।
इदं यन्त्रं समाख्यातं नदेयं प्राकृते जने ॥६७॥ इति॥

इदं यन्त्रं सम्यंग् निरन्तरं पितं गुप्तञ्च, यत् ईश्वरेण अपि दुर्बोध्यम् । इदञ्च नीचे जने न दातव्यम् । इतिशब्दः उपनिषत् समाप्तिबोधकः ॥६७॥

यह पूर्व में बताया गया श्रीराम यन्त्र अत्यन्त गुप्त है । यह ईश्वर के द्वारा भी बडी कठिनाई से समझने योग्य है । जो सम्यक् प्रकार से पूर्ण रूपसे प्रतिपादित किया गया है । और यह यन्त्र नीच स्वभाव वाले सामान्य अपात्रों को नहीं दिया जाना चाहिये । इस मन्त्र में इति शब्द उपनिषत् की समाप्ति बोध कराने के लिये है ॥६७॥

卐 इति चतुर्थोपनिषद् समाप्ता 卐

पूजा साधनात्मकं यन्त्रनिरूपणं चतुर्थोपनिषदि कृतम् । सम्प्रति पूजां निरूपयितुं पञ्चमोपनिषत् प्रारभ्यते । तत्र विघ्नादीनां देवतान्तराणामपि पूजनं विधास्यते । परंश्रीरामशेषत्वेन तेषां पूजने न दोषः । श्रीरामपूजाङ्गत्वेन पूजन मितिभावः ।

भूतादिकं च शोधयेद् द्वारपूजां कृत्वा पद्माद्यासनस्थः प्रसन्नः । अर्चाविधावस्य पीठाधरोर्ध्वं पार्श्वार्चनं मध्यपद्मार्चनञ्च ॥१॥

प्रथमं द्वारपूजां कृत्वा पद्मस्वस्तिकाद्यासनस्थः प्रसन्नमनाः समुपासकः भूतादिपञ्चकमादिशब्देन आत्मानं प्रतिमां पूजाद्रव्याणि क्षितिञ्च शोधयेदिति ज्ञेयम् । तत्र भूतशुद्ध्यै यं रं यं वं लं हम् इति बीजैः वाय्वग्निजलपृथिव्याकाशान् क्रमेण शोषणदाहननिःसारणप्लावनपिण्डीकरणादीनि विधेयानि । तत्र पूरकेण षोडशवारजपेन वायुबीजेन शरीरपापपुरुषयोः शोषणं कृत्वा 'रं' इतिचतुः षष्ठिवारजपेनाग्निवीजेन कुम्भकेन दाहनं विधाय पुनः 'यं' वीजेन रेचकेन पापपुरुषभस्म बहिः निस्सार्य, 'वम्' इति जलवीजेन षोडशवारजपेन शरीर भस्मप्रसिच्य, 'लं' इति पृथिवी बीजेन कुम्भकेन चतुः षष्ठिवारजपेन पिण्डीकृत्य, 'हं' इति आकाशवीजेन एकचत्वारिशद् वारजपेन मूर्धादिसर्वावयवानुत्पाद्य, तस्य शुद्धशरीरस्य प्राणप्रतिष्ठा मन्त्रेण प्राणान् प्रतिष्ठाप्य श्रीराममन्त्रवर्णादिन्यासेन श्रीरामशरीरं निष्पाद्य श्रीरामसदृशोभूत्वा देवोभूत्वा देवं यजेद् नादेवो देवमर्चयेदिति दिशा देवार्चनयोग्यतामापादयितुं भूतशुद्धिसमाचरेत् । मूलाधारस्थितां कुण्डलिनीं परदेवतामित्याद्युच्चार्य प्रत्येकं प्रविलापयेत् । भुवं जले जलं वह्नौ वह्निं वायौ वायुमाकाशेप्रविलाप्य तम् अहंकारे अहंकारं महत् तत्त्वे महत् प्रकृतौ मायामात्मनि, एवं शुद्धसच्चिन्मयोभूत्वा, दक्षिणकुक्षि स्थितमंगुष्ठप्रमाणं कृष्णवर्णं ब्रह्महत्यादियुक्तं पापपुरुषं वायुवीजस्मरणेन शोषयेत् । ततो वह्निवीजेन दहेत् ततः वायुवीजेन पूर्ववत् निःसारयेत् अमृतवीजेनाप्लावयेत्, ततः वायुवीजं जपेन मूर्धादिपादपर्यन्तान्यङ्गान्युत्पाद्य, आकाशादीनिभूतानि पुनरूत्पादयेत् । ततः विधिना प्राणप्रतिष्ठां विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात् । आत्मशुद्धिः वैराग्येन प्रतिमाशुद्धिरनुलेपनक्षालनादिभिः, केशकीटादिनिवारणेन पूजाद्रव्यशुद्धिः । उप लेपनादिभिः भूशुद्धिः । एवं

विशुद्धः पूजकः चित्तनैर्मल्यवान् पीठाधरोर्ध्व मर्चयित्वामध्यपद्मार्चनं च विधाय, तत्र विधिः पीठाधोभागाय नमः उर्ध्वभागाय, पूर्वादिपार्श्वाय पीठमध्यकमलाय च नमः इतिपूजयेत् ॥१॥

पूजा साधनं स्वरूप यन्त्र का निरूपण चतुर्थ उपनिषद् में किया गया है। सम्प्रति पञ्चम उपनिषद् पूजा का विधान निरूपण करने के लिये आरम्भ करते हैं। उसमें विघ्न आदि अन्य देवताओं का भी पूजा विधान किया जायगा। पर श्रीरामजी का शेष होने के कारण उनके पूजन में किसी प्रकार का दोष नहीं है। अर्थात् श्रीरामजी की पूजा का अङ्ग स्वरूप में इन देवताओं का पूजन किया जाता है यह भाव है। इसलिये 'भूतादिकं च शोधयेत्' से आरम्भ करते हैं।

पहले द्वार पूजा करके पद्मासन या स्वस्तिकादि आसन में प्रसन्न चित्त होकर वैठकर उपासक भूत आदि पांच की तथा आदि शब्द से आत्मा, प्रतिमा, पूजा द्रव्य, एवं पृथ्वी का भी शोधन करे यह जानना चाहिये। उसमें भूत शुद्धि के लिये यं रं वं लं हं इन बीजों से वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, एवं आकाश को क्रमशः शोषण, दाहन, निःसारण, प्लावन, पिण्डीकरण आदि किया जानना चाहिये। इसमें पूरक के द्वारा सोलह वार वायुवीज के जप से शरीर एवं पाप पुरुष का शोषण करके रं इस अग्नि वीज के द्वारा ६४-वार जप से कुम्भक में दाहन करके पुनः भस्म को वायु वीज के रेचक के द्वारा पापपुरुष के भस्म को बाहर निकाल कर वं इस जल वीज के द्वारा १६-वार जप से शरीर के भस्म को सिञ्चित करके लं इस पृथ्वी वीज के ६४-वार कुम्भक जप से उसका पिण्ड बनाकर हं इस आकाश वीज से ४१-वार जप से शिर आदि सभी अवयवों को उत्पन्न करके उस शुद्ध शरीर की प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र के द्वारा प्राणों की प्रतिष्ठा करके श्रीराम मन्त्र के वर्ण आदि के न्यास से श्रीरामजी का शरीर बनाकर श्रीरामजी के सदृश होकर 'देवता सदृश बनकर देवता की उपासना करनी चाहिये विना देवता जैसा बने देवता की उपासना नहीं करनी चाहिये' इस शास्त्रीय विधान के अनुसार अपने आप में देवता की उपासना की योग्यता को उत्पन्न करने के लिये विधिपूर्वक भूतशुद्धि का सम्यक् आचरण करे।

मूलाधार में विद्यमान कुण्डलिनी पर देवता इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करके प्रत्येक भूतों का संहार क्रम से प्रविलापन करना चाहिये। अर्थात् पृथ्वी तत्त्व को जल

में विलय करना चाहिये। जलीय तत्त्व को अग्नि में, अग्नि तत्त्व को वायु में विलय करके एवं वायु तत्त्व को आकाश में प्रविलापन करके आकाश को अहंकार में प्रविलापन करें। अहंकार को महत् तत्व में महत् तत्व को प्रकृति अर्थात् माया में प्रविलापन करके माया तत्व को आत्मा में प्रविलापन करें। इसप्रकार विशुद्ध सत् चित् मय होकर शरीर के दक्षिण कुक्षि में विद्यमान अंगुष्ठ मात्र प्रमाण वाला काले रंग का ब्रह्महत्या आदि विभिन्न प्रकार के पापों से परिपूर्ण पाप पुरुष को वायुवीज के स्मरण के द्वारा शोषण करना चाहिये। तत्पश्चात् वह्नि वीज के स्मरण से पापपुरुष का दहन करके वायुवीज के जप के द्वारा पहले के समान पापपुरुष के भस्म का निस्सारण करे। पुनः वायुवीज के जप से सिर से लेकर पैर पर्यन्त समस्त अङ्गों का उत्पादन करके आकाश, वायु, अग्नि, जल आदि भूतों को पुनः उत्पन्न करें। भूतोत्पत्ति के पश्चात् शास्त्रीय विधान के अनुसार प्राण प्रतिष्ठा आदि करके पूर्व निरूपित क्रम से ऋषि आदि का षडङ्ग न्यास करना चाहिये। वैराग्य उत्पत्ति के द्वारा आत्मशुद्धि होती है जिसे संसार से उत्कट वैराग्य होता है उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है। चन्दनादि के अनुलेपन एवं प्रक्षालन आदि क्रियाओं से प्रतिमा शुद्धि की जाती है। केश कीट आदि अशुद्ध वस्तुओं को पूजा साधनों में से निकालने की क्रिया के द्वारा पूजा द्रव्यों की शुद्धि होती है। मार्जन उपलेपनादि क्रियाओं से भू शुद्धि होती है। इसप्रकार की क्रियाओं के द्वारा सर्वतोभावेन विशुद्ध होकर उपासक चित्त निर्मलता आदि से सम्पन्न होकर पीठ के अधोभाग ऊर्ध्व भाग की पूजा करके और मध्यभाग के कमल की पूजा करके अग्रिम विधान का सम्पादन करे। यहां पर पीठादि की पूजा करने का विधान है कि 'पीठाऽधोभागाय नमः' 'पीठोर्ध्वभागाय नमः' 'पीठ पूर्वपार्श्वाय नमः' इसी तरह दक्षिण, पश्चिम, उत्तर पार्श्व की पूजा करके 'पीठमध्यकमलाय नमः' यह कहकर पीठ मध्य की पूजा करे ॥१॥

कृत्वामृदुश्लक्ष्णसुतूलिकायां रत्नासने देशिकं चार्चयित्वा।
शक्तिं चाधाराख्यकां कूर्मनागौ पृथिव्यब्जे स्वासनाधः प्रकल्प्य ॥२॥

पीठाद् बहिरेवास्य वामभागे कोमलस्निग्धसुशोभनतूलिकायां रत्नमिश्रितसिंहासने भावनाविषयीभूतमाचार्य्यं पूजयित्वा स्वशरीरित्वेनाभेदेन चिन्तितस्य श्रीरामस्य यत् पूजापीठं तस्याधोभागे आधारशक्तये नमः तदुपरि

कूर्माय नमः तदुपरि शेषाय नमः तदुपरि पृथिव्यै नमः तदुपरि च कमलाय नमः इति आधारशक्तिपञ्चकं प्रकल्प्य ॥२॥

पीठ के बाहर ही इसके वामभाग में सुकोमल सुस्निग्ध सुशोभित रुई से वना उपवर्ह पर रत्नादि से सुसज्जित सिंहासन के ऊपर अपने अन्तःकरण से भावित आचार्य की विधिवत् पूजा करके अपने शरीरी के स्वरूप में परि चिन्तित भगवान् श्रीरामजी के शरीर का अभेद रूपमें चिन्तित का जो पूजा पीठ है उसके निम्न भाग में 'आधार शक्तये नमः' उसके ऊपर 'कूर्माय नमः' उसके ऊपर 'शेषाय नमः' उसके ऊपर 'पृथिव्यै नमः' और उसके ऊपर 'कमलाय नमः' इसप्रकार से आधार शक्तिपञ्चक की विधिवत् कल्पना करके ॥२॥

विघ्नं दुर्गां क्षेत्रपालञ्च वाणीं वीजादिकांश्चाग्निदेशादिकांश्च ।
पीठस्यांघ्रिस्वेषु धर्मादिकांश्च नञ् पूर्वां स्तांतस्य दिक्ष्वर्चयेच्च ॥३॥

आग्नेयनैर्ऋत्यवायव्येशानदेशसम्बद्धान् गं दुं क्षं सं इतिवीजसहितं गणेशदुर्गाक्षेत्रपालसरस्वतीदेवताः पूजयित्वा तेष्वेव कोणेषु धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यान् वीजसहितैः मन्त्रैः समर्चयेत् । नञ् पूर्वान् तान् अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्यान् पूर्वादि दिक्षु अर्चयेत् । सर्वत्रानुस्वारसहितं नामाद्याक्षरं वीजं तैः सहितैर्मन्त्रैरर्चयेत् ॥३॥

आग्नेय नैऋत्य वायव्य ईशान कोण देश से सम्बद्ध गं दुं क्षं सं इन तत्तद् देवताओं के वीज से सम्बन्धित गणेश दुर्गा क्षेत्रपाल, एवं सरस्वती इन देवताओं की वीज सहित मन्त्र से पूजा करके उन्हीं कोणों में धर्म ज्ञान वैराग्य तथा ऐश्वर्य की वीज सहित मन्त्र से पूजा करनी चाहिये, एवं नञ् पूर्व में जिनके है ऐसे अधर्म अज्ञान अवैराग्य एवं अनैश्वर्य की पूर्वादि दिशाओं में पूजा करें । सभी जगह अनुस्वार सहित नाम का आदि अक्षर वीज कहा जाता है उन वीजों के सहित मन्त्रों से पूजा करें ॥३॥

मध्येक्रमादर्कविध्वग्नितेजांस्युपर्युपर्युत्तमैरर्चितानि ।
रजः सत्व तमः एतानि वृतत्रयं वीजाढ्यं क्रमाद्भावयेच्च ॥४॥

कमलमध्ये उपरिक्रमाद् सूर्यचन्द्राग्नितेजांसि अ उ मैः प्रणवैः समन्वितानि समर्चयेत् सत्वादिक्रमेण सत्वरजस्तमांसि वृतत्रयरूपेण भावयेत् समर्चयेदिति भावः । तत्रायं क्रमः कमलमध्ये अं अकार्य नमः, उं उडुपतये नमः अं अग्नये नमः, सं सत्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः ॥४॥

कमल के मध्य भाग में क्रमशः सूर्य चन्द्रमा और अग्नि इन तेजस् तत्त्वों की ऊपर के क्रम से अ उ म अर्थात् प्रणव ॐकार से समन्वित मन्त्रों के द्वारा विधि पूर्वक पूजा करे। सत्व आदि क्रम से सत्व रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणों को तीन वृत्त के स्वरूप में चिन्तन करे। तथा विधिपूर्वक पूजा करे। इस पूजा में यह क्रम है अं अकार्य नमः, उं उडुपतये नमः, अं अग्नये नमः, सं सत्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः ॥४॥

आशाव्याशास्वप्यथात्मानमन्तरात्मानं च परमात्मनमन्तः।
ज्ञानात्मानं चार्चयेत्तस्य दिक्षु मायाविद्ये ये कलापारतत्त्वे ॥५॥

अथ अन्तः कर्णिकामध्ये आत्मानं अन्तरात्मानं परमात्मानं ज्ञानात्मानं च पूर्वादिचतुर्दिक्षु पूजयेत्। अथ आग्नेयादिकोणेषु च तानेव पूजयेत्। तस्य दिक्षु मायाविद्ये ये कलापारं तत्त्वे च पूजयेदित्यर्थः ॥५॥

इसके वाद कमल के अन्तः कर्णिका के मध्य में आत्मा अन्तरात्मा परमात्मा एवं ज्ञानात्मा की पूर्व आदि दिशाओं में पूजन करे, एवं अग्नि आदि कोणों में भी इन्हीं चार की पूजा करे तथा उसकी पूर्व आदि दिशाओं में माया विद्या कला एवं परम तत्त्व की पूजा करे ॥५॥

संपूजयेद् विमलादींश्चशक्तीरभ्यर्चयेद्देवमावाहयेच्च ॥६॥

विमला उत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा प्रह्वी सत्या ईशाना अनुग्रहा इति नवशक्तयः ताः पूर्वादिदिक्षु आवाहयेत् अर्चयेच्च, चकारात् देवं श्रीरामचन्द्रमा वाहयेदभिपूजयेच्च ॥६॥

विमला उत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा प्रह्वी सत्या ईशाना अनुग्रहा ये सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की नौ शक्तियां हैं। इनको पूर्वादि दिशाओं एवं आग्नेयादि कोणों में आवाहित करें एवं पूजित करे। तत्पश्चात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का आवाहन एवं सभी प्रकार से पूजन करें ॥६॥

अंगव्यूहानिलजाद्यैश्च पूज्यधृष्ट्यादिकैर्लोकपालैस्तदस्त्रैः ॥७॥

आत्मादयसशक्तिकाः वासुदेवप्रद्युम्नादयश्च, अनिलजः श्रीहनुमान् तदादि भिरष्टभिः सह पूजयित्वा धृष्ट्यादिभिरष्टाभिः मन्त्रिभिः, इन्द्रादिभिः लोकपालैः

तदायुधैः वज्रादिभिः सहितम् आराधयेदित्यर्थः ॥७॥

अंग शब्द से आत्मा आदि शक्तियों के सहित, व्यूह अर्थात् वासुदेव प्रद्युम्न संकर्षण आदि वायु पुत्र श्रीहनुमानजी आदि आठ तथा धृष्टि आदि आठ मन्त्री, इन्द्र आदि लोकपाल उनके अस्त्र शस्त्र वज्रादि के सहित भगवान् श्रीरामजी की आराधना करे ॥७॥

वशिष्ठाद्यैर्मुनिभिर्नीलमुख्यैराराधयेद् राघवं चन्दनाद्यैः ।
मुख्योपहारैर्विविधैश्च पूज्यस्तस्मिन् जपादींश्च सम्यक् समर्प्य ॥८॥

श्रीवशिष्ठप्रभृतिभिः द्वादशमुनिभिः, नीलमुख्यैः षोडशवानरैः परिवृतं श्रीरामचन्द्रं चन्दनपुष्पधूपदीपपवित्रोपहारादिभिः स्वादुभिः विविधैः नैवेद्यैः पूजयित्वा तस्मै श्रीराघवाय जपादीन् विधिपूर्वकमर्पयित्वा आदिपदेन यन्त्र पूजनादिकञ्च समर्पयेत् ।

साधु वासाधु वा कर्मयद्यदाचरितम्मया ।
तत्सर्वं भगवन् राम ? गृहाणास्मत् कृतं जपम् ॥
गुह्याद्गुह्यस्य गोप्ता त्वं गृहाणास्मत् कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत् प्रसादात् कृपानिधे ? ॥

इत्यादिभिः प्रार्थनावचोभिः सह सर्वमर्पयेद् 'ॐ तत् सत् आत्मानं श्रीरामचन्द्राय समर्पयामि स्वाहा' इति ॥८॥

श्रीवशिष्ठ आदि बारह मुनियों के सहित, नील जिन में प्रधान हैं, ऐसे बारह वानरों के सहित इनसे परिवृत भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की चन्दन पुष्प धूप दीप पवित्र उपहार स्वादिष्ट विविध प्रकार के नैवेद्य के साथ विविवत् पूजा करके उन भगवान् श्रीराघवेन्द्रजी के लिये जप आदि विधि पूर्वक समर्पण करके । आदि शब्द से यन्त्र आदि की पूजनादि भी समर्पित करे-हे प्रभो राघवेन्द्र ? समुचित या अनुचित जो जो कर्म मुझसे सम्पादन किये गये हैं । हे राम ? वे सभी कर्म आप स्वीकार करें, तथा मुझसे किये गये जप को आप स्वीकार करें ।

गुह्य से भी अति गुह्य कर्मों की आप रक्षा करनेवाले हैं । मुझसे किये गये जप को स्वीकार करें । हे कृपानिधान देव आपकी अनुकम्पा से मेरे कर्म सफल हों

इत्यादि प्रार्थना वचनों से सभी वस्तु उन्हें अर्पण करें। ॐ तत् सत् श्रीरामचन्द्रजी के लिये मैं स्वयं को समर्पित करता हूँ ॥८॥

एवं भूतं जगदाधारभूतं रामं वन्दे सच्चिदानन्दरूपम्।
गदाब्जशङ्खारिधरं भवारिं स यो ध्यायेन्मोक्षमाप्नोति सर्वः ॥९॥

सर्वजगतामाश्रयभूतं सच्चिदानन्दस्वरूपं पूर्ववर्णितगुणगणं सर्वेश्वरं सर्वाराध्यं श्रीमन्तं भगवन्तं श्रीरामचन्द्रं प्रणमामि। एतेन भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य कायिकीं पूजां प्रत्यपादयत्। गदाकमलशङ्खचक्रधरं संसारमूलनाशकं श्रीरामं यो ध्यायेत् सर्व एव मोक्षम् प्राप्नोति, अत्र सर्वजनसाधारणीं कायिकीं पूजां प्रतिपादयन् श्रीरामप्राप्तये सर्वेषामधिकार इति सूचितम्। ततः पूजायाः द्वितीयाधिकारिणं निरूपयन् यो ध्यायेदित्याहश्रुतिः। अत्र द्विभुजं धनुर्धरं सर्वाभरणभूषितं प्रसन्नात्मानं यो ध्यायेत् मानसोपचारैः यः पूजयेत् सर्वः सः मोक्षम् प्राप्नोति। एतेन श्रीरामस्य द्विविधां पूजां प्रत्यपादयत्। अत्र भगवतः विशेषणम् भवारिम् इति-भगवतः ध्यानेन वैराग्यम् तेन च संसारहेतुभूत कामक्रोधादिविनाशस्तेन भगवदनुकम्पया सायुज्यमोक्षप्राप्तिः। यो यं स्मरति स तद्रूपोभवति। श्रीरामस्य सर्वशेषित्वं सर्वहेतुत्वञ्च बहुशो निरूपितमेव ॥९॥

समस्त चराचर लोकों का आश्रयभूत सत् चित् आनन्द स्वरूप पूर्ववर्णित गुणगण मण्डित सभी देवादिओं से आराधनीय सर्वेश्वर श्रीमान् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम करता हूँ, इस कथन के द्वारा श्रुति ने भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की कायिक पूजा का निरूपण किया। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का जो ध्यान करेंगे वे सभी मोक्ष प्राप्त करेंगे। सभी मोक्ष प्राप्त करेंगे इस कथन से सर्वजन साधारण के लिये कायिक पूजा का निरूपण किया। इससे यह अभिव्य होता है कि भगवान् की प्राप्ति करने में सर्वजन साधारण का अधिकार है। तत्पश्चात् श्रीरामजी की पूजा का द्वितीय अधिकारी का निरूपण करते हुए जो ध्यान करता है यह श्रुति कहती है। यहां दो भुजाओं को धारण करनेवाले धनुषधारी सभी प्रकार के अलङ्कार समुदाय से सुशोभित प्रसन्न चित्त भगवान् श्रीरामजी का जो ध्यान करेंगे वे सभी सायुज्य मोक्ष प्राप्त करेंगे। इससे भगवान् श्रीरामजी की दो प्रकार की पूजाओं का निरूपण किया। इस फलश्रुति वचन में भगवान् को 'भवारि' यह विशेषण दिया है। भगवान् श्रीरामजी के ध्यान्न

से परम वैराग्य उत्पन्न होगा, और वैराग्य से संसार का मूलकारण स्वरूप कामक्रोध आदि का शमन होगा (विनाश होगा) और इससे भगवान् की अनुकम्पा से सायुज्य मोक्ष की उपलब्धि होगी। 'जो जिस का चिन्तन करता है वह उस स्वरूप को प्राप्त करता है'। भगवान् श्रीरामजी का सर्वशेषित्व एवं सकल जगत् कारण का पहले बहुत वार प्रतिपादन किया जा चुका है ॥९॥

विश्वव्यापी राघवो यस्तदानीमन्तर्दधेशङ्खचक्रेगदाब्जे ।
धृत्वा रमासहितः सम्वृतश्च सपत्तनः सानुजः सर्वलोकी ॥१०॥
तद् भक्ता ये लब्धकामाश्च मुक्ता, तथा पदं परमं यान्ति ते च ॥११॥

अत्रश्रुतौ विश्वव्यापी अन्तर्दधे इतिवचनाभ्यां सशरीरस्यैव श्रीराघवस्य सर्वव्यापकत्वेऽपि मानवलीलाकालेधृतशरीरेणैव स्वदिव्यधामश्रीसाकेत लोकप्रवेश इतिप्रकाशितम् शरीररहितस्य च परमपदगमनमसङ्गतं स्यात् सपत्तनः सानुजः सर्वलोकीति वचोभिः सकललोकाधिपतेरपि तस्यायोध्यावासिनामेव स्वधामप्रापणेन तत् शरणापन्नानामेव परमधामगमनम् । सर्वे लोका यस्य सन्ति तत्र यः व्याप्तः स श्रीरामः रघुवंशे अवतीर्य स्वधामारोहणकाले पूर्वं स्वभक्तचिन्तनीयं रूपं प्रकटीकृत्य स्वाभाविकपरस्वरूपस्य द्विभुजत्वेऽपि तदानीं शङ्खचक्रगदापद्मोपलक्षितं वैष्णवं चतुर्भुजरूपं प्रकटीकृत्य, उक्तञ्च महर्षि श्रीवाल्मीकिना-शरानानाविधाश्चैव धनुरायतमुत्तमम् । पञ्चायुधाश्च ते सर्वे ययुः पुरुषविग्रहाः ॥ भ्रातृभिः सहितः तेजोमयस्वधामप्रापत् इत्यर्थः ॥ रमया सहितः, स्वरमयितारमपि रमयतीति रमा श्रीजानकीतया सहितः, सपत्तन इति स्वनगरवासिभिः सहितः । एतेन स्वशरणागतानां स्वधामप्रापकत्वं भगवति शरणागतवत्सले सर्वेश्वरश्रीरामे एवेतिद्योत्यते अन्यावतारे तथादर्शनात् ये भगवतः श्रीरामस्य मन्त्रजपयन्त्रपूजनध्यानतपश्चरणपरायणाः भक्तास्ते आकाक्षांविनाऽपि श्रीरामोपासनाप्रभावेण सर्वान्कामान् भुक्त्वा मुक्ताः सन्तः तेनैव प्रकारेण परमं पदं यान्ति । एतेन श्रीरामभक्तानामपुनरावर्तन परमधामगमनं दृढीकृतम् "सत्यसन्धप्रतिश्रुत्य प्रपन्नायाभयं स्वम् । निवर्तयेद्धये नैनं श्रीरामः श्रृतवत्सलः" इत्याचार्योक्तेः ॥१०/११॥

यहां श्रीरामतापनीय उपनिषत् की श्रुति में 'विश्वव्यापी' 'अन्तर्दधे' इन वचनों

के द्वारा भगवान् श्रीरामजी के शरीर सहित अर्थात् शरीरधारी का ही सर्वव्यापकत्व एवं अन्तर्धान होना प्रकाशित किया गया है। क्योंकि शरीर रहित का परमधाम गमन असम्भव सा होगा। 'नगर सहित, भाइयों के सहित, सभी लोकों के स्वामी' इन वचनों से सभी लोकों के अधिपति, उन श्रीरामजी का अयोध्या में निवास करनेवालों का ही, अपने परम दिव्य साकेतधाम में पहुँचाने की क्रिया द्वारा, श्रीरामजी के शरणागतों का ही परमधाम गमन होता है अन्य का नहीं, यह तात्पर्य प्रकाशित होता है। जिसके अधीन सभी लोक हैं, जो सभी लोकों में व्याप्त है। वे श्रीराम रघुकुल में अवतार धारण करके स्वदिव्यधाम श्रीसाकेतारोहण के काल में, पहले अपने भक्तों के द्वारा ध्यान करने योग्य स्वरूप का प्रकट करने के वाद स्वाभाविक परस्वरूप दो हाथ वाला ही सभी के ध्यान करने योग्य होने पर भी उस समय शङ्खचक्र गदा पद्म से उपलक्षित विष्णु सम्बन्धी चतुर्भुज स्वरूप को प्रकट करके-श्रीमद्रामायण में महर्षि श्रीवाल्मीकिजी के द्वारा भी कहा गया है-अनन्त प्रकारक वाण, अत्यन्त विशाल श्रेष्ठ धनुष, पांचों आयुधों को धारण करनेवाले वे सभी भाई पुरुष शरीर से परम दिव्य स्वसाकेतधाम को गये। अपने भाइयों के सहित तेजोमय स्वधाम को प्राप्त किये यह तात्पर्य है। 'सरमया' से अभिप्राय है, अपने रमणकारी को भी रमण कराती है वह श्रीजानकीजी के सहित। अपने अयोध्या नगर में निवास करनेवाले प्राणियों के सहित से तात्पर्य है कि-भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में अपने शरणागतों को अपने परमधाम में पहुँचाने का स्वभाव है। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार शरणागतों को सायुज्य मुक्ति सर्वेश्वर श्रीरामजी ही देते हैं अन्य नहीं यह तात्पर्य है जो भक्त भगवान् श्रीरामजी के मन्त्र जप यन्त्र पूजन ध्यान एवं तपश्चरण परायण हैं, ऐसे भक्तों की आकांक्षा के विना भी भगवान् श्रीरामजी की उपासना के प्रभाव से सभी इच्छित भोगों का उपभोग करके मुक्त हो कर उसी तरह परमपद को जाते हैं। इससे यह दृढ होता है कि श्रीरामजी के भक्तों का परमधाम गमन सुनिश्चित है जगद्गुरु श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी (प्रथम) ने इस वात की पुष्टि की है-सत्य प्रतिज्ञ सर्वेश्वर श्रीरामजी शरणापन्न होकर अपने धाम में आये जीव को पुनः संसार में वापस नहीं भेजते हैं ॥१०/११॥

इमा ऋचः सर्वकामार्थदाश्च ये ते पठन्त्यमलायान्तिमोक्षम्।
ये ते पठन्त्यमला यान्ति मोक्षम् ॥१२॥

निखिलाभिलषितार्थदायिनीः इमाः ऋचः ये भक्ताः पठन्ति ते सर्वान् कामान् उपलभ्यमोक्षं प्राप्नुवन्ति । अत्र पुनः पाठेन अस्य श्रीरामतापनीयोपनिषत् पाठकर्तृणामवश्यमेव सायुज्यमोक्षप्राप्तिरिति दृढयति । अथवा पुनः पाठः पञ्चमो पनिषत् समाप्तिसूचकः ॥१२॥

इतिजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्ययोगिराट् प्रभृत्यगणितोपाधि
समलंकृतदर्शनकेशरीप्रधानशिष्यस्य आनन्दभाष्यसिंहासनासीन
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ
श्रीरामतापनीयोपनिषदः पूर्वतापनीयस्यश्रीरामानन्द
भाष्यंसम्पन्नमिदं श्रीवैष्णवानामभ्युदयायभूयात् ।

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

समस्त अभिमत फलों को प्रदान करनेवाली इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् की ऋचायें को जो श्रीरामचन्द्रजी के भक्तजन पढते हैं, वे समस्त कामनाओं का भोग हेतु उपलब्धकर अन्त में संसार से श्रीराम सायुज्य मोक्ष प्राप्त करते हैं । इस उपनिषद् वाक्य में अन्तिम वाक्य का पुनः पाठ के द्वारा इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् के पाठ से अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति होती है इस अभिप्राय को सुदृढ करते हैं । अथवा पुनः पाठ पञ्चम उपनिषद् या पूर्वतापनीय समाप्ति सूचक है ॥१२॥

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्य योगिराज प्रभृति अगणित
उपाधि समलंकृत षट्दर्शनकेशरीजी के प्रधान शिष्य आनन्द
भाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरा
नन्दाचार्यजीकी कृति श्रीरामतापनीय उपनिषद् के पूर्व
तापनीयके श्रीरामानन्दभाष्यका उद्योत सम्पन्न हुआ,
यह श्रीवैष्णवों का सर्वविध अभ्युदयकारी हो

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐
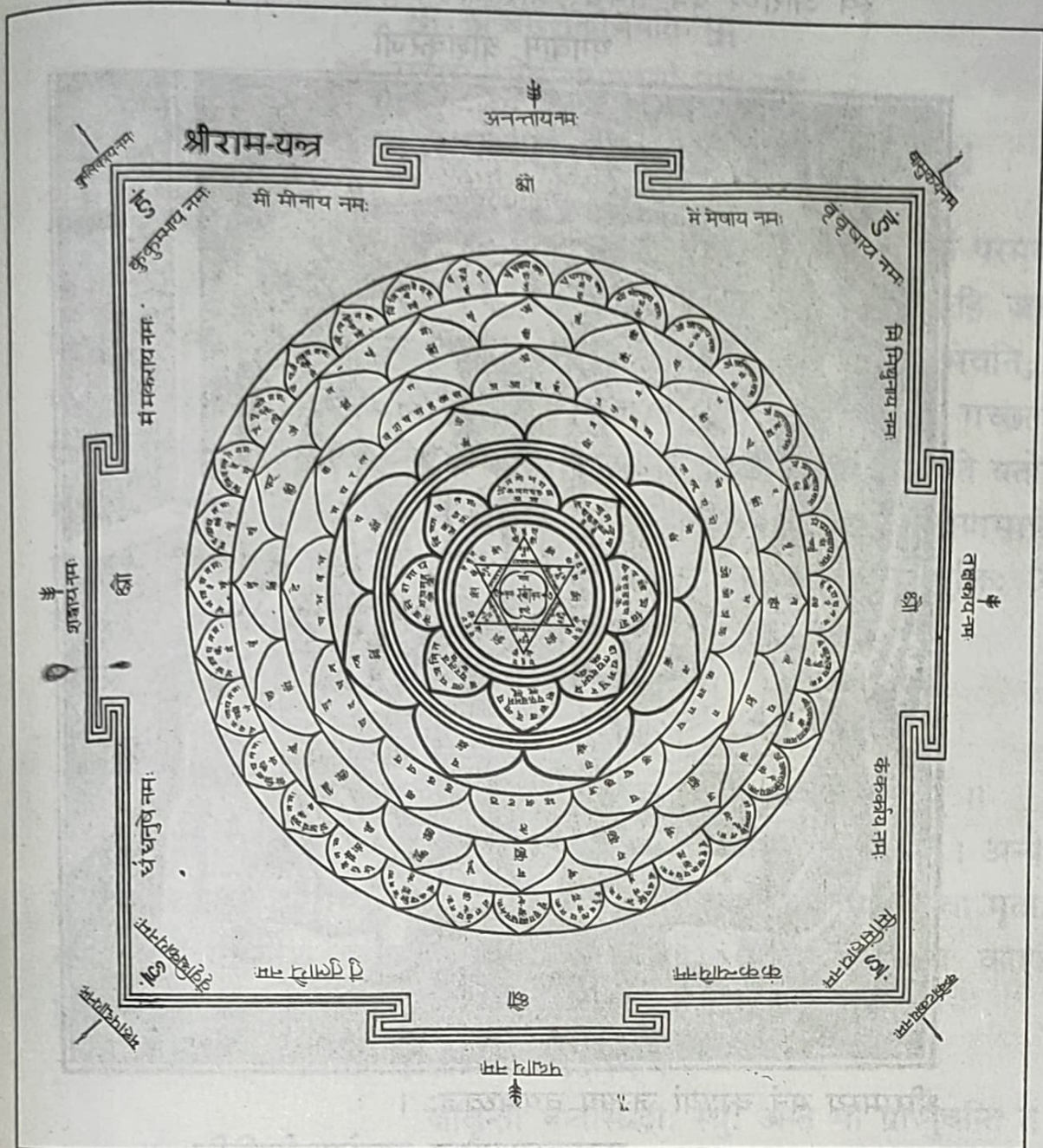
इस उपनिषद् में पूर्व वर्णनानुसार तैयार किया गया साधकों को सर्वकामना प्रद यह श्रीराम महायन्त्र है। इसे जानकार व्यक्ति से शुद्धतापूर्वक सोना चांदी या तांवा में वनवा कर प्रतिष्ठा विधि के जानकार श्रीवैष्णव से प्रतिष्ठा कराकर पूर्व में वताये नियमानुसार साधना करने से इच्छित फल की प्राप्ति होती है। स्मरण रहे परम्परागत श्रीसम्प्रदायाचार्य से सविधि दीक्षा-शिक्षा लेकर ही साधना करें मनमुखीपना से नहीं।

स्व आराध्य देव सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी की आराधना में रत
भगवान् श्रीशंकरजी

श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः ।
मन्वन्तरसहस्त्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः ॥

ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शङ्करम् ।
वृणीष्व यदभीष्टं तद् दास्यामि परमेश्वर । ॥

मणिकर्ण्यां वा मत्क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः ।
म्रियते देहि तज्जन्तोर्मुक्तिं नातो वरान्तरम् ॥

तत्त्वो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम् ।
जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्तमां प्राप्नुवन्ति च ॥

(मन्त्रों का अर्थानुसन्धान पृष्ठ ३१८-३२८ से करें)

卐 श्रीकोशलेन्द्रोजयति 卐

❀ सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

श्रीरामतापनीयोपनिषदुत्तरार्द्धः

तद्भक्ता ये लब्धकामाश्चेत्यादिभिः पूर्वतापनीये-श्रीरामभक्तानां परमधाम प्राप्तिरुक्ता । तत्र वर्तमानदेहस्यान्ते देहान्तरस्यान्ते वेति सन्देहे-अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे येनासावमृतोभूत्वामोक्षीभवति, य एतत्तारकं ब्राह्मणोनित्यमधीते स पाप्मानं तरति सोऽमृतत्वं च गच्छतीति प्रभृतीनामुत्तरतापानीयश्रुतिनामारम्भः । तासामभिप्रायविवेचनादवगम्यते यतो हि काश्यां देहत्यागसमये यस्य तारकस्य षडक्षरस्य सकृत् श्रवणमात्रेण प्राणिनोऽमृता भवन्ति, सदा तन्मन्त्रजपपरायणस्य कैमुतिकन्यायेन मुक्तिः सिद्ध्यति । अत्र रुद्रप्रभावादेवमुक्तिरिति नाशङ्कनीयम्, यतोहि-

श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजापवृषभृध्वजः-इत्यारभ्य

मणिकर्ण्यां वा मत्क्षेत्रे गंगायां वा तटे पुनः ।
म्रियते देहि तज्जन्तोर्मुक्तिं नातोवरान्तरम् ॥

इत्यन्तस्य प्रकरणस्य विवेचनेन उपदेष्टुः प्रभावस्य तुच्छत्वात् । अन्यथा मन्त्रजपवरप्रदानयोर्वैयर्थ्यं स्यात् । क्षेत्रेऽस्मिन् तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः । कृमिकीटादयोप्याशु मुक्ताः सन्तु न संशयः । इतिवरप्रदानस्य काशीविषयकत्वेपि-

त्वत्तो वा ब्रह्मणोवापि ये लभन्ते षडक्षरम् ।
जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युः अन्ते मां प्राप्नुवन्ति ते ॥

इतिब्रह्मरुद्रसम्प्रदायान्यन्तरप्राप्ततारकस्यैवमहत्वावगमात् । 'इममेवमनुं साकेतपतिर्मामवोचत् । अहं हनुमते मम प्रियाय प्रियतराय । स वेद वेदिने ब्रह्मणे । स वशिष्ठाय । स पराशराय । स व्यासाय । स शुकाय । इत्येषोपनिषद् । इत्येषा ब्रह्मविद्या' इत्युपनिषत्प्रामाण्यात् प्रामाणिकैराचार्यैस्तु श्रीजानकीब्रह्म वशिष्ठरुद्रागस्त्यद्वारैव षडक्षरतारकस्य भूतले प्राप्तिरित्यवगम्यते । य एतत्तारकं ब्रह्मणोनित्यमधीते स पाप्मानं तरति सोऽमृतत्वं गच्छति, जीवन्तोऽपि मन्त्रसिद्धाः स्युः । अन्ते मां प्राप्नुवन्ति ते इतिलब्धतारकाणामस्मिन्नेव जन्मनि श्रीरामप्राप्तिः ।

अस्यैव देहस्यान्ते श्रीरामप्राप्तेः श्रुतिरसन्दिग्धा । यदनुकुरुक्षेत्रं देवानां देव यजनमिति प्रश्ने-अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रमिति प्रसङ्गे-अत्र च हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे येनाऽसौ अमृतोभूत्वा मोक्षी भवतीतिश्रुत्या काशीपरकत्वमेव । अत्रैव रुद्रोपदेशेन देहत्यागान्ते मोक्षप्राप्त्युक्तेः 'किं तारकं किं तरतीति भारद्वाजेन पृष्टे याज्ञवल्क्याह-तारकं दीर्घानलं विन्दुपूर्वकम् पुनर्माय नमः' इति । तस्य प्रणवहेतुत्वमपि पूर्वं निरूपितम् । गर्भजन्मजरामरणसंसारभयात् संतारयतीति यस्माद् तस्मादुच्यते तारकमिति । तथा च नायं तारकजपपरो देहान्ते नरकं गमिष्यति 'स पाप्मानं तरति' इत्यादिभिः संसारदुःखनिवृत्तिश्रवणात् । इत्थं तारकोपासकः तारकवाच्यं श्रीरामाख्यं परंब्रह्मैव प्राप्स्यति नातोऽन्यत् इति श्रीरामभक्तानां वर्तमानदेहस्यान्ते परमपद प्राप्तिरिति निरूपिता । इदानीं सर्वेषां श्रीरामप्राप्त्युपायमुत्तरतापनीये निरूप्यते । कदाचित् मिथिलोपवने रम्ये जनको वैदेह आसीत् । तत्र योगीश्वरः शिष्यैर्मुनिगणैश्च परिवृतः आसीत् तत्र याज्ञवल्क्यस्य सर्वज्ञत्वमसहमानाः ऋषयोबभूवुः । तत्र प्रथमं बृहस्पते प्रश्नः-

बृहस्पतिरुवाच याज्ञवल्क्यं यदनुकुरुक्षेत्रम् ।
देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम् ॥१॥

देवगुरुः वृहस्पतिः उवाच यज्ञवल्कस्यापत्यं योगीश्वरं तीर्थेषूत्कृष्टतमं कुरुणां राज्ञां पालितं क्षेत्रमनादिकालात् सिद्धं देवानां देवयजनं देवैरिन्द्रा दिभिरपि देवः श्रीरामः सर्वेश्वरः ईज्यते पूज्यते यत्र तत् सर्वेषां भूतानां ब्रह्मादिस्थावरान्तानां ब्रह्मावाप्तिहेतुभूतम् कतरत् क्षेत्रम् लोकप्रसिद्धं कुरुक्षेत्र मन्यद् वेति प्रश्नः ॥१॥

सीतारामसमारम्भां शुकबोधायनान्विताम् ।
रामानन्दार्यमध्यस्थां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

उन श्रीरामजी के भक्त जिनके समस्त मनोरथपूर्ण हुए हैं इत्यादि कथन के द्वारा श्रीरामपूर्वतापनीय में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के भक्तों को परमधाम की प्राप्ति कही गयी है उक्त विषय में प्रश्न उठता है कि इस वर्तमान शरीर के अन्त में अथवा देहान्तर के अन्त में परमधाम की प्राप्ति होती है । ऐसा सन्देह होने पर कहते हैं-क्योंकि इस

संसार में प्राणियों के प्राणों को शरीर से निकल जाने पर भगवान् शंकर इस काशी में तारक ब्रह्म का उपदेश करते हैं, जिस मन्त्र के प्रभाव से वह प्राणी अमर होकर मोक्ष लाभ करता है। जो ब्राह्मण इस तारक मन्त्र को नित्य पढता है वह पाप राशि को पार कर जाता है वह अमरता को प्राप्त करता है इत्यादि वचनों के विवेचन करने के लिये उत्तरतापनीय का प्रारम्भ किया जाता है। इन ऋचाओं के तत्त्व विवेचन करने से यह आशय ज्ञात होता है कि-क्योंकि काशी में देह त्याग के समय पर जिस षडक्षर तारक का केवल एकवार श्रवण मात्र से प्राणी अमर हो जाते हैं, तो जो सदैव तारक मन्त्र के जप करने में लीन रहता है उसके मोक्ष के विषय में तो कहना ही क्या, यह कैमुतिक न्याय से सिद्ध हो जाता है। यहां पर भगवान् शङ्कर के प्रभाव से मुक्ति हो जाती है ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिये। क्योंकि-भगवान् श्रीरामजी के तारक मन्त्र को काशी में वृषभध्वज शंकर जप किये यहां से लेकर मणिकर्णिका में या मेरे क्षेत्र में गंगा में अथवा गंगा तट में यदि शरीरधारी मरता है तो उन प्राणियों को मुक्ति लाभ हो यह वरदान छोडकर दूसरा वरदान नहीं चाहिये। यहां तक के प्रसङ्ग का विवेचन करने से उपदेश करने वाले शङ्कर का प्रभाव अत्यन्त गौण प्रतीत होता है। अन्यथा मन्त्र जप और वर प्रदान की निष्फलता हो जायेगी। हे देवनायक शङ्कर आपके इस क्षेत्र में जहां कहीं भी मरे हुए कृमिकीट आदि भी अतिशीघ्र मुक्त हो जायँ, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस सर्वेश्वर श्रीरामजी के वरदान का काशी विषय होने पर भी, तुम से अर्थात् शङ्करजी से अथवा ब्रह्माजी से जो षडक्षर तारक मन्त्र को प्राप्त करते हैं, वे जीवन दशा में भी मन्त्र सिद्ध होवें तथा देहान्त होने पर वे मुझे प्राप्त करते हैं। इसप्रकार ब्रह्म या रुद्र इन दो सम्प्रदायों में से किसी एक से तारक मन्त्र प्राप्त करनेवाले का महत्व ज्ञात होता है। लेकिन प्रामाणिक आचार्यगण के द्वारा सर्वेश्वरी श्रीसीताजी का कथन-

इसी षडक्षर श्रीराम महामन्त्र को श्रीसाकेतपतिजीने मुझे उपदेश दिया मैंने मेरे अति प्रिय भक्त श्रीहनुमानजी को उपदेश दिया श्रीहनुमानजी ने वेदवेत्ता श्रीब्रह्माजी को उपदेश दिया उन्होंने श्रीवशिष्ठजी को उपदेश दिया श्रीवशिष्ठजी ने श्रीपराशरजी को उपदेश दिया उन्होंने श्रीव्यासजी को उपदेश दिया श्रीव्यासजी ने श्रीशुकदेवजी को उपदेश दिया इसप्रकार श्रीमैथिलीमहोपनिषद् में ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम महामन्त्र का उपदेश क्रम है अतः यह निश्चित है कि श्रीब्रह्माजी एवं श्रीशंकरजी द्वारा दो धारा

प्रवाहित हुई । श्रीब्रह्माजी की धारा में २२वें आचार्य प्रस्थानत्रयों के आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी (१३५६-१५३२) हुये । आगे इसी धारा में ४१वां आचार्य इन श्रीरामानन्दभाष्य एवं उद्योत का लेखक विद्यमान है । एवं श्रीरुद्र और अगस्त्य के द्वारा भी इस भूतल पर तारक महामन्त्र की प्राप्ति हुई यह माना जाता है। जो इस तारक ब्रह्म का नित्य अध्ययन करता है, वह अमरता को प्राप्त करता है वे जीवन दशा में भी मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं । और वे देहान्त हो जाने पर मुझे प्राप्त करते हैं । इत्यादि से जिन्होंने तारक ब्रह्म की प्राप्ति कर चुके हैं उनका इसी शरीर में श्रीरामजी की प्राप्ति निश्चित है । इसी देह के अन्त में श्रीराम प्राप्ति विषयक श्रुति वचन निःसन्दिग्ध है।

जो यह कुरुक्षेत्र है देवताओं का देव यजन है इस प्रथम प्रश्न में-अविमुक्त क्षेत्र ही कुरु क्षेत्र है इस सन्दर्भ में-क्योंकि इस काशी में प्राणियों के प्राण छूटने पर रुद्र तारक ब्रह्म का उपदेश देते हैं । जिससे जीव अमर होकर मोक्ष भाजन बनता है। इस श्रुति के द्वारा काशी परक ही सिद्ध होता है । क्योंकि काशी में भगवान् शंकर के उपदेश द्वारा मोक्ष प्राप्ति कहा गया है । तारक क्या है ? कौन तरता है ? ऐसा भरद्वाज के द्वारा प्रश्न किये जाने पर तारक दीर्घानल विन्दु पूर्वक है अर्थात् 'रां' यह तारक है । उस तारक को प्रणव का कारण होना पहले विस्तार से बताया जा चुका है। गर्भ जन्म जरा मरण और संसार के भय से अच्छी तरह जो तार देत है उसे तारक कहते हैं । और इसप्रकार यह जो तारक मन्त्र जप परायण है वह इस देह के अन्त में नरक नहीं जायगा । वह पापों से ऊपर उठ जाता है । इत्यादि वचनों से तारक द्वारा संसार के दुःखों से निवृत्ति होती है ऐसी श्रुति है । इस तरह तारक मन्त्र का उपासक तारक से प्रतिपाद्य श्रीराम नामक परब्रह्म को प्राप्त करेगा । उससे भिन्न नहीं इससे श्रीरामजी के भक्तों का वर्तमान देह के अन्त में परमपद प्राप्ति होती है यह प्रतिपादन किया गया । सम्प्रति सभी अधिकारी अनधिकारी के लिये श्रीरामजी के प्राप्ति का उपाय उत्तरतापनीय में निरूपण करते हैं ।

किसी समय अत्यन्त रमणीय मिथिला के उपवन में विदेह कुल के राजा जनक थे, उस समय वहां पर योगीश्वर याज्ञवल्क्यजी अपने शिष्यों एवं मुनि समुदाय से घिरे हुए थे । वहां पर महर्षि योगीश्वर याज्ञवल्क्यजी की सर्वज्ञता को सहन नहीं करने वाले अनेक ऋषि मुनि उपस्थित थे । उस सभा में सबसे पहले वृहस्पति का प्रश्नात्मक प्रथम मन्त्र है।

देवताओं के गुरु बृहस्पति कहे→यज्ञवल्क्य नामक महर्षि के सुपुत्र योगीश्वर याज्ञवल्क्यजी से प्रश्न किये कि सभी तीर्थों में अतिशय श्रेष्ठ कुरुवंशीय राजाओं के द्वारा परिपालित क्षेत्र जो अनादि काल से सिद्ध है और देवताओं का जो देव यजन क्षेत्र है, अर्थात् देवताओं इन्द्र आदि के द्वारा भी जो देव श्रीरामचन्द्रजी सर्वेश्वर परब्रह्म पूजित होते हैं जहां पर सभी प्राणियों का ब्रह्म से लेकर स्थावर पर्यन्त जीवों के ब्रह्म साक्षात्कार का कारण बना हुआ है वह कौनसा क्षेत्र है ? क्या संसार में कुरुक्षेत्र नाम से प्रख्यात जो क्षेत्र है, वही कुरुक्षेत्र है ? अथवा कोई दूसरा कुरुक्षेत्र है ? यह जिज्ञासा बृहस्पति प्रकट किये ॥१॥

अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनम् ।

सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम् ॥२॥

तस्माद् यत्र क्वचन गच्छति तदेवमन्येत ।

इदं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्म सदनम् ॥३॥

कदाचिदपि विशेषेश्वरेणाविमुक्तं काशीनामकमेव क्षेत्रं निश्चयेन कुरुक्षेत्रम विमुक्तत्वाद् यस्मादुत्कृष्टतमं नास्ति । एवं कुरुक्षेत्रविमुक्तविशेषणद्वयसहितं काशी एव । तत्र पञ्चकोशे यत्र क्वचन गच्छति तदेव देवानां देवयजनं ब्रह्मसदनमेव जानीयात् । इदं पञ्चकोशान्तर्भूतप्रदेशमेव देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनमिति । अथ अवासोविमुक्तः कुत्रप्रतिष्ठितो भवति तदाह अशीवर्ण योर्मध्ये भूभागस्याविमुक्तसंज्ञा, उक्तभूप्रदेशे यत्र कुत्रापि विचरति तं तं प्रदेशं देवानां देवयजनं जानीयात् । तदुक्तम्-

अविमुक्ते तवक्षेत्रे यत्र कुत्रापि वा मृताः ।

कृमिकीटादयोप्याशुमुक्ताः सन्तु न संशयः ॥

तेन इदमेव नाशीवर्णयोर्मध्यमेव कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मप्राप्तिस्थानं जानीयादित्यर्थः ॥२/३॥

कभी भी विशेष ईश्वर के द्वारा जो नहीं छोडा गया है वह अविमुक्त काशी नामक ही क्षेत्र है वही निश्चित रूपसे कुरुक्षेत्र कहा जाता है । अविमुक्त होने के कारण जिस लिये यह अत्यन्त उत्कृष्ट है इससे बढकर दूसरा क्षेत्र श्रेष्ठतम नहीं है, कुरुक्षेत्र एवं अविमुक्त ये दो विशेषणों के सहित काशी नगरी ही अविमुक्त क्षेत्र कहा जाता

है। उस काशी के पञ्चकोशी के अन्दर में जहां कही भी जाते हैं वहीं पर देवताओं का देव यजन, एवं ब्रह्म साक्षात्कार करने का आश्रय स्थान है। उस काशी को ही कुरुक्षेत्र समझना चाहिये। यहां पांच कोशों के अन्तर्गत जो भूभाग है वह प्रदेश ही देवताओं का देव यजन है। और समस्त ब्रह्मा से लेकर जड पर्यन्त जीव समुदाय का ब्रह्म साक्षात्कार स्थान है। इसके वाद जो वास रहित है वह अविमुक्त है वह कहां प्रतिष्ठित होता है यह कहते हैं। अशी एवं वर्णा नदी के मध्य में जो भूभाग है उसे अविमुक्त नाम से कहते हैं। उक्त भूभाग में जहां कहीं पर भी विचरण करता है। उन-उन प्रदेशों को देवताओं का देव यजन जानना चाहिये। यही विषय कहा गया है→

हे वृषभध्वज आपके अविमुक्त नाम विशेष क्षेत्र में जहां कहीं पर भी जो प्राणी मर जाते हैं। भले ही कृमिकीट आदि प्राणी ही क्यों न हों वे सभी मुक्त (जीवन मरण बन्धन रहित) होंगे इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं है। इसलिये यह ही नाशी और वर्णा के मध्य का पञ्चकोश का भूभाग ही कुरुक्षेत्र है, देवताओं का देवयजन है और सभी प्राणियों का ब्रह्म प्राप्ति का स्थान है ॥२-३॥

अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे येनासौ अमृतीभूत्वामोक्षीभवति। तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत, अविमुक्तं न विमुञ्चेदिति एवमेवैतद् भगवन्निति याज्ञवल्क्यः ॥४॥

॥ इतिप्रथकण्डिका ॥

अत्र हि अविमुक्ते क्षेत्रे अविवेचिताधिकारानधिकारस्य सकलप्राणिनः प्राणेषु लोकान्तरं गच्छन्तु रोदनाद् दुःखनिवारकत्वाद् रुद्रः श्रीराममन्त्रस्वरूपं तारकं ब्रह्म उपदिशति। तदुक्तं पाञ्चरात्रे-

षडक्षरो वह्निपूर्वस्तारकस्त्वभिधीयते।
महापातकिनां पापदहने दहनोपमः ॥
मुमुर्षोर्मणिकर्णिक्यामर्धोदकनिवासिनः।
अहं दिशामि ते मन्त्रं तारकं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥

इति पाद्मीयशिववंचनाच्च।

मुमुर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्ययम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तोभविता शिव ॥

इत्युत्तरश्रुतेः । मुमुर्षोः प्राणिनः दक्षिणे कर्णे शिवः कथयति, येन तारकब्रह्मोपदेशेन असौ जीवः अमृतीभूत्वा मरणधर्मान् मुक्तोभवति । नतु प्राकृत कारागृहादिवत् मुक्तोभूत्वा पुनः संसरति । तेन दिव्याकारः सन् श्रीरामधामगत्वा, तत् सायुज्यं प्राप्नोति । षडक्षरश्रीराममन्त्रश्रवणान्मोक्षः सुलभः यस्मात् तस्मात् अविमुक्तक्षेत्रमेव अत्यादरेण सेवेत । अविमुक्तं न विमुच्येत क्षेत्रसन्यासं कुर्यात् । अत्रश्रुतौ अविमुक्तक्षेत्रात् तारकमन्त्रस्याधिकं महत्वं प्रकाश्यते । यतो हि अविमुक्तक्षेत्रनिषेविणा देहान्तकाले तारकोपदेशेन मोक्षश्रवणवम् । अविमुक्तवासिनां तारकोपदेशप्राप्तमोक्षफलेन फलवत्वम् । फलसन्निधावफलं तदंग मितिन्यायेन तारकोपदेशाङ्गत्वं बुध्यते । सामान्यरूपेण तारकावलम्बिनां सर्वेषु देशेषु सर्वेषु कालेषु सर्वासुचावस्थासु मोक्षप्राप्तिः सुलभा । तारकस्वाध्याय सहायस्य सहायान्तरस्यापेक्षा न भवतीतिभावः । अविमुक्तवासिनामपि तारकोपदेशं विनामुक्तिर्नसुलभा । ननु अविमुक्तक्षेत्रभिन्नवासिनामपि तारकब्रह्मो पासनाद् मुक्तिः । अविमुक्तवासिनामपि तारकोपदेशाभावान्नमुक्तिरिति अविमुक्तनिवासस्य किं फलम् ? नित्याध्ययनविरहितानामपिदुराचारिणाञ्च तथा कीटादि स्थावरान्तानामपि अविमुक्तनिवासेन तारकोपदेशलाभः तेन च मुक्तिरिति तस्य वै शिष्ट्यम् । जंगमानामिव स्थावराणामपि प्राणवत्वमिति सर्वविदितमेव । तदुक्तम्-उषरं पुण्यपापानां धन्यावाराणसीपुरी ॥ इति तथा च-

दैनंदिनं च दुरितं पक्षमासर्तुवर्षजम् ।
सर्वं हरतिनिःशेषं तूलाचलमिवानलः ॥१॥

ब्रह्महत्यासहस्राणि ज्ञानाज्ञानकृतानि च ।
स्वर्णस्तेयसुरापानगुरुतल्यायुतानि च ॥२॥

कोटिकोटिसहस्राणि ह्युपपातकजान्यपि ।
सर्वाण्यपि प्रणश्यन्ति राममन्त्रानुकीर्तनात् ॥३॥

अवशिष्टपुण्यपापनिचयं मुक्तिं वाधते इति न वक्तव्यम् । अविमुक्तमृत जीवानां तारकमन्त्रस्य प्रभावेण अशेषपुण्यपापनिचयं समूलं दग्ध्वा भगवत् पदं ददाति । 'वाराणस्यां कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति । आसिमाचरणौ हत्वा तत्रैव निधनं व्रजेत्' इत्यादिवचनानां परस्परं विरोध इतिचेन्न । भैरवीयातनया पापनाशः । अथवा-

नाम्नोऽस्य यावतीशक्तिः पापनिर्दहने हरेः ।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकीजनः ॥

इत्यादिवचोभिः श्रीरामनाम्नः प्रभावेण पुण्यपापनिचयं विनाश्य सायुज्य मुक्तेः श्रवणात् । इत्थमस्मिन्नेव जन्मनि प्राणत्यागकाले यथाभिमताचरणानुभवः । तारकोपदेशाच्च मुक्तिरित्यवधेयम् ॥४॥

卐 इति प्रथमाकण्डिका 卐

इस अविमुक्त क्षेत्र काशी में जहां पर यह अधिकारी है, यह अधिकारी नहीं है इत्यादि विषयों का विना विवेचन किये ही क्षेत्र प्रभाव से ब्रह्माजी से लेकर जड पर्यन्त सभी प्राणियों के प्राणों के अन्य लोक प्रस्थान करते समय अपने कर्मफलानुभव जनितदुःख से रोने से रुद्र दुःख निवारक होने से रुद्र श्रीराम मन्त्र स्वरूप तारक ब्रह्म का उपदेश करते हैं । यही विषय पाञ्चरात्र में कहा गया है→ रेफ अक्षर है आरम्भ में जिसके ऐसा छ अक्षरों वाला मन्त्र तारक कहा जाता है । यहां तारक मन्त्र महापातकियों के पातकों को (पापों को) आग के समान जला डालता है । आसन्न मृत्यु वाला प्राणी जो गंगा के मर्णिका का घाट पर आधा पानी के अन्दर निवास करनेवाले को मैं ब्रह्म तारक श्रीराम मन्त्र का उपदेश करता हूँ जिस से वह व्यक्ति नश्चित रूपसे मुक्त हो जाता है और यह विषय पद्मपुराण के शिव वचन से भी पुष्ट है→जिस किसी भी आसन्न मृत्यु व्यक्ति के दाहिना कान में आप स्वयं तारक श्रीराम मन्त्र का उपदेश करेंगे, वह निश्चित मुक्त होगा इसमें सन्देह नहीं है । आसन्न मृत्यु वाले प्राणियों के दाहिना कान में भगवान् शिव तारक श्रीराम मन्त्र कहते हैं । उस तारक ब्रह्म के उपदेश से वह जीव अमृत स्वरूप होकर जन्म मरण के बन्धन से सदा के लिये मुक्त हो जाता है । न कि लोक व्यवहार में जैसे जेल से छूटता है पुनः जन्म मरण धारण करता रहता है । उक्त मुक्ति द्वारा दिव्य स्वरूप धारण कर भगवान् श्रीरामजी के धाम में जाकर भगवत् सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है । षडक्षर तारक ब्रह्म के श्रवण से मोक्ष प्राप्त करना सुलभ है इसलिये अविमुक्त क्षेत्र का ही अत्यन्त आदर के साथ सेवन करना चाहिये । अविमुक्त क्षेत्र का कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिये । अर्थात् क्षेत्र सन्यास धारण कर लेना चाहिये, जिससे छूटे नहीं इस श्रुति वचन में अविमुक्त क्षेत्र से अपेक्षाकृत अधिक तारक श्रीराम मन्त्र का महत्व प्रकाशित किया गया है । क्योंकि अविमुक्त क्षेत्र का पूर्ण रूपसे सेवन करने वाला व्यक्ति के द्वारा इस

शरीर के अन्त समय में तारक ब्रह्म का उपदेश से ही मोक्ष की प्राप्ति होगी। और अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने वाले को तारक ब्रह्म का उपदेश प्राप्त होना सुलभ होगा यह अविमुक्त क्षेत्र निवास का फलवत्व है। फल के सन्निकट होने से साक्षात् फल रहित फलवान् का अङ्ग और अविमुक्त क्षेत्र सेवन तारक ब्रह्मोपदेश का अङ्ग है यह समझा जाता है। साधारण रूपसे तारक ब्रह्म का अवलम्बन करने वालों का सभी देशों में सभी कालों में एवं सभी परिस्थितियों में मोक्ष प्राप्त होना सुलभ है। ब्रह्मतारक मन्त्र का अनुशीलन है सहायक जिसका उसे अन्य सहायक की अपेक्षा नहीं है। तारक ब्रह्म ही सकल फल प्रदान करने में सक्षम है। और अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेवालों का भी विना तारक ब्रह्म के उपदेश से मोक्ष प्राप्त होना सुलभ नहीं है। अव प्रश्न उठता है कि अविमुक्त क्षेत्र से भिन्न क्षेत्र में निवास करनेवाले का भी तारक ब्रह्म की उपासना करने से मोक्ष लाभ होता है और अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेवालों को भी तारक ब्रह्म के उपदेश के अभाव में मुक्ति नहीं होती है। तो वास्तविक में अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने का क्या फल हुआ ? जो तारक ब्रह्म का नियमित अध्ययन स्वाध्याय नहीं करते हैं अथवा दुराचार परायण हैं ऐसे प्राणियों को भी अविमुक्त क्षेत्र में कीट आदि से स्थावर पर्यन्त प्राणियों को भी अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने से तारक ब्रह्म उपदेश प्राप्ति का लाभ होता है। और तारक ब्रह्म की उपलब्धि से मोक्ष प्राप्त होता है यह अविमुक्त निवास की विशेषता है। जिस तरह जंगम (गतिशील) प्राणी प्राणवान् होते हैं उसी तरह स्थावर भी प्राणवान् होते हैं, यह नियम सर्व विदित ही है यही कहा गया है→जो पुण्य और पाप दोनों के लिये ऊषर क्षेत्र के समान है अर्थात् ऊषर क्षेत्र में जैसे कोई भी बीज नहीं उगता है उसी तरह जहां पुण्य पाप दोनों ही फलद नहीं है ऐसी वाराणसी पुरी धन्य है इसीप्रकार और भी-प्रतिदिन होनेवाला पाप पक्ष मास ऋतु वर्ष और जन्म जन्मान्तर में होने वाला पाप जो भी है उन सभी को जैसे रुई के ढेर को अग्नि क्षण भर में नष्ट कर देता है उसी तरह श्रीरामनाम नष्ट कर देता है। हजारो ब्रह्म हत्यायें जो ज्ञात अवस्था या अज्ञात अवस्था में किये गये हैं। सोना की चोरी सुरापान अनन्त हजार प्रकार के गुरुदाराभिगमन और करोडों प्रकार के पातकों और उपपातकों को भी श्रीरामचन्द्रजी के नाम का पुनः पुनः कीर्तन करने से सभी प्रकार के पाप कलाप प्रणष्ट हो जाते हैं जिसका उपभोग नहीं किया है ऐसा पुण्य और पाप का पुञ्ज मोक्ष को रोकता है,

ऐसा शास्त्र नियम है यह नहीं कहना चाहिये। अविमुक्त क्षेत्र में मरे हुए जीवों का तारक मन्त्र के प्रभाव से समस्त पाप पुण्य पुञ्ज समूल जलाकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के परमधाम को प्रदान कराता है। वाराणसी में किया गया पाप वज्रलेप जैसा हो जाता है, अर्थात् उसे नष्ट करना कठिन है। तलवार से पैरों को काटकर-जिससे वाराणसी से वाहर नहीं जा सकें ऐसे वाराणसी में प्राण छोडना चाहिये। इत्यादि वचनों का समाधान है कि इनका परस्पर विरोध नहीं है। क्योंकि भैरवी यातना के द्वारा अनन्त शरीर समूह से भोग द्वारा पुण्य-पाप पुञ्ज के विनाश का विधान है। अथवा इस श्रीरामनामकी जितनी क्षमता है कि पापों को पूर्ण रूपसे भस्मसात् करडालें उतनी मात्रा में कोई भी पापी पाप का आचरण करने में सक्षम नहीं है। इत्यादि वचनों से भगवान् श्रीरामजी के नाम के प्रभाव से पुण्य पाप पुञ्ज को विनष्ट करके मुक्ति विधान सुना गया है। इसप्रकार इसी जन्म में ही प्राण त्याग के समय जैसा अपने अनुकूल आचरण किये हैं तदनुसार भोग हो जाता है तत्पश्चात् तारक ब्रह्म का उपदेश से काशी वासी जीवों की मुक्ति हो जाती है यह रहस्य समझना चाहिये ॥४॥

卐 इति प्रथम कण्डिका 卐

अथ हैनं भरद्वाजः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं किं तारकं किं तरतीति ॥१॥

वृहस्पति प्रश्नानन्तरमेनं याज्ञवल्क्यं पूर्वं तारकं ब्रह्मव्याचष्टे इत्युक्तं तत्र भरद्वाजः प्रच्छति तारकं किमिति तारकस्वरूपविषयकः प्रश्नः। पुनः किं तरति इतितरणविषयकः प्रश्नः। अर्थात् साधनफलपरिज्ञानभिन्नं ज्ञेयं किमपि न शिष्यते इतिभावः ॥१॥

भरद्वाज ऋषि वृहस्पति की जिज्ञासा शान्त होने के पश्चात् योगीश्वर याज्ञवल्क्य को पूर्व वर्णित तारक ब्रह्म का व्याख्यान करते हैं यह कहा गया है इस विषय में पूछते हैं उसमें तारक मन्त्र का क्या स्वरूप है यह स्वरूप विषयक प्रश्न है। फिर क्या तरता है यह तरण विषयक प्रश्न है, अर्थात् साधन और फल का पूर्ण रूपसे ज्ञान से अलग जानने योग्य कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह जाता है ॥१॥

स होवाच याज्ञवल्क्यः तारकं दीर्घानलं विन्दुपूर्वकं दीर्घानलं पूनर्माय नमश्चन्द्राय नमोभद्राय नमः। इत्योमिति ब्रह्मात्मकाः सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम् ॥२॥

सर्वश्रेष्ठरुद्रेणोपदिष्टं तत् कथनमात्रेण सर्वप्राणिमोक्षप्रदमिति तारक ब्रह्मणः सर्वेभ्यो मन्त्रेभ्यः श्रेष्ठत्वं प्रकाशितम् । तस्य परिज्ञानाय भारद्वाजप्रश्नः- सकलप्राणिमोक्षप्रदं रुद्रोपदिष्टं तारकं किं स्वरूपमिति । तद्बोधयितुं याज्ञवल्क्यः कथयामास → षडक्षरो वह्निपूर्वस्तारकस्त्वभिधीयते । सर्वेषां राममन्त्राणां राम मन्त्रः षडक्षरः'' इतितारकमन्त्रे न ॐकारपूर्वः सप्ताक्षरत्वापत्तेः । काशीनिवासी भगवान् रुद्रः श्रीरामस्य मन्त्रं जजाप, मन्वन्तरसहस्रैः जपहोमार्चनादिभिः श्रीरामं तुतोषः, प्रसन्नः श्रीरामः शिवाय वरं ददौ य यस्य कस्यापि दक्षिणे कर्णे काश्यां

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के उपासकों में सर्व श्रेष्ठ भगवान् श्रीशंकरजी के द्वारा जीव दयावश सभी को उपदेश किया गया । उनके कथन मात्र से ही सभी प्राणियों को मोक्ष प्रदायक होने से तारक ब्रह्म श्रीराम मन्त्र को सभी मन्त्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ होना प्रकाशित होता है । उसका भी सभी तरह से ज्ञान के लिये महामुनि भरद्वाज का यह प्रश्न है । सभी प्राणियों को मोक्ष प्रदायक और भगवान् शंकर के द्वारा उपदेश दिया गया तारक ब्रह्म का क्या स्वरूप है यह प्रश्न है । उक्त जिज्ञासित विषय को समझने के लिये योगीश्वर याज्ञवल्क्यजी कहे-

छ अक्षरों वाला वह्नि वीज रेफ है पूर्व में जिस के अर्थात् आरम्भ अक्षर ओंकार नहीं ऐसा श्रीराम मन्त्र तारक कहा जाता है । संसार में जितने भी भगवान् श्रीरामजी के मन्त्र हैं उनमें सर्वश्रेष्ठ छ अक्षरों वाला श्रीराम मन्त्र है । इस कथन से ज्ञात होता है कि तारक ब्रह्म मन्त्र में पूर्व अक्षर ॐकार नहीं है । अन्यथा सात अक्षर का मन्त्र होने लग जायगा ।

काशी नगरी में निवास करने वाले भगवान् रुद्र श्रीराम महामन्त्र का जप किये, हजारों मन्वन्तरों तक जप होम तर्पण तथा उपासना आदि के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को सन्तुष्ट किये । प्रसन्न भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भगवान् श्रीशंकरजी को वरदान दिये । पात्रापात्र का विना विवेचन किये जिस किसी प्राणी के दाहिना कान में वाराणसी नगरी में इस मन्त्र का उपदेश करेंगे । वह निश्चित रूपसे मुक्त हो जायगा । वही कहते हैं दीर्घ आकार के सहित अग्नि बीच रेफ विन्दु पूर्वक अर्थात् (रां) इसी की सभी मन्त्रों में श्रेष्ठता है । संसार के सभी मन्त्रों के रहस्यभूत तत्त्व के महान् जानकार रुद्र का भी अन्य मन्त्रों के होते हुये भी षडक्षर श्रीराम मन्त्र के जप होमादि में आग्रह विशेष है । और इस षडक्षर श्रीराम मन्त्र के जप उपासना आदि में सभी

मन्त्रमिममुपदेक्ष्यसि स मुक्तोभविता । तदेव कथयति दीर्घाकारसहितमग्निबीजं विन्दुपूर्वकम्, अस्यैव सर्वेषु श्रीराममन्त्रेषु उत्कृष्टत्वम् । सर्वमन्त्ररहस्यज्ञस्य अपि रुद्रस्य मन्त्रान्तरसत्वेऽपि षडक्षरजपादावाग्रहविशेषः, सर्वेषां प्राणिनाञ्चात्राधिकारः । विन्दुशिरस्कं तारकवीजमुद्धरेदित्यत्र विन्दुपूर्वकं जगत् सृष्टिक्रमः । विन्दो र्नादः स च परापश्यन्तीमध्यमाद्यवस्थामनुभूय स्वरवर्णपदवाक्यादिरूपमाप्नोति । अर्थसृष्टौ अविद्याविन्दुः महत् तत्त्वं ततोऽहंकारस्ततः पञ्चतन्मात्रादयो भवन्ति । स्वभुर्ज्योतिर्मयोऽनन्तरूपीस्वेनैव भासते । ज्योतिर्मयत्वेन स्वप्रकाशश्चिदात्मकोरकारः आनन्दात्मकामृतरूपश्चन्द्रः, आह्लादस्वरूपः तदाकारवान् विन्दुः एतेन प्रकाशानन्दचिदात्मकं बीजमुद्धृतम् । अतः तारकस्य विन्दोरर्थसृष्टिशब्द सृष्ट्योः कारणत्वं निरूपितम् । 'माय नमः' इत्यत्र मः चन्द्रः सवीजसरामचन्द्राय नमः इति न केवलं सचराचरादिहेतुत्वेन श्रीराममन्त्रस्य श्रेष्ठत्वमपि तु सकलकारणस्योङ्कारस्यापि कारणत्वेन सर्वश्रेष्ठत्वम् ।

प्राणियों का अधिकार है । विन्दु है शिर के ऊपर जिसके ऐसे तारक मन्त्र का उद्धार करे, इस विषय में इस संसार की रचना विन्दु पूर्वक ही होती है यह क्रम है । क्योंकि शब्द सृष्टि में विन्दु से नाद और वह नाद परा पश्यन्ती मध्यमा अवस्थाओं का अनुभव कर स्वर वर्ण पद वाक्य महावाक्य आदि स्वरूपों को प्राप्त करता है । अर्थ सृष्टि में अविद्या से विन्दु विन्दु से महत् तत्त्व महत् तत्त्व से अहंकार अहंकार से पांच तन्मात्रायें उन से महाभूत आदि उत्पन्न होते हैं । इससे दोनों प्रकार के सृष्टि का मूल विन्दु है यह सिद्ध हुआ । स्वयं उत्पन्न होने वाले तेजोमय अनन्त स्वरूपों वाले अपने ही प्रभाव से प्रकाशित होते हैं । यहां ज्योतिर्मय कहने से स्वयं प्रकाश चित् स्वरूप र कार कहा जाता है । आनन्दात्मक अमृत स्वरूप चन्द्र है, चदि आह्लादे से आह्लादात्मक है । इसप्रकार के स्वरूप वाला विन्दु है । इसप्रकार प्रकाश आनन्द एवं चित् स्वरूप वाला विन्दु का उद्धार हुआ । इसलिये तारक ब्रह्म के विन्दु की अर्थ सृष्टि एवं शब्द सृष्टि की कारणता प्रतिपादित की गयी । 'माय नमः' यहां पर 'म' का अर्थ चन्द्र है वह वीज है जिसमें उस श्रीरामचन्द्रजी के लिये प्रणाम । इसके बल से सकल चराचर की कारणता के रूपमें श्रीराम मन्त्र की श्रेष्ठता भी निरूपित होती है । और भी सकल जगत् के कारणभूत ॐकार का भी कारण होने से सभी से श्रेष्ठ श्रीराम मन्त्र है यह सिद्ध होता है ।

पूर्ववर्णितस्वरूपं तारकं ॐकारात्मकं भवति । जीवत्वेनेदमोंयस्येति पूर्वतापनीयेप्युक्तम्, 'रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः' इतिस्मृतेश्च ।

प्रणवं केचिदाहुर्वै बीजश्रेष्ठं तथापरे ।
तत्तु ते नामवर्णाभ्यां सिद्धिमाप्नोति मे मतम् ॥ इति ।

श्रीरामनाम्नो वर्णविश्लेषविपर्ययादिभिः प्रणवोत्पत्तिः सिद्ध्यति । ओमित्येकाक्षरं सर्वमित्यादेस्तु न बाधः । प्रणवावयवयो र कार म कारयोः श्रीराममन्त्रस्याकारमकाराभेदेन 'रेफारूढामूर्तयः स्युः' इत्यत्र विस्तरेण श्रीराम मन्त्रस्य प्रणवकारणत्वं स्पष्टीकृतम् ।

सर्ववेदादिभूतप्रणवकारणत्वं श्रीराममन्त्रस्य प्रदर्श्य अथ ब्रह्माभेदत्व प्रदर्शनेन तस्य सर्वोपास्यत्वं निरूपयन् ब्रह्मात्मकः सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासि तव्यम् । षडपिवर्णाः 'तेजोरूपमयोरेफः' इतिमहारामायणवचनमनुसृत्य श्रीरामा कारप्राप्तत्वात् ब्रह्मात्मकाः । अथवा श्रीरामवाचकत्वेन तत् तादात्म्य गतत्वाद् ब्रह्मरूपाः सच्चिदानन्दश्रीरामबोधकत्वेन तदाख्यां, ब्रह्मवद् व्यापकधर्मवत्वाद्वा ब्रह्मात्मकाः, तदुक्तं पूर्वतापनीये→

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥

पूर्व में जिसका वर्णन किया जा चुका है वह तारक ॐकार स्वरूप है । जीव रूपमें ॐ जिसका इत्यादि पूर्वतापनीय में कहा गया है । वह ॐकार श्रीरामनाम से उत्पन्न हुआ है वह प्रणव मोक्षदायक है ऐसा स्मृति वचन है ।

कोई प्रणव को श्रेष्ठ कहते हैं, दूसरे बीज को श्रेष्ठ कहते हैं । और वे दोनों ही नाम और वर्णों से श्रेष्ठता को प्राप्त करते हैं यह मेरा मत है । श्रीरामनाम के वर्ण विश्लेष वर्ण विपर्यय आदि के द्वारा ॐकार की उत्पत्ति सिद्ध होती है । ॐ यह एक अक्षर ही सवकुछ है । इत्यादि का इससे कोई बाध नहीं है । प्रणव के अवयन अकार मकार का श्रीराम मन्त्रस्थ रकार मकार के साथ अभेद सम्बन्ध 'रेफारूढामूर्तयः स्युः' इस प्रकरण में इसका विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है । जहां श्रीराम मन्त्र का प्रणवाकारत्व स्पष्ट किया गया है ।

सभी वेदों के आदि स्वरूप प्रणव का कारणत्व श्रीराम मन्त्र का प्रदर्शित करके, इसके वाद ब्रह्म के साथ अभेद प्रदर्शन के द्वारा श्रीराम मन्त्र के सर्वोपास्यत्व प्रतिपादन

श्रीरामोपनिषद्यपि→

स्वप्रकाशः परं ज्योतिः स्वानुभूत्यैकचिन्मयः ।
तदेव रामचन्द्रस्य मनोराद्यक्षरं स्मृतम् ॥

श्रुतिः षडक्षराणां ब्रह्मात्मकत्वं कण्ठतः कथयन्नाह ब्रह्मात्मका इति । तदेव स्फुटयन्नाह सच्चिदानन्दाख्या इति । सच्चिदानन्दा इतिसंज्ञा येषां ते सच्चिदानन्दाख्या, सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । आनन्दो ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म, इत्यादिभिः श्रुतिभिः ब्रह्मणः सच्चिदानन्दरूपत्वमाख्यायते । सच्चिदानन्दसंज्ञकामन्त्रवर्णा अपि ब्रह्मात्मकाः । तेन षडक्षराणां ब्रह्मस्वरूपत्वं ततः उपासितव्यम् ।

अविवेचितविशेषाविशेषजीवमोक्षप्रदायकत्वेन तारकत्वेन निखिलवेदादि प्रणवहेतुत्वेन ब्रह्मात्मकत्वेन सच्चिदानन्दाख्यत्वेन निखिलब्रह्माण्डमूलतया षड-

करते हुए ब्रह्मस्वरूप सच्चिदानन्द नामक श्रीराम मन्त्र की उपासना करनी चाहिये । छओं ही वर्ण, तेजोमय रेफ है, इस महारामायण के वचन का अनुशरण करके श्रीराम स्वरूप को प्राप्त करने के कारण यह मन्त्र ब्रह्म स्वरूप है । सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीरामजी का बोधक होने के कारण उनका नाम ब्रह्म के समान व्यापकत्व धर्म सम्पन्न होने से ये ब्रह्मात्मक हैं । यही पूर्वतापनीय में कहा है । जिस सत्य आनन्द एवं चैतन्य स्वरूप में आनन्दानुभूति करते हैं । इसलिये श्रीराम पद के द्वारा परब्रह्म कहा जाता है । स्वयं प्रकाश स्वरूप सर्वोत्कृष्ट ज्योति स्वरूप केवल आत्मानुभूति रूप चैतन्यमय होना यही भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के मन्त्र का आदि अक्षर कहा गया है । श्रुति श्रीराम मन्त्र के षडक्षर का ब्रह्मात्मकत्व अपने मुख से निरूपण करती हुई कहती है 'ब्रह्मात्मकाः' इति । सत् चित् आनन्द संज्ञा है जिनकी वे सच्चिदानन्द नाम के हैं । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, आनन्दो ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म, इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा ब्रह्म का सत् चित् आनन्द नाम वाला मन्त्र के अक्षर भी ब्रह्मस्वरूप है । इससे श्रीराम मन्त्र के छ अक्षरों का ब्रह्म स्वरूपत्व है यह श्रुति एवं स्मृति तथा श्रीमद्रामायण से सिद्ध होता है । इससे उसकी ही उपासना करनी चाहिये ।

जिसने जीव के सामान्य विशेष आदि का विना विवेचन किये ही जीव मात्र को मोक्ष प्रदायक होने से और सभी का उद्धारक होने से और समस्त वेद आदि प्रणव का कारण होने से एवं ब्रह्मात्मक होने के कारण और सच्चिदानन्द नाम वाला होने से तथा समस्त ब्रह्माण्ड का मूलकारण होने के कारण छ अक्षरों वाला तारक श्रीराम

क्षरं तारकमेवोपासितव्यम् । तथा च स्मृतिः→

'ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियो शूद्रास्तथेतरे ।
सर्वेप्यधिकारिणोऽस्यह्यनन्यशरणा यदि ॥

षडक्षरप्रकरणत्वादस्यैवोपास्यत्वमिति ॥२॥

महामन्त्र की ही उपासना करनी चाहिये इसप्रकार स्मृति कहती है-अतः ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य स्त्रियां शूद्र और अन्य प्राणी सभी इस श्रीराम मन्त्र के अधिकारी हैं अनन्य शरणागति वाले हो तों अतः सभी का एक मात्र श्रीराम मन्त्र ही शरण है। यह स्मृति षडक्षर तारक प्रकरण का है इसलिये इसकी ही उपासना करनी चाहिये ॥२॥

अकारः प्रथमाक्षरो भवति, उकारो द्वितीयाक्षरो भवति मकार स्तृतीयाक्षरो भवति अर्धमात्राश्चतुर्थाक्षरो भवति विन्दुः पञ्चमाक्षरो भवति, नादः षष्ठाक्षरो भवति तारकत्वात् तारकोभवति, तदेव तारकं ब्रह्म त्वं विद्धिः, तदेवोपास्यमिति ज्ञेयम्, गर्भजन्मजरामरणसंसार महद् भयात् संतारयतीति तस्मादुच्यते तारकमिति ॥३॥

षडक्षरकार्यस्य प्रणवस्य त्रिमात्रत्वं लोकज्ञातं तस्य विश्लेषेण षडक्षरं गमयति, ओंकारस्य प्रथमाक्षरमकारो भवति, द्वितीयाक्षरः उकारः, तृतीयाक्षरो मकारः चतुर्थाक्षरोऽर्धमात्रा, विन्दुः पञ्चमाक्षरः नादः षष्ठाक्षरः सर्वार्थबोधकत्वात् षण्णामपि वर्णानां षडक्षरावयवार्थबोधकत्वमेतेन वर्णसाम्यात् षडक्षरसमतां प्रतिपाद्य, प्रणवस्य तद्धर्मप्राप्तिं दर्शयन्नाह तारकत्वात् तारकोभवतीति, तारकं दीर्घानलमिति वर्णशः साम्यात् तारकत्वम् । तारयति उद्धारयतीतितारकः तस्य भावः तारकत्वम् । कस्मात् तारयतीति जिज्ञासायामाह-गर्भजन्मजरामरणसंसार महद् भयादिति । मध्येश्रुतः तदेवतारकं ब्रह्म त्वं विद्धिरुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे, 'तारकं दीर्घानलम्' इति यस्य स्वरूपं निरूपितं तदेव तारकं जानीहि । अत्र तदेव तारकं ज्ञेयमुपास्यं चेति शिष्यशिक्षार्थं दृढयति । सच्चिदानन्दात्मकब्रह्मवाचक तादात्म्येनोपासनीयम् । जीवपरज्ञेयः अनयोः शेषशेषीभावः । गर्भादिभ्यः सद्यः तारयतीति सर्वोपास्यत्वम् । यो मन्त्रोगर्भादिभ्यस्तारयति तस्य सर्वस्य तारक संज्ञेति तु न, वेदपुराणादौ मन्त्रान्तरस्य तारकसंज्ञाश्रवणात् । तारकं दीर्घानलं, षडक्षरो वह्निपूर्वस्तारकत्वमभिधीयते, श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञित-

मित्यादिश्रुतिस्मृतिभिः श्रीराममन्त्रषडक्षरस्यैव तारकसंज्ञा उच्यते । अकारः प्रथमाक्षरोभवतीत्यादिभिः प्रणवस्यैव कारणत्वमिति न वाच्यम् । कार्यावयवस्य कारणावयवत्वायोगात् । षडक्षरेऽकारस्य प्रथमावयवेदर्शनाभावाच्च । प्रणवस्य सर्वकारणत्वेऽपि 'जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्राश्चेत्यादिभिर्यादृशं महत्वं श्रीराम महामन्त्रस्य प्रदर्शितं तादृशमहत्त्वाश्रवणाच्च ॥३॥

षडक्षर श्रीराम मन्त्र का कार्यभूत ॐकार की भी तीन मात्रायें है यह सर्वलोक विदित है। उसका विश्लेषण के द्वारा षडक्षरत्व का निरूपण करते हैं। ॐकार का प्रथम अक्षर अकार है, द्वितीय अक्षर उकार है, तृतीय अक्षर मकार है। चतुर्थाक्षर अर्धमात्रा है, पञ्चम अक्षर विन्दु है एवं छठा अक्षर नाद है। सकल पदार्थ का बोधक होने से छओं वर्णों का षडक्षर के अवयवार्थ बोधकत्व है। इनके वर्णों की समानता के कारण षडक्षर तारक ब्रह्म की समानता का प्रतिपादन करके, प्रणव तारक मन्त्र के धर्म की प्राप्ति को दिखाते हुए कहते हैं। सभी प्राणियों का उद्धारक होने के कारण तारक कहा जाता है। 'तारकं दीर्घानलं' इससे वर्णशः समानता के कारण तारकत्व है। जो उद्धार करता है उसे तारक कहते हैं। उस तारक का भाव में प्रत्यय करने पर तारकत्व होता है। किस से उद्धार करता है ऐसी जिज्ञासा होने पर श्रुति कहती है, गर्भ जन्म जरामरण स्वरूप संसार के महान् भय से उद्धार करता है। जो मध्य में कहा गया है उसी को तारक ब्रह्म समझो। भगवान् रुद्र तारक ब्रह्म का उपदेश करते हैं। 'तारकं दीर्घानलम्' इत्यादि जिसका स्वरूप है ऐसा कहा गया है उसी को तारक ब्रह्म जानो।

यहां पर उसी को तारक ब्रह्म जानना चाहिये और उपासना करनी चाहिये इन वातों को शिष्य शिक्षा के लिये दृढता पूर्वक कहते हैं। तारक ब्रह्म की सच्चिदानन्दात्मक ब्रह्म स्वरूप के साथ तादात्म्य भाव से उपासना करनी चाहिये। यहां पर ज्ञेय शब्द जीव परक है, अर्थात् सच्चिदानन्द ब्रह्म के साथ तादात्म्य रूपमें तारक को जीवात्मा समझे। जीवात्मा एवं परमात्मा का शेष शेषी भाव सम्बन्ध है। गर्भ जन्म जरा आदि से तत्काल उद्धार करता है इसलिये प्राणी मात्र के लिये तारक मन्त्र उपासना करने योग्य है। जो मन्त्र गर्भ आदि से उद्धार करता है वे सभी मन्त्र तारक मन्त्र कहे जाते हैं ऐसा कहना उचित नहीं है। वेदशास्त्र पुराण आदि में अन्य मन्त्रों की तारक संज्ञा नहीं कही गयी है। 'तारकं दीर्घानलं' छ अक्षरों वाला वह्नि वीज

रेफ है पहला अक्षर जिसका वह तारक ब्रह्म मन्त्र कहा जाता है। तारक ब्रह्म नाम से कथित श्रीराम यह सर्वोत्कृष्ट जप करने योग्य है, इत्यादि श्रुति स्मृति आदि के द्वारा षडक्षर श्रीराम मन्त्र की ही तारक ब्रह्म यह संज्ञा सुनी जाती है। 'अकार प्रथम अक्षर होता है' इत्यादि वचनों के द्वारा प्रणव (ॐकार) का ही कारणत्व है ऐसा नहीं कहा जा सकता है। कार्य के अवयव का कारण का अवयवत्व किसी अवस्था में होना सुसंगत नहीं कहा जा सकता। और षडक्षर तारक ब्रह्म महामन्त्र में अकार प्रथम अवयव है यह कही भी नहीं देखा गया है। प्रणव का सर्व कारणत्व प्रतिपादन किये जाने पर भी 'जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्रांश्च' इत्यादि के समान माहात्म्य कहीं नहीं सुना जाने के कारण भी तारक ब्रह्म का कारण ॐकार का होना सम्भव नहीं है अतः वेद श्रीमद्रामायण इतिहास पुराण आदि के प्रमाणों से यह निश्चित है कि ब्रह्म तारक षडक्षर श्रीराम महामन्त्र में स्थित 'रां' यही ॐ आदि सभी का कारण है यह निश्चित है ॥३॥

य एतत्तारकं ब्राह्मणो नित्यमधीते स पाप्मानं तरति, स मृत्युं तरति स भ्रूणहत्यां तरति। स ब्रह्महत्यां तरति, स वीरहत्यां तरति, स सर्वहत्यां तरति, स संसारं तरति, स सर्वं तरति सोविमुक्ताश्रितोभवति स महान् भवति सोऽमृतत्वं गच्छतीति ॥४॥

ॐ इतिद्वितीयाकण्डिका ॐ

यः कोऽपि ब्रह्म तत्त्व बुभुत्सुः ब्राह्मणः नतु ब्राह्मणजातिपर इतिज्ञेयम्। 'जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु तारकं व्याचष्टे' इतिश्रुत्या 'ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या स्त्रियः शूद्रास्तथेतरे' इतिस्मरणाच्चात्रमन्त्रे सर्वेषामधिकारदर्शनात्। अत्रोद्धारे सप्तविशेषणान्याह। भ्रूणः वेदपारगो ब्राह्मणः वीरः ज्येष्ठ पुत्रः संसारपदेबाह्य विषया उच्यते। विरजापर्यन्तं सर्वपदेनोच्यते। अविमुक्तत्वं बद्धत्वम्। अथवा विमुक्तत्वं परमात्मानमाश्रितो भवति 'जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युरिति वक्ष्यमाणश्रुतेः ॥४॥

इस तारक ब्रह्म का अध्ययन जो ब्राह्मण नित्य करता है। यहां ब्राह्मण शब्द ब्रह्म तत्त्व जानने का इच्छुक यह अभिप्राय परक है न कि ब्राह्मण परक है। क्योंकि प्राणों के निकलते समय रुद्र तारक ब्रह्म का उपदेश प्राणी मात्र को देते हैं। इस श्रुति एवं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र स्त्रियां तथा अन्य इस स्मृति से मन्त्र की उपासना में

सभी का अधिकार कहा गया है। यहां पर उद्धार में सात विशेषण कहे गये हैं। पाप से मृत्यु से और भ्रूण हत्या से तरता है। यहां भ्रूण का अर्थ वेद पारङ्गत ब्राह्मण है। ब्रह्म हत्या वीर हत्या वीर का अर्थ ज्येष्ठ पुत्र है। सर्व हत्या से तरता है संसार पद से बाह्य विषय कहे जाते हैं। और सर्व पद से विरजा पर्यन्त कहा जाता है। अर्थात् सर्वं तरति विरजा को पार कर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के परमधाम श्रीसाकेत में पहुँच कर सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है। अमृतत्व से मोक्ष एवं अविमुक्त से बद्ध जीव प्रतिपाद्य है। अथवा विमुक्त परम पद को आश्रित होता है क्योंकि 'जीवन्तो मन्त्र सिद्धाः स्युः' यह श्रुति आगे कही जाने वाली है ॥४॥

इति द्वितीय कण्डिका

अथ प्रणवाकारप्राप्तस्य तारकस्य तात्पर्यभूताः इमे चत्वारः श्रुति-प्रसिद्धाः श्लोकाः सन्ति-

अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिविश्वभावनः ।
उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः ॥१॥
प्रज्ञात्मकस्तु भरतोमकाराक्षरसम्भवः ।
अर्धमात्रात्मको रामोब्रह्मानन्दैकविग्रहः ॥२॥
श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी ।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणीसर्वदेहिनाम् ॥३॥
सा सीता भगवतीज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता ।
प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥४॥

अकारः अक्षरात् सम्यग् ज्ञातः सुमित्रापुत्रः जाग्रद्वस्थायां विश्वनियामकः लक्ष्मणः इत्यर्थः। जाग्रदवस्थासाक्ष्यात्मा विश्वः तस्य नियन्ता लक्ष्मणः। अत्र समष्ट्याभिमानित्वेन प्रतिशरीरं जाग्रदवस्थासाक्ष्यात्मतया विश्वाख्य इतिज्ञेयम्।

अकार अक्षर से सम्भूत आदि प्रकरण में प्रणव (ॐकार) स्वरूप को प्राप्त तारक ब्रह्म का तात्पर्यभूत अवयवाक्षरों का अभिप्राय बताने के लिये ये चार वेद प्रसिद्ध श्लोक हैं। उनका यह तात्पर्य भूत अर्थ है। अकार अक्षर से सम्यक् प्रकार से ज्ञात सुमित्रा तनय जाग्रदवस्था के समष्ट्यात्मक जगत् का नियामक श्रीलक्ष्मणजी

उकाराक्षरात् सम्यग् ज्ञातः तैजसात्मकः शत्रुघ्नः नियामकः । अत्रापि समष्ट्या भिमानित्वेन प्रतिशरीरं स्वप्नावस्थासाक्ष्यात्मतया नियामकः तैजसः शत्रुघ्नः इतिबोध्यम् । मकाराक्षरात् सम्यग् विज्ञातः प्रज्ञास्वरूपः भरतः । भरतः अपि समष्ट्याभिमानितया सुषुप्त्यवस्थाया साक्षिभूतो नियामकः प्राज्ञः भरतः इतिबोध्यम् । लक्ष्मणभरतशत्रुघ्नानां सर्वजीवनियामकत्वं तिसृष्वस्थासु प्रतिपादितम् । अथ ब्रह्मानन्दैकविग्रहस्य सर्वेश्वरश्रीरामचंन्द्रस्य सकलजीवतुरीया वस्थाया नियामकत्वं सिद्धमेव । ब्रह्मचासावानन्दश्च ब्रह्मानन्दः सचैको विग्रहः शरीरं यस्य स श्रीरामः ब्रह्मानन्दाभ्यां विशेषणाभ्यां प्राकृतत्वरहितः । श्रीराम चन्द्रस्य ब्रह्मानन्दमय एव विग्रहो विद्यते । अतः शरीरशरीरीभेदः नास्ति । 'श्रीशाङ्‍र्गधारिणं रामं चिन्मयानन्दविग्रहम्' इतिसच्चिदानन्दरूपत्वस्मरणाच्चार्ध मात्रात्मकः सर्वेश्वरश्रीरामः इत्याशयः ।

अथ श्रीरामचन्द्राभिन्नायाः श्रीसीतायाः श्रीरामप्रतिपादकार्धमात्राया निकटस्थ विन्दुप्रतिपाद्यत्वं कथयन्नाह श्रीरामसान्निध्यवशादिति श्रीरामप्राप्तिरेव परमपुरुषार्थतया भक्त्यातिशयबोधनाय श्रीरामपदं प्रथमं प्रयुक्तवान् । स्वभा वतो जगतामतिशयसौख्यप्रदायिनी, तत् तत् कर्माण्यनुसृत्य सर्वशरीरिणां विश्वतैजसप्रज्ञावस्थावतां सौमित्र्यादीनां नियम्यतया उत्पत्तिपालनसंहारकारिणी या

हैं जाग्रत् अवस्था के साक्षी आत्मा विश्व है उसके नियामक श्रीलक्ष्मणजी हैं । यहां पर समष्टि का अभिमानी होने के कारण प्रत्येक शरीर में जाग्रदवस्था साक्षी आत्मा के स्वरूप में विश्व नामक तत्व श्रीलक्ष्मणजी हैं यह समझना चाहिये । उकार अक्षर से सम्यक् प्रकार से ज्ञात तैजस स्वरूप का श्रीशत्रुघ्नजी नियामक हैं । यहां पर भी समष्टि का अभिमानी होने के कारण प्रत्येक शरीर में स्वप्नावस्था के साक्षी भूत आत्मा के स्वरूप में नियामक तैजस श्रीशत्रुघ्नजी हैं यह जानना चाहिये । मकार अक्षर से सम्यक् रूपमें ज्ञात प्रज्ञा स्वरूप श्रीभरतजी हैं । भरतजी भी समष्टि अभिमानिता के कारण सुषुप्ति अवस्था का साक्षीभूत नियामक प्राज्ञ हैं यह जानें । श्रीलक्ष्मणजी श्रीभरतजी और श्रीशत्रुघ्नजी का सकल जीव नियामकत्व तीनों भिन्न भिन्न अवस्थाओं में है यह बताया जा चुका है । अब इसके वाद ब्रह्म आनन्द स्वरूप एक मात्र शरीर वाला भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का समस्त जीवों के तुरीयावस्था का नियामकत्व स्वभाव सिद्ध है । ब्रह्म होते हुए जो आनन्दस्वरूप है उसे ब्रह्मानन्द कहते हैं, वही है एक

मूलप्रकृत्यभिधाना भगवती श्रीसीता ज्ञानशक्त्यादिषड्गुणालंकृता सा ज्ञानविषयीकरणीया । अत्र मूलप्रकृतिशब्दः सांख्याभिमतो न जडप्रकृतिपरः । किन्तु 'हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कारया चिता' इतिपूर्वतापनीयानुसारेण चिद् रूपा । मूलप्रकृतिरपि प्रकृतिरित्यस्याः श्रीसीताकटाक्षोद्भवत्वस्मरणाच्च । तद् व्युत्पत्तिमाह प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति । णु स्तुतौ इतिप्रणवते स्वकटाक्षोद्भवायाः जडप्रकृतेर्महदाद्याकारेण या सा प्रणवा तस्या भावः तस्मात् । अथवा प्रकर्षेण क्रियते अनयेति प्रकृतिः ब्रह्मप्रणवमूलोवेदः । अत्र विश्वतैजसादीनां लक्ष्मणादीनां श्रीरामकैङ्कर्यपरायणतया भगवच्छेषत्वम् । सर्वं चराचरं जगत् श्रीसीताभिन्नराम स्यैव शेषभूतम् । तेन श्रीसीतायाः सर्वस्वामित्वमेव । श्रीसीतारामयोरभिन्नत्वात् स्वरक्षणोपायत्वञ्च । प्रकृतप्रसङ्गे-

'यथा रामस्तथाहं च भेदः कश्चिन्नचावयोः ।
शीततािह यथा नीरे तथाहं राघवेस्थिता ।
सर्वस्याधारभूतौ च त्वावामेव हि मारुते ।
स्वे महिम्नि स्थितावावामन्याधारो न चावयोः ।

मात्र विग्रह अर्थात् शरीर जिसका उसे ब्रह्मानन्दैक विग्रह कहते हैं। यहां पर ब्रह्म और आनन्द इन दो विशेषणों के द्वारा इङ्गित किया जाता है कि सर्वेश्वर श्रीरामजी प्राकृत शरीर से रहित हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का ब्रह्मानन्दमय ही शरीर है। अत एव उनमें शरीर शरीरी का भेद नहीं है। शाङ् र्ग धनुष को धारण करने वाले चिन्मय आनन्द स्वरूप शरीर को धारण किये श्रीरामजी को इत्यादि वचनों से सच्चिदानन्द स्वरूपवान् होना श्रीरामजी को कहा गया है। यही अर्धमात्रात्मक श्रीरामजी हैं इसका आशय है। आगे श्रीरामचन्द्रजी से अभिन्न स्वरूप वाली श्रीसीताजी का श्रीराम प्रतिपादक अर्धमात्रा के निकटस्थ का विन्दु प्रतिपाद्यत्व कहा गया है। यही श्रीराम सान्निध्यवशात् से कहते हैं। भगवान् श्रीरामजी को ही प्राप्त करना परमपुरुषार्थ है इसलिये अतिशय भक्ति प्रकाशनार्थ श्रीराम पद का पहले प्रयोग किया गया है। स्वभाव से ही समस्त चराचर जगत् को परमानन्द प्रदान करने वाली, उन-उन प्रकारों के जीवों के कर्मों का अनुशरण कर सभी शरीर धारियों के जो विश्व तैजस प्राज्ञ अवस्था वाले श्रीलक्ष्मणजी आदि का नियम्य होने से उत्पत्ति पालन एवं संहार करने वाली जो मूल प्रकृति नाम से शास्त्र प्रसिद्ध भगवती श्रीसीताजी ज्ञान शक्ति आदि छ गुणों से

आवां तौ हि यतः कश्चिन्नाधिको न च यत्समः ।
सर्वात्मानौ मतौ चावां सर्वेषां प्रेरकौ तथा ।
सत्यकामौ तथा चावां सत्यसङ्कल्पतां गतौ ।
शरण्यौ वेदनीयौ च भजनीयौ हि मुक्तये ।
सर्वेषामवताराणामावामेवावतारिणौ ।
भासकभास्करादीनामावामेव विभासकौ ।

इत्यादिकाः श्रीवशिष्ठसंहितास्थश्लोका अनुसन्धेयाः । षडक्षरकार्यभूतः प्रणवोऽपि श्रीरामस्य शेषः । श्रीरामजानक्योः सान्निध्य इव अर्धमात्राविन्दोरपि सान्निध्यं दृश्यते एव । श्रीरामवाचकार्धमात्राद्वारा प्रणवस्य जगत् कारणश्रुतावपि श्रीरामवाचकार्धमात्रासान्निहितश्रीजानकीवाचकविन्दुद्वारैव तदुक्तमुत्पत्तिस्थिति सं समलंकृत वे श्रीसीताजी अपने ज्ञान का विषय बनाने योग्य हैं । यहां पर मूल प्रकृति शब्द सांख्य शास्त्र प्रसिद्ध प्रकृति बोधक नहीं है । क्योंकि वह जड प्रकृति परक है। किन्तु सुवर्ण सदृश कान्तिमती दो भुजाओं से युक्त सभी अलङ्कारों से समलंकृत चित् स्वरूपिणी से इत्यादि वचनों से श्रीसीताजी चिद् रूपिणी कही गयी हैं । और 'मूल प्रकृतिरविकृतिः' इसको श्रीसीताजी के कटाक्ष से उत्पन्न है ऐसा शास्त्रों में बताया गया है। उस प्रकृति शब्द की व्युत्पत्ति कहते हैं प्रणव होने से श्रीसीताजी प्रकृति है । णु स्तुतौ इस धातु से जो अपने कटाक्ष से उत्पन्न होने वाली प्रकृति महदादि को प्रस्तुत करती है जड प्रकृति को उसे प्रणवा कहते हैं । उसका भाव प्रणवत्व हुआ, उससे अथवा जिसके द्वारा अतिशय या उत्कृष्ट मात्रा में उत्पन्न किया जाता है वह प्रकृति है। ब्रह्म प्रणव मूल जिसका है वह वेद है । यहां पर विश्व तैजस आदि लक्ष्मण प्रभृति का भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के कैङ्कर्य परायण होने से श्रीसीताभिन्न भगवान् श्रीरामजी का शेषत्व है । समस्त जडचेतनात्मक संसार श्रीसाताभिन्न श्रीरामचन्द्रजी का ही शेष है। इसलिये श्रीसाताजी का सर्व स्वामित्व ही है। क्योंकि श्रीसीतारामजी का अभिन्नत्व ही है। और आत्म संरक्षणोपायत्व भी है इस विषय में वशिष्ठ संहिता के श्रीसीतारामजी का अभेद प्रसंग को पूर्ण रूपसे अवलोकन करना चाहिये विस्तार भय से नहीं लिख रहे हैं उसे वहीं मेरी टीका में देखें । षडक्षर तारक ब्रह्म कार्यभूत प्रणव भी श्रीरामजी का शेष ही है। जिस तरह श्रीरामजानकीजी का नित्य सान्निध्य है उसी प्रकार अर्धमात्रा एवं विन्दु का सान्निध्य देखा जाता है । श्रीराम वाचक अर्धमात्रा के अत्यन्त सन्निकट

हारकारिणीमिति । श्रीसीतारामयोरभिन्नयोर्जगत्कारणत्वं श्रीरामवाचकार्ध मात्रासंश्लिष्टविन्दोस्तादात्म्यसम्बन्धः । अतएव श्रीवैष्णवाः तिलकं श्रीरामरूपेण सश्रीकमूर्ध्वपुण्ड्रं धारयन्ति । अतः ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य श्रुतिमूलकत्वं निष्पन्नं भवति॥१।२।३।४॥

श्रीजानकी वाचक विन्दु के द्वारा ही श्रीराम वाचक अर्धमात्रा के द्वारा प्रणव का जगत् कारणत्व सिद्ध होता है। यही 'उत्पत्ति स्थिति संहार कारिणी' से कहा गया है। अभिन्न श्रीसीतारामजी का जगत्कारणत्व श्रीराम वाचक अर्धमात्रा से सम्यक् प्रकार से श्लिष्ट विन्दु का तादात्म्य सम्बन्ध है। अत एव श्रीवैष्णव गण अपने ललाट में तिलक भगवान् श्रीरामजी के स्वरूप में सर्वदा श्री के साथ ही धारण करते हैं। अतः ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक का वेद मूलकत्व होना वेद से प्रमाणित-सिद्ध होता है ॥१/२/३/४॥

ओमित्येतदक्षरं सर्वं तस्योपन्याख्यानं भूतं भव्यं भविष्यदिति सर्वमोंकार एव, यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव, सर्वं ह्येतत् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म ॥५॥

ॐ इत्येतदक्षरमेव निखिलमर्थजातं शब्दजातञ्च, तेन भावाभावात्मकं सर्वार्थवाचकत्वमोङ्कारस्य । यथा शंकुना सर्वाणि पत्राणि ग्रथितानि भवन्ति तथैवोङ्कारेण सर्वावाक् तस्य ॐकारस्यैव उपसमीपे व्याख्यानं विस्पष्ट कथनमतीतं वर्तमानं भविष्यच्चेति । तेन कालत्रयपरिच्छिन्नं निखिलं समष्टिव्यष्ट्यात्मकं सर्वमोङ्कारमेव । यच्चान्यत् कालत्रयातीतमव्याकृतादितदप्योङ्कारमेव । कार्यकारणरूपस्य निखिलस्य संसारस्य वाच्यस्य वाचकमोङ्कार एव ।

ॐ यह अक्षर ही समस्त अर्थ समुदाय एवं शब्द समुदाय है। अर्थात् अर्थ सृष्टि एवं शब्द सृष्टि ओंकारात्मक ही है। इस कथन से भावात्मक एवं अभावात्मक सभी अर्थों का वाचकत्व ओंकार में है। जिसप्रकार एक कील में गूँथे गये सभी पत्ते कील के आश्रित होते हैं उसी प्रकार समग्र वाणी ओंकार के ही अधीन हैं। ओंकार का ही उप अर्थात् समीप में व्याख्यान-विस्पष्ट अर्थ कथन है। अर्थात् भूत भविष्य वर्तमान सभी ओंकार में ही कीलित हैं। इससे कालत्रय परिच्छिन्न सभी समष्ट्यात्मक एवं व्यष्ट्यत्मक पदार्थ ओंकार ही है। इनसे अतिरिक्त भी जो त्रिकालातीत पदार्थ है अव्याकृत तत्त्व आदि वह भी ओंकार ही है। कार्यकारण स्वरूप समस्त संसार का एवं प्रतिपाद्यभूत अर्थ का भी वाचक ओंकार ही है।

विश्वरूपस्य ते राम ? विश्वे शब्दा हि वाचकाः ।
तथाऽपि रामनामेदं सर्वेषां वीजमक्षयम् ॥

इत्यादिभिः सर्वेषां चिदचिद् विशिष्टानां परमात्मवाचकत्वदर्शनात् श्रीरामस्य सर्वशब्दवाच्यत्वं 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इतिश्रुतेः स्मृतेश्च निर्दिश्य 'अकाराक्षरसम्भूत' इत्यादिना च निरूप्य 'ओमित्येदक्षरं सर्वम्' इत्यादिना निखिलचराचरवाचकत्वं प्रदर्शयन् सर्वोपास्यत्वं प्रदर्शयते । नामनामिनोरभेदात् चिदचितां श्रीरामशरीरत्वेन सर्ववाच्यवाचकसमूहस्य ब्रह्मव्याप्यत्वेन तदपृथक् सत्ताकत्वात्तद्रूपत्वमत आह श्रुतिः 'सर्वमेतद् ब्रह्मेति, ब्रह्मैवैतत् सर्वमिति । स्थूलसूक्ष्मावस्थावस्थिताभ्यां चिदचिद्भ्यां विशिष्टं ब्रह्म, ब्रह्मणः सर्ववाच्यत्वेन

हे श्रीराम ? विश्वरूप आपके हि वाचक सभी शब्द हैं तथापि यह 'राम' नाम सभी शब्दार्थ का अविनाशी बीज है । इत्यादि वचनों के द्वारा समस्त चित् अचित् पदार्थों का परमात्मा श्रीराम वाचकत्व देखे जाने से श्रीरामजी का ही सर्वशब्द वाच्यत्व सर्ववाच्य का वाचक है इस श्रुति एवं स्मृति से निर्देश करके 'अकाराक्षर सम्भूतः' इत्यादि के द्वारा प्रतिपादन करके 'ॐ इत्येतदक्षरं सर्वम्' इत्यादि श्रुति वचन से समस्त चराचर वाचकत्व प्रदर्शित करते हुए श्रुति सर्वोपास्यत्व का प्रदर्शन करती है । नाम एवं नामी का परस्पर अभेद सम्बन्ध होने के कारण चित् एवं अचित् पदार्थों का भगवान् श्रीरामजी का शरीर होने के कारण समस्त प्रतिपाद्य अर्थ समूह एवं प्रतिपादक शब्द समूह का ब्रह्म व्याप्य होने से अर्थात् सभी में ब्रह्म के व्यापक होने के कारण समस्त शब्द सृष्टि एवं अर्थसृष्टि की ब्रह्म से भिन्न सत्ता नहीं होने के कारण श्रीराम रूपत्व है । इसीलिये श्रुति कहती है यह सवकुछ ब्रह्ममय ही है ब्रह्म ही यह समस्त चराचर जगत् है । स्थूल चित् अचित् विशिष्ट एवं सूक्ष्म चित् एवं अचित् विशिष्ट सवकुछ ब्रह्म है । ब्रह्म का सर्ववाच्य होने के कारण उस ब्रह्म के प्रधान रूप से वाचक श्रीराम नाम का भी सर्वशब्दरूपत्व स्वभाव सिद्ध है । भगवान् श्रीरामजी 'अर्धमात्रात्मक' हैं इस श्रुति वचन में 'अर्धमात्रात्मकः' तथा 'रामः' इन शब्दों में समान विभक्तिकत्व निर्देश से श्रीराम शब्द का कार्यभूत प्रणव का भी अपने प्रतिपाद्य अर्थ श्रीरामजी के साथ श्रुति तादात्म्य सम्बन्ध प्रकट करती है कि 'ओमित्यक्षरमिति' ओंकार के प्रत्येक अवयवों का अर्थ निरूपण प्रसङ्ग में षडक्षर तारक ब्रह्म के निरूपण प्रसङ्ग में भी षडक्षर का अपने प्रतिपाद्य अर्थ के साथ तादात्म्य सम्बन्ध सिद्ध होने

तन्मुख्यवाचकस्य श्रीरामनाम्न अपि सर्वशब्दरूपत्वम् । 'अर्धमात्रात्मको रामः' इत्यत्रसामानाधिकरण्येन तत् कार्यभूतस्य प्रणवस्यापि स्ववाच्येन श्रीरामेण तादात्म्यं निदर्शयति 'ओमित्यक्षरमिति । ॐ कारावयवार्थस्य निरूपणे षडक्षरतादात्म्य निरूपणे च षडक्षरस्य स्ववाच्येन तादात्म्यसिद्धेः सर्वं ह्येतद् ब्रह्मेत्यस्य सामानाधिकरण्यं तादात्म्यं गमयतीति । 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इत्यत्र 'ओमित्येतदक्षरं सर्वम्' इत्यत्र यत् सर्वशब्देन उच्यते शब्दार्थजातं तत् सर्वं ब्रह्मशरीरत्वेनाभिन्नम् । तत्फलं श्रीरामशरीरत्वेन सकलप्राणिनां स्वरूपस्थिति प्रवृत्यादयो जायन्ते । श्रीरामाधीनत्वात् अस्य शरीरस्य मत्शेषी श्रीरामः अवश्यमेव योगक्षेमं करिष्यति इति दृढविश्वासनिर्भरः निर्भयः सन् सदैव स्वस्वरूपपरस्वरूपतादात्म्यानुसन्धानपूर्वकं तारकब्रह्माख्यं श्रीराममन्त्रं जपन्

के कारण यह सवकुछ चराचर जगत् ब्रह्म है इस वाक्य का समान विभक्तिकत्व होना परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध को बोध कराता है ।

सर्ववाच्य का वाचक है यहां पर ओंकार यह अक्षर ही सवकुछ है इस वचन में जो सर्वशब्द के द्वारा शब्द समूह एवं अर्थ समूह प्रतिपादित किया जाता है वह सवकुछ चित् एवं अचित् पदार्थ ब्रह्म का शरीर होने के कारण ब्रह्म से अभिन्न है। इस अभेद प्रतिपादन का फल यह है कि श्रीरामजी का शरीर के स्वरूप में समस्त जडचेतन प्राणियों का स्वरूप स्थिति प्रवृत्ति आदि हुआ करते हैं । समस्त जडचेतन जगत् को श्रीरामजी के अधीन होने के कारण इस शरीर का जो शेषभूत है उसका शेषी श्रीरामजी अवश्य ही योगक्षेम करेंगे । इसप्रकार के दृढतर विश्वास से परिपूर्ण होकर तथा निर्भय होकर सदैव अपना आत्मस्वरूप एवं परमात्म स्वरूप अर्थात् स्वयं का श्रीरामजी के साथ तादात्म्य सम्बन्ध का अनुशीलन करता हुआ तारक ब्रह्म नामक षडक्षर श्रीराम मन्त्र का जप करता हुआ इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् के उत्तरार्ध भाग में कहे जाने वाले ४७. मन्त्रों के द्वारा प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति करे । यही तात्पर्य 'सर्वं ह्येतद् ब्रह्म' यहां से आरम्भ कर तापिनी के समाप्ति पर्यन्त श्रुति समूह के द्वारा निरूपित किया जाता है ।

इस विषय में कतिपय सम्प्रदायानुसारी कहते हैं कि ब्रह्म ही अज्ञान (अविद्या) का आश्रय लेकर जडचेतनात्मक संसार के स्वरूप में प्रतीत होता है । उस ब्रह्म की प्रतीति ऐसी है जैसे अन्धकारादि दोषवश रज्जु में सर्प की बुद्धि हो जाने पर पुनः

वक्ष्यमाणैः सप्तचत्वारिंशन्मन्त्रैर्नित्यं श्रीरामं स्तवीत इत्येव सर्वं ह्येतत् ब्रह्म इत्यारभ्य तापिनीसमाप्तिपर्यन्तेन श्रुतिसमूहेन बोध्यते ।

अत्र केचिद् वदन्ति ब्रह्मैवाज्ञानमाश्रित्य चराचराकारेण प्रतीयते इति तस्य यथा रज्जौ सर्वबुद्धौ पुनः रज्जुरियं न सर्पः इतिज्ञानवत् सर्वं ह्येतद् ब्रह्मैवास्ति न तदन्यत्किञ्चिदिति स्वात्मगताज्ञाननिवृत्तिद्वारा परमानन्दानुभूतिरिति । तत्र विषये अयं प्रश्नः सर्वं ह्येतद् ब्रह्म इत्यत्र जगतः ब्रह्मरूपत्वमुच्यते अथवा ब्रह्मणः जगद्रूपत्वम् ? यथावृक्षसमुदायोः वनमित्यत्र वृक्षातिरिक्तं किमपि न भवति तथा जगतः ब्रह्मरूपत्वे ब्रह्मणः अभावापत्तिः स्यात् । तेन उपदेशस्यैव निरर्थकत्वम् । ब्रह्मणः जगद्रूपत्वे तु आदित्यो यूपः इत्यत्र इव सर्वत्र ब्रह्मसम्पाद्यते चेत् फलविशेषप्राप्तयेऽब्रह्मस्वरूपत्वे ब्रह्मत्वसम्पादनेनाद्वैतभङ्गः ।

प्रकाश होने पर यह रज्जु है सर्प नहीं है यह ज्ञान जैसे होता है उसी तरह संसार की बुद्धि होती है किन्तु भ्रम दूर होने पर ब्रह्म बुद्धि हो जाती है । यह सवकुछ ब्रह्म ही है ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं है, इस ज्ञान का उदय होने पर अपनी आत्मा में होने वाला अज्ञान बाधित हो जाता है । और आत्मगत अज्ञान निवृत्ति के द्वारा परमानन्द की उपलब्धि होती है । उस अद्वैत ब्रह्म विषय में यह जिज्ञासा होती है कि यह दृश्य चराचर जगत् यदि ब्रह्म ही है तो इस सिद्धान्त में संसार को ब्रह्मस्वरूप कहा जाता है । अथवा ब्रह्म का संसार स्वरूप होना कहा जाता है । जिसप्रकार वृक्ष समुदाय वन है इस ज्ञान के विषय में वृक्ष के अतिरिक्त वन में कुछ नहीं होता है, इसीप्रकार संसार का ब्रह्म स्वरूपत्व स्वीकार करने पर ब्रह्म का अभाव होने का दोष होगा । और इससे उपदेश की ही निरर्थकता हो जायगी । यदि यह कहें कि ब्रह्म संसार के स्वरूप में परिणत हो जाता है अर्थात् ब्रह्म ही अज्ञान वश संसार रूपमें प्रतीत होता है । तो जैसे यह यूप आदित्य है इस वाक्य में जैसे यूप में आदित्य की बुद्धि होती है उसके समान सभी जगह संसार में ब्रह्म बुद्धि होती है तो फल विशेष की प्राप्ति के लिये अद्वैत सिद्धान्त का भङ्ग होने लगेगा ।

यदि यह कहें कि इस श्रुति वचन के द्वारा तथा इस तरह के अन्य श्रुतियों के द्वारा ब्रह्मत्व सम्पादन नहीं किया जाता है किन्तु अज्ञान जो निमित्त नहीं है उसे निमित्त बनाकर ब्रह्म का समस्त चराचर जगत् का जो कारणत्व प्राप्त किया हुआ है वही सर्वाकारत्व जैसा ही जन्म मरण सुख आदि का भाजन जो उसका अनुभव करता

ननु अनयाश्रुत्या ईदृशीभिः अन्याभिः श्रुतिभिश्च न ब्रह्मत्वं सम्पाद्यते किन्तु अज्ञानं निमित्तीकृत्य ब्रह्मणः सर्वकारणत्वं प्राप्तस्य सर्वाकारत्वमिव जन्ममरणसुखदुःखादिभाजनस्य तत्सेवमानस्याज्ञाननिवृत्तये ब्रह्मणः परमार्थ-स्वरूपं बोध्यते । चराचरस्वरूपेण दृश्यमानं तद्रूपमेव न न वा सुख दुःखाद्यात्मकम् । किन्तु दुःखाद्यतीतमेव ब्रह्मस्वरूपमिति चेत् तर्हि यद् ब्रह्म चराचरात्मकत्वप्राप्तं तत्प्रतीयते न वा 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्' 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते' 'प्रधान क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः' इत्यादिश्रुतिबोध्यमेवेतिचेत् तदा प्रथमं सजातीयविजातीय स्वगतभेदशून्येऽद्वैते निर्गुणे निर्विकारे स्वस्वरूपमात्रस्थे ब्रह्मणि अज्ञानागमनं
है उन जीवात्माओं के अज्ञान निवारण के लिये ब्रह्म का पारमार्थिक स्वरूप समझाया जाता है। चराचर जगत् के स्वरूप में दिखाई देता हुआ संसार ब्रह्म स्वरूप ही है, सुख दुःखात्म स्वरूप मिथ्या है। किन्तु वास्तविक स्वरूप तो दुःखातीत ही है। इस तरह का वास्तविक ब्रह्म स्वरूप ब्रह्म का स्वरूप है ऐसा यदि कहते हैं तो एक ही अद्वितीय ब्रह्म है, सत्य एवं ज्ञान स्वरूप अनन्त ब्रह्म है। अन्धकार से अत्यन्त दूर सूर्य के समान प्रभावशाली ब्रह्म है। ब्रह्म के समान अथवा ब्रह्म से बढकर कोई तत्त्व संसार में नहीं दीखता है। प्रधान क्षेत्रज्ञाधिपति गुणाधिपति ब्रह्म है। इत्यादि श्रुति वचनों के द्वारा प्रतिपादित किया जाने वाले ब्रह्म है। इस तरह का यदि समाधान करते हैं तो सवसे पहले सजातीय विजातीय एवं स्वगत भेद रहित अद्वैत निर्गुण और विकार रहित स्वरूप मात्र में स्थित ब्रह्म में अज्ञान का समागमन कैसे हुआ ? और कहां से हुआ। और उसका साक्षात्कार प्राप्त है या अप्राप्त, जिसको निमित्त न होने पर भी निमित्त बनाकर उसे अपेक्षा करके संसार का कारणत्व प्राप्त होता है। यदि यह कहे कि वह आज्ञन अनादि कालीन है ब्रह्म की लीला विलास से इस स्वरूप को प्राप्त करता है। तव तो अनादि काल से ही अद्वैत स्थापन की हानि होगी। क्योंकि अनादि काल से ही ब्रह्म से भिन्न दूसरा अज्ञान तत्त्व है इसलिये अद्वैत की हानि होगी ही। यदि यह कहें कि अपने आप स्वयं से ही स्वयं उत्पन्न किया गया है तो पहले पहल माया किससे उत्पन्न की गयी, यदि कहें अनादि है तो ब्रह्म से द्वितीय तत्त्व हो जायगा तो अद्वैत की हानि ही है। स्वयं से स्वयं ही उत्पन्न की गयी ऐसा कहें तो सगुणत्व सविकारत्व दोष होगा इससे श्रुति वचन का विरोध होता है। यदि कहें कि ब्रह्मरूप

कुतः । तद् दर्शनञ्च किम् । अप्राप्तं वा यन्निमित्तीकृत्य यदपेक्षयाजगत्कारणत्वं प्राप्तम् । अनादिभूतं तदज्ञानं ब्रह्मणः लीलया तदाकारत्वं प्राप्तमिति चेत् अनादितोऽद्वैतहानिरज्ञानस्य द्वितीयत्वात् । स्वेच्छया उत्पादितं चेत् प्रथमम् माया कस्मादुत्पादितेत्यनादित्वे द्वितीयत्वाददद्वैतहानिरेव । स्वस्मात् स्वयमेवोत्पादितश्चेत् सगुणत्वसविकारित्वदोषः । तेन श्रुतिविरोधः । ब्रह्मरूपमेवाज्ञानमिति चेत् स्वस्वरूपावरकत्वन्नसिद्ध्येत् । अज्ञानाभिधानवैयर्थ्यञ्च । ब्रह्मणोत्पादितायाः मायायाः ब्रह्मणः अपेक्षया अधिकं न्यूनं वा स्वीकर्तुं न शक्यते । अधिकत्वे सर्वसेव्यत्वन्न्यूनत्वे च ब्रह्माधिकेपदार्थे तस्यैव सेव्यत्वमिति विविधदोषप्रसङ्गः । अज्ञानस्यानिर्वचनीयं स्वरूपमिति चेत् तदपि न । 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां वह्वीम्प्रजां जनयन्तीं स्वरूपां, प्रकृतिं पुरुषञ्चैव विध्यनादि उभावपि, विद्याविद्ये मम तनू विध्युद्धवशरीरिणाम् ।' इत्यादिश्रुतिस्मृतिभिरनादित्वनिर्वचनेन ज्ञान मूलत्वेनाप्रामाण्यात् । अनादित्वस्वीकारे तु अद्वैत भङ्गः । ब्रह्माज्ञानयोश्च चित् जडस्वरूपत्वेन तमः प्रकाशवत् विरुद्धस्वभावतया न ज्ञानकृद् ब्रह्मसंस्पर्शोः घटते।

ही अज्ञान है तो स्वयं से स्वयं का आवृत करने वाला को बनाये यह सिद्ध नहीं होगा और अज्ञान नामकरण की निष्फलता होगी । ब्रह्म के द्वारा उत्पन्न की गयी माया का ब्रह्म की अपेक्षा अधिक अथवा न्यून स्वीकार नहीं किया जा सकता है । अधिकत्व मानने पर सेव्यत्व होने लगेगा । और न्यूनत्व मानने पर ब्रह्म के अधिक पदार्थ होने पर उसी का सेव्यत्व होगा इसतरह विविध दोषों का प्रसङ्ग होता है । यदि यह कहते हैं कि अज्ञान का स्वरूप अनिर्वचनीय है तो यह भी नहीं कह सकते हैं । जो अनादि है लाल (रजस्) शुक्ल (सत्व) कृष्ण (तमस्) स्वरूपा है । और जो अपने जैसे त्रिगुणात्मक अनन्त प्राणियों की सृष्टि करती है । प्रकृति और पुरुष इन दोनों को ही अनादि समझो । विद्या और अविद्या ये दोनों ही मेरे शरीर हैं । हे उद्धव शरीर धारियों के वास्ते ऐसा समझो, इत्यादि श्रुति स्मृति वचनों से अनादित्व निरूपण किये जाने के कारण और ज्ञान मूलक होने से अप्रामाणिकता होने पर और अनादित्व मानने पर तो अद्वैत भङ्ग होता है ब्रह्म और अज्ञान का चित् और जड स्वरूप होने से और अन्धकार प्रकाश जैसे परस्पर विरुद्ध होने से ज्ञान जनित ब्रह्म का संस्पर्श नहीं होता है ।

यदि ऐसा कहें कि ईश्वर कोई कार्य करने में या नहीं करने में एवं अन्य प्रकार

ननु ईश्वरः कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुञ्च समर्थः तेन स्वसामर्थ्येनाघटितमपि घटयितुं शक्नोतीतिचेत् तत्र किम्प्रयोजनम् ? किं स्वयमेव ब्रह्म अविद्यया-स्वस्वरूपं तिरोधाय संसारित्वं भूत्वा नानादुःखानि चानुभूय स्वस्मिनज्ञत्वं जनयति पुनश्च मुक्तये वेदशास्त्रादिविहितैरुपायैः विविधक्लेशानुष्ठानैरभिमतं भोगं मोक्षं वा प्राप्य अनभिमतं संसारं वा प्राप्नोति इतिविचारस्तु न मनसस्तोषकरः। लूतातन्तुन्यायेन पुनर्ब्रह्मरूपेणावतिष्ठते इतिचेत् नहि कश्चिदनुन्मत्तः स्वेन सह स्वयमेकाकीविहरति । ब्रह्मणः अनेकाकारत्वे तु 'एकोऽहं बहुस्याम' इतिस्थितौ एकत्वज्ञानमव्याहतमेव । 'एकोऽहं बहुस्याम' इतिश्रुत्या ब्रह्मणः इच्छया प्राणिनामुत्पत्तिश्चेत् जीवानां प्राक्तनकर्माभावात् भोगमोक्षाभावः। लीलार्थत्वे तु
से ही करने में समर्थ है। इसलिये वह अपने सामर्थ्य से अघटित कार्य कलाप को भी सम्भव बना सकता है। ऐसा कहने पर प्रश्न उठता है कि ऐसी घटना में प्रयोजन क्या है ? क्या स्वयं ही ब्रह्म अविद्या से स्वरूप को छिपाकर संसारी जीव बनकर नाना प्रकार के दुःखों को अनुभव करके स्वयं में ही स्वयं अज्ञानता को उत्पन्न करता है। और पुनः उस अज्ञानता से मुक्ति पाने के लिये वेद शास्त्र आदि के द्वारा बताये गये अनेक प्रकार के उपायों से और अनेक प्रकार के कष्ट पूर्ण अनुष्ठानों से अपने अभीष्ट भोग अथवा मोक्ष को प्राप्त करके और अनभिमत संसार (जन्म मरण) को प्राप्त करता है ? इसप्रकार का विचार तो मानसिक संतोष प्रदान करने वाला नहीं है।

यदि कहें कि जिसप्रकार मकड़ी स्वयं ही उपादान कारण बनकर जाल बनाकर स्वयं फँस जाती है, या मक्षि का आदि को फँसा कर निकल जाती है, इस न्याय से पुनः वह जीव ब्रह्म स्वरूप में अवस्थित हो जाता है ऐसा कहें तो यह उचित नहीं है। क्योंकि जो पागल नहीं है ऐसा कोई भी व्यक्ति स्वयं के साथ स्वयं ही अकेला भ्रमण नहीं करता है। यदि कहें कि ब्रह्म अनेक स्वरूपों वाला है। वह अपनी इच्छा से एक हूँ बहुत होजाऊँ। इस स्थिति में एकत्व ज्ञान तो अव्याहत ही है, इसमें कोई दोष नहीं है 'एकोऽहं बहुस्याम' इस श्रुति के द्वारा ब्रह्म के इच्छा से प्राणियों की उत्पत्ति होती है ऐसा मानें तो जीवात्माओं के पूर्व कालीन कर्म कलाप के अभाव होने से उनका भोग अथवा मोक्ष होना सम्भव नहीं होगा। यदि कहें कि लीला के लिये वह ऐसा करता है तो वही उन्मत्तत्व दोष होगा। यदि कहें कि अनादि कालीन अविद्या के कारण करता है तो अद्वैत सिद्धान्त भङ्ग होता है। यदि ब्रह्म की जीव रूपत्व की

उन्मत्तत्वदोषः । अविद्यायाः अनादित्वे अद्वैतभङ्गः । ब्रह्मणः जीवरूपत्वप्राप्तौ विकारित्वापत्तिः । सुखित्वदुःखित्वभेदैः वैषम्यनैर्घृण्यादिदोषाः इत्येवमादयः अद्वैतपक्षे बहवो दोषाः दृश्यन्ते । लक्षणया अभेद बोधघटनयाऽपि गौरवं मुख्यार्थबाधश्चेति तन्मतमसमीचीनमेव प्रतिभाति ।

श्रुतिसिद्धे विशिष्टाद्वैतसिद्धान्ते पृथिव्यां तिष्ठन् यस्य पृथिवी शरीरम्... योऽक्षरे सञ्चरन् यस्याक्षरस्य शरीरमित्यन्तमन्तर्यामिपरश्रुतयः सर्वावस्थावस्थितयोः चिदचितोः सर्वेश्वरश्रीरामशरीरत्वं तस्य च शरीरित्वं गमयन्ति । आकाशवत् सर्वगतश्चनित्यः...अजामेकाम्' इत्यादयश्चश्रुतयः चिदचिदीश्वराणांनित्यत्वं तन्निष्ठव्याप्यव्यापकत्वयोश्च नित्यत्वमुपपादयन्ति । ब्रह्मव्याप्यत्वेन चिदचितोरविनाभावत्वात् ।

प्राप्ति होती है तो विकारित्व दोष होने लगेगा । और सुखित्व दुःखित्व आदि भेद होने पर वैषभ्य और निर्दयता रूप दोष होगा । इत्यादि अद्वैतवाद पक्ष में बहुत से दोष देखे जाते हैं । यदि लक्षणावृत्ति के द्वारा अभेदत्व की योजना करते हैं तो गौरव होता है एवं मुख्यार्थ बोध की हानि होती है । इसलिये उनका सिद्धान्त समीचीन नहीं है यह प्रतीत होता है । इस विषय में विशेष चर्चा चिदात्ममीमांसा तत्त्वत्रयसिद्धि तत्त्वदीप वेदार्थचन्द्रिका प्रकाश-किरण प्रभृति अनेक ग्रन्थों में कर चुका हूँ अतः विशेषार्थी वहीं देखें ।

वेद सिद्धान्त सिद्ध विशिष्टाद्वैत मत तो पृथिवी पर रहता हुआ जिसका पृथिवी शरीर है...जो अक्षर में संचरण करता हुआ जिसका अक्षर शरीर है, यहां तक की अन्तर्यामी प्रतिपादक श्रुतियां सभी परिस्थितियों में विद्यमान रहने वाले चित् एवं अचित् पदार्थों का सर्वेश्वर श्रीराम शरीरत्व है और उनका परेश श्रीरामजी शरीरी हैं इस अभिप्राय को बोध कराता है । आकाश के समान सभी में विद्यमान है एवं नित्य है 'अनादि एक' इत्यादि श्रुतियां चित् अचित् एवं ईश्वर का नित्यत्व प्रतिपादन करते हैं । और इनमें होने वाला व्याप्यत्व एवं व्यापकत्व का तथा नित्यत्व का साधन करती है । चित् और अचित् का ब्रह्म से व्याप्यत्व होने के कारण अविनाभाव सम्बन्ध होने से नित्य सम्बन्ध है ।

जैसे गोत्व से अभिन्न गो पदार्थ होता है उसी तरह चित् अचित् स्वरूप श्रीरामजी का विशेषण है इसलिये उससे अभिन्न श्रीरामजी के होने से श्रीरामजी का

यथा गोत्वाभिन्नं गौर्भवति, तथैव सर्वस्य चिदचिदात्मकस्य वस्तुनः श्रीरामाभिन्नत्वात् श्रीरामस्य नित्यत्वं सर्वकारित्वं सर्वरूपित्वञ्च सिद्ध्यति। तदाहुः-सर्वं ह्येतद् ब्रह्मेति सदा रामोऽहमिति, प्रभृतिश्रुतयः। उक्तरीत्या सर्वपदप्रतिपादितस्य श्रीरामधर्मत्वेन श्रीरामविशेषणत्वादभेदः। ननु जीवगत गुणदोषाणां श्रीरामे ब्रह्मणि प्रसक्तिरिति तन्न, अत्रोच्यन्ते-

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मानोपलिप्यते ॥१॥

'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः' इतिश्रुतिस्मृतिभिः तद्गुणदोषासंस्पर्शात्। इत्थं श्रीरामस्य सर्वव्यापित्वेन सर्वरूपित्वम्। एवं चिदचितोः श्रीरामा विनाभावात् परमार्थतः श्रीरामप्रकारत्वात् कार्यकारणयोरभेदाच्च श्रीराम एव कारणं कार्यञ्च। अत उक्तम् 'सर्ववाच्यस्य वाचकः' इति 'विश्वरूपस्य ते राम...' इत्थं चिदचिद्विशिष्टानां सर्वेषां शब्दानां सामानाधिकरण्यं सर्वशब्दब्रह्मशब्दयोः

नित्यत्व सर्वकारित्व और सर्वरूपित्व सिद्ध होता है। यही कहते हैं-क्योंकि यह सवकुछ ब्रह्ममय है' मैं श्रीरामात्मक हूँ' इत्यादि श्रुतियां। उक्त प्रकार से सर्वपद के द्वारा निरूपित किया गया विषय का श्रीरामजी का धर्म होने से एवं श्रीरामजी का विशेषण होने से अभेद है। अब प्रश्न उठता है कि जीव और ब्रह्म में यदि भेद नहीं है तो जीव में होने वाले गुण दोषों का श्रीराम ब्रह्म में भी प्रसक्ति होगी ? तो यह नहीं कह सकते क्योंकि इस विषय में कहा जाता है-

जिस तरह समस्त पदार्थों में व्याप्त सूक्ष्म होने के कारण आकाश वस्तुओं के गुण दोषों से उपलिप्त नहीं होता है उसीप्रकार सभी शरीरों में व्याप्त परमात्मा जीवों के गुण दोषों से उपलिप्त नहीं होता है। श्रुति भी कहती है-परमात्मा सर्वगत है और नित्य है। इसतरह के श्रुति स्मृति वचनों से जीवगत गुण दोषों का परमात्मा से स्पर्श नहीं होता है यह सिद्ध होता है। इसतरह श्रीरामजी का सर्वव्यापी होने से सर्वरूपित्व भी नियत है। इसप्रकार चित् एवं अचित् पदार्थ का श्रीरामजी के साथ अविनाभाव सम्बन्ध होने के कारण वास्तविक रूपमें श्रीरामजी का विशेषण होने से और कार्य कारण का अभेद सम्बन्ध होने से श्रीरामजी ही कार्य और कारण हैं। इसलिये कहा गया है समस्त वाच्य पदार्थ का श्रीराम वाचक हैं। हे राम आप सर्वरूप का सभी शब्द वाचक हैं। इसप्रकार चित् तथा अचित् विशिष्ट श्रीरामजी में सभी शब्दों का

अहं शब्दश्रीरामशब्दयोश्च एकार्थनिष्ठत्वं प्रदर्श्यते । 'ब्रह्मोपादानं जगत्' इतिवादे विशिष्टस्य उपादानत्वम् जगदुपादानत्वेऽपि च चिदचितोः ब्रह्मणश्च भोक्तृत्व भोग्यत्वनियन्तृत्वादिभेदेन चित्रपटे तन्तुस्वभावसंकरत्वमिव स्वस्वरूपस्वभावा शङ्करत्वम् । तदुक्तम्-भोक्ताभोग्यं प्रेरितारं च मत्वा, पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा, जुष्टस्तेनामृतत्वमेति, अत्रात्मपरमात्मपृथग् भावेनामृतत्वश्रवणात् भेदस्य पारमार्थिकत्वम् ।

द्वासुपर्णा सयुजा सखायौ समाने वृक्षे परिषस्वजाते ।
तेयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥

अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः । मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरमिति । सकारणं करणाधिपाधिपो, न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः । प्रधानक्षेत्रज्ञपतिगुणेशः । ज्ञाज्ञौद्वावजावीशानीशौ । नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां एको बहुनां यो विदधाति कामान् अजामेकां

समान विभक्तिकत्व सर्वशब्द और ब्रह्म शब्द का अहं शब्द और श्रीराम शब्द का एकार्थ निष्ठ होना प्रदर्शित किया जाता है ।

ब्रह्म है उपादान कारण जिसका ऐसा संसार इस पक्षमें विशिष्ट का उपादानत्व है। और जगत् है उपादान जिसका इस पक्ष में भी चित् अचित् और ब्रह्म का भोक्तृत्व भोग्यत्व नियामकत्व आदि भेद से उपादानत्व है जिसप्रकार चितकवरा वस्त्र में सूतों का अनेक रंग होने पर भी तन्तुओं का आपस में स्वभाव संकरत्व नहीं होता है । स्व स्वरूप एवं स्व स्वभाव का असांकर्य ही रहता है। ऐसा ही कहा गया है-भोक्ता भोग्य एवं प्रेरक को मानकर उनसे सेवित होकर अमृतत्व को प्राप्त करता है । जीव का अलग से अमृतत्व कहे जाने से जीवात्मा एवं परमात्मा में पारमार्थिक भेद ही है। दो सुन्दर पक्ष वाले पक्षी एक दूसरे के सहयोगी जीवात्मा और परमात्मा एक ही संसार रूपी वृक्ष पर आसक्त हैं। उन दोनों में से एक जीवात्मा आपात मधुर संसाररूपी पिप्पल का स्वादिष्ट फल भोगता है और परमात्मा नहीं भोग करता हुआ सर्वतोभावेन परमानन्द विनिर्मग्न रहता है। इससे 'मायाधीश' इस संसार की रचना करता है। और इसमें जीवात्मा भगवान् की माया के द्वारा सम्यक् प्रकार से निरुद्ध होता है। प्रकृति को माया समझो और परमात्मा सर्वेश्वर श्रीरामजी को मायी समझो। जो कारण सहित समस्त अन्तरिन्द्रिय एवं बहिरिन्द्रिय का स्वामी है, और इस ब्रह्म

लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजां जनयन्तीं स्वरूपाम् । अजोह्येकोजुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां मुक्तभोगामजोन्यः । गौरनाद्यन्तवती सा जनयित्रीभूतभावनी समानेवृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशयाशोचतिमुह्यमानोजुष्टं यदापश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमेति वीतशोकः' एवमाध्याः श्रुतयः

भूमिरापोऽनलं वायुः खं मनोबुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥
ममयोनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥
तासां ब्रह्म महद् योनिरहं बीजप्रदः पिता ।
क्षरसर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।

एवमादिश्रुतिस्मृतिभिः चिदचिद्विशिष्टत्वम् । अचिद् जीवगुणदोषाश्च परमात्मानं न स्पृशन्तीति प्रमाणयन्ति । निर्गुणत्वेन तु परमात्मनि हेयगुणानाम भावः । तदाहुः श्रीआनन्दभाष्यकाराः ''नच वाव्यं 'निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्'' (श्वे. ६।१९) इत्यादिभिर्वेदवचनैर्ब्रह्मणो निर्गुणत्वे तस्य मानसव्यापाररूपज्ञानसाध्यत्वादन्यविधया भक्तेरुपायत्वासम्भवादिति । निर्गता का कोई उत्पन्न करनेवाला नहीं है । और नहीं उसका कोई अधिपति है । प्रधान क्षेत्रज्ञाधिपति एवं गुणों का स्वामी । जडचेतन दो अनादि हैं जो समर्थ असमर्थ हैं। जो नित्यों में नित्य एवं चेतनता में एक होते हुए भी अनन्त की इच्छाओं को पूर्ण करता है ।

सत्व रजस् एवं तमो गुणात्मिका अनादि माया एक है । जो समान रूपवाली अनन्त प्रजा की सृष्टि करती है । एक अनादि जीव है जो सांसारिक भोग करता हुआ संसार में आसक्त रहकर सुखदुःख भोग करता है । अन्य मुक्त भोग इस माया का परित्याग करता है । अनादित्व अनन्तत्व गुणवती वाणीभूत मानवी है और सृष्टिकारिणी है । एक ही आश्रय में पुरुष लीन है असामर्थ्य के कारण मोहित होकर शोक का अनुभव करता है । जब अनुराग पूर्वक सेवित इस संसार के नियन्ता परमात्मा को देखता है तो उनकी महिमा को प्राप्त कर शोक मुक्त हो जाता है । इत्यादि श्रुतियां एवं-

भूमि जल अग्नि वायु आकाश मन और बुद्धि तथा अहंकार ये मेरी आठ

निकृष्टाः सत्वादयः प्राकृता गुणा यस्मात्तन्निर्गुणमिति व्युत्पत्तेर्निकृष्टगुणराहित्यमेव निर्गुणत्वम् । तथैव च ''सत्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः । स शुद्धः सर्वशुद्धेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु ॥ यो सौ निर्गुणः प्रोक्तः शास्त्रेषु जगदीश्वरः । प्राकृतैर्हेयसत्वाद्यैर्गुणैर्हीनत्वमुच्यते ॥ (वि. पु.) इत्यादौ प्रतिपादितत्वात् प्राकृतसत्वादिगुणनिषिद्धे सति ब्रह्मणो दिव्यगुणाश्रयत्वसिद्धेः । तादृशदिव्य गुणानाञ्च 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकीज्ञानबलक्रिया च' (श्वे. ६।८) इत्यादौ स्वाभाविकत्वाभिधानात्प्राकृतहेयगुणरहितत्वेन निर्गुणत्वं दिव्यगुणवत्वेन च सगुणत्वमित्युभयथैकस्यैव ब्रह्मणोनिर्देश इति न किञ्चिदनुपपन्नम् । किञ्च श्रीरामस्य जगत्कारणत्ववादिन्यः काश्चनश्रुतयः स्फुटं कारणरूपस्य तस्य साकारत्वं सगुणत्वमक्षरब्रह्मणो जगत्कारणत्ववादिन्यश्च

प्रकारों से विभाजित प्रकृति है। मेरी विशाल ब्रह्म स्वरूप योनि है उसमें मैं गर्भधारण कराता हूँ। हे अर्जुन तत्पश्चात् सभी प्राणियों की उत्पत्ति होती है। उन सभी की महान् योनि ब्रह्म है। और उसमें बीज प्रदान करने वाला पिता मैं हूँ। संसार के सभी प्राणी विनाश स्वभाव वाले हैं, निहार के समान अविचल रहने वाला अक्षर है। जिसे संसार में परमात्मा शब्द से कहा जाता है' इत्यादि श्रुति स्मृति वचनों से परब्रह्म श्रीरामजी का चित् अचित् विशिष्टत्व प्रमाणित है। तथा अचित् एवं जीवात्मा में होने वाले गुण दोष परमात्मा को स्पर्श नहीं करते हैं इस विषय को प्रमाणित करते हैं। निर्गुण होने का तात्पर्य यह है कि परमात्मा में वर्जनीय गुणों का अभाव है। प्रकृत विषय में आनन्दभाष्यकारजी निम्नप्रकार से निरूपण करते हैं-

'नहीं कहो कि 'निर्गुणं निष्क्रियम्' इत्यादिक वेद वचन से तो ब्रह्म में निर्गुणत्व का प्रतिपादन किया गया है। वह तो मानस व्यापाररूप ज्ञान साध्य है। तब अव्यभिचरित रूपसे भक्ति में मोक्ष कारणता की सिद्धि तो नहीं होती है यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि निर्गुण शब्द का गुणात्यन्ताभाव रूप गुण का सामान्याभाव रूप अर्थ नहीं है। किन्तु प्राकृतिक जो सत्त्वादिक गुण हैं तादृश गुण का निराकरण निर्गुण पद करता है। यहां भाष्यकार कहते हैं निर्गत है निकृष्ट प्राकृतिक गुण जिसमें उसको निर्गुण कहते हैं न तु गुणात्यन्ताभाववान् को निर्गुण कहते हैं। इसीप्रकार से सत्त्वादयोनसन्तीत्यादि। जिस परमेश्वर में प्राकृतिक सत्त्वादिक गुण ज्ञात नहीं हैं एतादृश सर्व शुद्धों में भी शुद्ध आदि पुरुष हैं वे प्रसन्न हों तथा शास्त्र में जो निर्गुण

काश्चनश्रुतयस्तस्य निराकारत्वं निर्गुणत्वञ्चाहुरित्युभयत्राविरोधार्थं स एवार्थ स्तान्त्रिकैरङ्गीकर्त्तव्यः। अन्यथा परस्परविरोधे व्याहतत्वादप्रामाण्यमेव निष्पद्येत। अतएव भगवता वृत्तिकारेण 'युक्तं तद् गुणकोपासनादिति (बो.वृ.) कथयता सगुणस्यैवोपास्यत्वं स्थिरीकृतम्। न च विनिगमनाविरहान्निराकारनिर्गुणवादिन्य एव श्रुतयः सगुणब्रह्मरचितानिसृष्ट्यादीन्यनूद्य तेषाञ्च निर्गुणे निराकारे ब्रह्मणि रज्जौकल्पिताहिरिव कल्पितत्वेन मिथ्यात्वमवगमयन्तीति वाच्यम्। आरोपवाद स्य प्रागेवश्रुतिस्मृतियुक्त्यादिभिर्निराकृतत्वात्। पूर्वोदीरितार्थ एव सामञ्जस्यं कल्पितत्वकल्पनाया अनुपपत्तेश्च। तस्मात्प्राकृतगुणाकारयोरसत्वेन निर्गुणत्वं निकारात्वं दिव्यस्वासाधारणगुणाकारवत्त्वेन च सगुणत्वं साकारत्वं चैकस्यैव

पुरुष कहा गया है वह प्राकृतिक हेय सत्त्वादिक गुण हीन है। एतादृश हेय सत्त्वादिक गुण हीनत्व का ही नाम निर्गुण कहा जाता है। इत्यादि रूपसे प्रतिपादन किया गया है। इसप्रकार प्राकृतिक सत्त्वादि गुण का निषेध होने पर, अर्थात् श्रीरामात्मक ब्रह्म में दिव्यानेक कल्याण गुणाश्रयत्व की सिद्धि होती है।

परास्येत्यादिं इस परमेश्वर में अत्यन्त विलक्षण अनेक प्रकारक स्वाभाविक शक्ति है। तथा स्वाभाविक ज्ञान बलादिक है। इत्यादि स्थल में तादृश स्वाभाविक अनेक दिव्य गुण का कथन करने से प्राकृत गुण रहितत्व होने से निर्गुणत्व है। तथा दिव्यानेक हेय प्रत्यनीक गुणवान् होने से सगुणत्व है। अतः उभय रूपसे एक ही ब्रह्म का निर्देश होने से कोई भी अनुपपत्ति नहीं होती है। किंचेत्यादि सर्वेश्वर श्रीरामजी में जगत् कारणता प्रतिपादन करने वाली कोई श्रुति, अत्यन्त स्फुट रूपसे कारणरूप भगवान् में साकारत्व सगुणत्व का प्रतिपादन करती है। तथा अक्षर ब्रह्म में जगत् कारणता का प्रतिपादन करने वाली कोई-कोई श्रुति परमेश्वर में निराकारत्व निर्गुणत्व का प्रतिपादन करती है तो इन दोनों श्रुतियों में परस्पर कोई विरोध नहीं हो इसलिये पूर्वोक्त अर्थ को ही शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है। अन्यथा यदि इसप्रकार से समन्वय श्रुतियों का न किया जाय तब तो परस्पर इन सब श्रुतियों में विरोध होने से व्याहतार्थक होने से अप्रामाणिकत्व हो जायगा। और स्वतः प्रमाणभूत वेदों को अप्रामाणिकत्व तो किसी को भी इष्ट नहीं है तस्मात् पूर्वोक्त अर्थ ही ठीक है।

अत एव भगवान् वृत्तिकार श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन ने 'युक्तं तद्गुणकोपा सनात्' इसप्रकार से कहते हुये सगुण ब्रह्म में उपास्यत्व है ऐसा स्थिर किया हैं। नहीं

ब्रह्मण उपपन्नतरमिति न कश्चिद्विरोधः" (आनन्दभाष्यम् १।१।२) सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति ज्ञानरूपत्वं ब्रह्मणोनिरूपयन्ति। चिदचिदीश्वराणामनादित्वम्। न कर्मणामनादित्वादिति जीवकर्मणामनादित्वात् तेषां कर्मवैचित्र्यात् विचित्र सृष्ट्यादिकं करोति भोगं मोक्षं चेश्वरो ददाति। तस्मान्न वैषम्यनैर्घृण्यादिदोषावस रस्तेषां जीवकर्मसापेक्षत्वात् 'विकारं च रामोदर्याब्धिस्तथात्वे दयाशून्यतां पक्ष पातं च नैति। प्रकारेविकारस्तथा चित्रसृष्टौ च हेतुर्यतः प्राणिनां प्राच्यकर्म' इत्याचार्योक्तेः। चिदचिदीश्वराणां जीवकर्मणां चानादित्वेन सृष्ट्यादीनामप्य-

कहो कि विनिगमना विरह से निराकार निर्गुणत्व का प्रतिपादन करनेवाली श्रुति 'नेति नेति' इत्यादि सगुण ब्रह्म रचित सर्ग का अनुवाद करके उन सव पदार्थों को निर्गुण निराकार ब्रह्म में कल्पितत्व रूपसे मिथ्यात्व का प्रतिपादन करती है। शुक्तिका में रजत के समान अथवा रज्जू में सर्प के समान। अर्थात् जिस तरह भ्रम द्वारा स्थित रजत सर्प प्रतियोगी का 'नेदं रजतम्' इस बाध्य बुद्धि से निराकरण करके रजत सर्पादिक में स्वात्यन्ताभाव समानाधिकरणतया प्रतीयमानत्व रूप मिथ्यात्व को समझता है। उसी तरह सर्ग प्रतिपादक श्रुति से प्रसिद्ध जगत् रूप प्रतियोगी के अभाव का प्रतिपादन करती हुई 'नेति नेति' इत्यादि वेदान्त वाक्य ब्रह्म में सर्गाभाव का कथन करता हुआ अर्थात् आरोपित पदार्थों में मिथ्यात्व का समर्थन करती है। अतः सगुण साकारत्व प्रतिपादक वाच्य केवल निषेध प्रतियोगी का उपस्थापक है, नतु तादृश प्रतियोगी में सत्यता प्रतिपादक है, यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि इस आरोपवाद का श्रुति स्मृति और युक्तियों से पूर्व में ही निराकरण कर दिया गया है। अतः आरोपवाद मूलक प्रश्न का पुनरावर्तन ठीक नहीं है। पूर्वोक्त प्रकार से जब सबका समाधान हो सकता है तब जगत् को कल्पित है, ऐसा कहना ठीक नहीं है। तस्मात् प्राकृत गुण, तदाकारता का अभाव होने से निर्गुणत्व तथा निराकारत्व है और हेय प्रत्यनीक गुणवत्वेन सगुणत्व है तथा साकारत्व है। इसतरह एक ही ब्रह्म में उभय प्रकारत्व उपपन्न होता है इसमें कोई भी विरोध नहीं है। ज्ञान स्वरूप एवं अनन्त ब्रह्म है यह वचन ब्रह्म का ज्ञान स्वरूपत्व प्रमाणित करता है। और चित् अचित् एवं परमात्मा का अनादित्व है। न कर्मणामनादित्वात् आदि वचनों के अनुसार जीव के कर्मों का अनादित्व है। और उन जीवों के कर्मों का वैचित्र्य के कारण परमेश्वर श्रीरामजी उत्तम मध्य एवं अधम भेद भिन्न विचित्र सृष्टि को करते हैं। तथा जीवात्माओं को उनके कर्मानुसार भोग एवं

नादित्वमेव । अनाद्यज्ञानेन जीवबन्धः, भगवद् भजनजन्यज्ञानेनाज्ञाननिवृत्तिः। ततः स्वस्वरूपावाप्तिः ततश्च पराभक्तिः । तदुक्तम् गीतायाम्-

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति भारत ॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मा मुपयन्ति ते ॥

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः, स्वकर्मणा तमभ्यर्चसिद्धि विन्दति मानवः । श्रीमद्रामायणेऽपि-

वद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम् ।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परन्तप? ॥

कथञ्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति ।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥

मोक्ष को प्रदान करते हैं। जीवों को अपने कर्मानुसार फल मिलने के कारण परमात्मा में वैषम्य एवं निर्दयता आदि दोष नहीं होता है नहीं दोष का अवसर ही है। क्योंकि सुख दुःख आदि जीवों के कर्मों की अपेक्षा रखकर होते हैं अतः कर्म सापेक्षता के कारण वैषम्य और नैर्घृण्य आदि दोष नहीं होते हैं। चित् अचित् और ईश्वर का तथा जीवात्माओं के कर्म का अनादित्व होने के कारण सृष्टि आदि का भी अनादित्व तथा अनन्तत्व है। अनादि अज्ञान (अविद्या) के द्वारा जीवात्मा जन्म मरणादि परम्परा में बन्धा रहता है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के भजन आदि से उत्पन्न ज्ञान से अज्ञान का निवारण होता है । तत्पश्चात् जीवात्माओं को स्वस्वरूप की प्राप्ति होती है । स्वस्वरूपावाप्ति के पश्चात् पराभक्ति होती है। यही विषय गीता में कहा गया है-जिन प्राणियों का आत्मा में होनेवाला अज्ञान ज्ञान के द्वारा नष्ट कर दिया गया है। हे अर्जुन उन अज्ञान विहीन पुरुषों का ज्ञान आदित्य मण्डल के समान दिव्य प्रकाश को प्रदान करता है। उन सदैव योग युक्त रहनेवाले प्राणियों का जो परमानुराग पूर्वक भजन कर रहे हैं उनको बुद्धि योग मैं (परमात्मा) प्रदान करता हूँ जिससे वे मुझको प्राप्तकर लेते हैं। विना ज्ञान प्राप्ति के मुक्ति नहीं होती है। अपने शास्त्र विहित कर्मों के द्वारा उन परमात्मा की उपासना करके मानव जीवन की सफलता को प्राप्त करता है। और श्रीमद्रामायण में भी कहा है-जो अपने दोनों हाथों को जोडकर दैन्यभाव युक्त मेरी

'रामो द्विर्नाभिभाषते' इत्थं श्रुतिस्मृतिभिः सर्वस्य ब्रह्मशरीरत्वेन तद्भिन्नसत्ता कत्वाभावात् स्वशरीरयोगक्षेमकारीश्रीराम ब्रह्म एव। स अवश्यमेव मम योगक्षेमं करिष्यतीति दृढविश्वासतया निर्भयः सन् स्वात्मपरमात्मयाथातथ्यानुशी लनपुरस्सरं श्रीराममन्त्रोपासनापरायणोभवेत् ॥५॥

शरणागति की याचना करता है ऐसे व्यक्ति को अनृशंसता के लिये उसकी हत्या नहीं करनी चाहिये। जिस किसी भी प्रकार से किये गये एक भी सत्कर्म से भगवान् सन्तुष्ट होते हैं। आत्मीयता के कारण स्वयं के द्वारा किये गये सैकडों अपकारों को भी याद नहीं करते हैं। सर्वेश्वर श्रीरामजी दो वार नहीं बोलते हैं अर्थात् वे असत्य भाषण नहीं करते हैं जो बोलते हैं उसे पूर्ण करते हैं। इसप्रकार श्रुति स्मृति से सभी को ब्रह्म का शरीर होने के कारण ब्रह्म से अतिरिक्त सत्तावान् का अभाव होने के कारण अपने (हमारे) शरीर का योगक्षेम करनेवाले श्रीराम ब्रह्म ही हैं। वे अवश्य ही हमारा उद्धार करेंगे। यह दृढ विश्वास होने के कारण निर्भय होकर अपना एवं परमात्मा के स्वरूप की वास्तविकता का अनुशीलन पूर्वक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के मन्त्र की उपासना में तत्पर हो जाय ॥५॥

जागरितस्थानो बहिः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशति मुखः।
स्थूलभुग् वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥६॥

जागरितम् स्थानं यस्य स्वात्मव्यतिरिक्तविषये बहिः प्रज्ञा यस्य सः, मस्तकादीनि सप्त अंगानि यस्य, शिरः चक्षुः आदित्यः, अग्निः मुखम् प्राणोवायुः देहमध्यम् आकाशः वस्तिः समुद्रः, पृथिवीपादौ इतिसप्तसुलोकेषु अङ्गानि यस्य। अथवा चक्षुषीश्रौत्रेरसनं स्पर्शनं घ्राणमिति सप्ताङ्गम्। एकोनविंशतिमुखः पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि पञ्चप्राणः, चत्वारि अन्तःकरणानि इतिसाधिदैवतानि एकोनविंशतिः मुख्यानि यस्य सः। एभिः उपलब्धिस्थानैः स्थूलान् विषयान् स्वात्मसात् करोति विश्वेषां नराणां नेतास्थूलभुग् वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥६॥

अपनी आत्मा से भिन्न विषय में बुद्धि जिसकी है उसे बहिः प्रज्ञ कहते हैं। जागरण युक्त जिसका स्थान है। मस्तक आदि सात जिसका अङ्ग है-शिर चक्षु मुख प्राण मध्य वस्ति और उससे भिन्न भाग ये सात जिसके अङ्ग हैं। द्यौः आकाश शिर-

चक्षु आदित्य अग्नि मुख प्राण वायु देह मध्य आकाश वस्ति समुद्र और पृथिवी चरण हैं। इन सात लोकों में जिसके अंग हैं। अथवा दो आखें दो कान जिह्वा त्वचा और नाक ये सात अङ्ग जिसका है वह सप्ताङ्ग है। उन्नीस जिसके मुख हैं। पांच ज्ञानेन्द्रिय पांचकर्मेन्द्रिय पांच प्राण और चार अन्तःकरण ये उन्नीस अपने अधिदेवताओं के सहित जिसके मुख है। इन सभी के माध्यम से स्थूल भोगविषयों को वह आत्मसात् करता है। सभी मानवों को लेजाने वाला होने से उसे वैश्वानर कहते हैं यह प्रथम चरण हुआ ॥६॥

स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्गः एको न विंशति मुखः।
प्रविविक्तभुक् तैजसौ द्वितीयः पादः ॥७॥

प्रथमः जागरितस्थानः स्थूलभुग् वैश्वानरः उक्तः अथ स्वप्नस्थानः तैजसः उच्यते। अस्य तैजसस्य स्वप्नं स्थानमस्ति, अतः अन्तः प्रज्ञः अन्तः एव प्रज्ञा यस्यास्ति सः। जाग्रतः प्रज्ञा एव स्वप्नावस्थायां बाह्यविषयाः मनसि स्यन्दमानाः तथाभूतं संस्कारं मनसि धारयतीतिभावः। साधनानपेक्षयाऽपि अविद्याकर्मभ्यां प्रेरितः सन् जाग्रदवस्था इव भवति। मनसः संस्कारानुरूपामन्तर्लब्धप्रज्ञो भवति। स च सप्ताङ्गः एकोनविंशतिमुखः। वासनामनुसृत्याङ्गमुखेषु पूर्वव्याख्यातेषु प्रतीयमानत्वात्। प्रकर्षेण विविक्तान् वासनामयानेव भोगान् केवलं भुनक्ति। अतः प्रविविक्तभुगुच्यते। जाग्रतसुषुप्तीस्वतेजसा गच्छतित्यतः तैजसः। स द्वितीयः पादः ॥७॥

प्रथम पाद जागरित स्थान स्थूल पदार्थों का भोग करने वाला वैश्वानर पहले कहा गया है। इसके वाद स्वप्नावस्था तैजस कहा जाता है। इस तैजस का स्वप्न अवस्था स्थान है। अतः इसे अन्तः प्रज्ञ कहा जाता है। भीतर प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि है जिसकी वह जाग्रत अवस्था की बुद्धि ही स्वप्न अवस्था में बाह्य भोग विषय मनमें प्रवाहमान (गतिशील) रहते हैं। जाग्रत कालीन संस्कार को मनमें धारण करता है यह आशय है। साधनभूत इन्द्रिय विषय आदि साधनों की विना अपेक्षा किये ही अविद्या और कर्म से प्रेरित होकर जैसे जाग्रत अवस्था में भोग करते हैं उसी तरह स्वप्न अवस्था में भोग करते हैं। और वह पूर्ववत् सात अङ्गों वाला और उन्नीस मुखों वाला होता है। अङ्ग और मुख का भेद प्रभेद पूर्व में विवेचित हो चुका है। मनके संस्कार

के अनुरूप उसमें भीतर ही बुद्धि प्राप्त हो जाती है। पूर्वकालीन संस्कार कारण का अनुसरण करके पूर्व वर्णित उन्नीस मुखों में प्रतीत होता है। अतिशय मात्रा में पृथक् कृत संस्कारमय भोगों को ही केवल भोगता है इसलिये उसे प्रविविक्त भुक् कहा जाता है। जाग्रत और सुषुप्ति ये दोनों ही अपने प्रभाव से इन वस्तुओं को उपलब्ध कराते हैं इसलिये इसे तैजस कहते हैं, यह द्वितीय चरण हुआ ॥७॥

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते ।
न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत् सुषुप्तम् ॥
सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एव, आनन्दमयो
ह्यानन्दभुक् । चेतोमुखः प्राज्ञः तृतीयः पादः ॥८॥

यस्यामवस्थायां अतिनिद्रितः (सुषुप्तः) पुरुषः कमपि कामविषयं आसक्तबुद्ध्यानाभिलषति, नच कमपि स्वप्नं अवलोकयति वासनामयं कमपि भोगविषयं न चिन्तयति, तत् सुषुप्तस्थानमभिधीयते । अत्रावस्थायां विद्यमा नमपि सप्ताङ्गमेकोनविंशतिमुखं च पृथङ् न विभाव्यते अतः एकीभूत उच्यते । जाग्रत्स्वप्नावस्थयोः बाह्यन्तरिन्द्रियवृत्तिमाध्यमेन विषया अवभासन्ते भुज्यन्ते च सुषुप्तावस्थायां तु विषयाकारेणात्मवृत्तयः वृक्षे विहङ्गम इव लीनाः जायन्ते । केवलं प्रज्ञानघनत्वेन भासन्ते । तदानीं दुःखवीजस्य वर्तमानत्वेऽपि तदनुभवद्वार भूतानां वहिरिन्द्रियान्तरिन्द्रियाणां लयात् सुखदुःखादिप्रत्यक्षाभावादानन्दप्राय एव भवति अतः आनन्दमयः । पूर्ववद् भोगोभवति अतः आनन्दभुक् । प्रज्ञप्तिमात्रस्य चेतः प्रतिद्वारीभूतत्वात् चेतोमुखः । प्रज्ञप्तिमात्रस्यासाधारणं रूपमतः प्राज्ञः, पूर्वा वस्थयोर्विशिष्टं ज्ञानं भाति, अत्र तु नातः प्राज्ञतन्नामक तृतीयः पादः भवति ॥८॥

अत्यन्त गाढ निद्रा में लीन पुरुष सुषुप्त कहा जाता है। इस अवस्था में वर्तमान पुरुष किसी भी अभिलषित विषय को आसक्त भावना से नहीं चाहता है। नहीं किसी भी प्रकार के स्वरूप को देखता है। अर्थात् पूर्व कालीन संस्कारमय किसी भोग विषय का अनुशीलन नहीं करता है। यही अवस्था सुषुप्त अवस्था कही जाती है। इस सुषुप्त अवस्था में विद्यमान भोग विषयों को भी, सात अङ्ग एवं उन्नीस मुखों के होने पर भी अलग से अनुभूत नहीं होते हैं। इसलिये इन्हें एकीभूत कहा जाता है। जाग्रत और स्वप्न अवस्थाओं में बाह्येन्द्रिय और अन्तरिन्द्रिय के माध्यम से भोग विषय

अनुभूत किये जाते हैं और भुक्त होते हैं। लेकिन सुषुप्तावस्था में तो विषय के स्वरूप में आत्मा की वृत्तियां जिसप्रकार प्रकाशादि के रहने पर पक्षीगण दिखाई देते हैं, किन्तु अन्धकार होने पर वे उस अन्धकार में लीन हो जाते हैं उसीप्रकार ये लीन हो जाते हैं इसलिये केवल प्रज्ञानघन के ही स्वरूप में प्रतीत होते हैं। उस समय सुषुप्तावस्था में सुख दुःख आदि के वीज वर्तमान होने पर भी उन विषयों के अनुभव का द्वार बने हुए बहिरिन्द्रिय और अन्तरिन्द्रियों का लय हो जाने के कारण सुख दुःख आदि का प्रत्यक्ष नहीं होता है। केवल आनन्द बहुल रहता है, अतः आनन्दमय कहा जाता है। पूर्ववत् भोग होता है इसलिये आनन्द भुक् कहते हैं। प्रज्ञप्ति मात्र का चित्र के प्रति द्वार नहीं होते हुए भी अनुभव का माध्यम होने से इसे चेतोमुख कहा जाता है। प्रज्ञप्ति मात्र का असाधारण स्वरूप होता है इसलिये इसे प्राज्ञ कहते हैं। जाग्रत एवं स्वप्न अवस्थाओं में विशिष्ट ज्ञान होता है। सुषुप्ति अवस्था में तो नहीं होता है। अतः प्राज्ञ नामकरण करते हैं यह प्राज्ञ नामक तृतीय पाद हुआ ॥८॥

एष सर्वेश्वरः सर्वज्ञ एषोन्तर्यामी, एष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानां न बहिप्रज्ञं नान्तः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं प्रज्ञानघनमदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्य मेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते ॥९॥

सर्वेश्वरत्वेन सर्वज्ञत्वेन च हेतुना एष अन्तर्यामीति, स्वशरीरेन्द्रियाणा मन्तर्नियामकः । तस्यां स्थितौ पदार्थान्तरनियामकत्वासिद्धेः, अयं न केवलमन्तरनियामक अपि तु स्वकर्मद्वारा तेषां जनकोऽपि अत उच्यते एष योनिरिति । ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषां जीवानां स्वस्वकर्मद्वारा उत्तम मध्यमाधमरूपेण जनकः तद्भोगावसाने च संहारकोऽपि प्रभवाप्ययौ हि भूता-

सर्वेश्वर तथा सर्वज्ञ होने के कारण यह अन्तर्यामी है, अपने शरीर और इन्द्रियों का आन्तरिक नियमन कर्ता है। उस परिस्थिति में अन्य पदार्थों का नियमन कर्तृत्व सिद्ध नहीं होने के कारण, यह केवल अन्तः नियामक ही नहीं है अपितु अपने कर्मों के द्वारा उन शरीरेन्द्रिय आदि का उत्पादक भी है। ब्रह्मा से प्रारम्भ कर स्थावर पर्यन्त समस्त जीव समुदाय का अपने अपने सत् असत् कर्मों के द्वारा उत्तम मध्यम एवं अधम योनि प्राप्ति के स्वरूप में यह उन उच्च नीच एवं मध्यम योनियों के शरीरों

नामिति, प्रभवत्वेन योनिः, तेन कस्यापि जीवस्य इत्थमवस्थात्रयवन्तं प्रकृति संश्लिष्टं स्वस्वरूपं दर्शयित्वा तद्विविक्तं स्वरूपं दर्शयन्नाह नबहिप्रज्ञमिति विश्वसाक्षिणि प्रत्यगात्मविषयकबाह्यविषयव्यापाराभावात् जाग्रदवस्था निषिध्यते । तर्हि मनोव्यापारस्यावश्यकत्वात् अन्तः प्रज्ञत्वं स्यादिति तदपि निषिध्यते नान्तः प्रज्ञमिति । इत्थं तैजससाक्षिणः स्वप्नावस्था वार्यते । उभयत्र निषेधेऽन्तरालव्यापारे प्राप्तेतन्निषेधायाह नोभयतः प्रज्ञमिति । जाग्रत् स्वप्नयोरन्तराले उभयत्र युगपत् प्रज्ञानार्थं व्यापारे प्राप्ते तन्निषेधायाह न प्रज्ञमिति । सर्वतोभावेन मनोव्यापारप्रतिषेधे प्राप्ते अव्यापृतं मनः समवतिष्ठते इति तन्निषेधति ना प्रज्ञमिति । ततः अस्पृाक्षिके सुषुप्ते प्राप्ते निषेधाय कथयति न प्रज्ञानघनमिति । इत्थं षड्भिः प्रतिषेधवचोभिः आत्मनः सर्वपदार्थविलक्षणत्वेन दुश्चिन्त्यत्वमवो

का जनक भी है। और उन-उन उत्तम मध्यम और अधम देह जनित सुख दुःख मोह रूप कर्म फलोपभोग के अवसान में यही संहारक भी है। कहा भी है-प्राणियों के प्रभव अर्थात् उत्पत्ति और अप्यय विनाशकारी है। प्रभव के रूपमें योनि अर्थात् उत्पत्ति कारण इसलिये किसी भी जीवात्मा की इसप्रकार जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्थाये हुआ करती हैं। जो प्रकृति से सम्यक् प्रकार जुडी हुई अपनी आकृतियों को प्रदर्शित करके पुनः प्रकृति अत्यन्त पृथक् कृत स्वरूप को दिखाती है, इसका विवेचन करते हुए श्रुति कहती है, तुरीय अवस्था में आत्मा बहिः प्रज्ञ नहीं होती है। सर्वजगत् साक्षी चैतन्य में जीवात्म विषयक बाह्य विषय मूलक अन्तरिन्द्रिय बहिरिन्द्रिय व्यापार के अभाव होने से उसमें जाग्रत अवस्था का प्रतिषेध करते हैं। तब प्रश्न होता है कि बाह्येन्द्रियादि व्यापाराभाव से जाग्रत अवस्था का निषेध करने से उस समय मानसिक व्यापार का होना अत्यावश्यक है, इसलिये वह अन्तः प्रज्ञ होगा तो उसका भी निषेध करते हैं कि वह भी नहीं नान्तः प्रज्ञमिति अर्थात् अन्तः प्रज्ञ भी नहीं है। इसप्रकार तैजस साक्षी की स्वप्नावस्था का निवारण करते हैं। यदि जाग्रत स्वप्न दोनों ही अवस्थाओं के विषय में निषेध करे तो अन्तराल दोनों अवस्थाओं के मध्य की अवस्था प्राप्त होती है तो उसका निषेध करते हुए कहते हैं- 'न उभयतः प्रज्ञम्' जाग्रत स्वप्न के अन्तराल में दोनों में ही एक साथ प्रकृष्ट ज्ञान होगा उस प्रयत्न के प्राप्त होने पर निषेध करने के लिये कहते हैं 'न प्रज्ञम्' सभी प्रकार से मानसिक क्रिया कलाप का प्रतिषेध प्राप्त होने की परिस्थिति में यह कहें कि मन

चत् । अदृष्टं दर्शनायोग्यमित्यर्थः । यस्येन्द्रियस्य यो विषयः तेनैव स विज्ञायते इतिनियमात् । अतः अव्यवहार्यम् यः एकेन्द्रियेण ज्ञायते स नान्येन इति अग्राह्यम् ग्रहीतुमशक्यम् लक्षणं चिह्नं न विद्यते यस्य तत् अलक्षणमनुमानेन तर्केण वा चिन्तितुं न योग्यमिति अचिन्त्यम् व्यपदेशोमुख्यव्यवहारः तस्य अयोग्यम् अव्यपदेश्यम् अतः एकात्मप्रत्ययसारं एकस्मिन् सर्वेषामात्मनां प्रत्ययः बोधः, समेषामात्मनां तुल्यत्वेन एकत्र आत्मनिबोधे सति समेषामात्मनां बोधः जायते

जिसमें किसी व्यापार से जुडा हुआ नहीं है ऐसा अव्यावृत मन प्रतिष्ठित रहता है तो उसका भी प्रतिषेध करते हुए कहते हैं 'ना प्राज्ञमिति' प्रज्ञा विहीन अवस्था भी नहीं रहती है । तव जिस अवस्था में साक्षी चैतन्य कार्य नहीं करता है ऐसी सुषुप्त अवस्था होगी तो उसका भी निषेध करते हुए कहते हैं 'न प्रज्ञानघनमिति' इसप्रकार छ प्रकार के प्रतिषेध सूचक वचनों के द्वारा आत्म पदार्थ का संसार के जितने भी दृष्ट पदार्थ हैं उन सभी पदार्थों से निराला होने से सभी से विलक्षण होने के कारण यह आत्म पदार्थ दुश्चिन्त्य है, अर्थात् बहुत अधिक कठिनाई से चिन्तन करने योग्य है इसप्रकार श्रुति कहती है । तथा अदृष्ट नहीं देखा हुआ, दर्शन करने के अयोग्य, क्योंकि जिस इन्द्रिय का जो विषय होता है उस इन्द्रिय के द्वारा ही वह विषय विशेष रूपसे जाना जाता है, अन्य इन्द्रिय के द्वारा नहीं जाना जाता है यह सामान्य नियम है । किसी इन्द्रिय का विषय आत्मा के नहीं होने के कारण आत्मा को अव्यवहार्य कहा, अर्थात् व्यवहार स्वरूप में उदाहरण प्रत्युदाहरण आदि देकर आत्म स्वरूप का परिचय नहीं दिया जा सकता है जो पदार्थ एक इन्द्रिय के द्वारा जाना जाता है वह उस इन्द्रिय से भिन्न इन्द्रिय के द्वारा नहीं जाना जा सकता है । साधारणतया ज्ञान करने के योग्य नहीं होने के कारण आत्म तत्त्व को अग्राह्य कहा है । असाधारण धर्म को लक्षण कहते हैं आत्मा को अलक्षणम् कहा है अर्थात् लक्षण चिह्न जिसका कोई भी नहीं है उसको अलक्षणम् कहते हैं । आत्मा के विषय में अनुमान के द्वारा अथवा तर्क के द्वारा चिन्तन नहीं किया जा सकता है इसलिये आत्मा को अचिन्त्यम् कहा है । मुख्य व्यवहार को व्यपदेश कहते हैं, जो व्यपदेश करने योग्य होता है उसे व्यपदेश्य कहा जाता है आत्मा अव्यपदेश्य है । आत्मा के व्यपदेश्य नहीं होने के कारण इसे एकात्म प्रत्यय सारम् कहते हैं । एक में अर्थात् एक आत्मा के विषय में बोध हो जाने के पश्चात् एक ही आत्मा में सभी आत्माओं का प्रत्यय अर्थात् बोध हो जाने पर सभी आत्माओं की

इतिभावः । एवं विधः प्रत्ययः सारं यस्य सः । सर्वेषां जीवात्मनां परमात्मशरीरत्वेन परमात्मविशेषणस्वभावतया तदभिन्नसत्ताकतया विशेषण भूतानामात्मनां परमात्मनामैक्यात् परमात्मरूपेण सर्वेषां एकात्मतयाबोधः स एव सारं यस्येतिभावः ।वस्तुतः आत्मा सर्वविलक्षणः तस्य वस्त्वन्तरसादृश्या भावात् अदृष्टतयाबोधः व्यपदेशश्च कर्तुं न शक्यते, सर्वविलक्षणस्यात्मवस्तुनः केनाऽपि दृष्टान्तेन बोद्धुं व्यपदेशविधातुञ्चाशक्यम् । परन्तु केवलं विशुद्धबुद्धि बोध्यमेव । तदुक्तं श्रुत्या 'मनसा तु विशुद्धेनाभिक्लृप्तः, दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या

समानता के कारण एक में सबका बोध हो जाना ही महत्वपूर्ण जिसमें है एक आत्म विषय में ज्ञान होने पर सभी आत्माओं का बोध हो जाता है यह अभिप्राय है । इसप्रकार का अनुभव होना महत्वपूर्ण है जिसका वह आत्मा है । संसार के समस्त ब्रह्मा से आरम्भ कर स्थावर पर्यन्त सभी आत्माओं का परमात्मा का शरीर होने के कारण स्वाभाविक रूपसे परमात्मा श्रीरामजी का विशेषण होने से और श्रीरामचन्द्रजी से अभिन्नता है जिसकी ऐसा होने से परमात्मा का विशेषण बनी हुई आत्माओं का परमात्मा के साथ एक रूपता (तादात्म्य) होने से परमात्मा के स्वरूप में सभी आत्माओं का एकात्मता के कारण ज्ञान होता है । वही सार है जिसका उसे एकात्म प्रत्यय सार कहते हैं । वस्तुतः आत्म पदार्थ संसार के सभी पदार्थों से विलक्षण स्वरूप वाला है । उस आत्मा का संसार के आत्म पदार्थ भिन्न वस्तु के साथ सादृश्य का अभाव होने से, कभी भी नहीं देखा हुआ होने से आत्मा बोध अथवा मुख्य व्यवहार किया जाना सम्भव नहीं है । सभी वस्तुओं से विलक्षण आत्म वस्तु का किसी भी उदाहरण आदि के द्वारा समझाया जाना या मुख्य रूपसे व्यवहार किया जाना सामर्थ्य के अधीन नहीं होने के कारण असम्भव है । किन्तु आत्मा का अपरोक्ष दर्शन केवल अति पवित्र दोष शून्य बुद्धि के द्वारा ही आत्म पदार्थ ज्ञाने करने योग्य है ऐसा श्रुति के द्वारा कहा गया है अतः निश्चित रूपसे अत्यन्त विशुद्ध मनके द्वारा पूर्ण रूपसे आत्मा का निश्चयात्मक ज्ञान किया जा सकता है । अत्यन्त सूक्ष्म, पदार्थों को देखनेवाली परम श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा आत्मा का दर्शन किया जाता है । तत्वज्ञानी लोग सूक्ष्म दर्शी सूक्ष्म बुद्धि से आत्म साक्षात्कार करते हैं । इसीलिये आत्मा को प्रपञ्चोपशम कहा है । जिस आत्म पदार्थ के दर्शन मात्र से ही संसार समस्त प्रपञ्च (विस्तार) पूर्ण रूपसे शान्त हो जाते हैं । अपने बाह्य एवं अन्तरिन्द्रिय की क्रियाओं की शून्यता के कारण सभी

सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः' अतः उक्तम् प्रपञ्चोपशमं यस्य दर्शनमात्रेण प्रपञ्च उपशाम्यति, आत्मबाह्यान्तरेन्द्रियव्यापारशून्यत्वम् । अतः शान्तंमङ्गलस्वरूपं मङ्गलकरमात्मावच्छिन्नत्वेन ऐक्यात् प्रक्तेर्जडत्वेन तत् सादृश्याभावादुक्तमे-द्वितीयम् तदाह अद्वैतं चतुर्थं तुरीयं पादम् ॥९॥

इन्द्रिय व्यापार शान्त हो जाते हैं आत्मा को इसलिये शान्त कहते हैं । परम मङ्गल स्वरूप सर्वजगत् का मङ्गलकारी संसार के समस्त आत्म पदार्थ में एक रूपता के कारण और प्रकृति को जड स्वरूप होने से समानता का अभाव होने से आत्मा को अद्वितीय कहा गया है । इसी को कहते हैं अद्वितीय चतुर्थ चरण ॥९॥

स आत्मा विज्ञेयः सदोज्वलोऽविंद्यातत्कार्यहीनः स्वात्मबन्धहरः सर्व्वदाद्वैतरहितः । आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानसन्मात्रो निरस्ताविद्यातमो मोहोऽहमेवेति सम्भाव्यः ॥१०॥

स आत्मा यः पूर्वमन्त्रेर्वर्णितः स विशेषेण शास्त्रद्वारा ज्ञातव्यः । किमात्मकः ज्ञातव्यः इत्यत आह सदोज्ज्वलः इति । जाग्रतादि अवस्थासु विकारित्वेन ज्ञायमानोऽपि स्वभावतः निर्मल एव । यतो हि अविद्या तत्कार्यत्वाभावेन विकारित्वासम्भवात् । बन्धमोक्षयोः गुणसंकोचविकासस्व रूपत्वेन न आत्मनः बन्धः न वा मोक्षः इति निदर्शयन् श्रुतिः कथयति 'स्वात्म बन्धहरः' इति । अहं ब्राह्मणः स क्षत्रियः इत्यादिप्रतीतिसत्वेऽपि न तदाकारत्वम् । तेन स्वरूपप्रतिबन्धरहिंतः सन् सर्वस्मिन् कालेऽद्वैतशून्यः । यतो हि आनन्द रूपः । अच्युतानन्दरूपत्वेन आत्मस्वरूपत्ववर्णनात् बद्धावस्थायांञ्च ज्ञानानन्दादेः सङ्कोचः तन्निरूपणायाः सर्वाधिष्ठानसन्मात्रः इति । अधिष्ठानमाधारः । सर्वस्य अधिष्ठानम् सर्वाधिष्ठानमसौ सन्मात्रः । तदुक्तं गीतायाम्-'इन्द्रियाणि मनोबुद्धिः अस्याधिष्ठानमुच्यते' इति भगवद् वचनात् देहेन्द्रियादि आधारावस्थायामपि सन्मात्रत्वात् तद् विलक्षणः इतिभावः ।

ननु वृत्याद्याधारस्य घटादेस्तद्धर्मसंश्लेष इव सर्वाधारस्यात्मनस्तद्धर्म संस्पर्शापत्तिरितिचेत् आह-निरस्ताविद्यातमोमोहः । तदुक्तं गीतायाम्-

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथाऽऽत्मानोपलिप्यते ॥

इतिवचनेन सर्वाधिष्ठानत्वेन तद्धर्मसंस्पर्शः निषिध्यते । इत्थं सप्तविंशेषण विशिष्टमात्मानं विज्ञाय किं कर्त्तव्यम् इतिजिज्ञासायामाह-अहमेवेति संभाव्यः । सदा उज्ज्वलत्वादिगुणविशिष्टः सर्वेश आत्मा अहमेवाहमात्मकमेवेति विचार्य तमात्मानं ब्रह्मणा एकीकुर्यात् इतिवक्ष्यमाणश्रुत्या अन्वयः ॥१०॥

यह आत्म स्वरूप है इसप्रकार जो पूर्वमन्त्र में वर्णन किया गया है वह आत्मा सदा उज्ज्वल है । जाग्रत आदि अवस्थाओं में विकारित्व आदि के स्वरूप में ज्ञात होता हुआ भी आत्म स्वरूप सदैव निर्मल अर्थात् दोष विहीन है । यह क्यों दोष विहीन है ऐसा प्रश्न होने पर श्रुति कहती है कि अविद्या तथा अविद्या जनित कार्य इन दोनों से रहित आत्मा है । अविद्या एवं अविद्या का कार्य का अभाव होने से आत्मा में विकारित्व होना सम्भव नहीं है इसलिये निर्मल कहा है । बन्ध एवं मोक्ष की अवस्थाओं में गुणों का सङ्कोच विकास के स्वरूप में होने पर बन्धन तथा मोक्ष नहीं हो सकता है ऐसा कहते हुए 'आत्मबन्धहरः' कहा है । अर्थात् स्वरूप प्रतिबन्ध से शून्य है । मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ यह व्यवहार जनित बोध होने पर भी वह वास्तविक स्वरूप नहीं है इस अभिप्राय को प्रकाशित करने के लिये सर्वदा द्वैत रहितः कहा गया है । अर्थात् हर परिस्थिति में भगवान् श्रीरामजी का विशेषण होने से अभिन्नता के कारण द्वैत शून्य है । क्योंकि यह आत्मा आनन्द स्वरूप है । अच्युत आनन्द स्वरूप में आत्मा का आनन्द रूप उपनिषदों में कहा गया है । वद्धावस्था में जीवात्मा के ज्ञान एवं आनन्द का सङ्कोच होता है इस विषय को प्रतिपादित करने के लिये कहते हैं कि यह आत्मा सभी का आधार एवं सत्ता मात्र है । अधिष्ठान का अर्थ आधार है, जो सभी का अधिष्ठान आधार है-आधार है ऐसा यह सत्ता मात्र है । यही गीता में कहा है, इन्द्रियां मन और बुद्धि इनका आधार आत्मा है । सत्ता मात्र होने से इनसे आत्म पदार्थ विलक्षण है ।

प्रश्न उठता है जैसे वृत्ति का आधार घट आदि का तद्गत धर्म का सम्यक् सम्बन्ध घट आदि के साथ रहता है, उसीतरह आत्मा का जो सभी का आधार है उसमें इन्द्रियादि धर्मों का सम्यक् स्पर्श होने का दोष होने लगेगा तो इसमें कहते हैं-दूर हो चुका है अविद्या जनित अज्ञानान्धकार तथा मोह जिसका ऐसी आत्मा है इस विषय को भगवान् के द्वारा गीता में कहा गया है । सभी में होते हुए भी आकाश अपनी सूक्ष्मता के कारण उन पदार्थों में परिलक्षित नहीं होने से उन वस्तु धर्म से लिप्त नहीं होता है । उसीप्रकार सभी

देहों में विद्यमान होने पर भी सूक्ष्मता के कारण आत्मा उनके धर्म से लिप्त नहीं होती है। इस वचन के अनुसार सभी का आधार होने से उसके धर्म का स्पर्श निषेध करते हैं। इसतरह सात विशेषणों से विशिष्ट इस आत्मा को जानकर क्या करना चाहिये ऐसी जिज्ञासा होने पर श्रुति कहती है मैं श्रीरामात्मक ही हूँ यह सम्भावना करनी चाहिये। सदैव निर्मलत्वादि गुणों से विशिष्ट आत्मा स्वरूप मैं हूँ यह विचार करें क्योंकि प्रकृत प्रसङ्ग का उस आत्मा को परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी के साथ एकत्व भावना करे इससे आगे कही जाने वीली श्रुति के साथ एक वाक्यता होती है ॥१०॥

अहमों तत् सद्यत् परं ब्रह्म रामचन्द्रः चिदात्मकः ।
सोहमों तद्रामभद्रः परं ज्योतीरसोहमो
मित्यात्मानमादाय मनसा ब्रह्मणैकी कुर्यादिति ॥११॥

ॐ पदवाच्यमहं ब्रह्म सर्वं ह्येतद् ब्रह्म, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, ब्रह्मैवेदमग्र आसीत् । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, इत्यादिश्रुतिसिद्धं सर्वव्यापकं बृहद् गुणयोगितत् किमित्याह रामचन्द्रश्चिदात्मकः इति । स अहम्, तद् व्याप्यत्वेन तदात्मकत्वेन तद पृथक् सिद्धेः । तद्भिन्नसत्तावानहम् । पूर्वोक्तमेवार्थं पुनः तत् शब्देन परामृशन्नाह तद्रामभद्रपरं ज्योतिसारः अहमात्मा इतिश्रुत्या परंज्योतिः तद्भिन्नसत्ताकः इत्यर्थः । असौऽहमित्यात्मानमादाय मनसा ब्रह्मणा एकीकुर्यात् इत्युक्तमेवा परेशश्रीरामचन्द्राभिन्नसत्ताकत्वेन तदैक्यमादाय विशुद्धेन मनसा ध्यानेन परब्रह्मणा श्रीरामचन्द्रेण सह अनेकौ एकौ कुर्यादित्यर्थः । नियंतृत्वनियम्यत्वादि स्वभावेन भेदे वर्तमानेऽपि जीवात्मनः परमात्मव्याप्यत्वेन तदविनाभावात् तद्भिन्नसत्ताकत्वं भावयेत् । एवं भूतान् स्वात्मनः स्थितिं कुर्यात् यथा जलान्तर्गतस्यपदार्थस्य तूलकणादेः जलरूपेणैवबोधोभवति, तथैव सर्वेश्वर श्रीरामाख्येन परब्रह्मणाबहिरन्तरव्याप्तस्य चिद् रूपस्य जीवस्य श्रीरामब्रह्मत्वेनैव भानम् । तदुक्तम्-

'सदारामोहमित्येतत्तत्वतः प्रवदन्तिये ।
न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः ॥'

अथवा ईश्वरत्वादीनां परमात्मधर्मत्वेन जीवस्य परमात्मशरीरत्वेन विशेषणैकस्वभावस्य जीवस्य तदपृथक्सिद्धेः । अहमों तत्सत् इत्यादिना

सविग्रहस्यापि श्रीरामस्य चित् रूपत्वं गमयति । श्रीरामस्य चैतन्यप्राधान्येन विशेष्यत्वं प्रकाशयति । 'परं ज्योतीरसः' इतिकथनेन स्वतेजसा सूर्य्यादिवत् सर्वप्रकाशकतया ज्योतिसामपि प्रकाशकत्वं श्रीरामस्येत्यर्थः । 'विश्वं जातं यतोऽद्धा यदवितमखिलं लीयते यत्र चान्ते सूर्यो यत्तेजसेन्दुः सकलमविरतं भासयत्येतदेषः । यद्भीत्यावातिवातोऽवनिरपि सुतलं याति नैवेश्वरोज्ञः साक्षीकूटस्थ एकोबहुशुभगुणवानव्ययो विश्वभर्ता' इत्याचार्योक्तेः ॥११॥

ॐ पद का अर्थ ब्रह्म है, वही ब्रह्म स्वरूप मैं हूँ, यह समस्त दृश्य जगत् ब्रह्ममय ही है। सवकुछ यह ब्रह्ममय है। सवसे पहले इस सृष्टि से पूर्व काल में ब्रह्म ही था। ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था सत्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप एवं अनन्त स्वरूप ब्रह्म है। इत्यादि श्रुति वचनों से सिद्ध सर्वव्यापक अनन्त कल्याण गुण सम्पन्न वह तत्त्व क्या है इस जिज्ञासा में कहते हैं-परम चैतन्य स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी ही परं ब्रह्म हैं। तदात्मक मैं हूँ। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से व्याप्य होने के कारण स्वयं को श्रीरामचन्द्रजी के विशेषण स्वरूप में भावना करे, क्योंकि जीवात्मा की श्रीरामचन्द्रजी से अपृथक् सिद्ध विशेषण होने से अभेद है श्रीरामचन्द्रजी से अभिन्न सत्ता सम्पन्न मैं हूँ यह चिन्तन करे। पूर्व निरूपित अर्थ को ही पुनः तत् शब्द से परामर्श करते हैं। वे श्रीरामभद्र परम ज्योति ही सारभूत तत्त्व हैं जिसमें ऐसा आत्म स्वरूप मैं हूँ, इस श्रुति के अनुसार परं ज्योति से अभिन्न सत्तावान् वे श्रीरामजी हैं। 'असौहं' यह कहकर आत्मा को अवलम्बन करके मनके द्वारा ब्रह्म के साथ एकीकरण करे। इसप्रकार से श्रीरामचन्द्रजी से भिन्न सत्ता है जिसकी ऐसा होने से जीवात्मा एवं परमात्मा की एकता को ग्रहण करके विशुद्ध मन से ध्यान के द्वारा परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी के साथ जीवात्मा एवं परमात्मा इन अनेक को एक की भावना करे। नियामकत्व और नियम्यत्व आदि स्वभाव से भेद विद्यमान रहने पर जीवात्मा का परमात्मा से व्याप्य होने के कारण परमात्मा के विना जीवात्मा की सत्ता नहीं होने से, परमात्मा से अभिन्न सत्तावान् होने की भावना करे। इसप्रकार की अपनी स्थिति का अनुभव करे जैसे जलके अन्तर्गत पदार्थ का तूलकण आदि का जल के स्वरूप में ही बोध होता है उसीप्रकार श्रीरामचन्द्रजी नामक परब्रह्म के बाहर अन्दर सर्वत्र व्याप्त होने के कारण चित् एवं अणु स्वरूप जीव का श्रीराम ब्रह्म स्वरूप में ही बोध होता है। यही श्रुति में कहा है→सदैव मैं श्रीराम स्वरूप हूँ, इसप्रकार जो तात्विक

रूपसे कहते हैं वस्तुतः वे संसारी जीव नहीं हैं श्रीराम रूप ही हैं, अतः किसी प्रकार किसी तरह का संदेह नहीं है। अथवा ईश्वरत्व आदि का परमात्म धर्म होने से और जीव का परमात्मा का शरीर होने से एक मात्र विशेषण स्वभाव वाला जीव का श्रीरामचन्द्रजी से भिन्न नहीं है यह सिद्ध होता है 'मैं ॐकार ब्रह्म स्वरूप सत् पदार्थ हूँ' इत्यादि वचन के द्वारा साकार स्वरूप वाले श्रीरामचन्द्रजी को चिद् रूपत्व प्रकाशित करता है। श्रीरामचन्द्रजी के चैतन्य प्रधान होने से विशेष्यत्व को प्रकाशित करता है 'परं ज्योतीरसः' इस कथन से अपने प्रभात से सूर्य आदि के समान समस्त जडचेतन का प्रकाशक होने से सभी प्रकार के प्रकाशों का भी प्रकाशकत्व श्रीरामचन्द्रजी में ही है यह तात्पर्य है। इस विषय को श्रीआनन्दभाष्यकारजी ने श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर में विस्तृत निरूपित किया है उसे मेरी टीकाओं में वहीं देखें ॥११॥

सदा रामोऽहमित्येव तत्त्वतः प्रवदन्ति ये।
न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः ॥१२॥

सर्वेश्वरश्रीरामापृथक् सिद्धेः श्रीरामाधीनस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिकत्वात् सर्वतोभावेनमच्छेषीश्रीरामः सर्वथा मम योगक्षेमं विधास्यतीति निर्भरत्वेन निर्भयोऽहमिति बुद्ध्या ये सदैव अहं 'रामः' इति तत्वतः प्रवदन्ति, चिदचितोरीश्वरस्य च नित्यत्वेन तद् व्याप्यव्यापकत्वयोरपि नित्यत्वसिद्धेः, जीवः तस्य

जीवात्मा का श्रीरामजी से अपृथक् सिद्ध सम्बन्ध होने से भगवान् श्रीरामजी के अधीन जीवात्मा का स्वरूप स्थिति और प्रवृत्ति आदि होने के कारण सभी तरह से मेरा शेषी श्रीरामजी हैं, सभी प्रकार से मेरा योगक्षेम करेंगे ऐसी भावना से परिपूर्ण होने से मैं भय मुक्त हूँ इस भावना के साथ जो भक्त सदैव 'मैं राम स्वरूप हूँ' इस तरह तात्विक रूपसे कहते हैं। चित् अचित् और ईश्वर के नित्य होने से श्रीरामचन्द्रजी के साथ व्याप्य व्यापकत्व की भी नित्यता सिद्ध होती है। जीवात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का शेष है और भगवान् श्रीरामचन्द्रजी शेषी हैं। जैसे गोत्व विशिष्ट गो में अभेद है, उसी प्रकार जीवात्मा और श्रीरामजी में अभेद है। इसलिये मैं राम स्वरूप हूँ, राम स्वरूप हूँ मैं, इसप्रकार जो तात्विक रूपसे बोलते हैं विभिन्न प्रकार के शास्त्रार्थ को देखने से भी जो अपने सिद्धान्त से विचलित नहीं होते हैं अपनी आत्मा में ही परमात्मा का विशेषण रूप में निश्चय होने पर अच्छी तरह से देह एवं सांसारिक

शेषः श्रीरामश्च शेषीगोत्वविशिष्टगोशब्दवद् द्वयोरभेदः । तस्मात् अहं 'रामः' 'रामोऽहम्' इति ये तत्वतः प्रवदन्ति, विभिन्नप्रकारकशास्त्रार्थावलोकनेनापि ये स्वसिद्धान्तान्न प्रच्यवन्ते, स्वात्मनिष्ठपरमात्मप्रकारत्वनिश्चये सति सुतरां देहादावहन्ताममताद्यभावात् जीवन्तोऽपि ते मुक्तसमाना एव, देहान्तेऽपि श्रीराम सदृशा एव । 'अशनापिपासेशोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति' इतिश्रुतेः । अशनापिपासाद्यतिक्रम्य श्रीरामसाधर्म्यं साक्षात्तदैक्यासिद्धेः, तत् सायुज्यमुक्तिम्ववाप्यैव सादृश्यमनुभवन्ति । सायुज्यं नाम सर्वदा तदविनाभूतत्वेनानुसन्धानम् । आत्मनः देहान्ते साधर्म्यप्राप्तिपूर्वकं तत्समानभोगवत्त्वम् । सहयुनक्तीति सयुक् सयुजः भावः सायुज्यम् ।

'यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः'

इतिगीतोक्तेः । 'तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैतीति, सोऽश्नुतेसर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता' इत्यादिसायुज्यमुक्तिदशायामिव परेशश्रीरामाभिन्नात्मभावनावान् भवेत् । न ते संसारिणः 'रामः' एवेति पदद्वयोपादानेन, एवेत्यनयोरवधारणद्वयोक्तेश्चमुक्ताभिप्रायेणैषवचनमिति निश्री

अन्य पदार्थों में अहन्ता एवं ममंता आदि का अभाव होने से जीवन दशा में भी वे मुक्त के समान ही हैं । और इस शरीर का अन्त हो जाने पर वह श्रीरामजी जैसा ही हो जाता है । भुख प्यास शोक मोह बढापा और मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है । इस श्रुति प्रमाण से भूख प्यास आदि का अतिक्रमण करके श्रीरामजी साधर्म्य को प्राप्त करके अर्थात् सायुज्य मुक्ति दशा में श्रीरामजी जैसे स्वरूप वेष भूषा आदि से सम्पन्न होने पर ही सायुज्यत्व होता है । अन्यथा जीव और श्रीरामजी का ऐक्य सा सिद्ध नहीं होगा । इसलिये श्रीरामजी के सायुज्य मुक्ति को पाकर ही सादृश्य का अनुभव करता है । सायुज्य वह वस्तु है, सदैव श्रीरामजी के साथ अविनाभाव होने से श्रीराम रूपता का अनुशीलन होता हैं । अपने इस शरीर के अन्त में साधर्म्य प्राप्ति पूर्वक भगवान् श्रीरामजी के समान भोगवत्व है । साथ साथ जो युक्त रहता है उसे सयुक् कहते हैं, और सयुक् के भाव को सायुज्य कहते हैं । गीता के कथन से भी प्रमाणित है जिस जिस भाव को अनुचिन्तन करते हुए अन्तकाल में इस शरीर का त्याग करता है, उस उस स्वरूप को ही वह प्राप्त करता है, हे अर्जुन ? उस भावना से संस्कृत होने से

यते । एतेन जीवन्मुक्तदशायां घटकलशाविवैकार्थाभिधायकत्वं भवति, श्रीराम-ब्रह्मपदयोरेकार्थबोधकत्वनिश्चयात् । तदुक्तम्-

भूमौ जले नभसि देवनरासुरेषु, भूतेषु देवि सकलेषु चराचरेषु ।
पश्यन्ति शुद्धमनसा खलु रामरूपं, रामस्य ते भुवितले समुपासकाश्च ॥१॥

'देवोभूत्वा देवं यजेत्' इतिश्रीरामोपासकानां श्रीरामसादृश्यप्राप्तये तदा-युधधारणस्यावश्यक्तोपपाद्यते ।

उसमें उन रूपों की प्राप्ति होती है। मुक्ति दशा में आत्म ज्ञानी पुण्य पापों को विशेष रूपसे नष्ट करके निष्कल्मष होकर परब्रह्म से परम साम्य को प्राप्त करता है। वह समस्त कामनाओं को भोगता है परमज्ञानमय परं ब्रह्म के साथ जिस तरह सायुज्य मुक्ति की अवस्था में उपभोग करता है। अर्थात् जीवात्मा श्रीरामजी से अभिन्न भावना से सम्पन्न सा होवे। 'वे संसारी नहीं हैं, निश्चित ही वे श्रीराम स्वरूप ही हैं इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं है' इन दोनों पदों का प्रयोग करने से सायुज्यत्व प्रकाशित होता है। 'ननु' एवं 'एव' ये दो अवधारणा अर्थ वाले दो पदों के प्रयोग से भी यह सिद्ध होता है कि मुक्त के अभिप्राय से ही यह वचन है यह निश्चय किया जाता है। इससे यह प्रमाणित है कि जीवन मुक्त अवस्था में जैसे घट और कलश नाम से भिन्न होने पर भी एकार्थ वाचक है, उसीप्रकार वह जीव और श्रीराम एक अर्थ का वाचक होगा यह निश्चय होने से, एकार्थ बोधकत्व होता है। यह कहा गया है-पृथिवी में जल में आकाश देवता मनुष्य और असुर में हे देवि सभी प्राणियों एवं समस्त जडचेतनात्मक संसार में जो भक्त अत्यन्त विशुद्ध मनसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के स्वरूप का अनुशीलन करते हैं, वे भगवान् श्रीरामजी के समुपासक भगवान् श्रीरामजी के परम धाम में निवास करते हैं। इसी को कहा है 'निज प्रभुमय देखऊँ जगत का सन करूँ विरोध' इसी अभिप्राय को 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' वाक्य से कहा गया है इसलिये श्रीवैष्णवजन श्रीराम रूपता प्राप्ति हेतु धनुष बाण से अंकित होते हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के उपासकों का श्रीरामचन्द्रजी की समानता को प्राप्त करने के लिये श्रीरामचन्द्रजी के आयुध आदि धारण करने की आवश्यकता सिद्ध की जाती है। वाम भुजा में धनुष का चिह्न करना चाहिये एवं दक्षिण भुजा में बाण का चिह्न धारण करना चाहिये। जो व्यक्ति धनुष और बाण के चिह्न से चिह्नित नहीं है, नहीं श्रीराम मन्त्र से दीक्षित हुआ है। न हीं ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम मन्त्र को धारण करता है। न

वामे करे धनुः कुर्याद्दक्षिणे बाणमेव च ।
　　　　नांकितोधनुर्बाणाभ्यां न मन्त्रो न षडक्षरः ॥
न नाम राम सम्बन्धी न रामोपासको भवेत् ॥१॥
एवमादिप्रामाणिकवचनैः 'राम एव न संशयः' इत्यस्य पुष्टिर्भवति ।

ननु 'राम' पदमत्र न सविशेषवस्तुपरं किन्तु निर्विशेषब्रह्मपरं 'चिदात्मकः' 'परंज्योतीरसः' इतिपदाभ्यां विशेषितत्वादितिचेत् तन्न । 'इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते' इत्यभिधाशक्त्या विषयत्वप्रकाशनेन लक्षत्वाभावात् । 'धृत्वा व्याख्याननिरतश्चिन्मयः परमेश्वरः' इतिव्याख्याननिरतत्वेन शरीरस्य चिन्मयत्वाभिधानेन 'ब्रह्मानन्दैकविग्रहः' इतिविग्रहस्य प्राकृत्यश्रवणाच्च श्रीरामार्थस्यैव सर्वोत्कृष्टत्वबोधात् । इत्थमुक्तप्रकारप्रकारिणोरेकशब्दज्ञेयत्वेन 'अहं रामः' 'रामोऽहमिति' सामानाधिकरण्यव्यपदेशः । श्रीरामशरीरत्वेनाविनाभावात् तद

हीं भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का सम्बन्धी है वह व्यक्ति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का उपासक नहीं होगा । अर्थात् जो व्यक्ति धनुष बाण से चिह्नित है, तथा षडक्षर श्रीराम मन्त्र से दीक्षित होकर श्रीवैष्णवीय सभी चिह्नों को धारण करता है, भगवान् श्रीरामजी का सम्बन्धी है वही श्रीरामजी का उपासक है, इत्यादि प्रामाणिक वचनों से वह श्रीराम स्वरूप ही है इसमें संदेह नहीं है इस अभिप्राय की पुष्टि होती है ।

यदि यह प्रश्न करें कि यहां पर श्रीराम पद सविशेष वस्तु से सम्बन्धी नहीं है किन्तु निर्विशेष ब्रह्म बोधन परक है 'चिदात्मक परं ज्योतीरसः' इन पदों के द्वारा विशेषित किये जाने के कारण यदि ऐसा कहें तो नहीं कह सकते हैं 'इसप्रकार वह श्रीराम पद से परब्रह्म कहा जाता है' इसप्रकार अभिधा शक्ति के द्वारा विषयत्व प्रकाशन करने से लक्षणा शक्ति द्वारा लक्ष्यत्व किया जाना सम्भव नहीं है । 'धारण करके व्याख्यान तत्पर चैतन्यमय परमेश्वर' इस कथन में व्याख्यान निरतत्व कथन से सशरीर और चिन्मयत्व कथन से और 'ब्रह्मानन्द स्वरूप एक मात्र शरीर है जिसका' इस कथन से विग्रह शरीर का दिव्य प्राकृतत्व सुने जाने से सविशेषत्व ही है । 'श्रीराम पदार्थ का ही सर्वोत्कृष्ट बोध होने से' इसतरह वर्णित विशेषणता एवं विशेष्यता को एक शब्द के द्वारा ज्ञेय होने से 'मैं राम स्वरूप हूँ, राम स्वरूप हूँ मैं' में समान विभक्तिकत्व व्यवहार किया गया है । क्योंकि जीवात्मा को श्रीरामजी का शरीर होने से अविनाभाव सम्बन्ध है । तथा श्रीरामजी से अभिन्न सत्ता वाला मैं हूँ इसप्रकार का

पृथक् सत्ताकोहमितिदृढविश्वासः । दृढविश्वासवन्तो जीवन्तोऽपिमुक्ता इवात एवोक्तं सदा रामोऽहमिति ॥१२॥

दृढ विश्वास है । इसतरह के दृढ विश्वास वाले व्यक्ति जीवन दशा में भी मुक्त जैसा ही है इसलिये कहा है-सदा रामोऽहम् ॥१२॥

इत्युपनिषद् य एवं वेद स विमुक्तो भवति ।
स विमुक्तो भवतीति याज्ञवल्क्यः ॥१३॥

ज्ञानं ब्रह्मविद्या उपनिषद् रहस्यभूतम् । यः श्रीरामभक्तोऽनेन प्रकारेण जानाति स त्रैलोक्यपूज्यो भवति एवं याज्ञवल्क्योभारद्वाजमुपदिष्टवान् ॥१३॥

॥ इतितृतीयकण्डिका ॥

ब्रह्म विद्या ज्ञान उपनिषद् का रहस्यभूत अभिप्राय है । जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का भक्त इसप्रकार से जानता है वह तीनों लोक के लिये पूजनीय होता है । इसप्रकार महर्षि श्रीभरद्वाजजी को याज्ञवल्क्यजी ने उपदेश दिया ॥१३॥

卐 तृतीय कण्डिका सम्पन्न 卐

अथ हैनमत्रिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं य एषोऽनन्तो
ऽव्यक्त आत्मा तं कथमहं विजानीयामिति ।
स होवाच याज्ञवल्क्यः सोऽविमुक्ते उपास्यः ।
य एषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा सोऽविमुक्ते प्रतिष्ठितः ॥१॥

अनन्तरं चतुर्थकण्डिकायामत्रिः याज्ञवल्क्यं पृष्टवान् यत् एषोऽनन्त आत्मा तमात्मानं कथं साक्षादवलोकयितुं शक्नुयामिति । पूर्वकण्डिकायां सदोज्व-लोऽविद्या तत्कार्यहीन इत्यादिलक्षणैरात्मस्वरूपं प्रकाशितः, तं कथं विजानी यामिति साक्षात्कारोपायविज्ञानाय पृच्छति ।

तत उत्तरमाह याज्ञवल्क्यः-उपासनामन्तरान्तःकरणाविशुद्धिपूर्वकं तत्साक्षात्कारो न स्यादतः उपासना विधानं करोति सोऽविमुक्ते उपासनीय इति । आत्मा अविमुक्तं सन्धितुरीयं तस्मिन्नुपासनीयः, प्रदेशान्तरे वर्तमानेऽपि अविमुक्ते एव उपासनीय इति कोऽयं नियमः, य एष अनन्तोऽव्यक्त आत्मा स अविमुक्ते तिष्ठति, इत्थमुपासनासुलभतां दर्शयित्वा, तस्मिन् मनोनिरोधस्याति कठिनत्वात्

साक्षात्कर्तुः साध्यं निदर्शयन्नाह तस्याविमुक्तशब्दवाच्यस्य किं स्थानमिति कथयति वक्ष्यमाणं मन्त्रम् ।।१।।

इसके वाद चतुर्थ कण्डिका में अत्रि याज्ञवल्क्य से प्रश्न किये कि जो यह अनन्त स्वरूप वाली आत्मा है उसको मैं कैसे साक्षात् अवलोकन करने में सक्षम हो सकुँगा । पूर्व कण्डिका में 'सदैव निर्मल अविद्या एवं अविद्याजनित कार्य से हीन' इत्यादि गुणों से सम्पन्न आत्मा का स्वरूप निरूपण किये हैं । उसे मैं कैसे जान सकुँगा, इस तरह आत्म साक्षात्कार का उपाय विज्ञान करने के लिये प्रश्न करते हैं ।

इसके वाद याज्ञवल्क्यजी अत्रि के प्रश्न का उत्तर कहते हैं । अन्तःकरण की अत्यन्त विशुद्धि होने के अभाव में साक्षात्कार सम्भव नहीं है । इसलिये आत्मा की उपासना का विधान करते हैं । उस आत्मा की अविमुक्त में उपासना करनी चाहिये । आत्मा अविमुक्त है एवं सन्धि तुरीय है । उसमें उपासना करनी चाहिये अन्य प्रदेशों के विद्यमान होने पर भी अविमुक्त क्षेत्र में ही आत्मा की उपासना करनी चाहिये । यह कौनसा नियम है-'जो यह अनन्त अव्यक्त आत्मा है वह अविमुक्त क्षेत्र में रहती है । इसप्रकार उपासना की सरलता को प्रदर्शित करके आत्म साक्षात्कार करने में मनो निरोध अत्यावश्यक है, और मन को विषय प्रदेशों में जाने से रोककर इसे निरुद्ध करके रखना अत्यन्त दुष्कर कर्म है अतः अत्यन्त कठिनता के कारण साध्य का स्वरूप निरूपण करने के लिये कहते हैं । उस अविमुक्त शब्द प्रतिपाद्य का क्या स्थान है इस विषय को कहे जाने वाला आगे के मन्त्र से कहते हैं ।।१।।

सोऽविमुक्तः कस्मिन् प्रतिष्ठते ।

वरणायां नाश्याञ्च मध्ये प्रतिष्ठित इति ।।२।।

उपास्यत्वेन प्रतिपादितस्यात्मनो यत्रोपासनाविधीयते सोऽविमुक्तः । स कस्मिन् स्थाने प्रतिष्ठते इतिप्रश्नोत्तरं कथयति याज्ञवल्क्यः वरणायां नाश्यां चान्तराले प्रतिष्ठित इति तदाकर्ण्य पुनरत्रिरपृच्छत् ।।२।।

उपास्य के स्वरूप में निरूपित की गयी आत्मा की जहां उपासना की जाती है वह अविमुक्त है । वह किस में प्रतिष्ठित है इस प्रश्न का उत्तर याज्ञवल्क्यजी कहते हैं । वरणा और नाशी के मध्य में अविमुक्त प्रतिष्ठित है इस उत्तर को सुनकर पुनः अत्रि पूछते हैं ।।२।।

का वै वरणा का च नाशीति,
सर्वानिन्द्रियकृतान् दोषान् वारयतीति तेन वरणा भवतीति ।
सर्वानिन्द्रियकृतान् पापान् नाशयतीति तेन नाशी भवतीति ॥३॥

पुनः संशयापन्नोऽत्रिराह हे भगवन् का वरणा का च नाशी इति ततो याज्ञवल्क्य उवाच सर्वान् इन्द्रियकृतान् स्वस्वविषयेच्छारूपान् दोषान् वारयतीति वरणा भवति । विषयेच्छापराधीनत्वात् रूपरसादिषु विषयेषु इन्द्रियैरविहिताचरणस्वरूपान् पापान् नाशयतीति नाशीभवति ॥३॥

पुनः सन्देह ग्रस्त होकर अत्रिजी याज्ञवल्क्य ऋषिजी को कहते हैं, हे भगवन् वरणा क्या है और नाशी क्या है। इसके वाद याज्ञवल्क्यजी कहते हैं-समस्त इन्द्रियों के द्वारा अपने अपने विषयों के प्रति इच्छा स्वरूप दोषों का जो निवारण होता है उसे वरणा कहते हैं, विषयों के प्रति इच्छा पराधीन होने के कारण जो रूप रस आदि विषयों में इन्द्रियों के द्वारा शास्त्र द्वारा जिसका विधान नहीं किया गया है, उन आचरणों का आचरण स्वरूप पापों को नाश करता हो उसको नाशी कहते हैं ॥३॥

कतमं चास्य स्थानमिति भ्रुवोर्घ्राणस्य च यः सन्धिः स एष द्यौर्लोकस्य परस्य च सन्धिर्भवतीति। एते द्वैतसन्धिं सन्ध्यां ब्रह्मविदुपासते इति। सोऽविमुक्ते उपास्य इति सोविमुक्तं ज्ञानमाचष्टे यो वै एतदेवं वेदेति ॥४॥

'वरणा' इति 'नाशी' इति यदुक्तं अनयोः स्थानं कतममिति जिज्ञासायां याज्ञवल्क्य आह-भ्रुवोः नासिकायाश्च यः सन्धिः स द्यौः लोकः तस्य परस्य च यः सन्धिः भवतीति सोऽविमुक्तेकाश्यभिधेये । उक्तमयोध्यामाहात्म्ये-विष्णोः पादमवन्तिकां नाशाग्रबाराणशी' स त्वया जिज्ञासितोऽविमुक्त एष सन्धिः भवति। अविमुक्तसन्धिशब्दौपर्यायौ, तदेव उपासनास्थानमिति सदाचारेण दृढयति । एनां प्रख्यातां सन्धिं सन्ध्यांब्रह्मविद उपासनां कुर्वन्ति तं कथमहं विजानीयामिति । य आत्मसाक्षात्कारोपायः त्वया जिज्ञासितः स आत्मा भ्रुवोः घ्राणस्य च सन्धौ अविमुक्ते उपासनीयः । इत्थमुपासनया आत्मानं साक्षात्कृत्य, तस्य श्रीरामाविनाभावात् श्रीराममेव प्रकारितया सर्वरूपं यः पश्यति सः श्रीरा-

मोपासकः त्रैलोक्यगुरुर्भवतीत्युपासनाफलमाह-सोविमुक्तज्ञानमाहेत्यादि-यः उपासकः उक्तप्रकारेण जानाति सः तुरीयाख्यं सन्धिज्ञानं सर्वत्र श्रीरामस्वरूपत्व दर्शनस्वरूपं कथयति । शिक्षायोग्यस्य शिष्यस्य कृते तद्धितार्थमतिरहस्यभूतं ज्ञानं तत्क्षणमुत्पादयति तदुक्तं गीतायाम्-उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनः तत्वदर्शिनः । भगवताप्येतन्निरूपितं यत् ज्ञानोपदेशे तत्वज्ञानिन एव अधिकारिणः । अयमुपायः इन्द्रियसंयमाधीनः, इन्द्रियसंयमान्तःकरणशुद्ध्योश्च परस्परसापेक्षत्वेन तस्य कठिनत्वं सकलजीवासाधारणत्वं च बुध्वा बृहस्पतिना गुरुणा पृष्टमतिकरुणया रुद्रः तारकं ब्रह्मव्याचष्टे, तदेवाधुना अत्रिणा पृष्टः याज्ञवल्क्यः करुणया तमाह सर्वसुलभत्वेन सर्वजीवसाधारणं अन्यसहायानपेक्षत्वात् स्वानुष्ठानसाध्यं प्रारब्ध व्यतिरिक्तसर्वपापदाहकं सर्वफलदायकं सर्वोत्कृष्टं स्वाभिमतञ्चेति उपदिदेश ॥४॥

वरणा और नाशी का जो स्वरूप पहले कह चुके हैं, इन दोनों का स्थान कौन सा है, ऐसी जिज्ञासा करने पर याज्ञवल्क्य कहते हैं । दोनों भौंह और नाक का जो सन्धि स्थान है वह आकाश है या स्वर्गलोक है । और इन दोनों का जो सन्धि स्थान होता है वह काशी अविमुक्त नाम से अभिहित है । यही अयोध्या माहात्म्य में कहा है । विष्णु का चरण अवन्तिका है, और नासिका का मूल वाराणसी है । वही तुम से प्रश्न किया गया, अविमुक्त नाम की यह सन्धि है । अविमुक्त और सन्धि ये दोनों शब्द पर्यायवाचक है । और ये ही उपासना स्थान है । इस विषय को सदाचार के द्वारा दृढ करते हैं । इस प्रसिद्ध सन्धि को सन्ध्या रहस्य ब्रह्म तत्व ज्ञानी उपासना करते हैं । उस को मैं कैसे जान सकूँगा । ऐसी जिज्ञासा में कहते हैं । जो आत्मा साक्षात्कार करने का उपाय तुमसे पूछा गया है, वह आत्मा दोनों भौंहों और नाक के सन्धि में अविमुक्त नामक स्थान पर उपासना करने योग्य है । इस तरह उपासना के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार करके और वह आत्मा श्रीरामजी के विना सिद्ध नहीं है इसलिये वह श्रीरामजी में विशेष्यता होने से उनके सर्वरूप को जो देखता है वह श्रीरामजी का उपासक तीनों लोकों का गुरु होता है । यह विचार कर उपासना का फल कहते हैं । वह अविमुक्त ज्ञान को कहते हैं इत्यादि जो उपासक उक्त प्रकार से जानता है वह चतुर्थ नामक सन्धि ज्ञान को सभी जगह श्रीराम स्वरूपत्व रूप दर्शन स्वरूप को कहते हैं । शिक्षा देने योग्य शिष्य के लिये उसके हित के लिये अत्यन्त रहस्यभूत ज्ञान तत्क्षण उत्पन्न करते हैं । यही गीता में भी कहा है । तत्वदर्शी ज्ञानी लोग तुम्हे उपदेश करेंगे ।

भगवान् के द्वारा भी यह बताया गया कि ज्ञान के उपदेश देने में तत्त्वज्ञानी ही अधिकारी है। यह आत्म साक्षात्कार इन्द्रिय संयम के अधीन है। इन्द्रिय संयम और अन्तःकरण शुद्धि परस्पर सापेक्ष होने के कारण उसकी अत्यन्त कठिनता है। और समस्त जीवात्माओं के लिये असाधारणता भी है। यह समझ कर बृहस्पति के द्वारा गुरु से पूछने पर अत्यन्त करुणा से आर्द्र चित् होकर भगवान् रुद्र तारक ब्रह्म नामक मन्त्रोपदेश किये, और वही इस समय अत्रि के द्वारा पूछे जाने पर याज्ञवल्क्य अत्यन्त दयालुता पूर्वक उन्हें कहते हैं। सभी के लिये सुलभ होने से जीवमात्र के लिये साधारण, किसी अन्य की सहायता की अपेक्षा नहीं होने से केवल स्वयं के उपासना द्वारा साध्य प्रारब्ध कर्म को छोडकर सभी पापों को भस्मकरदेनेवाला सभी को फलप्रद सर्वोत्कृष्ट एवं अपना अभिमत रहस्य का उपदेश दिये ॥४॥

अथ तं प्रत्युवाच स्वयमेव याज्ञवल्क्य→

श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः ।
मन्वन्तरसहस्त्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः ॥५॥

ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शङ्करम् ।
वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वरेति ॥६॥

अत्रिं प्रति स्वयमेव याज्ञवल्क्य उवाच, यत् जगदानन्दरूपिणः श्रीरामचन्द्रस्य षडक्षरं तारकं मन्त्रं वाराणस्यांवृषभवाहनः सर्वजीवमङ्गलकरः शङ्करः जपहोमार्चनादिभिः सार्धं मन्वन्तरसहस्त्रकालावधिं यावत् जजाप। जपहोमादयः श्रीरामप्रसन्नताहेतवः सन्ति। काशीमृतानां जीवानां मोक्षाय सर्वेश्वरश्रीरामं प्रसादयितुं प्रवृत्तस्य शिवस्य भगवन्मन्त्रान्तरेषु सत्स्वपि श्रीराममन्त्रस्य सर्वश्रेष्ठत्वं प्रकाशयति ''मुक्तिः काशीमृतानां मृतिसमयशिवः प्रत्य यन् मन्त्रशक्तेः यन्नामग्राहमन्तर्मुमुदितपुलकः सास्त्रुनेत्रस्त्रिनेत्रः। साकेतेशः समस्त श्रुतिसकलशिरोऽभ्यस्तमाहात्म्यभूमिर्भव्यायास्माकमास्तामनुपधिकरुणो भूमिजा भूषिताङ्गः'' इत्यानन्दभाष्यकारोक्तेः। प्रसन्नो भगवान् श्रीरामचन्द्रः शङ्करं प्राह। सर्वेश्वरश्रीरामचन्द्रः शङ्करं प्राह यत् ते यदभिमतं तत्वृणीष्व, हे परमेश्वर तत् तुभ्यं प्रदास्यामि। परमेश्वरस्यापि स्वाभिमतवरप्रदातृत्वेन सर्वेश्वरश्रीरामस्य 'तं देवतानां परमं च दैवतम्, ईश्वराणां परमं महेश्वरमितिश्रुतिविषयः स्फुटी क्रियते ॥५/६।

महर्षि अत्रि के प्रति स्वयं ही याज्ञवल्क्य कहते हैं कि सर्व जगत् आनन्द स्वरूपी श्रीरामचन्द्रजी के षडक्षर तारक मन्त्र का वाराणसी में वृषभ वाहन वाले संसार के समस्त प्राणियों का मङ्गलकारी शिवजी जप होम एवं अर्चना आदि के साथ हजारों मन्वन्तर काल पर्यन्त जप किये। जप होम आदि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की प्रसन्नता के कारण हैं। काशी नगरी में मरे हुए जीवों के मोक्षलाभ कराने के लिये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को प्रसन्न करने के लिये तत्पर भगवान् शङ्कर का भगवान् के अन्य मन्त्रों के होने पर भी श्रीरामचन्द्रजी का षडक्षर तारक श्रीराम महामन्त्र का जप उसकी सर्वश्रेष्ठता को प्रकाशित करता है। भगवान् शङ्कर के ऊपर प्रसन्न भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने श्रीशङ्करजी को कहा, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी श्रीशङ्करजी को कहते हैं कि जो आपको अभीष्ट है वह वर आप मांग लें, हे परमेश्वर आपको वह अभिमत वर प्रदान करुँगा। परमेश्वर शिवजी को भी अभीष्ट वर प्रदायक होने से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का उन सभी देवताओं के भी परम देवता, ईश्वरों के भी परम महेश्वर इस श्रुति वचन का विषय श्रीरामजी ही हैं यह सुस्पष्ट किया जाता है ॥५-६॥

卐 सहोवाच 卐

मणिकर्ण्यां वा मत्क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः ।
म्रियते देहि तज्जन्तोर्मुक्तिं नातोवरान्तरम् ॥७॥इति।

मणिकर्णिकागङ्गातटयोः क्षेत्रान्तर्गतत्वात् पृथग् द्वयोर्ग्रहणात् ज्ञायते, 'वदान्यात् कृपण इव मुक्तिमतिदुर्लभं विज्ञाय उक्तस्थले अन्यत्र वा यत्र तवेच्छा भवेत् मृतस्य प्राणिनः मुक्तिं देहि इति शङ्करः श्रीरामं प्रार्थितवान्। प्राणिनमृतस्य अन्यतरस्मिन् मुक्तिविषये सन्दिहान आह नातोवरान्तरमिति। अस्य वरस्याति दुर्लभत्वादेनं विहायान्यं वृणीष्वेति वारणायाह नातो वरान्तरमस्यैवाभीष्टत्व मितिभावः ॥७॥

मणिकर्णिका और गंगा तट का महादेव के क्षेत्रान्तर्गत होने से अलग-अलग दोनों का उपादान करने से ज्ञात होता है कि जैसे किसी अत्यन्त उदार व्यक्ति से कृपण व्यक्ति याचना करता हो उस तरह मुक्ति को अत्यन्त दुर्लभ समझ कर जहां पर आपकी इच्छा हो वहां पर मरे हुए प्राणी को मुक्ति प्रदान करें। इसप्रकार भगवान् शङ्करजी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से प्रार्थना किये। मरे हुए प्राणी का मणिकर्णिका अथवा गङ्गा

तट दोनों में से किसी एक स्थान पर मोक्ष के विषय में सन्देह करते हुए शङ्करजी कहते हैं कि इस वरदान को छोडकर दूसरा कोई वरदान नहीं चाहिये । इस वरदान को अत्यन्त दुर्लभ होने के कारण इसे छोडकर कोई दूसरा वरदान मांग लो इस आशय का निवारण करने के लिये कहते हैं कि इससे भिन्न वरदान नहीं चाहिये ऐसा तात्पर्य है ॥७॥

अथ सहोवाच श्रीरामः-

क्षेत्रेऽस्मिन् तव देवेश ? यत्र कुत्रापि वा मृताः ।
कृमिकीटादयोप्याऽशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा ॥८॥

महादेववरयाचना प्रार्थनानन्तरं स भगवान् श्रीरामचन्द्रः उवाच-हे देवेश वृषभध्वज ? अस्मिन् मणिकर्ण्याम् गंगातटे च मृतस्य जन्तोः मुक्तिं देहि इति तव प्रार्थनां स्वीकृत्य शुद्धाशुद्धस्थानयोरपि क्षेत्रद्वये यत्र कुत्रापि मृताः ब्रह्मणः आरभ्य कृमिकीटादयः आदिशब्दात् ततोऽपि निकृष्टजन्तवः मृताः भविष्यन्ति ते सर्वेऽपि अतिशीघ्रमेव मुक्ताः भवन्तु अन्यथा न भवेदिति वरप्रदानमकरोत् ।

अत्र शिवोक्तस्य क्षेत्रविशेषे मुक्तिप्रार्थनावचनस्य क्षेत्रैकदेशे मुक्तिप्रार्थना बोधकत्वे सर्वक्षेत्रदेशमृतजन्तुमुक्तिप्रार्थनाबोधकत्वे वा न काचित् हानिः न लाभाधिक्यं वा । श्रीरामवरबोधकत्वे क्षेत्रसर्वदेशमृतजन्तुमुक्तिबोधकत्वे वा न लाभः न वा काचित् हानिः अतः श्रीरामवरवाक्यस्य स्फुटमशेषक्षेत्रेषु मृतजन्तु मोक्षबोधकत्वेन शिवस्याभीष्टसिद्धेः । 'आशु' इतिपदेन च देहत्यागसमकालोप दिष्टमन्त्राव्यवहितसमयं सूचयन् महतामपि पापानां क्षणमात्रेण भोगेन क्षयं प्रकाशयति । बहुकालफलभोगानन्तरं न मुक्ताः सन्तु अपितु आशु मुक्ताः सन्तु । 'अन्यथा' इतिवचनेन 'रामोद्विर्नाभिभाषते' इतिस्मरणात् यत् अभीष्टं वरं त्वया प्रार्थितं तन्मया दत्तं तद्विपरीतं न भवेदितिभावः ॥८॥

जब भगवान् शिवजी वर सम्बन्धी प्रार्थना किये उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी कहे कि-हे देवेश वृषभध्वज ? इस मणिकर्णिका अथवा गङ्गा तट पर मरे हुए प्राणी के लिये मुक्ति प्रदान करिये इससे भिन्न दूसरा वर नहीं चाहिये इस प्रार्थना को स्वीकार करता हूँ । पवित्र स्थान हो या अपवित्र स्थान हो आपके इन दोनों क्षेत्रों में जहां कहीं भी मरे हुए ब्रह्मा से लेकर कृमिकीटादि पर्यन्त आदि शब्द से उससे भी निकृष्ट प्राणी

प्राण त्याग करेंगे ये सभी के सभी अत्यन्त शीघ्र ही मुक्त हो जाँय। इसके विपरीत नहीं होगा इसप्रकार कहे।

यहां पर भगवान् शिवजी के द्वारा कहा गया क्षेत्र विशेष में मोक्ष प्राप्त होने के प्रार्थना वचन का क्षेत्र के एक भाग में मुक्ति की प्रार्थना बोधकता में या सभी क्षेत्रों में मृत प्राणियों की मुक्ति प्रार्थना बोधकता में न तो कोई लाभ है या न हानि है, यानी इसमें कोई लाभ हानि नहीं है अतः श्रीरामचन्द्रजी के वरदान वाक्य का स्पष्ट अर्थ है कि समग्र पंचकोशी क्षेत्रों में मृत प्राणियों के मोक्ष बोधकता होने से ही शिवजी की अभीष्ट सिद्ध होने के कारण आशु पद के द्वारा देह त्याग के समकाल में उपदेश दिया गया मन्त्र श्रवण के अव्यवहित उत्तर काल को सूचित करता हुआ यह प्रकाशित करता है कि महान् से महान् पापों का क्षण मात्र में ही भोग से विनाश हो जाता है। बहुत समय तक फल भोग करने के पश्चात् मुक्त न हो अपितु अत्यन्त शीघ्र ही मुक्त हो जाय। अन्यथा इस वचन के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी दोहरा कर नहीं बोलते हैं यानी श्रीरामजी जो बोलते हैं उसे पूर्ण करते हैं असत्य भासण कभी नहीं करते हैं। इस वचन का स्मरण होने से जो अभिमत वरदान देने की याचना आपके द्वारा की गयी है, वह मुझ से दे दिया गया। इसके विपरीत नहीं होगा यह भाव है ॥८॥

अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये।
अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु ॥९॥

क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद् भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव ?।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥१०॥

त्वत्तो वा ब्रह्मणोवापि ये लभन्ते षडक्षरम्।
जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युरन्ते मां प्राप्नुवन्ति च ॥११॥

हे शिव ? तव अस्मिन् अविमुक्ते क्षेत्रे सर्वेषामविचारिताधिकारानधिकाराणां मोक्षलाभसफलता प्राप्तये तत्र पाषाणप्रतिमाप्रभृतिषु अहं श्रीरामः समुपस्थितः तिष्ठामि। ननु 'अन्यक्षेत्रे कृतं पापं तीर्थक्षेत्रे विनश्यति। तीर्थक्षेत्रे कृतं पापं गुरुक्षेत्रे प्रणश्यति। गुरुक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति' इत्युक्तेः क्षेत्रान्तरेषु कृतानां पापानामविमुक्तक्षेत्रदर्शनमात्रेण विनाशेऽपि वाराणसीकृत पापानां तु वज्रलेपतया बहुकालभोगेनापि विनाशासम्भवात् कथं मुक्तिसिद्धिरिति

विप्रतिपन्नः स्वक्षेत्रवासिनां विमोक्षाय मया परिश्रमेण श्रीरामचन्द्रं तोषयित्वा तादृशे वरेलब्धेऽपि क्षेत्रकृतपापनिमित्तकमसहनीयं दुःखं तदवस्थमेवेति चिन्ता ग्रस्तं शिवमालक्ष्यमन्त्रान्तरमाह-

हे देवेश ? शिव ? यः कोऽपि अविमुक्तक्षेत्रकृतपापः मम तारकमन्त्रेण पाषाणप्रतिमादिषु अर्चयेत् । अथवा केवलमन्त्रजपेनैव अर्चयेत् स भक्तिपूर्वक मर्चनापरायणो नरो ब्रह्महत्याप्रभृतिभ्यः सर्वेभ्योऽपि पापेभ्यो ग्रस्तः सन्नपि मदर्चनात्सद्गुरूपलब्धब्रह्मतारकषडक्षरमहामन्त्रजपाच्च विनष्टपापो भवति, तेन तमाशुमोक्षयिष्यामि । अत्र विषये शोकं माकार्षीः । वचनमिदं काशीकृतपाप प्रायश्चित्ताभिप्रायसूचकम् तदुक्तं 'य एतत्तारकं ब्राह्मणो नित्यमधीते स पाप्मानं तरति ।

इदानीं शिवस्य स्वक्षेत्रवासीनामात्मीयत्वेन समेषां तेषां मुक्तये आग्रहमव लोक्य स्वस्याशेषजीवस्वामीत्वात् सर्वदेशसर्वकालमृतानामपि स्वधामप्राप्तये मन्त्रान्तरमाह-त्वत्तः शिवात् अथवा ब्रह्मणः अपि ये षडक्षरं तारकं मन्त्रं यथा शास्त्रं लभन्ते ते जीवनदशायामपि मन्त्रसिद्धाः भवेयुः । देहत्यागावशाने च ते मां प्राप्नुवन्ति । न च इदानींतनानां ब्रह्मरुद्राभ्यां षडक्षरलाभाभावात् कथं तत्प्राप्तिः इतिवाच्यम् । अद्यापि तेषां परम्परया तदुपदेशसत्वात् । अतः उक्तम् 'आशुमुक्ताः सन्तु' इति ॥९-१०-११॥

हे शिव ? आपके इस अविमुक्त नामक वाराणसी क्षेत्र में सभी प्राणियों का विना विचार किये ही सभी प्राणियों को मोक्ष लाभ की सफलता प्राप्त करने के लिये जगह जगह पर पाषाण प्रतिमा आदि में मैं श्रीरामचन्द्रजी समुपस्थित होकर रहता हूँ। प्रश्न उठता है कि अन्य क्षेत्रों में किये गये पापों का अविमुक्त क्षेत्र वाराणसी का दर्शन मात्र से विनाश हो जाने पर भी वाराणसी क्षेत्र में किये गये पापों का तो वज्र लेप के समान अत्यन्त कठोर होने से बहुत दीर्घकाल पर्यन्त भोग करने पर भी विनाश होना सम्भव नहीं होने से मुक्ति की सफलता कैसे होगी इस दुविधा में पडे हुए अपने क्षेत्र में निवास करने वाले के विशेष मोक्ष के लिये मुझ शङ्कर से परिश्रम के द्वारा श्रीरामचन्द्रजी को प्रसन्न करके इसप्रकार का वरदान प्राप्त होने पर भी क्षेत्र में किया गया पाप के निमित्त से नहीं सहन करने योग्य दुःख उसी पुरानी स्थिति से ही होगी इस चिन्ता में पडे हुए श्रीशिवजी को देख अन्य मन्त्र को कहते हैं-हे देवराज शङ्करजी?

जो कोई भी अविमुक्त वाराणसी क्षेत्र में पाप करने वाला प्राणी मेरे इस षडक्षर तारक मन्त्र के द्वारा पाषाण प्रतिमा आदि में अर्चना करेगा या केवल षडक्षर तारक मन्त्र जप से ही पूजा करेगा, वह भक्तिपूर्वक अर्चना परायण मानव ब्रह्महत्या आदि सभी तरह के पापों से ग्रस्त होने पर भी मेरी उपासना करने से विनष्ट पाप हो जाता है। इसकारण से उन प्राणियों को मैं अतिशीघ्र मोक्ष प्राप्त करा देता हूँ। इस विषय में आप किसी तरह की चिन्ता नहीं करिये। यह वचन जिसने काशी में निवास करके पाप किया है उसके अभिप्राय से कहा गया है। यही विषय पूर्व में कहा गया है कि-जो इस षडक्षर ब्रह्मतारक श्रीराम मन्त्र को ब्राह्मण प्रतिदिन अध्ययन करता है वह समस्त पापों को तरण करलेता है।

इस समय भगवान् शङ्करजी के अपने वाराणसी क्षेत्र में निवास करने वालों के प्रति आत्मीय भाव होने के कारण उनके मोक्ष के लिये आग्रह को देखकर और अपना समस्त चराचर जगत् का स्वामित्व के कारण सभी देश और सभी काल में मृत प्राणियों का भी अपना परमधाम प्राप्ति के लिये दूसरा मन्त्र प्रारम्भ करते हैं-

आप शङ्करजी से अथवा ब्रह्माजी के द्वारा भी जो षडक्षर तारक श्रीराम मन्त्र को प्राप्त करते हैं वे जीवन दशा में ही मन्त्र सिद्ध होंगे, और इस देह का अवसान होने पर वे मुझ श्रीरामचन्द्रजी को प्राप्त करते हैं। यदि कहें कि वर्तमान समय के लोगों को ब्रह्माजी और शङ्करजी के द्वारा षडक्षर मन्त्र का लाभ नहीं होने से किस तरह उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी ? यह नहीं कहना चाहिये क्योंकि आज भी उनकी परम्परा के द्वारा आचार्य मुख से श्रीराममन्त्र प्राप्त होना सम्भव है एवं हो रहा है। उह्नीं से साक्षात् नहीं तो परम्परया सम्भव हैं इसलिये कहा है-अति शीघ्र मुक्त होवें।

तदत्रानुसन्धेयम्-'**इममेव मनुं पूर्वं साकेतपतिर्मामवोचत्। अहं हनुमते मम प्रियाय प्रियतराय। स वेद विदिने ब्रह्मणे। स वशिष्ठाय। स पराशराय। स व्यासाय। स शुकाय। इत्येषोपनिषद्। इत्येषा ब्रह्मविद्या।** (श्रीमैथिलीमहोपनिषद् ५)

प्रकृत उपनिषद् में लाट्यायन प्रभृति महर्षियों को विशिष्ट तत्त्वोपदेशान्तर श्रीराम महामन्त्रराज की परम्परा के विषय में सर्वेश्वरी श्रीसीताजी कहती हैं-यही षडक्षर श्रीराम महामन्त्र को दिव्यलोक श्रीसाकेत में श्रीसाकेताधिनायक सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ने मुझे कहा अर्थात् सविधि उपदेश दिया। मैने मेरे प्रियातिप्रिय सेवक मरुत नन्दन श्रीहनुमानजी को यथा शास्त्र विधि विधान से उपदेश दिया। श्रीहनुमानजी

ने भी शास्त्रीय विधान से वेद के ज्ञाता श्रीब्रह्माजी को उपदेश दिया। श्रीब्रह्माजी ने भी शास्त्र विधान के अनुसार ही स्वमानस पुत्र श्रीवशिष्ठजी को उपदेश दिया। श्रीवशिष्ठजी ने शास्त्रीय विधि से श्रीपराशरजी को उपदेश दिया। श्रीपराशरजी ने शास्त्र विधि के अनुसार श्रीव्यासजी को उपदेश दिया। श्रीव्यासजी ने शास्त्र विधि-विधानानुसार श्रीशुकदेवजी को उपदेश दिया। यही उपनिषद् श्रीरामचन्द्रजी के दिव्यधाम श्रीसाकेत में जाने का साधन है यानी शास्त्रीय विधि से श्रीगुरुमुख से प्राप्त तारक श्रीराम महामन्त्र के अनुष्ठान से ही सायुज्य मुक्ति या श्रीराम प्राप्ति की जा सकती है अन्य साधनों से नहीं। यही ब्रह्मविद्या है-उपरोक्त क्रम से सत् आचार्य परम्परा प्राप्त श्रीराम मन्त्रराज से या उसके सविधि सदनुष्ठान से जीवों की मुक्ति होती है अतः यह ब्रह्मविद्या इस नाम से संसार में प्रसिद्ध है। इससे यह स्फुटित हुआ कि श्रीसम्प्रदाय की परम्परा निम्न रूपसे है-१-सर्वेश्वर श्रीरामजी २-सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ३-श्रीहनुमानजी ४-श्रीब्रह्माजी ५-श्रीवशिष्ठजी ६-श्रीपराशरजी ७-श्रीव्यासजी ८-श्रीशुकदेवजी।

गुह्यतम वेदार्थ तत्त्वों के प्रचारक-प्रसारक संहिता शास्त्रों ने श्रीसम्प्रदाय परम्परा तत्त्व को निम्न रूपसे वर्णन किया है-

श्रीवशिष्ठसंहिता

श्रृणु वदामि ते वत्स ? मन्त्रराजपरम्पराम्।
यस्याश्च वन्दनाद् रामश्चात्यन्तं हि प्रसीदति।
सृष्ट्यादौ च सिसृक्षुः श्रीरामोविधिं विधाय हि।
सृष्टये प्रेसयामास वेदं ज्ञानमहानिधिम्॥
तथाप्यर्थावबोधस्याभावाद्विधिः ससर्ज न।
जातायामीशभक्तौ च गुरुभक्तिर्यतो नहि॥
भक्तिद्वये यतश्चास्ति तत्त्वप्रकाशहेतुता।
ततो वेदार्थबोधो न गुरोर्भक्तेरभावतः॥
ततो रामस्य खेदं हि समुद् वीक्ष्य च मैथिली।
गृहीत्वा विधिवद् रामान्मन्त्रराजं षडक्षरम्॥
हनुमते च दत्त्वा तं राममन्त्रं षडक्षरम्।
विधये मन्त्रदानाय प्रेरयामास मारुतिम्॥

महर्षि पराशरजी के श्रीराम मन्त्र परम्परा विषयक जिज्ञासा करने पर ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठजी ने श्रीराम महामन्त्र का महत्व एवं पूर्व भूमिका बताते हुये कहा कि सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ने सर्वेश्वर श्रीरामजी से प्रार्थना पूर्वक सविधि षडक्षर श्रीराम महामन्त्र की दीक्षा-शिक्षा प्राप्तकर यथानियम श्रीहनुमानजी को प्रदान की एवं उन्हें प्रेरित किया कि ब्रह्माजी को यथाशास्त्र उपदेश करो। इससे यह ज्ञात हुआ कि ऊपर उपनिषद् में वर्णित क्रमानुसार ही श्रीसम्प्रदाय परम्परा सुस्थिर है।

ॐ श्रीअगस्त्यसंहिता ॐ

ब्रह्मा ददौ वशिष्ठाय स्वसुताय मनुं ततः।
वशिष्ठोऽपि स्वपौत्राय दत्तवान् मन्त्रमुत्तमम्॥
पराशराय रामस्य मन्त्रं मुक्तिप्रदायकम्।
स वेदव्यासमुनये ददावित्थं गुरुक्रमः॥
वेदव्यासमुखेनात्र मन्त्रो भूमौ प्रकाशितः।
वेदव्यासो महातेजः शिष्येभ्यः समुपादिशत्॥

प्रस्तुत अगस्त्य संहिता के श्लोकानुसन्धान से यही अवगत होता है कि यह क्रम श्रीवशिष्ठ संहितानुकूल ही है।

ॐ श्रीवाल्मीकिसंहिता ॐ

इदं तु परमं तत्त्वं देवानामप्यगोचरम्।
पृष्टं युष्माभिरनघं कथ्यते श्रृणुतर्षयः॥
भगवान् रामचन्द्रो वै परं ब्रह्म श्रुतिश्रुतः।
दयालुः शरणं नित्यं दासानां दीनचेतसाम्॥
इमां सृष्टिं समुत्पाद्य जीवानां हितकाम्यया।
आद्यां शक्तिं महादेवीं श्रीसीतां जनकात्मजाम्॥
तारकं मन्त्रराजं तु श्रावयामास ईश्वरः।
जानकी तु जगन्माता हनुमन्तं गुणाकरम्॥
श्रावयामास नूनं स ब्रह्माणं सुधियांवरम्।
तस्माल्लेभे वशिष्ठर्षिः क्रमादस्मादवातरत्॥
भूमौ हि राममन्त्रोऽयं योगिनां सुखदः शिवः।
एवं क्रमं समासाद्य मन्त्रराजपरम्परा॥

प्रस्तुत श्रीवाल्मीकि संहिता उपरोक्त उपनिषद् मार्ग को ही प्रस्फुटित करती है। इन्हीं उपनिषद् तथा संहिताओं में वर्णित श्रीसम्प्रदायीय परम्परा को ही जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी ने आबद्धकर अपनी परम्परा प्रस्तुत की है-

ψ गीतानन्दभाष्यम् ψ

श्रीरामं जनकात्मजामनिलजं वेधो वशिष्ठावृषी
योगीशं च पराशरं श्रुतिविदं व्यासं जिताक्षं शुकम्।
श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गाधराद्यान्यतीन्
श्रीमद्राघवदेशिकं च वरदं स्वाचार्यवर्यं श्रये॥

यानी अव सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के निर्देशानुसार श्रीब्रह्माजी सम्बन्धी क्रम बद्ध परम्परा यों बनी १-सर्वेश्वर श्रीरामजी २-सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ३-श्रीहनुमानजी ४-श्री ब्रह्माजी ५-श्रीवशिष्ठजी ६-श्रीपराशरजी ७-श्रीव्यासजी ८-श्रीशुकदेवजी ९-श्री पुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन (वि.पू. ५६९-३२०) १०-श्रीगङ्गाधराचार्यजी (वि.पू. ४८९-२८९) श्लोक के आदि शब्द से ११-श्रीसदानन्दाचार्यजी (वि.पू. ३३७-८०) १२-श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी (वि. पू. १३६-२३६ वि.) १३-श्रीद्वारानन्दाचार्यजी (१९६-३७६) १४-श्रीदेवानन्दाचार्यजी (३२६-५२६) १५-श्रीश्यामानन्दाचार्यजी (४८६-६८६) १६-श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी (६३६-८३६) १७-श्रीचिदानन्दाचार्यजी (७४६-८९६) १८-श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी (८६६-१०६७) १९-श्रीश्रियानन्दाचार्यजी (१०२६-१२०६) २०-श्रीहर्यानन्दाचार्यजी (११५६-१३५६) २१-श्रीराघवानन्दा चार्यजी (१२०६-१३९६) २२-वें में स्वयं आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामा नन्दाचार्यजी (१३५६-१५३२) आगे की अविच्छिन्न परम्परा निम्नानुसार है २३-श्रीभावानन्दाचार्यजी (१३७६-१५३९) २४-श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी (१५०३-१६११) २५-श्रीविरजानन्दाचार्यजी (१५५०-१७७५) २६-श्रीआशारामाचार्यजी-हाथीरामजी (१५६५-१७६८) २७-श्रीरामभद्राचार्यजी (१७३३-१७९८) २८-श्रीरघुनाथाचार्यजी (१७५७-१८०७) २९-श्रीविश्वंभराचार्यजी (१७७७-१८२७) ३०-श्रीराघवेन्द्राचार्यजी (१८०७-१८३८) ३१-श्रीवैदेहीवल्लभाचार्यजी (१८११-१८७१) ३२-श्रीकोसलेन्द्रा चार्यजी (१८३५-१८८५) ३३-श्रीरामकिशोराचार्यजी (१८५१-१९११) ३४-श्रीजानकीनिवासाचार्यजी (१८५१-१९१५) ३५-श्रीसाकेतनिवासाचार्यजी (१८६७-१९३५) ३६-श्रीजानकीजीवनाचार्यजी (१८७५-१९०२) ३७-श्रीभरताग्रजाचार्यजी

(१८४८-१९२३) ३८-श्रीहनुमदाचार्यजी (१९०७-१९७८) ३९-महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरी श्रीरघुवरीयवृत्तिकार (१९४३-२००७) ४०-जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र (१९४४-२०४६) भाष्यदीपकार ४१-आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी (१९८८) भाष्यप्रकाशकार महर्षि श्रीबोधायनजी (वि. पू. ५६९-३२०) से विश्रामद्वारका में संस्थापित श्रौत विशिष्टाद्वैतमत प्रचार-प्रसार परक आचार्यपीठ के वर्तमान पीठाचार्य हैं। जिन्हों ने श्रीरामानन्दसम्प्रदाय की श्री-ऐश्वर्य एवं दर्शन भण्डार के अमूल्यनिधि दोसौ से अधिक तात्विक दार्शनिक ग्रन्थों का निर्माणकर साधक-दर्शन जगत को प्रदान किया।

प्रकृत आर्ष प्रबन्धों के सामञ्जस्य में ही निम्न दिव्य प्रबन्ध-निबन्ध ग्रथित हुये हैं जिनके वास्तविक आलोक से श्रीसम्प्रदाय-श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के वास्तविक स्वरूप का अवलोकन कर तथ्यों से अवगत हुआ जा सकता है-

१- आचार्यस्मृतिः १ से ३८ तक आचार्यों का चरित चित्रण है ले. महामहोपाध्यय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरी।

२- आचार्यस्तुतिचन्द्रिका १ से ३९ तक आचार्यों की संस्तुति है ले. जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र।

३- प्राचार्यविजयध्वजः १ से २२ आचार्यों एवं ३६ द्वाराचार्यों का विवरण है ले. अभिनव वाचस्पति पण्डितसम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यजी।

४- आचार्यपरिचर्या १ से ४१ आचार्यों तथा ३६ द्वाराचार्यों का विवरण है ले. कविकिंकर श्रीबलरामदासजी त्यागी।

५- देशिकपरिचर्या १ से ४१ आचार्यों तथा ३६ द्वाराचार्यों का चित्रण है ले. आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी।

६- श्रीसम्प्रदायदिग्दर्शन १ से ४१ आचार्यों तथा ३६ द्वाराचार्यों का विवरण है ले. रामायणी श्रीअबधेशदासजी।

७- परम्परावन्दनम् १ से ४० आचार्यों का स्तव है ले. आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी

८- श्रीरामानन्दसम्प्रदाय का इतिहास १ से २२ आचार्यों का विवरण सम्पादक वैद्यराज श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री।

९- आचार्यमङ्गलध्वजः १ से ४१ आचार्यों का चित्रण ले. आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी

१०- श्रीरामानन्दसम्प्रदाय का इतिहास ३६ द्वाराचार्यों का चित्रण सम्पादक वैद्यराज श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री ।

११- गुरुमहिम्नस्तोत्रम् १ से ४० आचार्यों का स्तवन ले. आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी

१२- आचार्यकीर्तिलता १ से ४१ आचार्यों का चित्रण ले. पं. श्रीवैद्यनाथमिश्रजी ।

१३- जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यः १ से ४१ आचार्यों तथा ३६ द्वाराचार्यों का चित्रण ले. आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी

१४- आचार्यकीर्तिरत्नमंजूषा १ से ४१ आचार्यों के चरित्र चित्रण ले. विद्यावारिधि पं. श्रीघनेशझाजी ।

१५- श्रीशेषमठ-शींगडा ले. उमेशपाल वर्णवालजी ।

१६- श्रीरामानन्दसम्प्रदाय की पूर्व परम्परा का सांस्कृतिकपक्ष ले. श्रीपुष्पेन्द्र वर्णवाल आदि ॥११॥

मुमुर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् ।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव ? ॥१२॥

ज्ञानभक्त्याद्यनेकेषु मोक्षसाधनेषु सत्सु अपि षडक्षरतारकस्यात्यन्त सुकरत्वात् साधनान्तरनिपेक्षत्वात् उच्चारणमात्रसापेक्षत्वात्, सकलजीवाधिकारत्वात् अनुष्ठानानपेक्षत्वाच्च उपदेशमात्रेणैव सर्वेषां जीवानाम्मुक्तिरिति विज्ञाय यस्य कस्यापि दक्षिणे कर्णे मम मन्त्रमुपदेक्ष्यसि सोऽवश्यमुक्तोभवितेति, मां च प्राप्स्यतीत्यभिप्रायः ।

ज्ञान भक्ति वैराग्य आदि अनेक मोक्ष प्राप्ति के उपायों के होने पर भी षडक्षर तारक ब्रह्म श्रीराम महामन्त्र का अत्यन्त सुकर होने के कारण अन्य मोक्ष साधनों से निरपेक्ष होने के कारण और अनुष्ठान आदि की अपेक्षा नहीं होने के कारण केवल उपदेश देने से ही समस्त जीवात्मा मात्र की मुक्ति होती है इस तात्पर्य को भलि भाँति समझ कर उन्नत अवनत योनि जाति देशकाल अवस्था आदि में भी विद्यमान जिस किसी प्राणी के भी दाहिना कान में सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के षडक्षर तारक मन्त्र को

अत्राविमुक्तक्षेत्रनिवासिनामकृतपापानां विनाशितपापानाञ्च प्राणोत्क्रमण काले रुद्रोपदिष्टषडक्षरमन्त्रश्रवणसमकाले मुक्तिः। अकृतप्रायश्चित्तानान्तु कालभैरवकृतयातनया विशुद्ध्यनन्तरं रुद्रोपदेशान्मुक्तिः श्रूयते। यातना अपि स्वप्नादिभोगवत् रुद्धकण्ठस्य सम्भवति, न तु देहत्यागानन्तरम्। 'जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे' इतिसमानकालत्वज्ञापनात्। सपाप निष्पापभेदेनोपदेशभेदस्याश्रवणात्।

उपदेश करोगे वह जीवात्मा अवश्य ही मोक्ष को प्राप्त करेगा और अवसान काल में मुझे प्राप्त करेगा।

यहां पर अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने वाले जो कि कभी भी पाप कर्म नहीं किये हैं और जो मन्त्रोपासना आदि के द्वारा अपने अर्जित पापों का विनाश पूर्वकाल में ही कर चुके हैं ऐसे प्राणियों के प्राणों के निकलने के समय भगवान् रुद्र द्वारा उपदेश दिये गये षडक्षर तारक श्रीराम मन्त्र के श्रवण समकाल में ही मुक्ति हो जाती है। और जिन्होंने पाप किये हैं और पापों का प्रायश्चित्त नहीं किये हैं ऐसे प्राणियों का तो कालभैरव के द्वारा दी गई यातनाओं से पाप से विशुद्ध हो जाने के पश्चात् रुद्र के द्वारा तारक मन्त्रोपदेश के श्रवण से मुक्ति होती है। भैरवी यातनाओं के भी भोग स्वप्नादि भोग के समान मृत्यु के समय निरुद्ध कण्ठ प्राणी का हो सकता है। न कि देह त्याग करने के पश्चात् मुक्ति होती है। क्योंकि श्रुति कहती है प्राणी के प्राणों के निकलते हुए होने पर भगवान् रुद्र तारक मन्त्र का उपदेश करते हैं। इन दोनों का ही समान कालत्व प्रतिपादन किया गया है क्योंकि 'उत्क्रममाण' में वर्तमान अर्थ में शंतृ प्रत्यय किया गया है। तथा 'व्याचष्टे' में भी वर्तमानार्थक लट् लकार है अतः प्राणों का निकलता हुआ होना एवं रुद्रोपदेश दोनों समान कालीन है। पाप सहित एवं पाप रहित भेद से उपदेश भेद का श्रवण नहीं होने के कारण यह भेद समुचित नहीं लगता।

पुराण आदि का कथन भी शास्त्रों की मर्यादा संरक्षण के लिए है अथवा अविमुक्त क्षेत्र में पाप करने वाले प्राणियों के नरक भोग का अवसर नहीं हो इसके लिए अथवा अविमुक्त क्षेत्र में जिन्होंने यथेष्ट मात्रा में पाप किये हैं उनकी निन्दा के द्वारा नरक भोग का परित्याग करने के लिये या किसी अन्य अभिप्राय से पुराणादि की उक्तियां सुसंगत हो सकती है। यदि ऐसा नहीं होता तो परम दयालु भगवान्

पुराणाद्युक्तयोऽपि शास्त्रमर्यादार्थं वा अविमुक्तकृतपापानां नानादेश वासिनां नरकभोगवारणार्थमथवा । अविमुक्तकृतयथेष्टपापानां निन्दया नरकभोग हानार्थमन्याभिप्रायेण वोपपद्यन्ते । अन्यथा परमदयालोः शिवस्य निजक्षेत्र-वासिनामात्यन्तिकदुःखनिवृत्यर्थमियताश्रमेण श्रीरामं प्रसाद्यमुक्तियाचना कथमुपयुक्ता स्यात् । षडक्षरोपदेशात् न किञ्चित् पापमवशिष्यते यस्य निवृत्तये यातनावचनमुपपद्येत । यतोऽहिदेहत्यागसमकाले एव षडक्षरोपदेशसमकाले जीवमुक्तिः प्रारब्धस्यापि कर्मणः श्रीरामनामानुकीर्तनेन विनाशश्रवणात् तदुक्तं

शंकरजी के अपने क्षेत्र में निवास करने वाले प्राणियों के आत्यन्तिक दुःखों की निवृत्ति के लिए इतना महान् परिश्रम के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को प्रसन्न करके मुक्ति याचना करना किस प्रकार उपयुक्त हो सकेगी । षडक्षर तारक मन्त्र का उपदेश करने से पाप की कुछ भी मात्रा अवशिष्ट नहीं रह जाती है । जिस पाप की निवृत्ति के लिये यातना बोधक वचन युक्ति संगत हो सके क्योंकि जिस समय में शरीर का परित्याग करते रहते हुए हैं उसके समान काल में ही षडक्षर तारक ब्रह्म का उपदेश होता है। और उपदेश समकाल में ही जीवात्मा की मुक्ति हो जाती है । जिस कर्म का फल मिलना प्रारम्भ हो जाता है उसको प्रारब्ध कर्म कहते हैं । उस प्रारब्ध कर्म का भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का संकीर्तन करने से विनाश हो जाता है, ऐसा शास्त्रों में सुने जाने से प्रारब्ध कर्म मुक्ति प्राप्ति में बाधक नहीं है । 'साध्यभक्तिस्तु सा हन्त्री प्रारब्धस्यापि भूयसी' इस वचन एवं 'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम' इस अभयदायक वचन प्रमाण से श्रीराम प्रपन्न होकर श्रीरामनाम के जप करने वाले का प्रारब्ध कर्म नाश हो जाता है' इसप्रकार आनन्दभाष्यकारजी ने गीता १८/६६ में निरूपण किया है विशेषार्थी वहीं देखें । यही विषय कहा गया है-

हजारों एवं करोडों पातक और उपपातक से उत्पन्न होने वाले भी समस्त पापपुञ्ज भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के नाम का संकीर्तन करने से विनष्ट हो जाता है । मन के द्वारा किया गया पाप हो या वचन के द्वारा अथवा कर्तव्य के द्वारा समुपार्जित पाप हो, जिस किसी भी प्रकार का पाप हो वह सब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के स्मरण मात्र से ही तत्काल निश्चित रूपसे नष्ट हो जाता है । प्राणों के प्रस्थान के समय में जो जीवात्मा भगवान् श्रीरामजी के नाम का एक वार भी स्मरण करेगा वह सूर्यमण्डल

"कोटिकोटिसहस्राणि ह्युपपातकजान्यपि । सर्वाण्यपि प्रणश्यन्ति रामनामानुकीर्तनात् । मानसं वाचिकं पापं कर्मणा समुपार्जितम् । श्रीरामस्मरणादेव तत्क्षण्णान्नश्यति ध्रुवम् । प्राणप्रयाणसमये यस्तु नामसकृत्स्मरेत् । स भित्वा मण्डलं भानोः परम्पदमवाप्नुयात्" इत्यादिपुराणवचनानामुक्तार्थप्रकाशकत्वात् षडक्षरोपदेशस्याऽशेषपापविनाशश्रवणात् यातनाशब्दस्याश्रवणात् च । योऽविमुक्तं पश्यति स जन्मान्तरितान् दोषान् नाशयतीति अविमुक्तदर्शनमात्रेण ब्रह्मसंहितादिषु च षडक्षरस्याशेषाघविनाशकत्वश्रवणात् । अविमुक्तकृतपापविनाशाय यातनावचनं नोपपद्यते । श्रूयते च परेशश्रीरामचन्द्रस्य यातनां विनैवायोध्यावासिनां सर्वेषां स्थावरजङ्गमानां स्वपरमधामप्रापकत्वम् । पुराणादिषु श्रुतं यातनावचनमन्यदेशाभिप्रायकं नत्वविमुक्ताभिप्रायकम् ।

का भेदन करके परमधाम को प्राप्त करेगा । इत्यादि पुराणों में प्रतिपादित वचनों का पूर्व प्रतिपादित अर्थ का प्रकाशक होने से षडक्षर तारक मन्त्रोपदेश में सम्पूर्ण पापों के विनाश का सामर्थ्य है । तो यातना शब्द का इन वचनों में श्रवण नहीं होने के कारण असंगति बोधक होता है । जो व्यक्ति अविमुक्त नामक वाराणसी को देखलेता है वह व्यक्ति अन्य जन्मों में भी किये गये दोषों को विनष्ट करलेता है । इसप्रकार काशी क्षेत्र का दर्शन मात्र से ही पाप विनाश होता है । ऐसा ब्रह्मसंहिता आदि ग्रन्थों में भी कहा गया है कि षडक्षर तारक ब्रह्म में अशेष पाप पुञ्ज विनाशक क्षमता है। अविमुक्त क्षेत्र में किये गये पापों का विनाश करने के लिए भैरवी यातना होती है यह वचन उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है और सुना भी जाता है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के विना किसी प्रकार के यातना भोग के ही अयोध्या नगरी में निवास करने वाले समस्त स्थावर जङ्गम प्राणियों का अपने परमधाम प्राप्त कराना हुआ था। पुराण आदि ग्रन्थों में सुना गया यातना वचन का किसी अन्य देश में निवास करने वाले के अभिप्राय से हो सकता है, न कि अविमुक्त क्षेत्र वासी के अभिप्राय से । पुराण वचनों के विधान को उपेक्षा करके तिर्यग् योनि को प्राप्त करता है भले ही सुशान्त और सुदान्त भी हो किन्तु पुराण वचन के विपरीत आचरण करने वाला सद् गति को कहीं भी प्राप्त नहीं करता है। इस अग्नि पुराण के वचन के अनुसार पौराणिक वचनों का वेदार्थ सम्बर्धन स्वरूप होने से उलङ्घन करना उचित नहीं । वेद के रहस्यभूत अर्थ का प्रकाशक होने के कारण सभी पुराण वचनों का अपने तात्पर्य के विषय में प्रामाणिकता

"पुराणमन्यथाकृत्वा तिर्यग् योनिमवाप्नुयात् ।
सुशान्तोऽपि सुदान्तोऽपि न गतिं प्राप्नुयात् क्वचित् ॥

इत्यग्निपुराणवचनेन पुराणानां वेदार्थोपबृंहणरूपतया वेदगूढार्थप्रकाशकत्वेन सर्वेषां पुराणवचनानां स्वार्थे प्रामाण्यात् । 'क्षेत्रेऽस्मिन्' इत्यत्र 'माशुचः' इतिकथनेनाविमुक्तविषयपापिनो यातनां सूचयति, तद्भिन्नविषये शिवशोकानुपलभ्यात् । इत्थं श्रीरामं तद्भक्तान् वा ये न भजन्ते प्रत्युतदुर्वचोभिः दुराचरणैश्च ये अवजानन्ति पाषाणप्रतिमास्थितं न भजन्ते तत्कृते भैरवीयातनास्यादिति । अथवा प्राणेषूत्क्रममाणेष्वित्यत्र भूतकालार्थेवर्तमानत्वनिर्देशः स्वीकर्तव्यः । अन्यथा यातना हेतोः तारकोपदेशस्य सकलपापविनाशकत्वं न सिद्ध्येत । भूतकालार्थस्वीकारेतु पापरहितानां तारकोपदेशसमकाले मुक्तिः, काशीकृतपापानां श्रीरामपाषाणप्रतिमाद्यवहेलकानाञ्च भैरवीयातनाऽनन्तरं रुद्रद्वारातारकोपदेशान्मुक्तिरिति ।

प्राणप्रयाणसमये यस्तु नामसकृत् स्मरेत् ।
स भित्वा मण्डलं भानोः परम्पदमवाप्नुयादिति, स्मृतेः ॥

है । 'क्षेत्रेस्मिन्' इस वाक्य में 'शोक नहीं करें' इस कथन के द्वारा वाराणसी क्षेत्र में निवास करने वाले पापी जीवों की यातना को प्रकाशित करती है । वाराणसी से भिन्न क्षेत्र में निवास करने वाले के विषय में भगवान् शंकरजी का शोक होना सम्भव नहीं है । इसलिये वाराणसी निवासी पापियों के लिए ही भगवान् शंकर चिन्ता करते हैं । इसप्रकार भगवान् श्रीरामजी की अथवा श्रीराम भक्तों की जो सेवा नहीं करते हैं । प्रत्युत दूषित वचनों के द्वारा और दूषित आचरणों के द्वारा जो व्यक्ति श्रीराम और श्रीराम भक्त का अनादर करते हैं । पाषाण आदि की प्रतिमाओं में स्थित भगवान् श्रीरामजी का भजन नहीं करते हैं । उनके लिए यह कालभैरव की यातना होगी ऐसा सम्भव है । अथवा प्राणों के निकलते हुए होने पर इस वचन में भूतकाल अर्थ में वर्तमान काल का निर्देश किया गया है यह स्वीकार करना चाहिये । ऐसा स्वीकार नहीं करने पर भैरवी यातना के कारण का और तारक मन्त्रोपदेश का समस्त पाप विनाशकत्व सिद्ध नहीं हो सकेगा । यदि भूतकालार्थक वर्तमान प्रयोग मानते हैं तो पाप रहित प्राणियों का तारकोपदेश के समकाल में ही मुक्ति होती है । और जो काशी में निवास कर पाप किये हैं तथा श्रीरामचन्द्रजी के पाषाण प्रतिमा आदि की अवहेलना

श्रुतेश्च तारकोपदेशः सञ्चिताघनाशप्रारब्धाघनाशौसूचयति । सूक्ष्माघ सत्वेऽपि न साक्षात्काररस्वरूपामुक्तिः सम्भाव्यते ।

'रामेति द्व्यक्षरोमन्त्रोमरणे यस्तु संस्मरेत् ।
नरो न लिप्यते पापैः पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥'

इत्थं देशान्तरस्थितैरपि मुमुक्षुभिः तारकस्मरणं नित्यं विधेयम् नित्यमधीतस्य तारकस्यान्तकालेऽपि स्मृतेः । सदा तत् स्मरणकर्तुर्निखिल पापविनाशपूर्वकं निर्विवादोमोक्षः पापरहितानां काश्यां देशान्तरे च निवासे समानेऽपि फले काशीवासादपि तारकाश्रयस्याधिक्यं फलं प्रकाशयति । अविमुक्त कृतपापानां यातनाभोगानन्तरं तारकोपदेशेनैव मोक्षश्रवणात् ।

करने वाले हैं, उन्हें भैरवी यातना भोगने के पश्चात् भगवान् रुद्र के द्वारा तारकोपदेश करने से मुक्ति होती है, यह अभिप्राय बोध होता है।

प्राण-प्रयाण करते समय जो जीवात्मा एक वार भी भगवान् श्रीरामजी के नाम का स्मरण करता है वह तत्काल सूर्यमण्डल का भेदन करके परमपद को प्राप्त करता है, इस स्मृति एवं श्रुति वचनों से स्पष्ट अवगत होता है कि तारक मन्त्रोपदेश संचित पापों का विनाश एवं प्रारब्ध कर्म का विनाश दोनों कार्य एक साथ करता है । सूक्ष्म अंशों में यदि पाप का अन्त हो जाय तो साक्षात्कार स्वरूप तथा मुक्ति दोनो सम्भव नहीं है ऐसी सम्भावना नहीं की जा सकती है । जो व्यक्ति मृत्यु काल में 'राम' इस दो अक्षर मन्त्र का सम्यक् प्रकार से स्मरण करता है वह पाप से उसीप्रकार लिप्त नहीं होता है जैसे कमल का पत्ता पानी से लिप्त नहीं होता है अतः अन्य देशों में विद्यमान भी मुमुक्षुओं के द्वारा तारक मन्त्र का स्मरण नित्य प्रतिदिन अवश्य ही करना चाहिये प्रतिदिन अध्ययन किया हुआ तारक मन्त्र का देह के अन्त काल में भी स्मरणजनकत्व हो सकता है । सदैव तारक मन्त्र के स्मरण करने वाले का समस्त पापों का विनाशपूर्वक मुक्त होना निर्विवाद है । जो पाप रहित है, ऐसे प्राणियों का काशी में और अन्य देश में निवास करने में समान रूपता होने पर भी फल प्राप्ति में काशी निवास से भी तारक मन्त्र की अधिकता फल में है, इस आशय को प्रकाशित करता है। अविमुक्त क्षेत्र में जो पाप किये हैं, उनका भैरवी यातना भोग लेने के पश्चात् तारक मन्त्र के उपदेश से ही मोक्ष होता है ऐसा सुना जाता है, इसलिए तारक मन्त्र का किसी अन्य सहायक साधनों की अपेक्षा नहीं होने के कारण तारक जप परायण व्यक्ति का

तस्मात् तारकस्य सहायान्तरानपेक्षत्वात् तारकजपपरायणस्योपायान्तर शून्यस्य यथाकथञ्चिद् यत्रकुत्रापि स्थितस्य प्रारब्धकर्मफलावसानेऽशेषाघ विनाशपुरस्सरं मोक्षोनिर्विवादः । सुकरोपायत्वादभिमतसाधकत्वादशेषफल प्रदायकत्वाच्च सर्वमन्त्रश्रेष्ठत्वमपि विवादशून्यमेव ॥१२॥

जो तारक मन्त्र को छोडकर अन्य उपाय से शून्य है उस व्यक्ति का जिस किसी प्रकार से जिस किसी स्थान पर स्थित रहने पर भी प्रारब्ध कर्मों के फल भोगों के अन्तकाल में समस्त पापपुञ्ज का विनाश पूर्वक मोक्ष होता है यह सिद्धान्त निर्विवाद है। अत एव अत्यन्त सरल उपाय होने के कारण और अपने अभिमत प्रयोजन को सिद्ध करने वाला होने से तथा समस्त फल प्रदायक होने से सभी मन्त्रों में तारक मन्त्र की श्रेष्ठता है यह विषय भी विवाद शून्य ही है ॥१२॥

श्रीरामचन्द्रेणोक्तं योऽविमुक्तं पश्यति ।

स जन्मान्तरितान् दोषान् वारयति । तान् पापान्नाशयतीति ॥१३॥

ॐ इति चतुर्थकण्डिका ॐ

अस्याः कण्डिकाया अवसाने वरणायां नाश्यां मध्ये प्रतिष्ठितमविमुक्तमिति पूर्वोक्तं दृढयन् कथयति श्रीरामचन्द्रेण भगवता स्वपरमकृपया यदुक्तमविमुक्तं तं यः पश्यति ज्ञानचक्षुषा साक्षादवलोकयति । सोऽनन्तजन्मोपार्जितान् मनोवाक्कायकृतान् पापान् निवारयति । तत्तद्विषयेभ्य इन्द्रियाणि निरुद्ध्यापि उपार्जितान् पापान् निषिद्धाचरणरूपान् वा प्रबलतरान् पापान् नाशयतीति । इतिशब्दः कण्डिकासमाप्त्यर्थः ॥१३॥

卐 इति चतुर्थकण्डिका 卐

इस चतुर्थ कण्डिका के अवसान में वरणा और नाशी के अन्तराल क्षेत्र में प्रतिष्ठित अविमुक्त को जो पहले कह चुके हैं उसका दृढीकरण करते हुए कहते हैं→ भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा अपने जीव मात्र पर परम अनुकम्पा से जो अविमुक्त कहा गया है उस अविमुक्त को ज़ो देखता है अर्थात् अपनी ज्ञान दृष्टि से अवलोकन करता है। या साक्षात्कार करता है, वह अनन्त जन्मों द्वारा समुपार्जित मन वचन काया के द्वारा किये गये पापों को निवारित करता है। अर्थात् सैकडों जन्मों से अर्जित पापों को नष्ट कर देता है। उन-उन विषयों से इन्द्रियों को रोककर भी उपार्जन किये गये पाप कलाप को या निषिद्ध आचरण रूप पापों को ऐसे अत्यन्त

प्रबल पापों को नष्ट करता है। यहां पर इति शब्द चतुर्थ कण्डिका की समाप्ति सूचक है ॥१३॥

अथ हैनं भरद्वाजो याज्ञवल्क्यमुवाचाथ कैर्मन्त्रैः स्तुतः श्रीरामः प्रीतो भवति स्वात्मानं दर्शयति तन्नो व्रूहि भगवन्निति ॥१॥

अथ पूर्वं यत् श्रीरामचन्द्रस्य सर्वशब्दवाच्यत्वं सर्वावतारित्वमित्यादि निर्दिष्टं 'ब्रह्मणोरूपकल्पना, सर्ववाच्यस्य वाचकः' इत्यादि तदेव पञ्चमकण्डिकायां स्पष्टीकरोति। एवं योगीश्वरं याज्ञवल्क्यं भारद्वाजः पुनः पप्रच्छ भगवन् ? श्रीरामचन्द्र यैः मन्त्रैः संस्तुतः प्रसन्नोभवति स्वात्मानं च दर्शयति, ते के मन्त्रास्तदस्मान् कृपया भवान् कथयतु। श्रीरामचन्द्रोपदेशविषयीकृतं तापनीयमभिप्रायं सर्वरूपिणं सर्ववाच्यं श्रीरामं निर्णीय श्रीरामं प्रणम्य याज्ञवल्क्य उक्तवान् ॥१॥

इसके वाद जो पहले श्रीरामचन्द्रजी का सर्वशब्द वाच्यत्व सर्वावतारित्व इत्यादि प्रतिपादित किया गया है 'ब्रह्म के रूप की कल्पना सभी शब्दों के प्रतिपाद्य अर्थ का वाचक' इत्यादि वही विषय इस उपनिषद् के पञ्चम कण्डिका में अस्पष्ट अभिप्राय को सुस्पष्ट करते हैं।

उन योगीश्वर याज्ञवल्क्यजी से श्रीभरद्वाज ऋषि पुनः प्रश्न किये। हे भगवन् याज्ञवल्क्य ? भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जिन मन्त्रों के द्वारा सम्यक् स्तुति का विषय बनाये जाने पर प्रसन्न होते हैं। और अपने परम दिव्य मङ्गल विग्रह का साक्षात् दर्शन कराते हैं वे कौन से मन्त्र हैं, उन मन्त्रों को हमलोगों को परम कृपापूर्वक आप बतायें। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा उपदेश दिये गये श्रीरामतापनीय उपनिषद् के अभिप्राय स्वरूप सर्वरूपी सर्वशब्द प्रतिपाद्य भगवान् श्रीरामजी को निश्चित कर भगवान् श्रीरामजी को प्रणाम करके याज्ञवल्क्यजी श्रीभरद्वाज को कहे ॥१॥

सहोवाच याज्ञवल्क्यः श्रीरामेणैवं शिक्षितो ब्रह्मा पुनरेतया गाथया नमस्करोति ॥२॥

स याज्ञवल्क्यः उक्तवान् भगवता श्रीरामचन्द्रेणैवोपदिष्टः, ब्रह्मा भूयः वक्ष्यमाणया गाथया प्रणमति। याज्ञवल्क्यः शिष्टाचारपूर्वकं विश्वाधारमित्यादि कथयति तदाह ॥२॥

वे याज्ञवल्क्यजी श्रीभरद्वाजजी को कहे-भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा उपदेश दिये गये ब्रह्माजी पुनः आगे कही जाने वाली गाथा के साथ प्रणाम करते हैं। वही महर्षि याज्ञवल्क्यजी शिष्टाचार परिपालन पूर्वक विश्वाधारं इत्यादि मन्त्र को कहते हैं इस मन्त्र के विषय में विशेष चर्चा पवित्रा टीका में किया हूँ वहीं से अनुसन्धान करें ॥२॥

श्रीराममंत्रप्रदाचार्य, श्री ब्रह्माजी

विश्वाधारं महाविष्णुं नारायणमनामयम्
पूर्णानन्दैकविग्रहं परंज्योतिः स्वरूपिणम् ।
मनसा संस्मरन् ब्रह्मा तुष्टाव परमेश्वरम् ॥३॥

अत्रायं प्रश्नः श्रीरामचन्द्रस्य महाविष्णवादि-कार्यत्वमभिमतमाहोस्वित् तत्कारणत्वं वा । ब्रह्मा-विष्णुनारायणवासुदेवादीनां बहूनां चेतनानां युगपत् चिद् रूपैककार्योत्पादनस्याशक्यतया, पिण्डीयभूयैकरूपेणावस्थानासिद्धेश्च महाविष्णवादिकार्यत्वं न भवितुमर्हति । श्रीविष्णुहर्यादीनाञ्च पुराणादिप्रसिद्धानां मूलकारणत्वस्य पूर्वतापनीये उपक्रमभागे खण्डितत्वात् कारणत्वं न सम्भवति । तदुक्तम्-

मणिर्यथाविभागेन नीलपीतादिभिर्युतः ।
रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात्तथाच्युतः ॥

यहां प्रश्न उठता है कि श्रीरामचन्द्रजी का महाविष्णु आदि का कार्यत्व है, यानी कार्यत्व अभिमत है अथवा महाविष्णु आदि में श्रीरामचन्द्रजी का कारणत्व अभिमत है ? ब्रह्मा, विष्णु, नारायण वासुदेव आदि बहुत चेतनों का एक कालावच्छेदेन चिद्रूप एक कार्य का उत्पादन करना अशक्य होने के कारण यदि कहें सभी मिलकर एक रूप में कार्य उत्पन्न करते हैं तो यह सम्भव नहीं । इसलिये महाविष्णु आदि का श्रीरामचन्द्रजी में कार्यत्व नहीं हो सकता है । श्रीविष्णु हरि आदि का जो पुराण आदि में प्रसिद्ध मूलकारणत्व कहा गया है उसका श्रीरामतापनीय उपनिषद् के भूमिका भाग में खण्डन किया जा चुका है । इसलिये महाविष्णु आदि में कारणत्व होना भी सम्भव नहीं है । इसीलिये कहा गया है जिसप्रकार मणि अविभक्त रूपसे नील, पीत आदि अनेक गुणों से सम्पन्न होता है उसी प्रकार भगवान् अच्युत भी ध्यान भेद से अनन्त

इतिस्मृतेः । एककालावच्छेदेनानन्तरूपवान् भवितुं शक्नोति विलक्षणसा मर्थ्यसम्पन्नत्वात् । यथा सौभरिः, इत्यनुमानबलेन 'ब्रह्मणोरूपकल्पनेतिश्रुतेश्च श्रीरामचन्द्रस्यानेकरूपधारित्वसिद्धेः । श्रीरामस्य द्विभुजादिसहस्रान्तभुजवद् विग्रहवत्वेन प्रयोजनवशाद् बहुरूपधारित्वेन च सर्ववाच्यस्य वाचकत्वम् । श्रीविष्णु महाविष्णुवासुदेवनारायणहरिमहेश्वरादीनान्तु व्यापकत्वस्वभक्तदुःखहारित्वसर्वनियन्तृत्वादिविशिष्टवाचकानां गुणद्वारा तद्वाचकत्वम् । श्रीरामव्याप्यदेवासुर मानवादिवाचकानां तु सर्वशरीरिणस्तद्वाचकत्वं गम्यते । एवमादिविषयं हृदि-निधायविश्वाधारमित्याद्याह विश्वाधारत्वशक्तिमन्तं महाविष्णुम् । आकाशादौ अतिव्याप्तिवारणाय महदिति विशेषणम् । व्यापकानामपि आकाशादीनां व्यापकम् । सर्वव्यापकस्य परमेश्वरस्य सर्वनियन्तृत्वेन हेतुत्वमुपपद्यते । सर्वव्यापकत्व बोधकेन महाविष्णुपदेन चिन्मयपदार्थविशेषितः । चतुर्भुजबोधकं विष्णुपदं तु यौगिकम् । अतएव श्रीमद्वाल्मीकीये दुर्धर्षत्वाद्यर्था उक्ताः । चेतनानां स्वकारणस्याधारत्वासिद्धेः, श्रीरामस्य विष्णवादिव्यापकत्वेन मूलकारणत्व द्योतनाय महदित्युक्तम् । संसारस्यावान्तरकारणत्वं कथयन्नाह नारायणमिति ।

रूपों के भेद को प्राप्त करते हैं इस स्मृति वचन के अनुसार एक साथ ही भगवान् श्रीरामजी अनन्त रूपों से सम्पन्न हो सकते हैं क्योंकि भगवान् विलक्षण सामर्थ्य से परिपूर्ण हैं । जिसप्रकार सौभरि जीव होकर भी अनन्त देहों को धारण किये थे । इसी अनुमान के बल से तथा 'ब्रह्मणोरूपकल्पना' इस श्रुति वचन के अनुसार एक ही परब्रह्म श्रीरामजी में अनन्त रूपों की कल्पना होती है । भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का इसप्रकार अनन्तरूपधारित्व सिद्ध होता है । श्रीरामजी का द्विभुज से आरम्भ कर सहस्र भुज पर्यन्त शरीर धारी होने से प्रयोजनवश बहुत प्रकार के रूपधारी होने से सभी शब्दों के वाच्यार्थ का वाचक श्रीरामजी हैं ऐसा वेद स्मृति शास्त्रों से नियत है । विष्णु महाविष्णु, वासुदेव, नारायण, हरि महेश्वर आदि की व्यापकत्व तो अपने भक्तों के दुःखहारित्व सर्वनियन्तृत्व आदि विशिष्ट वाचकों का गुण द्वारा श्रीरामवाचकत्व से है । क्योंकि भगवान् श्रीरामजी के व्याप्य देवता असुर मानव आदि वाचक शब्दों का तो सभी का शरीरी श्रीरामवाचकत्व प्रतीत होता है । इत्यादि विषयों को मन में रखकर 'विश्वाधारं' इत्यादि मन्त्र का प्रारम्भ करते हैं । विश्व के आधारत्व शक्ति सम्पन्न महाविष्णु को आकाश आदि अर्थ में अतिव्याप्ति दोष ग्रस्त नहीं होना पडे इसलिये

अप्सु आयतनकरणात् नारायणेति संज्ञां प्राप्तवानित्यवगम्यते । अत्र सामान्य शब्दत्वेन ज्ञातोनरशब्दोविशेषशब्दवाच्ये श्रीरामचन्द्रेपर्यवसन्नमतः नारायण कारणत्वं बोधयति । तेन सर्वकारणत्वं द्योत्यते । अतएव 'महार्णवेशयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः' इतिश्रीरामकार्यत्वं दुर्वारमेव । 'छागो वा मन्त्रवर्णात्' इतिवत् सति विशेषोपस्थापके सामान्यवाचकशब्दस्य विशेषेपर्यवसानात् । 'महार्णवे शयानोप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः' इतिश्रीरामविग्रहविशेषं प्रति ब्रह्मणोवचने श्रीरामस्यैव नारायणकारणत्वमवगम्यते । सामान्यतो नारायणकारणत्वेन उच्चारिते नरशब्दवाच्ये श्रीरामे एव निश्चयात् । 'अनामयम्' इति 'आमयो रोग' तत्कारणमविद्या, इत्थमनामयमित्यस्याऽविद्यासम्बन्धरहितमित्यर्थः । पूर्णानन्दैकविग्रहमिति बोध्यते यत् पूर्वमिति विशेषणेन कदाचिदपि दुःखित्वं केनापि अंशेन

विष्णु शब्द में महत् यह विशेषण प्रयोग किया गया है क्योंकि आकाश आदि व्यापक पदार्थों का भी भगवान् श्रीरामजी महाव्यापक हैं । सर्व व्यापक परमेश्वर का सर्व नियामकत्व हाने से कारणत्व युक्ति संगत होता है । सर्वव्यापक बोधक महाविष्णु पद के द्वारा चिन्मय पदार्थ विशेषित किया गया है । चतुर्भुजधारी बोधक विष्णु पद तो यौगिक है । इसीलिये वाल्मीकीय श्रीमद्रामायण में दुर्धर्षत्व आदि अर्थ कहे गये हैं। चेतन पदार्थों का अपना ही कारणत्व होना सिद्ध नहीं हो सकता है । इसलिये श्रीरामजी का विष्णु आदि पदार्थ का व्यापक होने के कारण मूलकारणत्व प्रकाशित करने के लिए महत् यह विशेषण प्रयोग किया गया है। संसार की अवान्तर कारणता को कहते हुए मन्त्र में 'नारायणम्' इस शब्द का प्रयोग करते हैं । जल में आयतन करने के कारण नारायण इस नाम को प्राप्त किया यह अभिप्राय प्रतीत होता है । यहां पर सामान्य शब्द के रूपमें ज्ञात नर शब्द विशेष शब्द प्रतिपाद्य श्रीरामचन्द्र अर्थ में परिपूर्ण होता है, इसलिए नारायण कारणता श्रीरामजी में बोध कराता है इससे श्रीरामजी की सर्वकारणता प्रकाशित होती है । इसीलिए ही 'महा सागर में सोते हुए आप जलके अन्दर मुझे वार-वार जन्म दिये' इस स्मृति वचन से नारायण आदि का श्रीराम कार्यत्व होना किसी भी स्थिति में नहीं रोका जा सकता है । 'छागो वा मन्त्र वर्णात्' इस श्रुति वचन के उपस्थापक होने पर सामान्य वाचक शब्द का विशेष अर्थ में परिपूर्णत्व होता है । तदनुसार महासागर में सोते हुए आप मुझे पुनः पुनः जन्म दिये, इस कथन से श्रीरामचन्द्रजी का शरीर विशेष के प्रति ब्रह्मा के वचन में श्रीरामजी का ही नारायण

दुःखप्रवेशत्वं च निरस्तं भवति। तेन पूर्णं यत् आनन्दं तदेव एकं विग्रहः शरीरं यस्य तम्। अत्र आनन्दप्रधानत्वात् विग्रहस्य आनन्दरूपत्वमुक्तं भवति। 'परंज्योतिः रूपिणम्' अत्र ज्योतिः चिन्मयशब्दौपर्यायौ। ज्योतिषामुत्कृष्टं यत् ज्योतिः तत्स्वरूपमस्ति अस्य तम्। भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य मुक्तजीवप्राप्यत्वं बोध्यते। परमेश्वरमिति ब्रह्मादीनामपि स्वामीत्वं प्रकाश्यते। एवं विधं श्रीरामचन्द्रं ब्रह्मामनसाहृदयेन संस्मरन् स्तुतिमकरोत् ॥३॥

कारणत्व प्रतीत होता है। सामान्य रूपसे नारायणकारणत्व के उच्चारण करने पर नर शब्द प्रतिपाद्य श्रीरामचन्द्रजी में ही निश्चय होता है। मन्त्र में 'अनामयं' इस शब्द का प्रयोग किये हैं। आमय रोग को कहते हैं। इस संसाररूपी रोग का कारण अविद्या है। इसप्रकार अनामय शब्द का अर्थ अविद्या सम्बन्ध से रहित होता है। 'पूर्णानन्दैकविग्रहम्' इस पद से ज्ञात कराया जाता है कि पूर्णं इस विशेषण के द्वारा किसी अवस्था में भी दुःखित्व, किसी अंश में भी दुःख प्रवेशत्व निवारित होता है। इससे पूर्ण जो आनन्द वही है एक मात्र शरीर जिसका उन श्रीरामचन्द्रजी को, यहां पर श्रीरामचन्द्रजी के शरीर में आनन्द अर्थ की प्रधानता के कारण आनन्दरूपत्व प्रतिपादित होता है। 'परंज्योतिः रूपिणं' इस प्रयोग में ज्योति शब्द और चिन्मय शब्द पर्याय वाचक है। बहुत प्रकार के प्रकाशों में भी जो उत्कृष्ट प्रकाश है वह स्वरूप है जिनका उन श्रीरामचन्द्रजी को। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का मुक्त जीवों द्वारा प्राप्यत्व बोध कराया जाता है। 'परमेश्वरं' यह पद ब्रह्मा आदि का भी भगवान् श्रीरामजी नियामक हैं, क्योंकि भगवान् श्रीरामजी का ब्रह्मा आदि का भी नियामक होने से उनका स्वामित्व प्रकाशित होता है इसप्रकार के विशे षताओं से परिपूर्ण श्रीरामचन्द्रजी को ब्रह्मा मन ही मन स्मरण करते हुए स्तुति किये ॥३॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमात्मा
नन्दात्मा यत् परंब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमोनमः ॥१॥

यः सर्वशास्त्रेषु प्रख्यातः भगवान् श्रीरामचन्द्रः 'ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यतेजोवीर्याद्यशेषगुणवान् भगवानुच्यते, तदुक्तम्-रामः सर्वगुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्धनः' तथैव श्रीरामभगवत्वे जगद्गुरुश्रीगङ्गाधराचार्याः-

''ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांसि षड्गुणाः ।
भगवत्त्वेनेरिताः सन्ति श्रीरामे भगवान् स तत् ॥
श्रीरामे भगवच्छब्दो मुख्यवृत्त्या प्रवर्त्तते । गौण एव स चान्यत्र षड्विधैश्वर्यलेशतः ॥
स्वप्रकाशश्च सर्वेषां सर्वदा भासको विभुः ।
गुणश्चालोचकैः प्राज्ञैर्ज्ञानत्वेन प्रकीर्तितः ॥
सामर्थ्यमद्भुतस्याथकर्मणः करणे च यत् ।
तद्धिशक्तितया प्रोक्तो गुणो भागवतो महान् ॥
सर्वधारणसामर्थ्यं गुणोबलतया मतः ।
जगतो रचनायां हि श्रमाभावोऽथवा च सः ॥
नियन्तृत्वञ्च सर्वेषामैश्वर्यं परिकीर्तितम् ।
सर्वस्य जगतश्चाथो स्वतन्त्रकर्तृता हि तत् ॥
विश्वोपादानता रामेश्रुतिशङ्के हि विश्रुता ।
प्रोक्ता वीर्यतया तस्य तथात्वेप्यविकारिता ॥
तेजश्च नैरपेक्ष्यं हि परस्य सहकारिणः ।
पराभिभवसामर्थ्यं मता वा जानकीपतेः ॥ इति''

अद्वैतम् स्वसमाभ्यधिकरहितः 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च श्रूयते' इतिश्रुतेः । परमानन्दं सर्वोत्कृष्टं केवलं दुःखप्रतियोगियदानन्दं तदेवात्मा यस्य तदाविधम् । पूर्णानन्दैकविग्रहम् । सच्चिदानन्दाद्वैतैकरसात्मेतिश्रुतेः । यः परब्रह्मशब्दप्रतिपाद्यम् । भूर्भुवः स्वरितिलोकनिर्देशेन भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य सर्वत्रानुस्यूतत्वेन सर्वकारणत्वमुपपद्यते, अथवा लोकादिरसस्वरूपभूर्भुवः स्वः स्वरूपत्वेन श्रीरामचन्द्रस्य सकललोकस्वामित्वं निखिलदेवोपास्यत्वं सर्ववेदप्रतिपाद्यत्वं च प्रदर्श्यते । व्याहृतेः लोकादिरसत्वं छान्दोग्योपनिषदि निरूपितम् । प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानानां रसान्प्राबृहदग्निपृथिवीवायुमन्तरिक्षादादित्योदिवः स एवस्तिस्त्रोदेवता अभ्यतपत्तासां तप्यमानानां रसान् प्रावृहद्भूरितिऋक्भ्योभुव इति यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्य इति तस्मै वै इति । 'अर्धमात्रात्मको रामोब्रह्मानन्दैकविग्रहः । पूर्णानन्दैकविग्रहं परंज्योतिः स्वरूपिणम् ।

अहमोंतत्सत्यत्परं ब्रह्मरामचन्द्रः।' एवमादिश्रुतिषु परमानन्दैकविग्रहत्वेन परंज्योतिः स्वरूपत्वेन परब्रह्मशब्दाख्येन च प्रसिद्धः । लोकशास्त्रप्रसिद्धावतारद्योतितः श्रीरामः उच्यते। श्रीरामस्य दिव्यमङ्गलविग्रहे अद्वैतैकरसस्वरूपकथनात् सर्वोत्कृष्टत्वमुच्यते । स परंपुरुषशब्दवाच्यः परमात्मा रामचन्द्रः तस्मै नमोनमः । एतेनास्य मन्त्रस्य षडक्षरार्थबोधकत्वं प्रतीयते ॥१॥

जो सभी वेदादि शास्त्रों में प्रसिद्ध भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं, ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, तेज, वीर्य आदि अशेष गुणों से सम्पन्न को भगवान् कहा जाता है जगद्गुरु श्रीगङ्गाधराचार्यजी ने श्रीरामभगवत्व में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है वह मेरी टीका में वहीं देखें । यही अन्यत्र भी कहा गया है कि सभी गुणों से परिपूर्ण माता कौशल्याजी के आनन्द बर्धक सर्वेश्वर श्रीरामजी हैं। अपने समान या अपने से अधिक गुणशाली से रहित होने के कारण श्रीरामजी को अद्वैत कहा जाता है। श्रीरामजी के समान अथवा अधिक न देखा जाता है न सुना ही जाता है, इसी श्रुति के अनुसार सर्वोत्कृष्ट केवल दुःख का प्रतिद्वंदी जो एकमात्र आनन्द है वही है स्वरूप जिनका ऐसे परमानन्द स्वरूप श्रुति भी कहती है पूर्ण आनन्द ही एकमात्र जिनका शरीर है। सत् चित् आनन्द, अद्वैत मात्र रस स्वरूप है जिनका जो परब्रह्म शब्द से प्रतिपादन करने योग्य है, भूः भूवः, स्वः ये तीन शब्द तीनों लोकों का निर्देशक होने से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का सभी लोकों में अनुस्यूत अर्थात् कण कण में व्याप्त होने के कारण सर्वकारणत्व युक्ति युक्त होता है। अथवा लोकों का रस स्वरूप भूर्भुवः स्वः स्वरूप में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का सभी लोकों का स्वामित्व समस्त देगण का उपास्यत्व एवं सभी ऋग् यजुः सामाथर्व वेदों से प्रतिपाद्यत्व प्रदर्शित किया जाता है। भूर्भुवः स्वः इन महाव्याहृतियों का सभी लोकों का रसस्वरूपत्व छान्दोग्योपनिषद् में निरूपण किया गया है कि प्रजापति ने सभी लोकों को पूर्ण रूपसे तपाया उन तपते हुए समस्त लोकों का रस प्रवाहित हुआ। उससे अग्नि, पृथिवी, वायु अन्तरिक्ष आदित्यमण्डल एवं स्वर्ग हुआ। वहीं ये तीनों देवतायें तपायी गई, इन देवताओं के भी अतिशय मात्रा में संतप्त होने पर रस प्रवाहित हुआ। भूः भूवः स्वः ये तीनों वेदों से रस स्वरूप हुए एकमात्र पूर्णानन्द स्वरूप परंज्योतिस्वरूप अर्धमात्रात्मक ॐकार स्वरूप जो परंब्रह्म हैं वही श्रीरामचन्द्रजी हैं। इत्यादि श्रुतियों में परमानन्द विग्रह के रूपमें परं ज्योति स्वरूप में तथा परं ब्रह्म नाम से प्रतिपाद्य प्रसिद्ध है। लोक एवं शास्त्रों में जो

भगवान् के प्रख्यात विभिन्न अवतार हैं उन शब्दों से प्रकाशित सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी कहे जाते हैं क्योंकि "सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः" इसप्रकार सभी अवतारों के एकमात्र अवतारी श्रीरघुनाथजी हैं ऐसा आगम शास्त्र में प्रतिपादित है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के अलौकिक परम मङ्गलकारी स्वरूप में अद्वैत एकमात्र रसस्वरूप कहा गया है इसलिए भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को सर्वोत्कृष्ट कहा जाता है। वे परमपुरुष अर्थात् पुरुषोत्तम शब्द से प्रतिपाद्य परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी हैं। उनको भूयोभूयः प्रणाम है। इस कथन से उपर्युक्त मन्त्र का षडक्षर तारक ब्रह्म मन्त्रार्थ प्रतिपादकत्व प्रतीत होता है ॥१॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्चाखण्डैकरसात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमोनमः ॥२॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यच्च यो ब्रह्मानन्दामृतं भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यत्तारकंब्रह्म भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४॥

आभ्यां मन्त्राभ्यां श्रीरामचन्द्रस्य स्वरूपावताराभ्यामानन्दस्वरूपत्वमस्पृष्ट संसारधर्मत्वं स्वभक्ततारकत्वं च प्रतिपाद्यते । तेन श्रीरामतारकवाच्ययोरभेदत्वमुक्तं भवति ॥२/३/४॥

उपर्युक्त इन मन्त्रों के द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का विभिन्न स्वरूपों का आनन्द स्वरूपत्व सांसारिक धर्मों से सम्पर्क नहीं होना एवं अपने समस्त भक्तों का उद्धारकत्व होने के कारण तारकत्व प्रतिपादित होता है। इससे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी और तारक शब्द प्रतिपाद्य अर्थ का अभेद सम्बन्ध कहा जाता है ॥२/३/४॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यो ब्रह्मविष्णुरीष्वरोयः
सर्वदेवात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥५॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् ये सर्वे वेदासांगाः

सशाखाः सपुराणाः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥६॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

यो जीवात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥७॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

यः सर्वभूतान्तरात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥८॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

यो देवासुरमनुष्यादिभावाः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥९॥

एभिः मन्त्रैः अन्तर्यामीस्वरूपत्वं प्रतिपाद्यते । सुरासुरमानवादीनां चेतनानामचेतनानाञ्च श्रीरामचन्द्रव्याप्यत्वेन तदविनाभावेन तदभिन्नसत्ताकत्वसिद्धेः सामानाधिकरण्यनिर्देशः सकलचराचरविषयकश्रीरामरूपभावनाबोधाय प्राणिनामानुकूल्याय, अथवा सदारामोऽहमितिश्रीरामरूपत्वदर्शनविधान इव चराचरस्य श्रीरामाभिन्नसत्ताकत्वेन स्वात्मानं ये श्रीरामस्वरूपेण पश्यन्ति त एव श्रीरामस्य सम्यक् समुपासकाः । तदुक्तम् महारामायणे-

भूमौ जले नभसि देवनरासुरेषु, भूतेषु देवि सकलेषु चराचरेषु ।
पश्यन्ति शुद्धमनसा खलुरामरूपं, रामस्य ते भुवितले समुपासकाश्च ॥

एवं विधा ये प्राणिनः सन्ति ते जीवन्तोऽपि मुक्तसमा एव । अत्र विषये श्रुतिरप्याह-न ते संसारिणोनूनं राम एव न संशयः' इति । स्वात्मनि सर्वत्र च जगति श्रीरामरूपदर्शिनां जीवनमुक्तसमत्वमेवेत्यत्र न सन्देहः ॥५/६/७/८/९॥

इन मन्त्रों के द्वारा सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का अन्तर्यामी स्वरूप प्रतिपादित होता है देवता असुर मानव आदि सचेतन प्राणियों को और अचेतन प्राणियों को श्रीरामचन्द्रजी से व्याप्य होने से तथा श्रीरामजी को सर्वत्र व्यापक होने से श्रीरामजी के साथ इनका अविनाभाव सम्बन्ध होने से श्रीरामजी से अभिन्न सत्ता इनकी सिद्ध होने के कारण इनमें समान विभक्तिकत्व निर्देश यह प्रकाशित करता है कि समस्त चराचर के विषय में भी श्रीरामजी के परम भक्तों का श्रीरामस्वरूपत्व का बोध हो। एवं भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की प्राणी मात्र के प्रति अनुकूलता का व्यवहार रहता है।

अथवा सदैव मैं रामात्मक हूँ ऐसी भावना करे' इस श्रुति वचन के अनुसार जैसे सर्वत्र श्रीराम स्वरूपत्व का विधान है उसी प्रकार समस्त जडचेतनात्मक संसार को श्रीरामजी से अभिन्न सत्ता है जिनकी इस रूपमें जो अपने आप को भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के स्वरूप में अनुभव करते हैं वे श्रीराम भक्त श्रीरामचन्द्र स्वरूप जैसे ही हैं। और वे ही वास्तविक में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सम्यक् उपासना करने वाले हैं। यही विषय महारामायण में कहा गया है→हे देवि ? पृथिवी पर जल में आकाश में देवता मनुष्य और असुरों में समस्त प्राणियों में तथा सभी चराचर जगत् में अत्यन्त विशुद्ध भावना से जो भगवान् श्रीरामजी के स्वरूप को देखते हैं वे ही भगवान् श्रीरामजी के सम्यक् समुपासक हैं। इस तरह के जो प्राणी हैं वे अपनी जीवन अवस्था में भी मुक्त जैसे ही हैं। इस विषय में श्रुति भी कहती है→सर्वत्र श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करने वाले प्राणी निश्चित ही संसारी नहीं है श्रीराम स्वरूप ही हैं इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं है। इसप्रकार स्वयं में एवं सर्वत्र संसार में श्रीराम स्वरूप देखने वाले श्रीराम भक्त जीवन मुक्त से ही हैं। इस विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥५/६/७/८/९॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
मत्स्यकूर्मवराहाद्यवताराः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१०॥

अवतारत्वकथनं 'सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः' इत्यागमोक्ते लीलाविभूतौ प्राकट्यमात्राभिप्रायेण, न तु नूतनाकृतिधारिणः 'सर्वेनित्याः शास्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः' इतिस्मृतेः सर्वेषां भगवद्विग्रहाणां नित्यत्वबोधनात् ॥१०॥

प्रकृत मन्त्र में अवतारत्व कथन मत्स्य कूर्म आदि सभी अवतारों के अवतारी समय-समय पर भिन्न-भिन्न अवतार लेने वाले श्रीरघुनाथजी हैं इस आगम वचन के अनुसार लीलाविभूति में प्रकटता मात्र के तात्पर्य से है न कि नवीन स्वरूप धारण के अभिप्राय से क्योंकि उन परमात्मा का समस्त शरीर नित्य और शास्वत हैं इस कथन के अनुसार भगवान् के समस्त विग्रहों का नित्यत्व बोध कराये गये हैं ॥१०॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्चप्राणो भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥११॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
योऽन्तःकरणचतुष्टयात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१२॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्चप्राणो भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१३॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्चान्तको भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१४॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्च मृत्युः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१५॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्चामृतं भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१६॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यानि पञ्च महाभूतानि भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१७॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यः स्थावरजङ्गमात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१८॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
ये पञ्चाग्नयो भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥१९॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
याः सप्तव्याहृतयो भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२०॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
या विद्या भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२१॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
या सरस्वती भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२२॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
या लक्ष्मी भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२३॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
या गौरी भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२४॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
या जानकी भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२५॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यच्च त्रैलोक्यं भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२६॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्च सूर्य्यः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२७॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्च सोमः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२८॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यानि नक्षत्राणि भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥२९॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
ये च नवग्रहाः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३०॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
ये चाष्टौलोकपालाः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३१॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
ये चाष्टौ वसवः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३२॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
ये चैकादशरुद्राः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३३॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
ये च द्वादशादित्याः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३४॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यच्च भूतभव्यं भविष्यत् भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३५॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यो ब्रह्माण्ड-
स्यान्तर्बहिर्व्याप्नोति यो विराट् भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३६॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यो हिरण्यगर्भः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३७॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
या प्रकृतिः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३८॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्चोंकारः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥३९॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
याश्चतस्त्रोऽर्धमात्रा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४०॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यः परमपुरुषः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४१॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्च महेश्वरः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४२॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यश्च महादेवः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४३॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् ॐ नमोभगवते
वासुदेवाय यो महाविष्णुः भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४४॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यः परमात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४५॥
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्
यो विज्ञानात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४६॥

अन्तकः प्रलयकारी, मृत्युः प्रारब्धकर्मभोगावसाने मारकः । यो वै ब्रह्माण्डस्यान्तर्बहिः इत्यत्र विराट् शब्देन नारायण उच्यते ।

यच्च किञ्चिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥

इतितुल्यार्थकश्रुत्या नारायणस्य जगद्बहिरन्तर्व्यापित्वबोधकश्रुतेः । अन्यत्र च विराट् पदस्थाने नारायणपदप्रयोगाच्चानयोरैक्यं बुध्यते । ॐ नमो भगवते वासुदेवायेत्यत्रैकस्मिन् मन्त्रे वासुदेवभगवत्शब्दयोः पाठादेकत्वं ज्ञायते । अत्रोपनिषदि ये मत्स्यकूर्मादयः यानि पञ्चभूतानि याः सप्तव्याहृतयः इत्यादिषु बहुवचनं पुंस्त्रीनुंसकत्वञ्चोक्तम् । श्रीरामचन्द्रानुवादेन तेषां विधानात् प्रसिद्धमुद्दिश्याप्रसिद्धस्य च विधानात् विधेयानां पार्थक्यं बोध्यते । इत्थं सर्वरूपी श्रीरामस्तत्तदाकारेण प्रतीयतेऽभिधीयते च । सर्वं तदात्मकं तदविनाभूत-मित्यर्थः । जीवप्रकृत्योश्च तात्विकोऽभेदः ॥११/४६॥

अन्तकः का अर्थ प्रलयकारी है । मृत्यु का अर्थ जिस कर्म का फल मिलना प्रारम्भ हुआ है उस प्रारब्ध कर्म फल के भोग के अन्त में मारने वाला मृत्यु अन्तक

कहलाता है। जो 'ब्रह्माण्ड के भीतर बाहर' इत्यादि मन्त्र में विराट् शब्द से श्रीनारायण कहे जाते हैं। जो कुछ भी इस संसार में पदार्थ दिखलाई देता है अथवा सुनाई देता है। जो भीतर है और जो बाहर है, उन सभी पदार्थों को व्याप्त करके श्रीनारायण स्थित है। यह कथन तो समानार्थ प्रतिपादक श्रुतियों के द्वारा श्रीनारायण शब्द का संसार के अन्दर और बाहर में व्यापकत्व रूपसे रहने वाले नारायण है, इस व्यापकत्व बोधक श्रुति के द्वारा कहा गया है। और अन्य स्थान पर विराट् पद के स्थान पर श्रीनारायण शब्द का व्यवहार किये जाने के कारण नारायण और विराट् इन शब्दों का अर्थ एक हैं, यह अभिप्राय ज्ञात होता है। और ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र में एक ही मन्त्र में वासुदेव और भगवत् इन दोनों शब्दों का व्यवहार दोनों का पाठ होने के कारण यह अभिप्राय ज्ञात होता है कि वासुदेव और भगवत् शब्द एक पदार्थ है। इस श्रीरामतापनीय उपनिषद् में जो मत्स्य कूर्म वराह आदि और जो जो पञ्च महाभूत और सात व्याहृतियां इत्यादि प्रयोगों में जो पुलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग तथा बहुवचन आदि का व्यवहार किया गया है ये विभिन्न लिङ्ग और विभिन्न वचनों के प्रयोग से प्रतीत होता है कि श्रीरामचन्द्रजी का अनुवाद के द्वारा उनका व्यवहार किये जाने के कारण प्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग करने के साथ-साथ अप्रसिद्ध शब्दों का विधान किये जाने के कारण प्रतिपाद्य अर्थों की पृथकता समझी जाती है। इसप्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सर्वरूपी हैं। जो उन-उन आकारों में प्रतीत होते हैं, वस्तुतः सभी श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। इसलिये सभी श्रीरामात्मक ही हैं। और परब्रह्म से लेकर विज्ञानात्मा पर्यन्त समस्त पदार्थों का श्रीरामचन्द्रजी के साथ अविनाभाव सम्बन्ध है। अर्थात् ये सभी अभिन्न हैं श्रीरामजी को छोडकर इनका अस्तित्व नहीं है। जीवात्मा तथा प्रकृति इन दोनों में भी वस्तुतः तात्विक रूपसे अभेद सम्बन्ध है सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के अपृथक् सिद्ध विशेषण होने से ॥११/४६॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्

यः सच्चिदानन्दाद्वैतैकरसात्मा भूर्भुवः स्वः तस्मै वै नमोनमः ॥४७॥

ॐकार वाच्यः यो वै प्रसिद्धः 'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ' 'अत्र रामोऽनन्तरूपस्तेजसावह्निना समः' इत्यादिवचोभिः प्रतिपाद्यः स ज्ञानादिगुणपरिपूर्णो भगवान् श्रीरामः सदानिर्बाधितस्वरूपत्वं चित्त्वं स्वयं प्रकाशः परं ज्योतिः स्वरूपत्वं

सुखस्वरूपत्वं समाभ्यधिकरहितत्वं तेन च अनुपमेयत्वं 'न तस्य प्रतिमा अस्ति तस्य नाममहद् यशः'' 'न तत् समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते' एवमादिश्रुतिशतबोध्यम्। ''नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्चयात्त, लीलातनोर्ह्यधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः''

इत्यादिस्मृतिबोध्यम् । अत्र उपमाबोधकः प्रतिमाशब्दः । आत्तं धारितं लीलाशरीरं येन सः । तेन एकरसत्वम् । न्यूनाधिक्यराहित्येन विकाररहितत्वम्, अत्र सच्चिदानन्दादिपदानामेकवद्भावस्तेन सच्चिदानन्दाद्वैते एकरसम् तदेवात्मा स्वरूपं यस्य तथा विधः, तस्मै भूयो भूयः नमः ॥४७॥

ॐकार शब्द से प्रतिपाद्य जो लोक शास्त्र में प्रसिद्ध अर्थ है 'सीताभिन्न राम' यहां पूजनीय हैं इस उपनिषद् में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अनन्त स्वरूपधारी हैं जो अपने विलक्षण प्रभाव से अग्नि सदृश हैं। इत्यादि श्रुति स्मृति वचनों के द्वारा निरूपित करने योग्य हैं वे ज्ञान इच्छा बल क्रिया आदि गुणों से परिपूर्ण भगवान् श्रीरामजी हैं। सदैव निर्बाधित स्वरूपत्व चेतनत्व स्वतः प्रकाश सर्वोत्कृष्ट ज्योति स्वरूपत्व परम आनन्दस्वरूपत्व अपने समान तथा अपने से बढकर किसी का नहीं होना, और इस कारण से श्रीरीमजी में अनुपमेयत्व कहा भी है। उन परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी की तुलना समस्त ब्रह्माण्ड में नहीं है। उनका नाम ही महान् कीर्ति स्वरूप है। मन्त्र का प्रतिमा शब्द उपमा वाचक है अतः परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी के समान अथवा उनसे बढकर कहीं भी देखा नहीं जाता है। इत्यादि सैकडों श्रुति वचन समुदाय से निरूपण किया गया है।

भगवान् रघुकुलनायक श्रीरामचन्द्रजी की इतनी ही कीर्ति नहीं है, जो जगत् लीलावश शरीर को धारण किये हैं। जिसके समान अथवा अधिक प्रभावशाली दूसरा कोई नहीं है। इत्यादि स्मृतियों के द्वारा जानने योग्य यहां आत्त शब्द का अर्थ धारण किया गया है लीला शरीर जिनके द्वारा वे इससे श्रीरामचन्द्रजी में एकरसत्व ज्ञात होता है। न्यून और अधिक दोनों से शून्यत्व के कारण उनमें विकार रहितत्व प्रतीत होता है। यहां उपनिषद् वचन में सत् चित् आदि पदों का एक वद्भाव किया गया है इसलिये सत् चित् आनन्द अद्वैत में ही एकरस आत्मा स्वरूप जिनका है इसप्रकार का संकलित अर्थ होता है ऐसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को पुनः पुनः प्रणाम है ॥४७॥

इत्येतैः ब्रह्मा सप्तचत्वारिंशन्मन्त्रैः नित्यं देवं स्तौति । तस्य

स्तुतोदेवः प्रीतो भवति स्वात्मानन्दं दर्शयति तस्माद् य एतैर्मन्त्रैर्नित्यं देवं स्तौति स देवं पश्यति सोऽमृतत्वं च गच्छति सोऽमृतत्वञ्च गच्छतीति ॥४८॥

卐 इत्यथर्वणरहस्ये श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषत् समाप्ता 卐

卐 श्रीसीतारामार्पणस्तु 卐

हरिः ॐ सह नाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै

तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै

卐 ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः 卐

पूर्वनिरूपितैः सप्तचत्वारिंशत् संख्याकैः मन्त्रैः ब्रह्मा प्रतिदिनं सर्वावतारिणं देवतानामपि अन्तर्यामित्वात् देवदेवं श्रीरामं स्तुतिं करोति । नित्यं स्तुतिपरायणस्य देवः सर्वावतारीश्रीरामः प्रसन्नोभवति । निजात्मानं दर्शयति, एभिः मन्त्रैः यो श्रीरामचन्द्रं भगवन्तं स्तौति स उपासकः भगवन्तं श्रीरामचन्द्रं पश्यति। उपसंहारमन्त्रेण सप्तचत्वारिशत् मन्त्राणां स्तुतिविषयभूतस्य श्रीरामचन्द्रस्य दृष्टिगोचरत्वविषयसूचनेन तापनीयश्रुतिनिरूपणीयस्य श्रीरामाभिधस्य देवस्यकृते यत् पूर्वं दर्शितं 'द्विभुजः कुण्डलीरत्नमालीधीरो धनुर्धरः' इतिदर्शितविग्रहस्यावतारित्वं ज्ञाप्यते । एवम्भूतं देवं यः पश्यति स सायुज्यमोक्षं प्राप्नोति । अमृतत्वप्राप्त्या ग्रन्थसमाप्तिंबोधयति ॥४८॥

卐 हरिः ॐ तत्सत् 卐

इतिश्रीमज्जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्याणां गुरुवर्याणां चरणसरोरुहा

श्रितस्यआनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य

श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यस्य कृतौ श्रीरामानन्दभाष्यस्य

सम्पन्नता लोकमङ्गलाय भूयात् ।

卐 शुभमस्तु 卐 श्रीरस्तु 卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

❁ 卐 ❁

पूर्व में प्रतिपादित सैंतालिक मन्त्रों के द्वारा ब्रह्मा प्रतिदिन सर्वावतारी सभी देवताओं के भी अन्तर्यामी होने के कारण देवाधिदेव श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति करते हैं। प्रतिदिन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति में तत्पर रहने वाला उपासक के प्रति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जो सर्वावतारी हैं वे प्रसन्न होते हैं। और उसके ऊपर प्रसन्न होकर स्वात्म साक्षात्कार कराते हैं। इन मन्त्रों के द्वारा जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति करता है, वह उपासक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को देखता है। उपसंहार मन्त्र के द्वारा सैंतालिस मन्त्रों का स्तुति विषय बने हुए श्रीरामचन्द्रजी के दृष्टि गोचरत्व सूचन के द्वारा श्रीरामतापनीय उपनिषद् का प्रतिपाद्य श्रीरामचन्द्रजी नाम से प्रसिद्ध देव के लिये जो पहले कहा गया है दो भुजाओं वाला कुण्डलादि आभूषण मण्डित रत्नों की माला धारण करनेवाले धनुर्धर इत्यादि कथन के द्वारा जिनका स्वरूप बताया गया है उनका सर्वावतारित्व प्रकाशित किया जाता है। इसप्रकार स्वरूप गुण सम्पन्न देव को जो देखता है वह सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है। अमृतत्व प्राप्ति कथन के द्वारा ग्रन्थ की समाप्ति सूचित करते हैं ॥४८॥

卐 हरिः ॐ तत्सत् 卐

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु

इसप्रकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी गुरुवर के चरण

कमलाश्रित आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी की कृति उद्योत टीका की

पूर्णता हुई यह समस्त लोक मङ्गलकारी हो।

शुभम् भूयात्

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

卐 श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

❁ जगद्गुरु श्रीविजयरामाचार्यप्रणीतः ❁

श्रीरामषडक्षरस्तवः

आनन्दभाष्यकृद्रामानन्दं ब्रह्म च राघवम् ।
नत्वा गुरुं च कुर्वे श्रीरामषडक्षरस्तवम् ॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

❁ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य ❁

प्रणीता लघु दीपिका

सीतारामसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

द्वाराचार्य जगद्गुरु श्रीविजयरामाचार्यजी मन्त्रराज षडक्षर श्रीराम महामन्त्रस्तव प्रणयन के लिये शिष्टाचार प्रयुक्त मङ्गलाचरण करते हैं-आनन्द इत्यादि से ।

आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी तथा सर्वेश्वर परब्रह्म श्रीराघव रघुकुल प्रदीप श्रीरामजी और जग तारक मेरे गुरुदेव जगद्गुरु श्रीमल्हदेवाचार्यजी को सादर नमन-दण्डवत् प्रणाम करके सर्व जीवोद्धारक श्रीराम षडक्षर महामन्त्र स्तव को बनाता हूँ अर्थात् सव मनुष्य सुलभतया महामन्त्र के अर्थ को जान सकें इस उद्देश्य से मन्त्रार्थ को स्पष्ट करने वाले श्लोकों को बनाता हूँ ॥

वेदैकवेद्याय परात्पराय जगच्छरीराय महात्मने च ।
निर्दोषरूपाय गुणाकराय नमोऽस्तु रेफाय च राघवाय ॥१॥

'रां रामाय नमः' इस महामन्त्र के प्रथमाक्षर 'रां' के अर्थ को बताते हैं-रां इस वीजाक्षर से बोध्य सर्वेश्वर श्रीराघवजी है जो वेदैक वेद्य अर्थात् 'ब्रह्मसत्त्वे प्रमाणं च शास्त्रमेव सुनिश्चितम् । तन्त्वौपनिषजश्चैतच्छ्रुतिवाक्यप्रमाणतः (श्रीबोधायनमतादर्श १३१) श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी ने ऐसा कहा है अतः श्रीरामजी वेदशास्त्र से ही जाने जाते हैं तथा परात्पर यानी पर स्वरूप से प्रतिपादित नारायण कृष्ण वासुदेवादि से पर हैं क्योंकि-'परान्नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि । यो वै परतमः श्रीमान् रामोदाशरथिः स्वराष्ट्र' ऐसा वशिष्ठसंहेता में लिखा है अतः सर्वेश्वर श्रीरामजी इतर सव देवों से पर हैं तथा श्रीरामचन्द्रजी 'यस्य पृथिवीशरीरम्' इस वेदवचन तथा 'जगत्सर्वं शरीरं ते

स्थैर्यं ते वसुधातलम्' इस महर्षि वाल्मीकिजी के वचनानुसार सम्पूर्ण जगत् शरीर वाले हैं और वे सर्वातिशायि महान् आत्मा हैं यानी सर्वजन शरण्य उदारचेता हैं उनके शरण में गये किसी को भी निरास न करने वाले हैं। इसीलिये महर्षि श्रीवाल्मीकिजी सर्वेश श्रीरामजी की प्रतिज्ञा के विषय में लिखते हैं-'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम' असाधारण महत्वशाली आत्मा ही इसप्रकार की सर्वाभय प्रद प्रतिज्ञा कर उसको निभा सकता है अन्य नहीं तथा श्रीरामचन्द्रजी निर्दोष रूप हैं यानी समस्त विश्व श्रीरामजी से उत्पन्न होकर उन्हीं में स्थित रहकर अन्त में श्रीरामजी में ही उपसंहृत होता है तो भी श्रीरामजी सर्व प्रकार दोष से रहित ही रहते हैं। इसलिये श्रीनारायणजी श्रीरामचन्द्रजी की शरणागति स्वीकारते हुए कहते हैं-'योऽसौ सर्वतनुः सर्वः सर्वनामा सनातनः। अलिप्तः सर्वभावेषु श्रीरामः शरणं मम' (वृहद् ब्रह्मसंहिता) तथा वे श्रीरामचन्द्रजी गुणाकर हैं अर्थात् दया दाक्षिण्य आदि समस्त गुणों के समुद्र हैं ऐसे रेफ स्वरूप रेफ वाच्य रेफात्मा सर्वेश्वर श्रीरामजी को मेरा नमस्कार हो अर्थात् सर्वजगद् बीज श्रीरामजी को मैं सर्वदा नमन करता हूँ ॥१॥

भक्त्यैकलभ्याय च भक्तिदाय भक्तिप्रियायाथ च मुक्तिदाय।
भक्तस्य वश्याय परेश्वराय नमः सुरेफाय च राघवाय ॥२॥

रामाय में रकार का अर्थ निर्देश करते हैं-भक्त्यैक लभ्याय यानी 'निरमल मन जन सो मोहिपावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा' इस गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी की उक्ति तथा 'भक्त्यैव निःश्रेयसम्' इस बोधायन श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी के कथनानुसार विशुद्ध निर्मल भक्ति से ही प्राप्त किये जा सकने वाले तथा 'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते' इस भगवद्वचनानुसार अपनी प्राप्ति के लिये अपने शरण में आये जनों को भक्ति देनेवाले और 'भक्तिप्रियोराघवः' इस कथन के अनुसार भक्ति प्रिय या भक्ति वाले जनों को अतिप्रिय तथा स्वशरणापन्न जनों को सायुज्य मुक्ति देनेवाले और 'अहं भक्त पराधीनः' इस कथनानुसार अपने शरण में आये अनन्य भक्तों के वश में रहने वाले तथा ब्रह्मा विष्णु रुद्रादि सवदेवों से पर रूप से सर्वदा उपासित ऐसे सुरेफात्मक रकार बोध्य पर रूप से जाने जाने वाले सर्वेश राघव श्रीरामजी को नमस्कार हो यानी श्रीरामचन्द्रजी को मैं सर्वदा नमन करता हूँ ॥२॥

दयानिधानाय च दीनलोकसुबन्धवे दैन्यहरात्मने च।
श्रितैकरक्षाक्रतुदीक्षिताय नमोमकाराय च राघवाय ॥३॥

तीसरा अक्षर मकार का अर्थ बताते हुए कहते हैं-दया निधानाय दया के निधान खजाने आदि कारण स्वरूप तथा दीन दुःखीजनों के एक मात्र बन्धु अनन्य सहचर और शरणागत जनों के दैन्य दीनता त्रिविध दैहिक दैविक एवं भौतिक दुःखों व अन्य अनेक विध दीन हीनता को हरण करनेवाले तथा अपने शरण में आये जन की सर्वतोभाव से रक्षा के लिये सर्वदा तत्पर महर्षि श्रीवाल्मीकिजी लिखते हैं 'अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम' यानी स्वशरणापन्नजनों को सर्वभूतों से सर्वदा के लिये अभय प्रदान करना ही मेरा व्रत है ऐसा श्रीरामजी कहते हैं अतः श्रीरामजी से अतिरिक्त किसी में भी सर्वाभय प्रदत्व शक्ति नहीं है ऐसे सवको अभय देनेवाले मकार वाच्य मकार स्वरूप श्रीराघवजी का मेरा नमन हो अर्थात् सवको अपने शरण में रखकर सवप्रकार से अभय देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी को मैं सर्वदा नमन करता हूँ ॥३॥

समस्तलोकस्य च कारकाय समस्तलोकस्य च हारकाय ।
समस्तलोकस्य च पालकाय नमोयकाराय च राघवाय ॥४॥

महामन्त्र के चौथे कक्षर यकार के अर्थ निरूपण करने के लिये कहते हैं समस्त लोकस्य 'यतो वै इमानि भूतानि जायन्ते' इस श्रुति तथा 'कर्ता सर्वस्य जगतो भर्ता सर्वस्य सर्वगः । जाहर्ता कार्यजातस्य श्रीरामः शरणं मम' इस आगम वचनानुसार सङ्कल मात्र से सम्पूर्णलोक को उत्पन्न करनेवाले तथा स्वयं से उत्पादित उस समस्त विश्व का पालन संरक्षण भरण पोषण कर अन्त में सव जगत् को संहार करनेवाले यकारात्मा यकार स्वरूप सर्व कार्य कर्ता सर्वेश रघुकुल शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार हो यानी सर्वदा श्रीरामजी को मैं नमन किया करुँ ॥४॥

अमोघपूजास्तवदर्शनाय सुदिव्यदेहाय मनोहराय ।
विशिष्टरूपाय चिताऽचिता च नमोनकाराय च राघवाय ॥५॥

मन्त्रराज के पांचवें अक्षर नकार के स्वरूप को बतलाने के लिये कहते हैं अमोघपूजास्तवदर्शनाय 'अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः । अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि' यानी हे श्रीरामजी ? आप का दर्शन अमोघ है आपका स्तवन भी अमोघ है तथा आप में भक्ति रखने वाले मनुष्य भी इस भूमण्डल में जिनका दर्शन दर्शक को निश्चित ही दिव्यफल देता है तथा पूजा करनेवाले को और स्तव स्तुति प्रार्थना करनेवाले को भी उन लोगों के भावनानुसार अचूक फल देता है तथा 'चिदानन्दमय देह तुम्हारी' इस मानस के कथनानुसार दिव्य शरीर वाले हैं और भुवन

जन के मनको मोहित करनेवाले हैं। चित् एवं अचित् से विशिष्ट हैं यानी जीवात्मा तथा प्रवृति जिसके विशेषण हैं अथवा पृथिवी जल तेज वायु आकाश बुद्धि अहंकार मन रूप जड पदार्थ तथा जीव चेतन पदार्थ जिसके ऊपर तथा पर प्रकृति के रूपमें समस्त विश्व के कार्यों को जिनके सङ्कल्प मात्र से वशवर्ति होकर सव कार्यों को सम्पादन करते हैं ऐसे सर्वशेषी नकारात्मा नकाराश्रय रूप सर्वेश्वर राघव रघुकुल शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी को सर्वदा नमस्कार हो ॥५॥

महेषुशार्ङ्गैकधनुर्धराय महाशरण्याय महाश्रयाय ।
स्वयं प्रकाशाय तमः पराय नमोमकाराय च राघवाय ॥६॥

महामन्त्रराज के छट्ठे अक्षर म कार के अर्थ निर्देशनार्थ आचार्यजी कहते हैं- महेषु अक्षय तूरिण सर्वाभयप्रद बाण तथा चाप को धारण करनेवाले तथा 'जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय सरन तकिमाही। तजि मद मोह कपट छल नान। करहुं सद्य तेहि साधु समाना' इस मानस के कथनानुसार सवजन शरण प्रद यानी शरण में आये सभी जनों को अपने ही अभय प्रद शरण में रखने वाले और सव जीवों को आश्रय दाता तथा स्वयं प्रकाश स्वरूप तम यानी अन्धकार से पर अर्थात् लोक प्रकाशक चन्द्र सूर्य अग्नि आदि को प्रकाशित करनेवाले परतत्व रूप मकारात्मक मकार स्वरूप सर्व प्रकाशमय राघव श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी को सर्वदा नमन किया करता हूँ। ताकि मेरे जन्म जन्मान्त के अघ पूंजनाश होकर सर्वेश्वर श्रीरामजी के श्रीचरणयुगलों में मेरी प्रिति सर्वदा बनी रहे यों-'रां रामाय नमः' इस ब्रह्मतारक षडक्षर श्रीराम महामन्त्र के प्रत्येक अक्षर का अतिसंक्षिप्त अर्थ निम्न प्रकार से भी समझा जा सकता है-

रां-सम्पूर्ण जीवों को सायुज्य मुक्ति से प्राप्य परमानन्द देनेवाले सर्वेश्वर श्रीरामजी।

रा-शरणागत सवजीवों को धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष के प्रदाता।

मा-सर्व व्यापक सृष्टि के आदि काल में ब्रह्मा तथा अन्य महर्षियों को वेदोपदेश करनेवाले।

य-शरणागत सवजीवों को इन्द्रियादि भोगों से निवृत्ति कर देनेवाले।

न-ब्रह्मा विष्णु महेश इन्द्र प्रभृति समस्त देव देवी तथा समस्त मानवों से उपास्य।

मः-अपने पूर्वकृत कर्म फलों को भोगने के लिये वार-वार मृत्यु लोक में आने वाले जीवों के अन्तरात्मा।

आचार्य प्रवर श्रीआनन्दभाष्यकारजी ने प्रकृत प्रसङ्ग में 'यावद्वेदार्थगर्भम्' कहा है अतः इस महामन्त्र का पूर्णतया अर्थ को कह पाना अतिदुस्तर है तथापि यथा बुद्धि वैभव सव वेदशास्त्र इतिहास पुराण आगम आदि की सामञ्जस्यता के साथ साङ्गोपाङ्ग रूपसे मैंने श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर की प्रभा-किरण संस्कृत हिन्दी तथा गुजराती टीका में भाष्य किया है अतः विशेषार्थी जनों को वहीं देखना चाहिये यहां तों केवल दिग्दर्शन मात्र कराया गया है ॥६॥

श्रीरामरावलाचार्यद्वारपीठेशनिर्मितः । स्तवोऽयं भवतान्नित्यं लोककल्याणकारकः ॥

श्रीरामरावल द्वारपीठाचार्य श्रीविजयरामाचार्य प्रणीत यह श्रीरामषडक्षर महामन्त्रस्तव नित्य पाठ करनेवाले को कल्याण प्रद हो ।

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य प्रणीता
लघुदीपिका

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

श्रीहनुमान् जयन्ती कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी मङ्गलवार २०४१
शं भवतु सर्व जगतः

卐 श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

अथबृहद् ब्रह्मसंहितान्तर्गतश्रीनारायणप्रोक्तम्

ᛘ श्रीरामाष्टाक्षरस्तोत्रम् ᛘ

चिद्रूपस्याऽऽत्मनो नित्यं पारतन्त्र्यं विचिन्त्य च ।
चिन्तयेच्चेतसा नित्यं श्रीरामः शरणं मम ॥१॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य
कृता ᛘ बालबोधिनी ᛘ टीका

सीतारामसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

चित् स्वरूप जीवात्मा की श्रीराम पराधीनता का सर्वदा स्मरण कर हृदय से हर हमेशा श्रीरामजी ही मेरे एकमात्र शरण (रक्षक) हैं इसका चिन्तन करें ॥१॥

अचिन्त्यस्य शरीरादेः स्वातन्त्र्यं नैव विद्यते । चिन्तयेच्चेतसा नित्यं श्रीरामः शरणं मम ॥२॥

चिन्तन योग्यता रहित शरीरादि की स्वतन्त्रता नहीं है, अतः आत्मा के उद्धार के लिए हृदय से सर्वदा श्रीरामजी मेरे आश्रय शरण हैं, इसका चिन्तन करें ॥२॥

आत्माधारं स्वतन्त्रं च सर्वशक्ति विचिन्त्य च । चिन्त्येच्चेतसा नित्यं श्रीरामः शरणं मम ॥३॥

सर्वेश्वर श्रीरामजी को सम्पूर्ण जीवात्मा का एकमात्र आधार और सर्व शक्ति सम्पन्न स्वतन्त्रता का सर्वदा स्मरण कर हृदय से सर्वदा श्रीरामजी मेरे शरण हैं, इसका चिन्तन करें ॥३॥

नित्यात्मगुणसंयुक्तो नित्यात्मतनुमण्डितः । नित्यात्मकेलिनिलयः श्रीरामः शरणं मम ॥४॥

नित्य आत्मा के गुणों से सर्वदा संयुक्त तथा नित्य आत्म शरीर से सर्वदा विभूषित और नित्य आत्म क्रीडा के दिव्य स्थान श्रीरामजी मेरे रक्षक शरण हैं ॥४॥

गुणलीलास्वरूपैश्च मितिर्यस्य न विद्यते । अतो वाङ्मनसाऽवेद्यः श्रीरामः शरणं मम॥५।

सम्पूर्ण दिव्य गुणों में तथा दिव्य लीलाओं में और स्वरूपों में जिसकी इयत्ता-सीमा मर्यादा या अन्त नहीं है, ऐसे वाणी और मन से भी अज्ञेय एकमात्र शरणागत जन वेद्य श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥५॥

कर्त्ता सर्वस्य जगतो भर्ता सर्वस्य सर्वगः । आहर्ता कार्यजातस्य श्रीरामः शरणं मम ॥६॥

आदि काल में सव जगत का उत्पन्न करने वाले तथा उत्पादित सव जीवों का भरणपोषण करनेवाले और सव कार्य स्वरूप का अन्त में संहार करनेवाले सर्वग सर्व व्यापक सर्वेश्वर श्रीरामजी मेरे आश्रय शरण हैं ॥६॥

वासुदेवादिमूर्त्तीनां चतुर्ण्णां कारणं परम् । चतुर्विंशतिमूर्तीनामाश्रयः शरणं मम ॥७॥

वासुदेव प्रद्युम्न अनिरुद्ध तथा संकर्षण रूप चार व्यूहों के परम कारण रूपसे प्रसिद्ध यानी चतुर्व्यूह मूर्ति के कारण तथैव चतुर्विंशति यानी चौवीश मूर्ति-अवतारों के आश्रय अर्थात् चौवीश अवतारों के कारण रूप से स्थित श्रीरामजी ही मेरे आश्रय-शरण हैं ॥७॥

नित्यमुक्तजनैर्जुष्टो निविष्टः परमे पदे । परं परमभक्तानां श्रीरामः शरणं मम ॥८॥

सर्वदा नित्य मुक्त जनों से सेवित तथा परम पद श्रीसाकेत में निविष्ट अर्थात् विराजमान और अभक्त जनों से कभी भी प्राप्त नहीं किये जा सकने वाले अथवा भक्तजनों के एकमात्र आश्रय पर पुरुष सर्वमनोरथ पूरक श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥८॥

महदादिस्वरूपेण संस्थितः प्राकृते पदे । ब्रह्मादिदेवरूपैश्च श्रीरामः शरणं मम ॥९॥

सृष्टि प्रसङ्ग में प्राकृत (प्रकृति सम्बन्धि) पद स्वरूप में महद्, अहंकार तन्मात्रादि रूपसे संस्थित, और सृष्टि स्थिति तथा प्रलयरूप कार्यों को सम्पादन करने के लिये ब्रह्मादि देव रूपों से संस्थित श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥९॥

मन्वादिनृपरूपेण श्रुतिमार्गं विभर्ति यः । प्रजापतिस्वरूपेण श्रीरामः शरणं मम ॥१०॥

जो प्रजापति-ब्रह्मादि तथा मन्वादि राजा स्वरूप से अपने से उपदिष्ट वेद मार्ग का पालन तथा प्रकाशमान करते हैं वे श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥१०॥

ऋषिरूपेण यो देवो वन्यवृत्तिमपालयत् । योऽन्तरात्मा च सर्वेषां श्रीरामः शरणं मम ॥११॥

जिन देव श्रीरामजी ने ऋषिरूप से वन्यवृत्तिओं को पालन किया और जो सभी के अन्तरात्मा के रूपमें हैं वे सर्वेश्वर श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥११॥

योऽसौ सर्वनतुः सर्वसर्वनामा सनातनः । अलिप्तः सर्वभावेषु श्रीरामः शरणं मम ॥१२॥

जो सर्व शरीर सर्व स्वरूप सर्वनाम तथा सनातन और सव भावों में अलिप्त हैं ऐसे श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥१२॥

बहिर्मर्त्यादिरूपेण सद्धर्ममनुपालयन् । परिपाति जनान् दीनाञ् श्रीरामः शरणं मम ॥१३॥

जो बाहर देखावे के लिए माया मनुष्यादि रूप से सद्धर्म पालते हुए शरणागत दीन जनों को पालन करते हैं, वे श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥१३॥

यश्चात्मानं पृथक्कृत्य भक्तप्रेमवशं गतः । अर्चायामास्थितो देवः श्रीरामः शरणं मम ॥१४॥

जो सर्वदेव पूजनीय श्रीरामजी स्व लीला सम्पादनार्थ अपनी आत्मा को पृथक् करके भक्तों के प्रेमाधीन होकर अर्चा श्री विग्रह के रूपमें सर्वजन सुलभ होकर स्थित हैं ऐसे सर्वरूप श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥१४॥

अर्चावताररूपेण दर्शनस्पर्शनादिभिः । दीनानुद्धरते योऽसौ श्रीरामः शरणं मम ॥१५॥

अर्चा पूजा के लिये अवतार के रूपसे दर्शन और स्पर्श सेवादियों के द्वारा जो दीनों का उद्धार करते हैं, वे श्रीरामजी मेरे शरण है ॥१५॥

कौसल्याशुक्तिसंजातो जानकीकण्ठभूषणः । मुक्ताफलसमो योऽसौ श्रीरामः शरणं मम ।१६।

कौसल्या रूपसीप से समुत्पन्न श्रीजानकीजी के कण्ठ का आभूषण भूत जो मुक्ता फल के समान हैं, ऐसे श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥१६॥

विश्वामित्रमखत्राता ताटकागतिदायकः । अहल्याशापशमनः श्रीरामः शरणं मम ॥१७॥

विश्वामित्रजी के यज्ञ का रक्षक ताडका को गति यानी मुक्ति देनेवाले और अहल्या के शाप को अपने चरणरज के स्पर्श से दूर कर उन्हें सद्गति देनेवाले सर्व

पाप तापों को शमन करनेवाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥१७॥

पिनाकभञ्जनः श्रीमाञ्जानकीप्रेमदायकः । जामदग्न्यप्रतापघ्नः श्रीरामः शरणं मम ॥१८॥

पीनाक धनुष को तोडने वाले श्रीजानकीजी को प्रेम दाता और परशुरामजी के प्रताप को हरण करनेवाले सर्व समर्थ षडैश्वर्यशाली श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥१८॥

राज्याभिषेकसन्तुष्टः कैकेयीवचनात् पुनः । पित्रा दत्तवनक्रीडः श्रीरामः शरणं मम ॥१९॥

पहले राज्याभिषेक की वात श्रवण से सन्तुष्ट फिर कैकेयी के वचन से पिता से दी हुई वन क्रीडा वाले अर्थात् राज्य प्रासि से भी अधिक आनन्द पूर्वक पिता की आज्ञा पालनार्थ वन में सुख पूर्वक क्रीडा करने वाले सर्व सुख स्वरूप श्रीरामजी मेरे शरण्य हैं, अन्य नहीं ॥१९॥

जटाचीरधरो धन्वी जानकीलक्ष्मणान्वितः । चित्रकूटकृताऽऽवासः श्रीरामः शरणं मम ।२०।

जटा चीर के धारण करनेवाले धनुधारी श्रीजानकीजी तथा श्रीलक्ष्मणजी के साथ चित्रकूट में निवास करनेवाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥२०॥

महापञ्चवटीलीला संजातपरमोत्सवः । दण्डकारण्यसञ्चारी श्रीरामः शरणं मम ॥२१॥

लोकोत्तर फल प्रद पञ्चवटी में की गई मानवी लीला से समुत्पन्न महा उत्सव वाले और दण्डकारण्य में भ्रमण करनेवाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥२१॥

खरदूषणसम्भेदी दुष्टराक्षसभञ्जनः । हृतशूर्पणखाशोभः श्रीरामः शरणं मम ॥२२॥

खरदूषणों के विदारक यानी उनका वध करनेवाले दुष्ट राक्षसों के आमर्दक अर्थात् दुष्टों को संहार करनेवाले और शूर्पणखा की शोभा यानी नाक कान को नष्ट करनेवाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥२२॥

मायामृगविभेत्ता च हृतसीताऽनुतापकृत् । जानकीविरहाऽऽक्रोशी श्रीरामः शरणं मम ॥२३॥

कपट हरिण के विदारणकर्ता यानी मारने वाले हरि गयी श्रीसीताजी के विषय में अनुताप कर्ता और श्रीसीताजी के वियोग में विलाप करने वाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥२३॥

लक्ष्मणानुचेरो धन्वी लोकयात्राविडम्बकृत् । पम्पातीरकृतान्वेषः श्रीरामः शरणं मम ॥२४॥

लोकयात्रा के अनुरूप विडम्बन आचरण अर्थात् सामान्य मनुष्य के समान अपनी लीलाओं को करने वाले तथा श्रीलक्ष्मण रूप सेवक वाले धनुर्धारी और पम्पा के तट पर श्रीसीताजी का अन्वेषण करने वाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥२४॥

जटायुत्राणकर्ता च कबन्धगतिदायकः । हनुमत्कृतसाहित्यः श्रीरामः शरणं मम ॥२५॥

जटायु के रक्षक और कबन्ध को गति मुक्ति देनेवाले अपनी अवतार लीला को सम्पादन करने के लिये अनन्य सेवक श्रीहनुमानजी से मिलने वाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥२५॥

सुग्रीवराज्यदः श्रीशो बालिनिग्रहकारकः । अङ्गदाऽऽश्वासनकरः श्रीरामः शरणं मम ॥२६॥

सुग्रीव को राज्य देनेवाले लक्ष्मी पति वाली का निग्रह करने वाले और अङ्गद को आश्वास देकर अभय करनेवाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥२६॥

सीताऽन्वेषणनिर्मुक्तो हनुमत्प्रमुखव्रजः । वेलानिवेशितबलः श्रीरामः शरणं मम ॥२७॥

श्रीहनुमान् श्रीअङ्गद प्रमुख सेना नायकों को श्रीसीताजी के खोजने के लिये आज्ञा देनेवाले तथा समुद्र तट पर अपनी वानरी सेना को स्थापित करनेवाले श्रीरामजी के शरण में मैं हूँ ॥२७॥

हेलोत्तारितपाथोधिर्बलनिर्धूतराक्षसः । लङ्कादाहकरो धीरः श्रीरामः शरणं मम ॥२८॥

अनायास से ही विशाल वानरी सेना को समुद्र पार करा चुकने वाले तथा अपनी अपरिमित सैन्य बल से राक्षसों को मारने वाले और शत्रु नगरी लङ्का को जलाने वाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥२८॥

सेतुसम्बद्धपाथोधिलङ्काप्रासादरोधकः । रावणादिप्रभेत्ता च श्रीरामः शरणं मम ॥२९॥

अपार समुद्र का निग्रह कर उसको अवरोध करनेवाले समुद्र पर पूल वांधने वाले तथा लङ्का के गढ को अवरोध कर रावण कुम्भकर्णादियों के मारनेवाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥२९॥

जानकीजीवनत्राता विभीषणसमृद्धिदः । पुष्पकाऽऽरोहणाऽऽसक्तः श्रीरामः शरणं मम ॥३०॥

श्रीजानकीजी के जीवन का रक्षक तथा विभीषण को समृद्धि देनेवाले और पुष्पक विमान पर चढने में तत्पर श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥३०॥

राज्यसिंहासनाऽऽरूढः कौसल्याऽऽनन्दवर्धनः । नामनिर्धूतनिरयः श्रीरामः शरणं मम ॥३१॥

राज्य सिंहासन पर बैठे हुए श्रीकौसल्या माताजी के आनन्द के वर्धक और अपने अलौकिक दिव्य श्रीरामनाम के प्रताप से नरक या पाप ताप समस्त दुःखों का नाश कर चुकने वाले श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥३१॥

यज्ञकर्ता यज्ञभोक्ता यज्ञभर्ता महेश्वरः । अयोध्यामुक्तिदः शास्ता श्रीरामः शरणं मम ॥३२॥

यज्ञ के कारक यज्ञ फल के भोगकर्ता यज्ञ के भरणपोषण कर्ता महेश्वर सर्वेश्वर सर्वकर्माधिनायक अयोध्या वासियों को या सव शरणापन्न जीवों के सायुज्य मोक्षदाता

और सव जग शासक श्रीरामजी मेरे शरण हैं ॥३२॥

प्रपठेद्यः शुभंस्तोत्रं मुच्यते भवबन्धनात् । मन्त्रश्चाष्टाक्षरो देवः श्रीरामः शरणं मम ॥३३॥

इति बृहद् ब्रह्मसंहितायां श्रीनारायणप्रोक्तं सर्वकामनासिद्धिप्रदं श्रीरामाष्टाक्षरस्तोत्रम्

इस श्रीरामाष्टाक्षर स्तोत्र का पाठ जो कोई मानव नियत रूपसे करेगा वह भवबन्धन से मुक्त हो जायगा नाम तथा नामी के अभेद होने से अष्टाक्षर मन्त्ररूप ही श्रीरामजी हैं वे मेरे शरण हैं अर्थात् सर्वशरण सर्वेश्वर श्रीरामजी की शरणागति स्वीकार कर मैं निश्चिन्त हूँ ।

यह बृहद् ब्रह्मसंहिता में श्रीनारायणजी से श्रीरामजी को प्रसन्न कर श्रीराम सान्निध्य प्राप्त करने के लिये पठित सर्व कामना प्रद श्रीरामाष्टाक्षर स्तोत्र है जो मानव इसका नियमित पाठ करेगा उसके सव मनोरथ सिद्ध होंगे तथा अन्त में श्रीराधाम की प्राप्ति होगी ॥३३॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

कृता ☬ बालबोधिनी ☬ टीका

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

वसन्त पञ्चमी २०४१

卐 श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः 卐

❁ श्रीरामवल्लभायै जगज्जनन्यै श्रीसीतायै नमः ❁

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत

☬ श्रीसीतामहिम्नस्तवः ☬

सीतारामसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

महिम्नां सीतायाः निरवधिगुणायाः प्रवचनं
विधातुं नो धाता नहि पशुपतिर्नापि गिरिजा ।
क्षमः क्वाशक्तोऽहं परिमितमतिः स्वं लघुवचः
पुनातुं यत्नेन प्रथितगुणगाथां विरचये ॥१॥

卐 सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

❀ प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकराय नमोनमः ❀

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

卐 प्रणीत ❀ प्रकाश 卐

गुरुवर चरण सरोज में पुनि पुनि शीश नवाय।
सीता महिमा स्तोत्र की भाषा लिखउँ वनाय ॥१॥

असीमित गुणगण मण्डित सर्वेश्वरी श्रीसीताजी की महिमाओं का गान-प्रवचन करने के लिये चतुर्मुख ब्रह्मा भगवान् पशुपति शङ्कर और भवानी भी सक्षम नहीं हैं तो आयुष्य एवं बुद्धि वैभव आदि की दृष्टि से असमर्थ सीमित बुद्धि वाला मैं श्रीसीताजी की महिमाओं का वर्णन कैसे कर सकता हूँ। तथाऽपि अपनी स्वल्प वाणी को पावन वनाने के लिये सकल जगत् प्रसिद्ध सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के दिव्य गुणों एवं अलौकिक गाथा कथाओं को यत्न पूर्वक अपनी शब्दावली में विरचित गुंफित करता हूँ॥१॥

कृपावारांराशिर्जनकतनया स्वर्णिमतनुः
धरित्रीगर्भोत्था ऋषिजननुता सौख्यजलधिः।
स्तुता देवैर्दैत्यैर्मनुजजनसन्तापशमनी
ममोपास्या देवी हरतु दुरितं लोकजननी ॥२॥

जो जगदम्बा श्रीजानकीजी अनुकम्पा के सागर हैं। सुवर्ण सदृश अनुपम कान्ति सम्पन्न हैं। धरणी के गर्भ से जिनका प्रादुर्भाव हुआ, ऋषि मुनियों के द्वारा जिनकी स्तुति की गयी, एवं जो आनन्द के सागर हैं। देवाओं एवं दैत्यों के द्वारा जिनकी स्तुति की गयी तथा जो मानवों के सर्वविध सन्तापों का निवारण करने वाली हैं। ऐसी मेरी उपासनीय देवता समस्त चराचर जगत की माता मेरे जन्म-जन्मान्तर के समस्त पापों एवं तापों का निवारण कर दें ॥२॥

विदेहानां नाथो नरपति मुनिस्तत्वविदुषां
प्रधानस्त्वत् प्राप्तौ कनकहलयोगेन सुभगाम्।
श्रुतीनां सर्वस्वं प्रकृति कमनीयां धरणिजां
प्रयत्नै स्वात्मानं सुकृतिकृतिनं सो विहितवान् ॥३॥

आत्म तत्त्वं विज्ञानियों में प्रमुख मिथिला प्रदेश के राजाधिराज राजर्षि महाराज

जनक परम सुन्दरी स्वरूपा जगद् धातृ आपको प्राप्त करने के लिये सुवर्णमय हल के कर्षण से समस्त वेदादि शास्त्रों के सर्वस्व जन्मजात सर्वगुण सम्पन्नतावश सकल जगत् का अभिलषणीय पृथिवी के गर्भ से आविर्भूत सर्वेश्वरी श्रीसीताजी को अपने सफल प्रयास से प्राप्त कर राजा जनक स्वयं को पुण्य कर्म कलाप से कृत कृत्य सफलमनोरथ वनाये ॥३॥

अनिर्वाच्यं रूपं स्तुतिनिकरवर्ण्यास्तव गुणाः
कथं वच्मिस्तोत्रं जननि ? विविधाज्ञाननिलयः ।
जगद् वन्द्यां दिव्यां परमपदसाकेतनिलयां
नमाम्याद्यां शक्तिं प्रकृतिरमणीयां गुणनिधिम् ॥४॥

अनन्त रूप शालिनी श्रीरामचन्द्राभिन्न होने के कारण अनिर्वचनीय स्वरूप शालिनी श्रीसम्प्रदाय-श्रीरामानन्दसम्प्रदाय सम्बन्धित पूर्वाचार्यों के अनेक दिव्य प्रबन्धों श्रीवशिष्ठ संहिता एवं श्रीरामतापनीय उपनिषदों में श्रीसीतारामजी का अभेद रूपी सर्वकारण सर्वरूपादि निरूपित किया गया है । 'विश्वरूपस्य ते राम ? विश्वे शब्दा हि वाचकाः' श्रीमद्रामायण एवं श्रीवशिष्ठ संहिता में-

"सर्वेश्वरी यथाचाहं रामः सर्वेश्वरस्तथा ।
षड्गुणो भगवान् रामः षड्गुणाहं स्वभावतः ॥
सर्वस्याधारभूतौ च त्वावामेवहि मारुते ।
स्वे महिम्नस्थितावावामन्याधारो न चावयोः ॥
शीतता हि यथा नीरे तथाहं राघवे स्थिता ।
गन्धवत्वं यथा भूम्यां स्थितो रामस्तामयि ॥"

इसप्रकार बहुत विशद रूप से निरूपित किया गया है । अतः अनिर्वचनीय रूप है । अनन्त स्तोत्र समूह द्वारा वर्णनीय आपके अनन्त गुण हैं । अतः हे जगदम्बा श्रीसीताजी ? विविध प्रकार के अज्ञानों का आगार मैं आपके स्तुति वचन को कैसे वर्णित करुँ । समस्त ब्रह्माण्ड का वन्दनीय अलौकिक परम पद दिव्य धाम श्रीसीकेत नामक लोक में निवास करनेवाली स्वाभाविक रूपसे सुन्दर सद्गुणों के आकर आदि शत्ति श्रीसीताजी को मैं सादर दण्डवत् प्रणाम करता हूँ ॥४॥

जगज्जातं त्वत्तो स्थितमपि च लीनं त्वयिमव-
त्यतस्ते पादाब्जं विधिभवमुखा देवनिवहाः ।

श्रयन्ते स्वोन्नत्यै जननि ? विदितं शास्त्रनिचयैः

निजोद्धृत्यै दीनस्तवचरणप्रीतिं कलयति ॥५॥

हे जगदम्बा श्रीसीताजी ? ये समस्त ब्रह्माण्डादि चराचर जगत् आप से उत्पन्न हुआ है, आप से ही परिपालित है तथा आप में ही विलीन होते हैं। 'रेफारूढा' इस उपनिषद् वचन में रेफ का अर्थ श्रीसीताजी से अभिन्न श्रीराम कहा गया है। एवं अकार द्वय तथा मकार का अर्थ ब्रह्मा विष्णु एवं महेश निरूपित किया गया है अतः कहा है-

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।

सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥

इन कारणों से आपके चरणकमल को ब्रह्मा विष्णु एवं महेश आदि देवता समुदाय अपना आश्रय बनाते हैं। ये समस्त देवगण आत्मगत अभिवृद्धि के लिये आपके आश्रित होते हैं यह समस्त शास्त्र समूह से अवगत होता है। अतः हे माताजी अपना उद्धार के लिये यह निराश्रितं दीन भक्त आपके चरणों में पड़ा हुआ है। एवं आपके चरणारविन्द में अनुराग रखता है ॥५॥

धनुर्यज्ञे रामः कुशिकतनयादेशवशगः

प्रतीपैर्भूपालैरपि सफलताहीनविमुखैः ।

असूयासन्दृष्टः तव प्रियतमो वीरप्रमुखः

परीक्षाबुद्ध्या ते परिणयविधौ प्रीतिमकरोत् ॥६॥

विदेहराज जनक के धनुष यज्ञ में जिसमें आपका स्वयम्वर होना था, उस समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कुशिकतनय विश्वामित्र मुनिजी के आदेश के अधीन होकर प्रतिपक्षी राजाओं के द्वारा जो सफलता नहीं पाने के कारण विमुख होकर गुणेर्ष्या पूर्वक देखे गये वे आपके प्रियतम वीरों में प्रमुख श्रीरामचन्द्रजी परीक्षा की भावना से आपके वैवाहिक प्रकरण में परम आनन्द युक्त आपको किये थे ॥६॥

सुंता वैदेहस्य त्रिभुवनपतेर्वल्लभतमा

धरित्रीसम्भूता सकलललनामौलिप्रथिता ।

विवाहप्रस्थाने गरिमणिगते राघववरः

समीक्ष्यत्वां देवीमनुपमवरैस्तोषयदसौ ॥७॥

मिथिला के राजाधिराज विदेहराज जनक की सुपुत्री अखिल ब्रह्माण्डनायक त्रिभुवनपति श्रीरामजी की परम प्रेयसी विश्वम्भरा धरणी के गर्भ से प्रादुर्भूत समस्त

ब्रह्माण्ड की ललनाओं के मुकुटमणि के स्वरूप में प्रसिद्ध श्रीसीताजी विवाह होने के वाद जब अपने श्वसुर के घर प्रस्थान करने लगी तव अतिशय भारी हो जाने पर रघुकुलनायक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी आपको देखकर तथा लोक माता आपकी भावनायें जानकर अनुपम वरदान से आपको परम सन्तुष्ट किये। पौराणिक कथा है कि-जव विवाह के वाद मिथिला से श्रीसीताजी को अयोध्या ले जाने के लिये डोली को कहार उठाने लगे तो श्रीसीताजी में इतना भार हो गया कि कोई भी कहार डोली को हिला तक नहीं सके, तव भगवान् श्रीरामजी श्रीसीताजी को प्रश्न दृष्टि से देखने लगे मिथिला की जनता श्रीसीताजी को कातर दृष्टि से देख रही थी, तव अन्तर्यामी सर्वेश्वर श्रीरामजी ने श्रीसीताजी को वरदान दिया कि मिथिला भूमि में जिसका जन्म एवं शरीर त्याग होगा उसे दिव्य श्रीसाकेत धाम प्राप्त होगा अर्थात् वह सायुज्य मुक्ति का भागी होगा अन्तर्यामी सर्वेश्वरी ? इस जन के ऊपर भी कटाक्षपात करें ॥७॥

तवोत्पत्तेर्भूमौ जनकपुरजाताः सुकृतिनः

त्वया सर्वे लोकाः जननवशतो मुक्तिपदवीम् ।

तव स्नेहात् सीते रघुपतिकृपाभाजनगताः

अतो मन्दप्रज्ञस्तवचरणसेवासु निरतः ॥८॥

हे जगदम्बे श्रीसीते ? आपके प्रादुर्भाव भूमि राजा जनक के राज्य मिथिला भूमि में उत्पन्न होने वाले अनन्त जन्म जन्मान्तर से अर्जित पुण्यशाली प्राणी केवल उस भूमि पर जन्म धारण मात्र से आपके वात्सल्य से आप्लावित अनुरागरूप कारण से मोक्ष सायुज्य पदवी को प्राप्त करते हैं। इसप्रकार आपके द्वारा समस्त मिथिला के प्राणी मोक्ष पद भाजन वना दिये गये, हे सर्वेश्वरी श्रीसीते ? आपके वात्सल्यानुराग के कारण ही आपके पितृगृह के प्राणी अखिल ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की अनुकम्पा पात्रता को प्राप्त कर सके। इसलिये हे जननी ! मन्द प्रतिभा वाला यह रामेश्वरानन्दाचार्य आपके श्रीचरणों की सेवाओं में समर्पित हो गया है ॥८॥

कृतार्थस्ते तातस्तव जननभूमिः सुकृतिनी

सुधन्यः श्रीरामोदशरथनरेशः सदयितः ।

अयोध्याभूः पुण्या तवचरणसङ्गेन जननि !

प्रसीद प्राप्तं स्वं प्रणत पतितं पाहि स्वजनम् ॥९॥

हे जगदम्बे श्रीसीते आपके चरणों की सङ्गति प्राप्तकर जगदम्बा के जनक होने

का सौभाग्य प्राप्त कर आपके पिताजी कृतार्थ हुए। आप जिस भूभाग में आविर्भूत हुई वह जन्म भूमि भी अनन्त पुण्यशालिनी है। आपको परम प्रियतमा पत्नी के रूपमें प्राप्तकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी धन्य हुए। एवं पुत्रवधू के स्वरूप में आपको पाकर महाराज दशरथ भी अपनी कौशल्या आदि रानियों के सहित वडभागी हुए। और अयोध्या नगरी की भूमि भी आपके चरणों के सम्पर्क से पुण्यजनक भूमि वन गयी। हे मातः आप मेरे ऊपर प्रसन्न होवें और अपनी सेवा में उपस्थित प्रणाम पर्याय तत्पर चरणों में गिरा हुआ इस अपने आत्मीयजन की सर्वतोभावेन रक्षा करें ॥९॥

प्रदात्री मोक्षाणां त्वमसि निखिलज्ञानजननी
समृद्धीनां मूलं मुनिजननुते तेऽङ्घ्रिकमले ।
त्वमादिर्लोकानां जननि ? जपतां मुक्तिजननी
नमामि त्वां देवि? त्वमसि परमब्रह्ममहिषी ॥१०॥

हे मातः श्रीसीते ? आप सारूप्य सालोक्य सायुज्य आदि सभी मोक्षों को देनेवाली हैं। सभी प्रकार के ज्ञानों को उत्पन्न करने वाली हैं। आप विविध प्रकार की समृद्धियों के मूलकारण हैं। आपके चरणकमल मुनिजनों से वन्दित हैं। आप सभी लोकों के आदि कारण हैं। हे जननी आप उपासकों को सायुज्य मुक्ति प्रदान करती हैं। हे देवि आप परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी की महारानी हैं, आपको सादर दण्डवत् प्रणाम करते हैं ॥१०॥

प्रभूतो ते भक्तिः नहि जननि ? मे लोलमनसः
तथाऽपि श्रीमत्या सदयमवलोक्यो निजजनः ।
भृशं पाथो मेघो वितरति यथा चातकमुखे
तथाऽनुग्राह्योऽयं तवचरणसेवासु निरतः ॥११॥

हे जननी मुझ चञ्चल मानस वाले का आपके प्रति बहुत अधिक मात्रा में भक्ति नहीं है तथाऽपि आपके द्वारा अनुकम्पा पूर्वक देखने योग्य यह सामान्य भक्त तो है। जिसप्रकार वादल सामान्य श्रद्धावान् होने पर भी चातक के मुख में पर्याप्त एवं पुनः पुनः जल प्रदान करता है उसी प्रकार यह आप का सेवक जो आपकी सेवा में तत्पर है वह मैं आपके द्वारा अनुगृहीत करने योग्य हूँ क्योंकि आपके प्रति मैं श्रद्धा सम्पन्न हूँ ॥११॥

महद् विश्वासौघैस्तवचरणयुग्मं श्रितवतः
न युक्तं ते मातः सुकृतिनिकरावेक्षणविधिः ।

यदीष्टं नो दद्यादनुपदमसौकल्पलतिका
विशिष्टा सामान्यैः कथमितरवल्लीप्रभृतिभिः ॥१२॥

हे माता महान् विश्वास पुञ्ज पूर्ण आस्था हृदय में होने से आपके चरण युगल को आश्रय वनाया हुआ मेरा पुण्यपुञ्ज कितना सञ्चित है इस विषय का विचार करना आपके लिये समुचित नहीं है। आपके श्रीचरणाश्रित हुआ इतने से ही मेरा उद्धार आपको कर देना चाहिये। यदि कल्पलता के नीचे जाते ही वह अभिमत वस्तु प्रदान नहीं कर दे तो अन्य लताएं जो साधारण हैं, उनसे उसकी विशिष्टता क्या होगी। अतः आप श्री के श्रीचरणाश्रित यह जन कैसा है इस विषय को विना विचारे आप मेरा उद्धार कर दें ॥१२॥

त्वमानन्दं लोकान् रघुकुलमणेः सन्निधिवशाद्
ददासीत्थं मातः श्रुतिनिकरशास्त्रैश्च कथिता।
तथा श्रीरामस्य प्रकृतिरिति शक्तिर्निगदिता
अतस्त्वां क्लेशानां हरणविधयेऽहं शरणगः ॥१३॥

हे माताजी 'श्रीराम सान्निध्यवशाज्जगदानन्द दायिनी' इत्यादि प्रमाणानुसार आप रघुकुलमणि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के सान्निध्य होने से सभी लोकों को आनन्द देने वाली हैं ऐसा श्रुति स्मृति आदि समूह के द्वारा कहा गया है। और श्रुतियों के द्वारा कहा गया है कि आप श्रीरामजी की प्रकृति रूपा शक्ति हैं। इसलिये आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक क्लेशों का निवारण करने के लिये मैं आपका शरणागत हुआ हूँ ॥१३॥

समेषां जीवानां स्थितिजननसंहारविधिभिः
अवस्थाभिः सीते ? जनकतनये ? त्वं हि जगतः।
विभूषाभिर्माभिः परमपुरुषालङ्कृतिरथ
सदाश्लिष्टा रामं प्रणववररूपासि प्रकृतिः ॥१४॥

आप विश्व तैजस और प्राज्ञ अवस्थाओं के द्वारा संसार के समस्त जीवात्माओं का उत्पत्ति पालन और संहार विधियों के द्वारा हे जनक नन्दिनी श्रीसीताजी इस संसार का आप ही कारण हैं। आप बहुमूल्य अलङ्करणों एवं अपनी स्वर्णिम आभा से परब्रह्म परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की शोभा हो तथा सदैव श्रीरामजी से आश्लिष्टतया अभिन्न होने से ॐकार स्वरूपा उनकी प्रकृति हो ॥१४॥

अविद्याकर्माख्या चिदचिद्सुविशिष्टस्य परमा
विभिन्नायाः सृष्टेः त्वमसिखलु शक्तीरघुपतेः।

महासत्ताशक्तिर्मुनिजनमनोमोहनिगदं
निहंसि त्वं मातः भवजलधिदोषं शमय मे ॥१५॥

हे जननी आप चित् एवं अचित् से विशिष्ट परब्रह्म सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की अविद्या कर्म नामक परम शक्ति हैं। और रघुकुलनायक भगवान् श्रीरामजी की विभिन्न प्रकारक सृष्टि विधायिनी उत्कृष्ट शक्ति भी हैं। महाशक्ति स्वरूपा आप मुनिजनों के मनो मोहरूपी जंजीर को तोडती हैं। अतः हे माताजी आप मेरे भी संसार सागर के दोषों को शान्त कर दें एवं अन्य आपके उपासकों के संसार सागर के दोषों को भी शान्त कर दें १५

निवासः साकेते मुनिजनमुखास्ते स्तुतिकराः
कुटुम्बीयाजीवाः सुरनिकरबद्धाञ्जलिपुटः ।
रमेशः प्राणेशो निरवधिगुणे भूमितनये
अपूर्वं सौभाग्यं क्वचिदपि न साम्यं कलयसि ॥१६॥

हे निस्सीम गुणगण शालिनी पृथिवी पुत्री श्रीसीते ! आपकी परम दिव्य धाम श्रीसाकेतलोक निवास स्थान है, मुनिजन जिनमें प्रधान है ऐसे उपासक आपकी स्तुति करते हैं। समस्त प्राणी मात्र आपके परिवारजन हैं। देवता समूह आपके समक्ष हाथ जोडे रहते हैं, रमानायक भगवान् श्रीरामजी आपके प्राणनाथ हैं, इस प्रकार आपका सौभाग्य सभी से विलक्षण होने से आप किसी के सौभाग्य से तुलनीय नहीं हैं, अतः अनुपम सौभाग्यवती हैं ॥१६॥

मणिस्पर्शेलौहः सपदिलभते हाटकपद
मशुद्धं पानीयं भजति शुचितां गाङ्गसलिले ।
तथा मे पापौघैरतिमलिनस्वान्तं त्वयिरतं
पुनीतं नो यास्यत्यतिविमलगुण्यं च जननि ? ॥१७॥

हे जननी ? लोहा पारसमणि का स्पर्श प्राप्त करते ही अतिशीघ्र सुवर्णत्व को प्राप्तकर लेता है। अपवित्र नाली नाले आदि का जल गङ्गाजल में मिलजाने पर पवित्रता को प्राप्त करता है। उसी प्रकार आपके चरणों में अनुरक्त अनन्त पापपुञ्ज से अति मलिन मेरा अन्तःकरण पवित्र अत्यन्त निर्मल एवं गुणों से सम्पन्न क्या ? नहीं होगा, अर्थात् अवश्य ही होगा ॥१७॥

धरित्री सम्भूता जनकतनया लोकजननी
विशालाक्षीसीता रघुकुलवधू राजमहिषी ।

तथा वैदेहीति प्रथितविविधैर्नामजपनैः
पुनीतास्ते भक्ताः तव परमधामप्रतिगताः ॥१८॥

पृथिवी पुत्री, जनकसुता, लोकमाता विशालनयना सीता रघुकुलवधू राजरानी, तथा वैदेही आदि प्रसिद्ध विविध सहस्त्रों नामों के जप करने से पावन वने हुए आपके भक्त आपके परम दिव्यधाम श्रीसाकेत को प्राप्त किये ॥१८॥

विशालाक्ष्यास्तस्या जनकतनयायाः पदयुगे
परित्राणोपायः प्रणिपतनमात्रं त्रिजटया ।
समुक्ता राक्षस्यो भयवशगतास्तां शरणगाः
बभूवु स्तेन त्वं पतिविजयहर्षेण जयसे ॥१९॥

हे जननी ? आप जिस समय छायारूपा रावण द्वारा अपहृत होकर लङ्का में थी, तो त्रिजटा नामक राक्षसी के द्वारा राक्षसीगण को सम्बोधित करके कहा गया कि- उस विशाल नयना जनकतनया श्रीसीताजी के चरण युगल में शरणागत होकर प्रणाम करना ही तुम सभी के रक्षा का उपाय है । ऐसी वातें सुनकर भयाकुल होकर वे राक्षसीगण आपके शरणागत हुई तो अति अपकार करने वाली उन सवों को अपने शरण में रखकर अभय कर दिया, इस प्रकार आप अपने पति श्रीरामजी के विजय जनित प्रसन्नता से उत्कृष्ट है, अतः प्रणम्य है ॥१९॥

अपश्यंस्त्वां रामः समनुभवति क्लेशमतुलं त्वदर्थं श्रीरामो हरिपतिसखित्वं विहितवान्।
प्रभावस्ते सीते दशवदनवंशस्यपतनं समेलोकाजानन्त्यतिविमलशीलं जनकजे ॥२०॥

हे जनकतनये श्रीसीते आपको नहीं देखने पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी असीम क्लेश का अनुभव करते थे, आपकी प्राप्ति के लिये ही वानरराज श्रीसुग्रीवजी से मित्रता किये । हे श्रीसीते आपके विलक्षण प्रभाव से ही दशमुख रावण के समग्र वंश का विनाश हुआ । सारा संसार इस वात को जानता है कि आपका शील सदाचार अत्यन्त निर्मल है ॥२०॥

स्वयं दुःखाक्रान्ता रघुपतिवियोगोत्थज्वलनैः
समर्था संहारे निकषसुतसङ्घस्य जननि ? ।
प्रशस्ता कारुण्यात् विपुलदययाक्रान्तहृदये
प्रकामं कारुण्यं मयि भवतु ते मैथिलसुते ? ॥२१॥

हे माताजी आप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के वियोग से उत्पन्न अग्नि से अत्यन्त

दुःखाक्रान्त होने पर भी एवं राक्षस समूह का संहार करने में समर्थ होने पर भी अपने लोकोत्तर कारुण्य भाव से प्रशंसित होने के कारण आपने उनका संहार नहीं किया इतना ही नहीं 'पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम । कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति' इन वचनों से सर्वेश्वर श्रीरामजी से भी सभी दुःखदायीनियों को अभय दिलवादी अतः हे अतिशयदया से आप्लावित हृदये जननी ? मैथिलराज जनकतनया मेरे प्रति भी आप मेरी कामना के अनुरूप करुणाभाव प्रदर्शित करें ॥२१॥

अनन्या रामेण ग्रहपतिविभेवासि महिते
त्वयाऽनन्यो रामः छविमिहितवद् भूमितनये ।
श्रुतिव्रातेऽभेदो निगदितमिदं निश्चयवचः
स्तुतिस्ते सीतेऽदं रघुपतिनुतिर्मेऽस्तु वचनम् ॥२२॥

हे भूमितनये जिस प्रकार भगवान् दिवाकर से अभिन्न उनका प्रकाश है उसी प्रकार आप श्रीरामचन्द्रज़ी के साथ अभिन्न हो, तथा जैसे प्रकाश से अभिन्न दिवाकर हैं उसी प्रकार आप से अभिन्न श्रीरामचन्द्रजी हैं । ऐसा

'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा
अनन्या च मया सीता भास्करेण यथा प्रभा'

श्रीमद्रामायण एवं 'सर्वेषामवताराणामावामेवावतारिणौ । भासकभास्करादी नामावामेवविभासकौ' श्रीवशिष्ठ संहिता आदि श्रुति समूह के द्वारा अनेक वचनों से सिद्धान्त वचन के रूपमें अभेद प्रतिपादन किया गया है । अतः हे श्रीसीते मेरा यह आपकी स्तुति वचन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के लिये भी यह स्तुति वचन होवें ॥२२॥

जगद् बन्द्ये मातस्तव पदसपर्यासु निरतःभवाब्धि सानन्दं तरति दुरितं नाशयति यः।
समेषांशास्त्राणां विपुलविधिविज्ञानमहितःसवाञ्छासन्तानंपरमपदयानञ्च लभते२३

हे समस्त लोकों के लिये वन्दनीय माताजी जो व्यक्ति आपके चरणकमलों की सेवाओं में सर्वतोभावेन लीन है वह आनन्द पूर्वक संसार सागर को पार कर लेता है एवं समस्त पापों को भी नष्ट करता है । वह सभी शास्त्रों के अपार विधि विधान एवं विज्ञान से सम्मानित होकर, अभिलाषा रूपी कल्पवृक्ष मार्ग द्वारा परमपद गमन कर श्रीराम सायुज्य प्राप्त करता है ॥२३॥

त्वमादिर्लोकानां प्रकृतिरिति शास्त्रे निगदिता
अनादिर्विद्या त्वं भवभयहरीचासि महिते ।

विशुद्धं ब्रह्माख्यं सुखभयपदं त्वं जनकजे ?
भवोत्थं मे दुःखं हरकरुणया पाहि सततम् ॥२४॥

हे सर्वलोक पूजिता जनकतनया श्रीसीताजी ? आप समस्त लोकों के मूलकारण हो आप शास्त्रों में प्रकृति इस शब्द से कही गयी हो 'प्रकृतिरिति सरस्वतीति लक्ष्मीरिति गिरिजेति जगन्मयीति वा याम् । गदति मुनिगणः कवित्वसिद्ध्यै कथमपि तां कलये विदेहकन्याम्' इसप्रकार जगद्गुरु श्रीरामभद्राचार्यजी ने सर्वेश्वरी श्रीसीताजी की प्रार्थना की है । आप अनादि विद्या हो तथा संसारभय का विनाश कारिणी हो । आप विशुद्ध ब्रह्म नामक आनन्दमय स्थान हो, अतः आप करुणा पूर्वक मेरे संसार जनित दुःखों को दूर करो तथा सदैव मेरी रक्षा करो ॥२४॥

प्रकृत्या कारुण्यं जनयसि रमे सौख्यनिलये
महादेवो ब्रह्मा सुरमुनिमुखास्ते पदयुगम् ।
विधानेनोपास्य प्रचुरशिवसौख्यं तवकृपा
सुधासिन्धुं प्राप्ता मयि जननि तूर्णं वितरताम् ॥२५॥

हे आनन्दागार परब्रह्म श्रीरामजी को आनन्दित करनेवाली श्रीसीते ? आप स्वभाव से ही प्राणी मात्र पर करुणाभाव उत्पन्न करती हो, महादेव, ब्रह्मा इन्द्र आदि देवता तथा मुनिजन ज़िनमें प्रधान हैं ऐसे उपासक लोग आपके चरणयुगल की विधान के अनुसार उपासना करके आप के कृपा रूपी अमृत सागर को प्राप्त किये,

'ऐश्वर्यं यदपाङ्गसंश्रयमिदं भोग्यं दिगीशैर्जगत्
चित्रं चाखिलमद्भुतं शुभगुणावात्सल्यसीमा च या ।
विद्युत्पुञ्जसमानकान्तिरमितक्षान्तिः सुपद्मेक्षणा
दत्तान्नोऽखिलसम्पदो जनकजा रामप्रिया साऽनिशम्'

इसप्रकार श्रीआनन्दभाष्यकारजी ने सर्वेश्वरीजी की स्तुति की है अतः हे जननी मेरे ऊपर भी उसी कृपा को शीघ्र प्रदान करें ॥२५॥

प्रपन्नानामार्तिं हरसि कृपया राघवप्रिये ?
विपत्तीनां व्रातं निजनयनकोणेन हरसि ।
भवाब्धेः पारं स्वं चरणपतितं प्राप्य सहसा
करोषि त्वं सीते मम सकलदुःखं व्यपनय ॥२६॥

हे श्रीरामचन्द्रवल्लभे श्रीसीते ? आप परम कृपा पूर्वक अपने शरणागत भक्तों

की दैहिक दैविक एवं भौतिक पीडाओं का निवारण करती हो। आप अपने कृपाकटाक्ष मात्र से ही अपने भक्तजनों के विपत्ति समूह को दूर करती हो। आप अपने चरणों में गिरे हुए भक्तों पर कृपाकर एकाएक अर्थात् तत्काल संसार सागर से पार उतारती हो अत: सर्व सामर्थ्य सम्पन्न होने के कारण मेरे सर्वविध दु:खों को विशेष रूपसे दूर कर दें ॥२६॥

भवत्याञ्छायाया हरणवशतो राक्षसपति:
जनस्थानाद्धार्ष्ट्याद् निजकुलविनाशाकुलमति:।
बभूवेत्थं लोका: सुविदितचणा: पावनधिय:
सुशिक्षावाग्जातै: सुकृतिपथगान् संविदधते ॥२७॥

आपकी छाया का जनस्थान से धृष्टता पूर्वक अपहरण करलेने के कारण राक्षसों का राजा दशमुख आपके अनादरमूलक निजवंश के विनाश का कारण स्वयं होकर व्याकुल बुद्धि वाला हुआ अत: अच्छी तरह इतिहास विज्ञानी पावन बुद्धि वाले अपने अनुजीवियों को सुशिक्षा वचनों से सुसंस्कृत कर पुण्य मार्ग का अनुगामी सम्यक् प्रकार से करते हैं ॥२७॥

शरण्या भक्तानां विपुलसुखदात्री सुकृतिनां
गुणानामागार: जनकतनया रामरमणी।
सुपुण्यैराचारैर्दुरितशमनी सौख्यजननी
जगद् वन्द्ये क्लेशं शमय निजभक्तार्तिशमनी ॥२८॥

शरणाश्रित भक्तों का संरक्षण करनेवाली पुण्यशालियों को अपार सुख देनेवाली समस्त शुभ गुणों का आगार, महाराज जनक की सुपुत्री भगवान् श्रीरामजी को आनन्द देनेवाली पुण्यजनक शुभ कर्मों से अमङ्गल का नाश कारिणी एवं परमानन्द को प्रादुर्भाव करने वाली अपने भक्तों की पीडा का निवारण करनेवाली हे लोक वन्दनीय हे श्रीसीते ? मेरे क्लेशों का निवारण कर दें ॥२८॥

यदा त्वां लङ्कायां दशवदननीतां कुलवधूं
समन्वेष्टुं धीमान् हरिवरमुखो निश्चितमति:।
तदा त्वां रामार्थं त्रिदिवमपि गन्तुं व्यवसित:
अशोकाख्ये रम्ये पवनतनयस्त्वत्पदयुगम् ॥२९॥
विलोक्य स्वात्मानं सुकृतिनिचयालङ्कृततनुं

विचिन्त्य श्रीरामं विरहदहनाक्रान्तहृदयम् ।

सशोकां लङ्काख्यां दहनविधिनाकर्तुमतुलां

पराक्रान्तिं कृत्वाभवदमलकीर्तिर्बलनिधिः ॥३०॥

हे श्रीरामवल्लभे जब कुलाङ्गना आपको दशमुख रावण के द्वारा छाया रूपमें लङ्का में ले जाया गया तो उस समय अच्छी तरह आपका अन्वेषण करने के लिये परम बुद्धिमान् श्रेष्ठ वानरों में प्रधान सुस्थिर बुद्धिशाली बलों के खान श्रीहनुमानजी भगवान् श्रीरामजी का हित करने के लिये स्वर्ग में भी जाने के निर्णय किये, लङ्का के अशोक वाटिका नामक उपवन में आपके चरणयुगल का दर्शन कर एवं भगवान् श्रीरामजी को विरहानल से आक्रान्त हृदय विचार कर लङ्का दहन की क्रिया के द्वारा समग्र लङ्का को शोकाकुल करने हेतु अनुपम पराक्रम दिखलाकर अत्यन्त निर्मल सुयश से सुशोभित हुए ॥२९-३०॥

क्षमाशीले ? सीते ? निखिलसुरपूज्ये ? जनकजे ?

प्रपन्नानामार्तिं हरसि दयया राघवप्रिये ? ।

कृपासारैः स्वीयान् रमयसि कृपासिन्धुदयिते ?

त्रयी वन्द्ये श्रेयो भगवति? रमे ? देहि कृपया ॥३१॥

हे क्षमा स्वभाव शालिनी श्रीसीते सकल देवगण पूजनीय जनकतनये रघुनाथ प्रिये आप दयापूर्वक शरणागत की पीडा का निवारण करती हो । हे कृपा सिन्धु श्रीरामवल्लभे आप अनुकम्पा की धारा सम्पात वर्षा से आत्मीय भक्तों को आनन्दित करती हो । वेद वंन्दनीय सर्वेश्वरी श्रीसीताजी की वन्दना-स्तुति 'अर्वाची शुभगे भव सीते ? वन्दामहेत्वा यथानः सुभगा ससि यथा नः सुफला ससि' आदि ऋग्वेद के मन्त्रों से देवताओं ने की है अतः सर्वेश्वरी श्रीसीताजी वेद वन्दिता हैं अतः हे रमे भगवती आप मुझे कृपा पूर्वक परमकल्याण प्रदान करें ॥३१॥

वनेषु शैलेषु पुरीषु मानवा, उपासनं तेऽनुदिनं सुभक्त्या ।

विधाय साकेतपतेः पदाब्जे, रतिं लभन्ते जगदम्ब सत्वरम् ॥३२॥

हे जगदम्बे जो मानव वन में पर्वतों पर अथवा नगरों में सद् भक्ति पूर्वक आपकी उपासना प्रतिदिन करते हैं वे आपकी उपासना करके श्रीसाकेत नायक परब्रह्म श्रीरामजी के चरणों में अतिशीघ्र परम अनुराग को प्राप्त करते हैं ॥३२॥

विदितधर्मगतिः पुरुषर्षभः, शरणगस्य सदापरिरक्षकः ।

प्रणतिभिः शरणागवत्सलः, तव पदाब्जरतस्य कृपाकरः ॥३३॥

जिन्हें धर्म का स्वरूप परिणाम आदि सर्वथा ज्ञात है ऐसे पुरुषोत्तम सदैव शरणागत की रक्षा करने वाले शरणागत के प्रति परम वत्सल सर्वेश्वर श्रीरामजी आपके चरणकमलानुरागी पर प्रणाम करने मात्र पर कृपा करते हैं ॥३३॥

निद्राविहीनः सततं सशोकः, रघुप्रवीरस्तव ध्यानमग्नः ।
नरोत्तमस्तेऽविरतं जगाद, सीतेति रम्यं मधुराभिधानम् ॥३४॥

आपके वियोगवश सदैव निद्रा रहित शोकाकुल आपके ध्यान में तल्लीन रघुकुल के श्रेष्ठ वीर पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी आपके 'सीता' इस शुभ मधुर नाम को अहर्निश उच्चारण किये ॥३४॥

धृतव्रतोदाशरथिर्महात्मा, कृतप्रयत्नस्तवलाभकामः ।
वृत्तं समाकर्ण्य समानशोका, त्वं वीतशोकाथगता सशोका ॥३५॥

जब आपका श्रीहनुमानजी दर्शन किये तो श्रीरामदूत जानकर अशोक वाटिका में शोक रहित हुई किन्तु जब समाचार सुने कि श्रीराम-महापुरुष व्रत धारण किये हैं आपको पाने के लिये प्रयत्नशील हैं, इत्यादि को सुनकर पातिव्रत्य के कारण श्रीरामजी के समान दुःखी होकर शोक मुक्त होकर भी शोकाकुलता को प्राप्त की ॥३५॥

अवनिजाचरणाम्बुरुहं मुदा, प्रतिदिनं प्रणिपत्य नमन्ति ये ।
अशुभव्रातनिरासलसन्मुखा, अनुभवन्ति परत्रसुखं नराः ॥३६॥

धरणी गर्भ समुद्भवा श्रीवैदेहीजी के चरणकमलों को प्रतिदिन साष्टाङ्ग प्रणाम जो मनुष्य करते हैं, वे समस्त अशुभ पुञ्ज के निवारित हो जाने से प्रसन्न मुख रहते हैं एवं इस लोक तथा परलोक में अनन्त आनन्द राशि को भोगते हैं ॥३६॥

भीतिर्नदृष्टा त्वयि देवि ? लङ्का निवासकालेऽपि दशास्थकोपात् ।
त्वं लोकनाथस्य धनुः स्वनेन प्रणष्टवंशोऽसि कथामवादीः ॥३७॥

हे जगदम्बा श्रीसीता देवी आप में डर का लेश भी नहीं देखा गया है। क्योंकि आपने लङ्का निवास काल में भी रावण के कोप से भय का अनुभव नहीं किया प्रत्युत आपने निर्भय होकर उसे कहा कि लोकनायक भगवान् श्रीरामजी के धनुष के टंकार मात्र से पूर्ण रूपसे सवंश विनष्ट हो जाओगे, ऐसी वातें कही ॥३७॥

पद्मानने त्वां मनसा स्मरामि पद्मस्थिते त्वां हृदये भजामि ।
पद्मप्रिये त्वां वचसा गृणामि पद्मोद्भवे त्वां सततं नमामि ॥३८॥

हे कमलमुखी आपको मनसे स्मरण करता हूँ। हे पद्मासने आपको हृदय से भजता हूँ, हे कमलप्रिये आपको वचन से संकीर्तन करता हूँ तथा हे कमल पर आविर्भूत होनेवाली श्री स्वरूपे श्रीसीते आपको सदा प्रणाम करता हूँ ॥३८॥

दारिद्र्यदोषशमनीति हिरणमयीत्वं रामादभिन्नमहितेति च श्री स्वरूपा ।
वात्सल्यभावभरिता करुणामयीत्वं सायुज्यदाननिरते भव मङ्गलाय ॥३९॥

मनुष्य जीवन के दरिद्रता रूपी दोष का शमन करनेवाली हो इसलिये आपको सुवर्ण रूपा कहते हैं। आप सर्वेश्वर श्रीरामजी से अभिन्न स्वरूप में पूजि हो इसलिये आप श्री स्वरूपा हो, आप वात्सल्य भावना से परिपूर्ण हो 'पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा। कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति' इत्यादि रूपसे घोषणा करके अपराधिनी राक्षसियों को वचाइ हो इसलिये करुणामयी हो, अतः हे सायुज्य मुक्ति प्रदान परायंणे श्रीसीते आप मङ्गलकारिणी हों ॥३९॥

सर्वेश्वरीत्वं स्वजनानुकूले, सर्वप्रिये सर्वविपत्तिहन्त्री ।
सर्वेश्वरानुग्रहदानशीले लोकैकवन्द्ये परिपाहि नित्यम् ॥४०॥

हे सर्वेश्वरी आप समस्त आत्मीय भक्तजन के सदा अनुकूल हो, आप सभी भक्तों के प्रिय एवं सभी की विपत्ति निवारिणी हो, आप का सर्वेश्वर श्रीरामजी की परम दया का दान कराना स्वभाव है, हे संसार मात्र के वन्दनीय श्री जी आप सदैव सर्वतोभावेन हमारा एवं संसार का पालन करें ॥४०॥

इयं जनकनन्दनी भुवनवारिधेस्तारिणी स्तुता सुरकदम्बकैः कलुषमोहविद्राविणी ।
प्रसन्नवदनाशुभाकनकमालिकाधारिणीविमुक्तिफलशालिनीप्रणतपालिनीराजते४१

ये महाराज विदेह जनक की सुपुत्री संसार सागर से उद्धार करनेवाली देव समुदाय से स्तुति का विषय वनायी गयी यानी देवों द्वारा वेद मन्त्रों से स्तुति की गई पाप एवं मोह को दूर करनेवाली, सर्वशुभ प्रदायक मुखकमल वाली एवं प्रसन्न मुखी तथा कमल की माला को धारण की हुई विमुक्ति फल प्रदान के कारण शोभामान और शरणागतजन संरक्षण परायण स्वरूपेण सुशोभित होती हैं ॥४१॥

समस्तपापताजातभीतिहारिवर्मदे, मुनीन्द्रवृन्दवन्दिते विचक्षणैः सुसेविते ।
भवप्रसूतदुःखपुञ्जदारिपादपङ्कजे, सुकीर्तिर्भुक्तिमुक्तिदे नमाम्यहं विदेहजे ॥४२॥

हे विदेहजे श्रीसीते आप सभी तरह के पाप दैहिक दैविक और भौतिक दुःख समुदाय एवं भय का निवारण रूप कवच प्रदायिनी हो तत्त्वज्ञानी समूह से वन्दित

एवं विद्वानों से सुपूजित हो, संसार जनित दुःख समुदाय का विदारणकारी आपका श्रीचरणकमल है आप सत् कीर्ति शुभ भोग एवं चतुर्विध मोक्ष प्रदायिनी हो, आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४२॥

यदवधिचरणौ ते पातकी नैति मातः ? तदवधिमलजालैर्मुच्यते नैव सद्यः ।
सपदि सुखनिधानं प्राप्नुते वन्दनातः पतितपरमदीनां स्तापहीनान् करोषि ॥४३॥

हे जगदम्बे जब तक पातकीजन आप श्री के श्रीचरणों के समक्ष नहीं आता है तब तक पाप पुञ्ज से सद्यः मुक्त नहीं होता है, अर्थात् आपके चरणाश्रित होते ही पापहीन हो जाता है। और आपको प्रणाम करने से शीघ्र ही आनन्द राशि को प्राप्त करता है। आप पतित और दीन तथा हीनजनों को दुःखों से मुक्त करती हो ॥४३॥

त्वं कालरात्रिः क्षणदाचराणां लङ्केशनाशाय च कालपाशः ।
रामस्य लोकत्रयनायकस्य प्राणेश्वरी सौख्यकरी मतासि ॥४४॥

हे श्रीरामवल्लभे आप राक्षसों के विनाश हेतु कालरात्रि हो एवं लङ्केश्वर का सर्वनाश के लिये यमपाश हो। त्रिलोकनायक सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की परमानन्द दायिनी प्राण प्रिया हो इसप्रकार विद्वानों के द्वारा कही गयी हो ॥४५॥

वन्दे विदेहाधिपतेस्तनूजा पादाम्बुजं गीतपतिव्रतायाः ।
साकेतनाथस्य यशः प्रतिष्ठा विवर्धिकायाः कुलभूषणायाः ॥४५॥

जिनकी पतिव्रतात्व की प्रशंसा वेदादि सभी शास्त्रों में की गयी है जो साकेतनायक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की यश और प्रतिष्ठा की सम्बर्धिका है तथा जो श्वसुर एवं पितृकुल का आभूषण स्वरूप हैं ऐसे महाराज विदेहतनया श्रीसीताजी के चरणकमल की वन्दना करता हूँ ॥४५॥

विश्वम्भरप्रियतमाखिलविश्वरूपे विश्वं विभर्षि जननी तनयानिव स्वान् ।
विश्वम्भरासुतनया कमनीयकीर्तिः विश्वप्रियाय दययानुगृहाण विश्वम् ॥४६॥

हे विश्वरूपे आप समस्त संसार का भरण पोषण करनेवाले परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी की प्रियतमा हो, आप जैसे माता अपने पुत्रों को सस्नेह पालन करती है, उस तरह समस्त चराचर का पालन पोषण करती हो, आप कमनीय कीर्तिशालिनी विश्वम्भरा पृथिवी की सुपुत्री हो, समस्त संसार का प्रिय के लिये अपनी दया से समस्त संसार को अनुगृहीत करें ॥४६॥

यो मानवः प्रतिदिनं प्रयतः प्रभाते, श्रीजानकीस्तवमिदं पठतीह भक्त्या ।

तस्याशुभानि शकलानि निरस्य देवी, लोके परत्र च सुमङ्गलमातनोति ॥४७॥

जो मनुष्य प्रातः काल में प्रतिदिन सावधान होकर भक्तिभावना के साथ इस श्रीसीता महिम्न स्तोत्र को पढता है उसके समस्त अमङ्गलों को निवारित करके श्रीरामवल्लभा श्रीसीतादेवीजी इसलोक में एवं परलोक में सर्वत्र शुभ-मङ्गल कर देती हैं ॥४७॥

रामेश्वरेण यतिना जगदम्बिकायाः प्रीत्या कृतं स्तवमिदं परया च भक्त्या ।
श्रीवैष्णवाः प्रतिदिनं समुपासनासु कृत्वोपयोगमिह यत्न फलप्रदास्युः ॥४८॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य श्रीवैष्णव यति द्वारा जगदम्बा श्रीसीताजी के चरणों में परमानुराग एवं परमभक्ति पूर्वक होकर विरचित यह श्रीसीता महिम्नस्तव श्रीवैष्णवगण प्रतिदिन अपनी पूजोपासना काल में इसका उपयोग करके मेरे राम के इस सत्प्रयास को इस जगत में फलदायी वनायेंगे यह शुभ अभिलाषा है ॥४८॥

साकेतवासिने श्रीमद् गुरवेऽर्पितमादरात् ।
महिम्नो जगदम्बायाः भूतयेऽस्तु भुवः स्तवम् ॥४९॥

सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के परमधाम श्रीसाकेतलोक में निवास शील गुरुवर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीमान् रामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र की सेवा में आदरपूर्वक समर्पित यह जगदम्बा श्रीसीताजी की महिमाओं का स्तोत्र इस संसार का सर्वविध ऐश्वर्यदायी हो ॥४९॥

भूयो नमामि वैदेहीं साकेतेश्वरवल्लभाम् ।
पुनातु जगतः स्वान्तमनुगृह्णातु मां च सा ॥५०॥

पुनः मैं साकेताधिनायक सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की परमवल्लभा जनकनन्दनी सर्वेश्वरी श्रीसीताजी को सादर दण्डवत् प्रणाम करता हूँ। वे जगदम्बा समस्त चराचर जगत् के मानस को परम पावन वनावें और मुझ रामेश्वरानन्दाचार्य को सदैव अपनी अनुकम्पा पूर्ण दृष्टि से अनुगृहीत करें ॥५०॥

इत्यानन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरा-
नन्दाचार्य श्रीवैष्णव यतिना विरचितं श्रीसीतामहिम्न
स्तोत्रं सटीकं सम्पन्नं जगद्धिताय स्यादिति शम्।

卐 श्रीसीता शरणं मम 卐

॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

यतिराड् जगद्गुरु श्रीगङ्गाधराचार्यप्रणीत

श्रीरामस्तवकलानिधिः

जानकी राघवौ नत्वा तथा बोधायनं गुरुम् ।
श्रीरामप्रीतये कुर्वे रामस्तवकलानिधिम् ॥१॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

कृता लघुदीपिका टीका

सीतारामसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी तथा मेरे गुरुदेव जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी श्रीबोधायनजी को नमस्कार कर श्रीरामजी की प्रीति के लिये श्रीरामस्तवकलानिधि नामक दिव्य प्रबन्ध को मैं करता हूँ अर्थात् बनाता हूँ ॥१॥

कौसल्येय ? नमस्तेऽस्तु दाशरथे ? नमोऽस्तु ते ।
नमः साकेतनाथाय श्रीरामाय नमोऽस्तु ते ॥२॥

हे कौसल्येय ? श्रीकौसल्याजी के पुत्र आपको नमस्कार हो, श्रीदशरथ महाराज के पुत्र ? आपको नमस्कार हो । साकेत के स्वामी को नमस्कार हो, श्रीरामजी को नमस्कार हो ॥२॥

सुरध्येय नमस्तेऽस्तु योगिध्येय ? नमोऽस्तु ते ।
मुनिध्येय ? नमस्तेऽस्तु श्रीरामाय नमोऽस्तु ते ॥३॥

हे सुरध्येय ? सब देवों से सर्वदा ध्यातव्य हे राम ? आपको नमस्कार हो, हे योगियों से सर्वदा ध्यातव्य ! सर्वेश्वर श्रीराम ! आपको नमस्कार हो मुनियों से ध्येय श्रीरामजी को नमस्कार हो हे सर्वेश्वर श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥३॥

नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते विश्वहेतवे ।
नमस्ते विश्ववन्द्याय नमस्ते विश्वरक्षक ? ॥४॥

विश्व के वन्दनीय श्रीरामजी आपको नमस्कार हो विश्व के कारण स्वरूप श्रीरामजी आपको नमस्कार हो । विश्व के वन्दनीय श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, विश्व के

संरक्षक हे श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥४॥

खरारये नमस्तेस्तु दैत्यारये नमोस्तु ते ।

कंसारये नमस्तेऽस्तु मुरारये नमोऽस्तु ते ॥५॥

खर नामक राक्षस के शत्रु श्रीरामजी आपको नमस्कार हो दैत्यों के शत्रु सर्वेश्वर श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, कंस के शत्रु श्रीजानकीजी के नाथ आपको नमस्कार हो मुर राक्षस के शत्रु सर्वरक्षक श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥५॥

नमस्ते रावणाराते ? नमस्ते रघुनन्दन ? ।

नमस्ते राक्षसाराते ! नमस्ते धर्ममण्डन ! ॥६॥

रावण के शत्रु सर्वरक्षक श्रीराम ? आपको नमस्कार हो, हे धर्म के मण्डन, वेद धर्म रक्षा के लिये पुरुषोत्तम रूपसे अवतार लेकर सर्व धर्म के पालक संवर्धक राक्षसों के अन्तक धर्म भूषण सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी आपको सर्वदा नमस्कार हो यानी मैं आपको सदा नमन करता हूँ ॥६॥

पापहर्त्रे नमस्तेऽस्तु धर्मकर्त्रे च ते नमः ।

नमश्चानन्ददात्रे ते दुःखहर्त्रे च ते नमः ॥७॥

सव पापों के हर्ता आपको नमस्कार हो, सव धर्मों के आचरण कर्ता आपको नमस्कार हो, सवप्रकार के आनन्द के दाता श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, समस्त दुःखों के हर्ता हे रमानाथजी आपको नमस्कार हो ॥७॥

दिव्यदेह ? नमस्तुभ्यं नमस्ते सुषमाकर ? ।

दोषहीन ? नमस्तुभ्यं नमस्ते गुणसागर ? ॥८॥

हे दिव्य शरीर वाले परब्रह्म श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, हे सुषमा के आकर ? खजाने ! प्रभु आपको अनन्तवार नमस्कार हो, सव दोषों से रहित हे राम आपको नमस्कार हो, हे गुणों के सागर ? समुद्र ? सर्वाधार श्रीराम आपको नमस्कार हो ॥८॥

सीताकान्त ? नमस्तुभ्यं शान्त ! दान्त ? नमोऽस्तु ते ।

अविश्रान्त ? नमस्तुभ्यं भ्रान्तिहारिन् ! नमोऽस्तु ते ॥९॥

हे सीताजी के स्वामी श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, शान्त तथा सर्वदान्त स्वरूप श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, सव प्रकार के भ्रम रहित स्वप्रकाश ज्ञान स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी ? आपको नमस्कार हो, हे भ्रम के नाशक श्रीजानकीनाथजी आपको नमस्कार हो ॥९॥

धर्मप्रद ? नमस्तुभ्यमर्थप्रद नमोऽस्तु ते ।
कामप्रद ? नमस्तुभ्यं मोक्षप्रद नमोऽस्तु ते ॥१०॥

हे धर्म के दायक धर्म स्वरूप श्रीरामजी आपको नमस्कार हो सब इच्छित अर्थों के दायक ? आपको नमस्कार हो, हे काम के दायक ? आपको नमस्कार हो, शरणागत सभी को सायुज्य मुक्ति दाता श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥१०॥

नमो वेदान्तवेद्याय नमस्ते सर्ववेदिने ।
नमो वेदप्रदायाथ नमस्ते वेदभाषिणे ॥११॥

उपनिषत् प्रमाणों से ज्ञेय प्रभु आपको नमस्कार हो, सर्वज्ञ श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, सृष्टि के आदिकाल में ब्रह्माजी को वेद का उपदेश देनेवाले आपको नमस्कार हो, और वेद के भाषण उपदेश के द्वारा सर्वलोकोपकारक एक श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥११॥

सर्वाधार ! नमस्तुभ्यं निराधार ? नमोऽस्तु ते ।
निर्विकार ? नमस्तुभ्यं महोदार ? नमोऽस्तु ते ॥१२॥

हे सर्वाधार सर्वेश्वर श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, हे निराधार अन्य आधार से रहित स्व स्वरूप में स्थित श्रीरामजी ? आपको नमस्कार हो । हे निर्विकार सर्व सत्व गुण सम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी आपको नमस्कार हो, हे महोदार ? सवको शरण में रखनेवाले महा उदार श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥१२॥

भक्तिप्रिय ? नमस्तुभ्यं नमस्ते भक्तरक्षक ? ।
शक्तिप्रद ? नमस्तुभ्यं नमस्ते भीतिहारक ? ॥१३॥

हे भक्ति प्रिय ! आपको नमस्कार हो, हे भक्तों के पालक ? आपको नमस्कार हो, हे भक्ति के दायक ! आपको नमस्कार हो, भयके नाशक, श्रीरामजी ? आपको नमस्कार हो ॥१३॥

नमो भक्त्येकलभ्याय भक्तिप्रद ? नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते सच्चिदानन्द ? ज्ञानप्रद ? नमोऽस्तु ते ॥१४॥

केवल भक्ति से ही लभ्य आपको नमस्कार हो, हे भक्ति प्रद ? आपको नमस्कार हो, हे सच्चिदानन्द ! श्रीरामजी आपको नमस्कार हो हे ज्ञानप्रद सर्वेश्वर श्रीराम ? आपको नमस्कार हो ॥१४॥

सर्वेश्वर ? नमस्तुभ्यं नमस्ते सर्वशेषिणे ।

नमः सर्वशरीराय नमः सर्वावतारिणे ॥१५॥

हे सर्वेश्वर ! आपको नमस्कार हो सर्वशेषी आपको नमस्कार हो, सर्वशरीर स्वरूप श्रीरामजी ? आपको नमस्कार हो, सर्वावतारी श्रीरामचन्द्रजी आपको नमस्कार हो ।१५।

नमस्ते सत्यसन्धाय शार्ङ्गिणे बाणिने नमः ।

नमः शरण्यवर्याय प्रपन्नरक्षिणे नमः ॥१६॥

सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामचन्द्रजी ? आपको नमस्कार हो, शार्ङ्ग मृगश्रृङ्ग के धनुषधारी आपको नमस्कार हो, सर्वाभय प्रद बाणों के धारी आपको नमस्कार हो, शरण्यवर्य- शरण में आये जनों के रक्षण में श्रेष्ठ श्रीराम ? आपको नमस्कार हो, सव प्रपन्नों शरणागतों के रक्षाकारी शरणागत रक्षक श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥१६॥

विष्णवे च नमस्तेस्तु नमस्ते दुष्टजिष्णवे ।

नमः सृष्ट्यादिकर्त्रे ते परस्मै ब्रह्मणे नमः ॥१७॥

विष्णु-सर्वव्यापक श्रीराम ! आपको नमस्कार हो दुष्टों के जयशील सर्वदमन श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, सृष्टि के प्रथम कर्ता सर्वेश्वर श्रीरामजी आपको नमस्कार हो, परात्पर ब्रह्म श्रीरामजी आपको नमस्कार हो ॥१७॥

पुरुषोत्तमशिष्येण गङ्गाधरेण निर्मितः ।

भूयाद् रामप्रसादाय रामस्तवकलानिधिः ॥१८॥

卐 इतिश्रीरामस्तवकलानिधिः समाप्तः 卐

श्रीपुरुषोत्तमाचार्य बोधायनजी के शिष्य श्रीगङ्गाधराचार्यजी से विरचित यह श्रीरामस्तवकलानिधि श्रीरामजी के प्रसाद अर्थात् नियत रूपसे पाठ करनेवालों को प्रसन्नता के लिये हो ॥१८॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

कृता ❦ लघुदीपिका ❦ टीका

हरिः ॐ अर्वाची सुभगे ? भव सीते ! वन्दामहे त्वा ।

यथा नः सुभगाऽससि यथा नः सुफलाऽससि ॥१॥

परतत्त्व जानने की इच्छा से लाट्यायन प्रभृति सात महर्षियों ने एक समय में सर्वेश्वरी श्रीसीताजी से अति विनम्र भाव से प्रार्थना की हे सुभगे ? ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य तथा तेज इन छ गुणों से सम्पन्न हे सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ? धर्माचरण विरुद्ध

चलने वाले असुरों का अन्त करनेवाली हे जगज्जननी श्रीसीताजी ? हम आपके शरण में आये हैं आपको विनम्र भाव से वन्दना-प्रणाम करते हैं अतः हे जनक नन्दिनीजी ? आप हम सव के अनुकूल होजायँ अर्थात् हम सबों से इच्छित तत्त्व ज्ञान प्रदान करें जिससे हम सव भव बन्धन काटकर मुक्त हो जायँ यानी आप श्री का सान्निध्य प्राप्तकर सकें क्योंकि 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः' इस श्रुति के कथनानुसार जबतक आपकी अनुकम्पा जीवों पर नहीं होती है तबतक कोई भी जीव सायुज्य मुक्ति का भागी नहीं हो सकता है। कारण यह कि आप ही सुभगा उत्तम ऐश्वर्य प्रदायिनी तथा सुफला आपके प्राप्ति विरोधियों का नाशक होने से इच्छित फल प्रदायिनी हैं अतः हे सर्वशक्ति सम्पन्न जगजननीजी ? हमसवों को आपके प्राप्ति में विरोधि रूप असुरों को दूरकर यानी उनका अन्त करके आपकी प्राप्तिरूपी ऐश्वर्य अर्थात् सायुज्य मुक्ति प्रदान करें ॥१॥

इममेव मनुं पूर्वं साकेतपतिर्मामवोचत् । अहं हनुमते मम प्रियाय प्रियतराय । स वेदवेदिने ब्रह्मणे । स वशिष्ठाय । स पराशराय । स व्यासाय । स शुकाय। इत्येषोपनिषद् । इत्येषा ब्रह्मविद्या ।

सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ऋषीश्वरों को मन्त्रराज षडक्षर महामन्त्र के परम्परा के विषय में कहती हैं यही **(रां रामाय नमः)** षडक्षर श्रीराम महामन्त्र को दिव्यलोक में श्रीसाकेताधिनायक सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ने मुझे कहा अर्थात् सविधि उपदेश दिया। मैने मेरे प्रियातिप्रिय सेवक मरुत नन्दन श्रीहनुमानजी को यथा शास्त्र विधि विधान से उपदेश दिया । श्रीहनुमानजी ने भी शास्त्रीय विधान से वेद के ज्ञाता श्रीब्रह्माजी को उपदेश दिया। श्रीब्रह्माजी ने भी शास्त्र विधान के अनुसार ही स्वमानस पुत्र श्रीवशिष्ठजी को उपदेश दिया। श्रीवशिष्ठजी ने शास्त्रीय विधि से श्रीपराशरजी को उपदेश दिया। श्रीपराशरजी ने शास्त्र विधि के अनुसार श्रीव्यासजी को उपदेश दिया। श्रीव्यासजी ने शास्त्र विधि विधानानुसार श्रीशुकदेवजी को उपदेश दिया । यही उपनिषद् श्रीरामचन्द्रजी के दिव्यधाम श्रीसाकेत में जाने का साधन है यानी शास्त्रीय विधि से श्रीगुरुमुख से प्राप्त तारक श्रीराम महामन्त्र के अनुष्ठान से ही सायुज्य मुक्ति या श्रीराम प्राप्ति की जा सकती है अन्य साधनों से नहीं। यही ब्रह्मविद्या है उपरोक्त क्रम से सत् आचार्य परम्परा प्राप्त श्रीराम मन्त्रराज से या उसके सविधि सदनुष्ठान से जीवों की मुक्ति होती है अतः यह ब्रह्मविद्या इस नाम से संसार में प्रसिद्ध हैं।

इसी वैदिक परम्परा का उल्लेख अपनी परम्परा के रूपमें आनन्दभाष्यकार

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज ने अपने गीतानन्दभाष्य में किया है-

श्रीरामं जनकात्मजामनिलजं वेधो वशिष्ठावृषी
योगीशञ्च पराशरं श्रुतिविदं व्यासं जिताक्षं शुकम् ।
श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गाधराद्यान्यतीन्
श्रीमद्राघवदेशिकञ्च वरदं स्वाचार्यं वर्यं श्रये ॥

अर्थात् १-सर्वावतारी सर्वेश्वर श्रीरामजी २-सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ३-श्रीहनुमानजी ४-श्रीब्रह्माजी ५-श्रीवशिष्ठजी ६-श्रीपराशरजी ७-श्रीव्यासजी ८-श्रीशुकदेवजी । ९-श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन १०-श्रीगङ्गाधराचार्यजी श्लोक के आदि शब्द से ग्रहीत ११-श्रीसदानन्दाचार्यजी १२-श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी १३-श्रीद्वारानन्दाचार्यजी १४-श्रीदेवानन्दाचार्यजी १५-श्रीश्यामानन्दाचार्यजी १६-श्रीश्रुता नन्दाचार्यजी १७-श्रीचिदानन्दाचार्यजी १८-श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी १९-श्रीश्रियानन्दा चार्यजी २०-श्रीहर्यानन्दाचार्यजी २१-श्रीराघवानन्दाचार्यजी २२-वें में स्वयं प्रस्थान त्रयानन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी यतिराज ।

इसके वाद की परम्परा इसप्रकार है २३-ज.गु. श्रीभावानन्दाचार्यजी २४-ज.गु. श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी २५-ज.गु. श्रीविरजानन्दाचार्यजी २६-ज.गु. श्रीआशारा माचार्यजी-हाथीरामजी २७-ज.गु. श्रीरामभद्राचार्यजी २८-ज.गु. श्रीरघुनाथाचार्यजी २९-ज.गु. श्रीविश्वंभराचार्यजी ३०-ज.गु. श्रीराघवेन्द्राचार्यजी ३१-ज.गु. श्रीवैदे हीवल्लभाचार्यजी ३२-ज.गु. श्रीकोसलेन्द्राचार्यजी ३३-ज.गु. श्रीरामकिशोराचार्यजी ३४-ज.गु. श्रीजानकीनिवासाचार्यजी ३५-ज.गु. श्रीसाकेतनिवासाचार्यजी ३६-ज.गु. श्रीजानकीजीवनाचार्यजी ३७-ज.गु. श्रीभरताग्रजाचार्यजी ३८-ज.गु. श्रीहनुमदाचार्यजी ३९-महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरी ४०-वें शंकुधारा काशी में जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य का प्रधान आचार्यपीठ "आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ" तथा मरीचितपो भूमि अहमदाबाद में श्रीकोसलेन्द्रमठ और 'श्रीरघुवर रामानन्द वेदान्त महाविद्यालय' के संस्थापक जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र दर्शनकेसरी तथा ४१ वें विश्रामद्वारकास्थ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश्वर आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी वर्तमान में ।